१

१९२४ में कपिला नदी में भयंकर बाढ आई थी। तब से नंजनगूडु की जनता ऊँचे स्थानों पर बसने लगी। किन्तु श्रीनिवास श्रोत्रिय का घर अभी तक राजमहल वाली सडक पर है। अब देवालय के आसपास जो पाठशाला, नारायणराव का अग्रहार, दुकानें हैं, उनका महत्व कुछ घट चला है।

बुजुर्गों का बनवाया पुराना घर छोड़कर नयी जगह जाना सरल नहीं होता है। श्रीनिवास श्रोत्रिय के लिए तो इसकी कल्पना भी असम्भव है। कपिला ने उन्मत्त हो, अपने को फैलाकर प्रचंड वेग से लगातार पाँच दिन तक पूरे नगर को संत्रस्त कर दिया था। जिस तरह मंद-मधुर संगीत अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर अर्थात् नाद-लय-ताल में लीन होता है, उसी तरह कपिला अपनी शांत गति से प्रबलतम गति तक पहुँच गई थी। शुद्ध श्वेतवर्णी कपिला मानो अब लाल चुनरी ओढ़कर चली जा रही थी। सभी उसके इस रूप से भयभीत हो उठे थे। अपने संपूर्ण कल्मष को एकबारगी धो देने का संकल्प करके जैसे वह अट्टहास कर रही थी। कितने लोग इस प्रलयकर बाढ़ के ग्रास बने, कितने मकान इसमें धराशयी हुए, कितने परिवार निराश्रित हुए—इन सबका स्पष्ट चित्र किसी को दिखाई नहीं दे रहा था।

श्रोत्रियजी के घर में भी घुटनों पानी भर आया था। इस तबाही के लिए सारे गाँव ने नदी को कोसा, लेकिन श्रोत्रियजी ने ऐसा नहीं किया। 'गंगेच यमुने चैव' का उच्चारण करते हुए उन्होंने घर की देहली के पास ही डुबकी लगाई। उस घर को छोड़ जाने का आग्रह उनके आठ वर्षीय

पुत्र नंजुंड, पत्नी भागीरतम्मा, नौकरानी लक्ष्मी—तीनों ने किया था। लेकिन श्रोत्रियजी न माने। उन्होंने कहा—"इतने वरसों से जो माता संरक्षण देती आई है, अब उसके थोड़ा-सा उग्र रूप धारण कर लेने पर क्या भाग जायें ? ऊपर की मंजिल पर चूल्हा जलाकर खाना पका लो। अतत. बाढ़ उतरी। प्रवाह धीमा पड़ा। नदी फिर नियत स्वरूप के अनुसार वहने लगी। किन्तु अब हर साल बाढ की वजह से नदी के आसपास के गाँवो को काफी क्षति पहुँचने लगी।

श्रीनिवास श्रोत्रिय का पुत्र नंजुंड श्रोत्रिय वड़ा हुआ। मैसूर के कालेज मे पढने लगा। माता-पिता ने कात्यायनी के साथ उसका विवाह कर दिया। एक वालक जन्मा। वालक छह माह का था कि वाढ़ में नंजुंड की मृत्यु हो गई। कपिला ने उसे निगल लिया। वह तैरना जानता था, प्रवाह के विरुद्ध संघर्ष की शक्ति भी उसकी बाँहों मे थी। पिता के समान ऊँचा हृष्ट-पुष्ट, गौर वर्ण, आजानुवाहु था, विशाल माथा था, लेकिन नदी की विकरालता के सम्मुख उसकी एक न चली। वह उमड़-घुमड़कर बहने वाली उस नदी मे तैरने नही, वल्कि सतर्क होकर मणिका घाट पर स्नान करने उतरा था। पैर फिसला। किनारे लगने के उसके सारे प्रयत्न विफल हुए। किनारे पर खड़े लोग चिल्लाने लगे। उसने भी आवाज दी, लेकिन देखते ही देखते वह भँवर मे फँस गया। वहुत खोजने पर भी शव का पता न लगा। चार-पाँच दिन बाद पानी उतरा। नदी-किनारे ही उसका अन्तिम सस्कार कर दिया गया।

छह महीने बीत गये।

इकलौते पुत्र की अकाल मृत्यु से माता-पिता की चिंता अधिक है या बीस साल की उम्र मे ही पति को ग्रसने वाली उसकी प्रेममयी पत्नी की चिन्ता ? एक के दु ख को, दूसरे की नजर से आँकना असाध्य कार्य है। पुत्र-वियोग से माँ एक ही महीने में बूढ़ी हो चली। वह समझ ही नहीं पा रही थी कि बेटे की मृत्यु के लिए रोये या नई बहू को देखकर तरस खाये अथवा निश्चिंत मुस्कराते, निद्रामग्न एक वर्षीय पौत्र को देख छाती पीट ले। निरन्तर रोती रहती। पुत्र की याद आने पर पौत्र को उठा लेती। आँखें भर आती। पास खड़ी बहू सिसक-सिसककर रो उठती।

सास स्वयं धीरज धर, बहू को सीने से लगा लेती। सुख-दुःख से अनजान बच्चा हँसता रहता। सास-बहू को सान्त्वना प्रदान करनेवाला वही तो था।

एक दिन दोपहर को कोई दो बजे कात्यायनी ऊपरी मंजिल के कमरे में पालने के पास बैठी थी। पालने में बच्चा सो रहा था। मन अतीत के बारे में सोच रहा था। शादी हुए केवल दो ही साल हुए थे। प्रिय और जी-जान से प्यार करने वाला पति, देव-तुल्य सास-ससुर और सारे घर को चाँदनी-सी चमक देने वाला पुत्र—अर्थात्, किसी भी बहू को सन्तुष्ट करा देने वाला परिवार मिला था। ससुर के सात्विक स्वभाव, वेद-शास्त्रों के अगाध ज्ञान ने इस परिवार को समाज में विशेष गौरव प्राप्त कराया था। कात्यायनी को पति का हँसता हुआ चेहरा, उसका प्रेमल स्वभाव सदा आनंद देते थे। उसे और चाहिए भी क्या था? इस सब पर उसे अभिमान भी था। और अब छह महीने पहले, एक दिन कपिला ने उसके सुखी संसार को सदा के लिए नष्ट कर दिया। उस दिन से आज तक उसने जो आँसू बहाये, वे कपिला के बहाये पानी से कम न थे! उसके मन में कभी-कभी जीवन के अर्थ को लेकर प्रश्न उठते। लेकिन इन सबको उसकी बुद्धि पकड न पाती। कात्यायनी ने इण्टरमीडिएट पास किया था। साहित्यकारों के जीवन के संबंध में उनके विचार पढ़े थे। उसने उन विचारों को मन में उलटा-पलटा; किन्तु कोई भी उसे अपनी इस घोर विपत्ति का कारण नहीं समझा पाया। सीढ़ियों पर किसी के आने की आहट सुनाई पडी। कात्यायनी ने मुडकर देखा। ससुर आ रहे थे। बच्चा सोया था, फिर भी सिर तनिक झुकाकर वह पालना झुलाने लगी। श्रोत्रियजी विचार-मग्न थे। उन्होंने बहू को नहीं देखा। सीधे दूसरे कमरे में चले गये। यह कमरा उनका स्वाध्याय कक्ष था। कमरे में पाडुलिपियाँ, छपे ग्रंथ और उन्हीं के हाथ की लिखी कुछ पुस्तकें है। एक स्थान पर स्याही और कलम रखी है। खिड़की के पास बाघ-चर्म बिछा है, जिस पर तकिया रखा है ताकि दीवार से टिककर बैठ सकें। सामने व्यासपीठ है। कम-से-कम तीस साल से इस कमरे में वे वेद-शास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद आदि का अध्ययन कर रहे है। पुत्र की मृत्यु से लेकर उसकी उत्तरक्रिया तक वे इस कमरे में नही आये। सब समाप्त होने के पश्चात्

भी एक-दो सप्ताह तक इस कमरे में प्रवेश नहीं किया था। पत्नी और बहू को सान्त्वना देते हुए उनके साथ ही रहते थे। अब पूर्ववत् अध्ययन-कक्ष में आने लगे हैं। पत्नी भागीरतम्मा नौकरानी लक्ष्मी के साथ रहती। कभी-कभी बहू के पास बैठ जाती। वे पुत्र की याद करके आँसू बहाती रहती, तो कात्यायनी पति का स्मरण करके। नौकरानी जो भागीरतम्मा की ही उम्र की थी, चुपचाप तड़पती रहती। लेकिन कात्यायनी ने ससुर की आँखों में कभी एक बूंद आँसू भी नहीं देखा। वह जानती है कि वे पाषाणहृदय नहीं हैं, लेकिन उनकी सहन-शक्ति की गहराई उसकी ग्रहण-शक्ति की पकड़ के परे थी।

शाम होने को आई, बच्चा अभी तक सो रहा था। कात्यायनी का मन अपार चिंताओं में डूबा था। पीछे खड़े ससुर की पुकार, उसे ऐसी लगी मानो कोई दूर से आवाज दे रहा हो—'बेटी' !

कात्यायनी ने मुड़कर देखा। श्रोत्रियजी सीढ़ी के पास खड़े हैं। वह उठ खड़ी हुई। नीचे उतर रहे श्रोत्रियजी फिर ऊपर आ गये और पास के ही खम्भे के पास बैठकर कहने लगे—"बैठो बेटी !"

कात्यायनी सिर झुकाकर मूक-सी बैठी रही। जब से घर की बहू बन कर आई है, तब से उनमें पिता-पुत्री का-सा व्यवहार है। लेकिन पति की मृत्यु के पश्चात् वह उनसे भी नहीं बोल पाती थी। अतः श्रोत्रियजी ने ही पूछा—"बेटी, जैसा कि मैंने कहा था, तू भगवद्गीता पढ़ती है न ?"

कात्यायनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। दो मिनट बाद उन्होंने प्रश्न दोहराया, तो कहा—"पढ़ने की कोशिश की, किन्तु समझ नहीं पाती। और फिर मन भी नहीं लगता।"

"जितना समझ में आये, उतने से संतोष करना चाहिए। धीरे-धीरे सब समझ में आ जायेगा।"

एक क्षण चुप रहकर कात्यायनी ने कहा—"भगवद्गीता का दर्शन मेरी समझ के परे है। मेरे दुःख को दूर करने की शक्ति किसी वेदांत में नहीं है। पढ़ने से क्या लाभ ?"

श्रोत्रियजी ने विषाद से हँसकर सान्त्वना के स्वर में कहा—"यह सच है कि हर एक को अपना दुःख स्वयं भोगना पड़ता है। कोई ग्रंथ या व्यक्ति उसे अपने ऊपर नहीं ले सकता। लेकिन इन ग्रंथों से मालूम होगा

कि इस महान जगत की घटनाओं के साथ तुलना करने पर हमारा दुःख कितना छोटा है। इस दु.ख को सहना तभी सरल होगा जब हम समझ जायेंगे कि वह भी भगवान की इच्छा का एक अंश है। इसलिए कहता हूँ कि ध्यान देकर पढ़ो···।"

श्रोत्रियजी समझा ही रहे थे कि बच्चा जाग उठा। शायद नींद पूरी नहीं हुई थी, वह रोने लगा। "बच्चे को चुप करा लो"—कहकर वे नीचे चले गये। कात्यायनी बच्चे को दूध पिलाने बैठ गयी। बच्चा चुप हुआ। जब उसे पति की याद आने लगती, वह बच्चे को छाती से और अधिक चिपका लेती। मन कुछ हलका होता। इसके सिवा अब और किसका आसरा है उसे।

दूध पी चुकने के बाद बालक खेलने लगा। और माँ के चेहरे को नाखूनों से खरोंचता हुआ हँसने लगा। एक बार पूरे घर को सुनाता-सा जोर से हँस पड़ा। हँसी सुनकर दादा ने पुकारा—"चीनी!"

कात्यायनी बालक को लेकर नीचे आई। श्रोत्रियजी बालक को अपने कंधे पर बैठाकर घर के पीछे बाड़े मे चले गये। कात्यायनी रसोईघर में चली गई। सास रसोई मे लगी थी। कात्यायनी चुपचाप खड़ी रही। बहू को देख, सास ने कहा—"बेटी, तू अकेली मत बैठ। जितनी अकेली रहेगी उतनी ही अधिक चिन्ता होगी। मेरे पास, कभी लक्ष्मी के पास बैठ जाया कर। कुछ बोलती रहा कर। गाय-बछड़ों के काम में लग जाया कर। कुछ न कुछ करते रहना चाहिए। इससे थोड़ा तो भूलेगी। यों खड़ी क्यों है, बैठ जा।" फिर वह अपने काम मे जुट गई। कुछ याद कर कहा—"नहीं, बैठकर अँगीठी की ओर ध्यान रख। कुछ उबले तो मुझे आवाज देना। मैं भगवान की पूजा की तैयारी करके आती हूँ। उनके आने का समय हो चुका है।" वह देवपूजा के कमरे मे चली गई।

साय सध्या-देवार्चना समाप्त कर श्रोत्रियजी जब पूजागृह से बाहर निकले, तब रोज की तरह रात के आठ बज चुके थे। पूजागृह से सीधे घर के पिछवाड़े सध्या-वंदन की सामग्री को केले के पौधे के पास डालकर, पुनः जब पूजागृह की ओर जाने लगे तो कात्यायनी ने कहा—"मैसूर से डॉ० सदाशिवराव आये हैं, दीवानखाने मे बैठे हैं।"

"कितनी देर हुई ?"

"करीब दो घंटे हुए होंगे। आप तब संध्या करने बैठे ही थे।"

और वेदमंत्रों का पाठ न कर, पूजा के पात्रों को भीतर रखकर श्रोत्रियजी बाहर आये। डॉ० सदाशिवराव करीब पैंतीस वर्ष के है। आँखों पर चश्मा चढ़ा है। सिर के काफी बाल सफेद हो गये हैं। और लगता है कि वेशभूषा की ओर ध्यान कम ही दिया गया है। वह दीवानखाने में एक कुर्सी पर बैठ संस्कृत की कोई पुस्तक देखने में मग्न थे। श्रोत्रियजी की आवाज पर ही आँखें ऊपर उठाईं। "आपको आये काफी देर हुई—प्रतीक्षा करनी पडी—क्षमा करें।"

"आप बडे हैं। क्षमा की बात ही क्या ? मुझे और कोई काम भी तो नहीं है, फिर मैं तो फुरसत से ही आया हूँ।"

कुर्सी पर बैठते हुए श्रोत्रियजी ने पूछा—"आपका ग्रंथ कहाँ तक पूरा हुआ ?"

"वह प्रकाशित हो चुका है। लंदन के एक प्रकाशक ने प्रकाशित किया है। आपको उसी की प्रति भेंट करने के लिए आया हूँ"—कहकर सदाशिवराव ने थैली से एक पुस्तक निकालकर श्रोत्रियजी को दी। सैकड़ों पृष्ठों का सुन्दर ग्रंथ —'प्राचीन भारतीय राजतन्त्र को धर्म की देन।' श्रोत्रियजी ने पहला पन्ना पलटा, कन्नड में लिखा था—"पूज्य श्रीनिवास श्रोत्रियजी को भक्तिपूर्वक···सदाशिवराव।"

उसे देखकर श्रोत्रियजी ने पूछा—"इतना सम्मान ?"

इस ग्रंथ के मार्गदर्शक आप ही है। इससे संबंधित अनेक विषयों को आपसे ही जाना था। शंकाओं का आपने ही निवारण किया था। भूमिका में इनका उल्लेख भी मैंने किया है।"

श्रोत्रियजी को अंग्रेजी का साधारण ज्ञान ही था। बैंक का चैक, अता-पता लिख देने लायक कामचलाऊ अंग्रेजी जानते थे। उन्होंने कहा—"आपने इतना बडा ग्रंथ लिखा है, मैं तो ठीक तरह से अंग्रेजी पढ़ भी नहीं पाता। मेरी बहू पढेगी।" उसे रखकर कहने लगे, "अच्छा अब हाथ-मुँह धो लीजिए, भोजन के बाद बातें होगी।"

भोजन के लिए दोनों रसोईघर और पूजाघर के आँगन में बैठ गये। भागीरतम्मा परोस रही थी। एक-दो कौर खाने के पश्चात् डॉ० सदा-

शिवराव ने अचानक पूछा—"अरे, नंजुंड श्रोत्रिय दिखाई नही पड़ा ?"

श्रोत्रियजी क्षण-भर को विचलित हुए; फिर अपने को सँभालते हुए कहा—"भोजन कर लें, फिर बताऊँगा।"

डॉ० राव श्रोत्रियजी के स्वर्गीय पुत्र के गुरु हैं। जब नंजुंड बी० ए० में था, तब वे इतिहास पढ़ाते थे। इसी कारण परिचय हुआ और वे श्रोत्रियजी के पाण्डित्य का लाभ उठाने लगे। श्रोत्रियजी की ये बातें सुनकर उन्हे खटका हुआ। शाम को जब वे यहाँ पहुँचे थे तब द्वार कात्यायनी ने ही खोला था। वे उसकी शादी मे भी गये थे। एक-दो बार यहीं उससे बातें भी की थी। वह भी उनसे निस्संकोच बात करती थी। लेकिन आज वह "बैठिये, अभी संध्या करने गये हैं, एक घंटा लगेगा" कहकर, सिर झुकाकर भीतर चली गई थी। डॉ० राव संध्या की धुंधली रोशनी में उसके मुख को स्पष्ट नहीं देख पाये थे।

भोजन के बाद वे दोनों बैठक में गये। पान की तश्तरी सामने रखी थी। श्रोत्रियजी ने कहा, "पान लीजिए, मैंने खाना छोड़ दिया है।" "क्या नंजुंड श्रोत्रिय गाँव मे नहीं है?"—डॉ० राव ने चार पान चबाते हुए पूछा।

"नहीं"—श्रोत्रियजी ने शांत स्वर में कहा—"आपके शिष्य को कपिला ने निगल लिया। पिछले ज्येष्ठ में पैर फिसल गया था। किनारे पर न आया, तो नहीं ही आया।"

सुनकर डॉ० राव को बड़ा आघात लगा। श्रोत्रियजी मजाक मे भी अमंगल बोलने वाले व्यक्ति नहीं हैं। फिर भी तुरंत विश्वास नही हुआ। वे अवाक्-से श्रोत्रियजी का चेहरा देखते हुए बैठे रह गये। शांत स्वर मे श्रोत्रियजी ने पुनः कहा—"शिष्य के बारे में यह सुनकर आपको दु:ख हो रहा है। आखिर सब सहना ही है। घर मे बहू और एक साल का उसका बच्चा है। बच्चे को आशिष दें कि उसे आप-जैसे विद्वानों से शिक्षा मिले। अब बताइए, आगे क्या करना चाहते हैं? आप-जैसे मेधावियों को चाहिए कि हमारे पूर्वजों का जीवन वर्तमान पीढ़ी के सम्मुख लायें। आपको यहाँ आये करीब डेढ़ वर्ष तो हो ही गये होंगे?"

श्रोत्रियजी के व्यक्तित्व के प्रति डॉ० राव को अपार अपनत्व, श्रद्धा थी; लेकिन इकलौते पुत्र की मृत्यु का असह्य दु:ख बिसराकर ...

इतने शांत रह सकते है—इसकी कल्पना भी उन्होंने नहीं की थी। ऐसी कल्पना का कोई अवसर भी कहाँ था ? बेटे की मृत्यु के बारे में बात बढ़ाने की उनकी अनिच्छा जानकर डॉ० राव ने कहा, "मेरे इस ग्रंथ से मुझे पर्याप्त ख्याति मिली है। इसकी प्रशंसा में विदेशों से अनेक विद्वानों के पत्र प्राप्त हुए है। लेकिन मुझे अभी तृप्ति नहीं हुई है। 'प्राचीन भारतीय राजतन्त्र को धर्म की देन' विषय पर शोध करते समय, ऐसी सामग्री मिली है जिसके आधार पर प्राचीन भारत का समस्त जीवन प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके अलावा इच्छा जागी है कि इस देश की सांस्कृतिक परम्परा का, पूर्वेतिहास से लेकर आज तक का वर्णन करूँ। यह ग्रंथ पाँच जिल्दों मे लगभग पचास वर्षों में पूर्ण करने की योजना है। इस ग्रंथ के लिए आपका जो सहयोग और आशीर्वाद मिला, अगले ग्रंथों के लिए भी उसकी अपेक्षा है।"

इस बीच कात्यायनी ने पास ही दो बिस्तर लगा दिये। ओढ़ने के लिए कंबल रख दिया था और पीने के लिए ताम्र-पात्र मे पानी। वह भीतर चली गयी। बिस्तर पर लेटने के बाद भी दोनों बातें करते रहे।

डॉ० राव बता रहे थे—"अनेकों ने इस देश का इतिहास लिखा, लेकिन वे सब राजनीतिक इतिहास है। सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से भी एक-दो ग्रंथ प्रकाश मे आये है। मेरा दृष्टिकोण इन सबसे भिन्न है। भारत की संस्कृति में कला, राजनीति, दैनिक जन-जीवन, इन सब मे धर्म का प्रवाह निरन्तर बहकर उन सबका पोषण करता है। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन आदि धर्मों के विकास से संस्कृति के स्वरूप मे परिवर्तन हुआ। इसे सब जानते है। लेकिन मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व जीवित इन तीनों धर्मों के प्रभाव से इस देश का सांस्कृतिक भवन, अधिक उत्थान-पतन हुए बिना टिका रहा। क्योंकि इन तीनों धर्मों का अंतःसत्व, उद्गम एक ही है। इस्लाम धर्म का मूल संस्कृति पर क्या परिणाम हुआ, आधुनिक युग में वह किस दिशा मे जा रहा है—इस दृष्टि से मैं खोज कर रहा हूँ। इसके लिए भारतीय धर्मशास्त्रों, दर्शनशास्त्रों, साहित्य आदि का अध्ययन आवश्यक है। कुछ ग्रंथ पढ़ लिए हैं, कुछ को आपके साथ पढ़ना पड़ेगा। इसमें आपसे ही सहायता मिल सकती है।"

रात के बारह बज गये। दोनों बातचीत मे डूबे रहे। ऐसे महान

ग्रंथों के रचना-क्रम, बीच-बीच में आने वाली कठिनाइयों के संबंध में श्रोत्रियजी प्रश्न कर रहे थे। डॉ० राव ने कहा, "इस तरह की शोध के लिए काफी अवकाश चाहिए। एक-दो निष्णात सहायक मिल जायें, तो भाग्य ही समझना चाहिए। अनेक ग्रंथ हमारे पास नहीं हैं। इसके लिए देश के विभिन्न पुस्तकालयों में काफी समय बिताना पड़ेगा। मुख्य-मुख्य ऐतिहासिक स्थानों पर जाकर अपनी आँखों देखना और अध्ययन करना होगा। इन सबके लिए धन चाहिए। इस प्रकाशित ग्रंथ के साथ अपनी योजना के विवरण की अपील मैंने महाराज कृष्णराज वोडेयरजी को भेजी है। अगले सोमवार को दोपहर के तीन बजे महाराज ने बुलाया है। लगता है महाराज इस कार्य में मदद करेंगे।"

श्रोत्रियजी बड़ी आसक्ति से यह सब सुन रहे थे। नींद आयी, तब दो बजे थे।

नियमानुसार श्रोत्रियजी सुबह चार बजे उठ बैठे। घर से करीब सौ गज दूर गुंडल नदी की ओर गये। कृष्ण पक्ष था—चाँदनी नहीं थी। लेकिन आकाश के नक्षत्र मन में अनंत की कल्पना जगा रहे थे। प्रशांत भोर में निवृत्त होकर लौटे। फिर बाड़े में गये। उन्हें आते देख गायें उठ खड़ी हुईं। उन पर हाथ फेरा, उन्हें खोला और बाहर बाँधकर जब वे भीतर आये तो भागीरतम्मा भी जाग उठी थी। एक अँगोछा और एक पात्र लेकर श्रोत्रियजी देवालय के सम्मुख स्थित मणिकर्णिका घाट गये। कपिला शांत षड्ज श्रुति-सी बह रही थी। नदी में स्नान किया, कपड़े धोये। पात्र में जल भरा। लौटते वक्त तक नित्य की भाँति वातावरण में पक्षियों का कल-रव भर चुका था। इस बीच भागीरतम्मा ने स्नान करके पूजाघर सँवार दिया था और पूजा की तैयारी कर दी थी। श्रोत्रियजी पूजाघर में प्रविष्ट हुए।

डॉ० राव उठे तो आठ बजे थे। रोज इसी समय उठते हैं। रात को दो बजे से पहले कभी सोते नहीं। उठकर कुर्सी पर बैठे कि कात्यायनी ने आकर कहा, "पूजा कर रहे हैं, आरती होने ही वाली है; आप भी स्नान कर लीजिए—पानी तैयार है।"

स्नान के पश्चात् डॉ० राव पूजाघर के द्वार पर खड़े हो गये। उन्हें

आरती और तीर्थ दिये गये। उसी दिन दोपहर तक उन्हें मैसूर लौटना था। दोपहर का भोजन हुआ। श्रोत्रियजी ने भीतर से लाकर तांबूल की तश्तरी सामने रखते हुए कहा—"इसे स्वीकार करें।" तश्तरी में तांबूल और उस पर एक नारियल रखा था। पास ही एक लिफाफा। देखते ही वे समझ गये कि इसमें पैसा है। एक कदम पीछे हटकर कहा—"आपके आशीर्वाद स्वरूप इस श्रीफल को लेने से मैं इन्कार नहीं करूँगा, लेकिन इस लिफाफे को स्पर्श नहीं करूँगा।"

श्रोत्रियजी ने कोमल स्वर में कहा—"आप एक महाग्रंथ की रचना में लगे हैं। उसके लिए पैसे चाहिए ही। भगवान का दिया हुआ जो-कुछ इस परिवार में बचता है, उसका सदुपयोग ऐसे कार्यों के लिए न हो तो वह किस काम का? आप लीजिए।"

"मैं आपसे कुछ दूसरी अपेक्षा रखता हूँ—इसकी नहीं।"

"सहायता करने वाला मैं कौन होता हूँ? आप जब चाहे आइए। लेकिन इसे ले लीजिए। यह मैं आपको नहीं दे रहा हूँ। देनेवाला भी मैं नहीं हूँ। पैसे तो ऐसे सहकार्यों के लिए ही है! शास्त्र-वचन है कि किसी धर्म-कार्य के लिए, किसी के द्वारा दी गई भेंट, दाता अगर लोभवश बेमन से देता हो, अथवा अपने बच्चों को भूखा मारकर देता हो, या वह कमाई अन्याय की हो तो ही ऐसी मदद न लें। इस भेंट को अस्वीकार करना भी अधर्म है।"

यह सुनकर डॉ० राव को बड़ा संकोच हुआ। तांबूल की तश्तरी स्वीकार की। भागीरतम्मा से कुछ कहकर, कात्यायनी को सान्त्वना दी और दोपहर बाद रवाना हुए।

रेल नंजनगूडु से आगे निकल जाने के बाद कुतूहलवश उस लिफाफे को खोलकर देखा तो अवाक् रह गये। सौ-सौ के दस नोट थे।

मैसूर पहुँचने से पहले ही उन्होंने निश्चय कर लिया था कि इन रुपयों का सदुपयोग किस तरह किया जाये: दो सौ रुपये का एक नया टाइपराइटर, लगभग तीन सौ रुपये की नितान्त आवश्यक ऐसी किताबें, जो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में अनुपलब्ध हैं, और शेष रुपये शोध-कार्य के सिलसिले में प्रवास के लिए।

२

डॉ० सदाशिवराव सुबह नौ बजे उठे। पिछली रात ग्रंथ में जहाँ-जहाँ निशान लगाये थे, इस समय फिर उन्हें देख रहे थे। सुबह उठते ही कॉफी पीने की उनकी आदत नहीं है। जब भी पत्नी कॉफी या नाश्ता लाती, ले लेते। स्वयं कहकर उन्होंने कभी कुछ नहीं खाया-पिया।

पढ़े हुए ग्रंथों की अनेक बातों से वे सहमत नहीं हो पाते थे। अपने ग्रंथ में उनका उल्लेख करके वे उनका दोष भी सिद्ध करना चाहते थे। वे विगत युग के दो हजार वर्ष के जीवन की कल्पना कर रहे थे कि पीछे से किसी ने उनके सिर पर ठंडा-ठंडा हाथ रख दिया। मुड़कर देखा··· पत्नी है। बायें हाथ में तेल का लोटा था। दाहिने हाथ से एक चम्मच तेल डालकर वह उनके सिर में मलने लगी। हड़बड़ाते हुए उन्होंने पूछा —"सुबह उठते ही यह क्या कर रही है नागु ?"

उत्तर दिये बिना ही नागलक्ष्मी ने कहा—"नहीं समझे ? उठिए, एक पुराना अँगोछा लपेटकर बैठ जाइए। शरीर पर तेल मल देती हूँ।"

"सिर में जितना डाल दिया, उतना ही काफी है ! मगर आज सुबह-सुबह उठते ही यह क्या सूझी ? तू समझती क्यों नहीं कि मेरे पास कितना काम है !"

नागलक्ष्मी ने हँसकर कहा—"सैकड़ों किताबें आपके दिमाग में हैं। किस राजा की सेना में कितने बूढ़े हाथी थे, यह सब आपको जबानी याद है। लेकिन पत्नी ने कल रात जो कहा, वह भूल गये ! बताइए, कल रात मैंने क्या कहा था आपसे ?"

डॉ० राव याद करने लगे। लेकिन व्यर्थ। रात तीन बजे तक तीन सौ पृष्ठों का जो ग्रंथ पढ़ा था, उसकी हर बात याद है। अंत में नागलक्ष्मी ने ही हँसकर कहा—"आपको याद नहीं आती ! आप-जैसे लोग पत्नी की ओर ध्यान ही कहाँ देते हैं ? खैर छोड़िए, आज आपका जन्मदिन है। अभ्यंग स्नान करने और उसके बाद खीर खाने की बात मैंने कही थी। बुरा न मानिए, उठिए।"

स्नानगृह में पति के तेल मलते हुए नागलक्ष्मी ने कहा—"बाल

सँवारते वक्त आपने कभी आईने में अपना सिर देखा है ? सफेद बालों से भर गया है। आज आप चौंतीस के हुए। अभी से बुढ़ापा ! ख़ैर, जाने दीजिए, यह बताइए कि आपकी पत्नी की उम्र कितनी है ?"

डॉ० राव को हँसी आ गई। "कितनी भी हो, इतना पक्का है कि पैंतीस से कम ही है !"

"बड़े चतुर हैं आप ! जिसे पत्नी की चिंता नहीं, उसे पत्नी की उम्र की क्या परवाह ! मैं राज से दो महीने बड़ी हूँ। अभी पन्द्रह दिन पहले वह चौबीस का हुआ है। तो बताइए, मेरी उम्र कितनी हुई ?"

"राज से दो महीने अधिक।"

"मजाक छोड़िए ! मैं आपसे कितने साल छोटी हूँ ?"

"राज मुझसे जितने साल छोटा है उससे तू दो महीने कम।"

तेल लगे हाथ से पति की नाक धीरे से खींचते हुए नागलक्ष्मी ने कहा —"साफ-साफ बताना पड़ेगा; मैं आपको यों ही नहीं छोड़ूँगी। शरीर में तेल तो लगाने दीजिए। अब आप शरीर को मलते रहिए। मैं आपके लिए कॉफी बनाकर लाती हूँ। आज जब तक आप स्नान करके भगवान की पूजा नहीं करते, तब तक खाने के लिए कुछ नहीं दूँगी !"

नागलक्ष्मी रसोईघर में गयी। कल रात ही उसने घर की साफ-सफाई की थी। पूजा की तैयारी कर रखी है। अब भोजन-भर बनाना है। दस बज चुके थे। वह उसकी तैयारी कर ही रही थी, कि उसके चार साल के पुत्र पृथ्वी ने, जो पड़ोस के बच्चों के साथ खेल रहा था, आकर कहा— "माँ भूख लगी है।"

"आज तेरे पिताजी की वर्षगाँठ है। उनके स्नान के बाद ही खाने को मिलेगा। भूख लगी है तो यह खा ले।" कहकर उसने थोड़ा-कुछ खाने को दे दिया। लड़का फिर खेलने चला गया। अपना काम समाप्त कर नागलक्ष्मी स्नानगृह में गयी। डॉ० राव वहाँ नहीं थे। अध्ययन-कक्ष में देखा तो वे एक फटा-सा बोरा बिछाकर बैठे थे और पिछली रात पढ़े ग्रंथों में नोट उतार रहे थे। पास आकर नागलक्ष्मी ने कहा—"उठिए, साल के बारहों महीने पढ़ना तो लगा ही रहता है। आज सालगिरह का दिन खुशी-खुशी पत्नी-बच्चों के साथ बिताना चाहिए। चलिए, स्नान कर लीजिए और भोजन भी। चाहें तो थोड़ा लेट जाइएगा। आज 'वसंत-

सेना' नाटक देखने जायेंगे।"

"अवश्य जायेंगे। आज तो वही होगा, जो तू कहेगी। हाँ, अभी बजा क्या है?" फिर दीवार पर लगी घडी देखकर कहा—"अरे, साढ़े ग्यारह! चलो-चलो, जल्दी स्नान करा दो। तीन बजे महाराज से मिलना है।"

"सच? आपने मुझे तो बताया ही नही! बात क्या है?"

"शायद भूल गया। डायरी में लिख रखा था। उठो स्नान करा दो।"

"डायरी मे—मैं अंग्रेजी तो जानती नही! मैं ठहरी निरी गँवार अनपढ लडकी!" वह पति की बाँह थामे गुसलखाने मे ले गई। गरम पानी डाला। सिर, पीठ, शरीर मे साबुन मला और स्नान के बाद भगवान की पूजा की। पति और पुत्र को प्रसाद दिया। तीनों ने भोजन किया; तब तक करीब डेढ़ बज चुका था। बर्तन धोकर और बचे हुए भोजन को ढककर नागलक्ष्मी पान की तश्तरी लेकर राव के अध्ययन-कक्ष में आई तो वे बाहर जाने के लिए तैयार हो चुके थे। काला सूट, काली टाई, सिर पर पगड़ी बाँधकर वे बूट पहन रहे थे। देखते ही नागलक्ष्मी ने कहा—"अरे, यह क्या? आप तो निकल पड़े! क्या आज पान भी नही खायेंगे? जल्दी ही तैयार कर देती हूँ, ठहरिए!"

"नही नागु, दो बजने को है। ठीक तीन बजे महाराज से भेंट है। पान खा लूँ तो पुन: मजन किये बिना उनके सामने न जा सकूँगा" कहकर बाहर निकल गये। ताम्बूल-पात्र मेज पर रखकर नागलक्ष्मी उनके पास आई और उनके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहने लगी—"मेरी तरफ तो देखिए।"

डॉ० राव निहारने लगे तो नागलक्ष्मी ने स्नेह-भरे स्वर में कहा—"जाकर जल्दी आइए। मैंने अभी-अभी भगवान की पूजा की है, महाराज जरूर आपकी सहायता करेंगे।"

डॉ० सदाशिवराव जब दस वर्ष के थे तभी उनकी माँ दो बच्चे छोड़कर चल बसी थीं। इनके मामा कुणिगलु रामण्णा ने ही सदाशिव और राज दोनों बच्चों को पाला-पोसा। दो साल बाद पिताजी भी स्वर्गवासी हो गये। लड़कों को पिता से कोई जायदाद नही मिली। सदाशिव, रामण्णा की पुत्री से दस साल बड़े थे। जब वह पाँच साल की थी तब

सदाशिव पढ़ने के लिए मैसूर के अनाथालय मे प्रविष्ट हुए। लेकिन नागलक्ष्मी और राज हम-उम्र थे। आँख-मिचौनी आदि खेल साथ-साथ खेलते थे।

डॉ० राव चौबीस की उम्र मे एम० ए० करके महाराज कालेज में इतिहास के प्राध्यापक बन गये और डॉक्टरेट की उपाधि के लिए अध्ययन करने लगे। नागलक्ष्मी से शादी कर लेने का आग्रह रामण्णा काफी दिनों से कर रहे थे। नागलक्ष्मी केवल चौदह की थी, लेकिन शरीर से सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और ऊँचे कद की थी। घर के काम-काज मे कुशल। मिडिल तक की शिक्षा पूरी करना भी उसकी किस्मत मे नही था। और अपने माता-पिता की तरह वह यह भी जानती थी कि लड़कियों को पढ-लिखकर आखिर करना ही क्या है? अध्ययन मे डूबे हुए राव शादी के बारे मे सोचते भी नही थे मगर मामा के कहने पर शादी कर ली। मैसूर में घर बसाया। राज भी भाई-भाभी के साथ रहकर पढ़ता रहा। देवर-भाभी मे जो स्नेह था, वह पति-पत्नी मे भी नही था। सदाशिव पत्नी को चाहते न हों, सो बात नही थी। मगर, वे पढ़ाई-लिखाई, शोध आदि मे ही तल्लीन रहा करते थे। शादी के छह वर्ष के बाद पुत्र पृथ्वी हुआ।

चार साल पूर्व रामण्णा स्वर्ग सिधार गये। एक वर्ष बाद उनकी पत्नी ने भी इस ससार से विदा ले ली। अब नागलक्ष्मी की बहन और बहनोई उनकी खेती-बाड़ी की देखभाल करते हैं।

अंग्रेजी साहित्य मे एम० ए० होने के बाद राज को उसी कालेज में प्राध्यापक की नौकरी मिल गई। बाद मे इंगलैंड में अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति भी मिली। अब दो बरस से, जब से वह ऑक्सफोर्ड गया है, नागलक्ष्मी का घर मे मन नही लगता। स्वभावत: उसको कुछ अधिक बोलने की आदत है। अध्ययन मे खोये रहने वाले पति, पुस्तकालयों मे जाते हैं तो सब-कुछ भूल जाते हैं। घर आते हैं तब भी अध्ययन-कक्ष में रात के दो बजे बाद तक पढ़ते-लिखते रहते हैं। उन्हे विदेश में रहने वाले भाई को पत्र लिखने का भी समय नहीं मिलता। नागलक्ष्मी पत्र लिखती और वे उस पर अंग्रेजी मे पता लिख देते। ऑक्सफोर्ड मे अध्ययन पूर्ण करके राज स्वदेश के लिए जहाज मे चढ़ चुका है। आजकल में बम्बई आ जायेगा।

डॉ० राव के महाराज से मिलने जाने के बाद और कुछ काम न

रहने के कारण वह नाटक देखने जाने की तैयारी में लग गई। वह सोचती रही—'महाराज से भेंट कितने बजे होगी ! वे तो बड़े आदमी हैं, एक-दो बात कहकर लौटा देंगे ! महाराज से भेंट की बात उन्होंने नही बताई थी। वे मुझे कुछ नही बताते ! अपने ही काम मे डूबे रहते हैं !'

पाँच बज गये। वे नही आये। पृथ्वी अन्य बच्चों के साथ खेल रहा था। नागलक्ष्मी ने उसे बुलाया और हाथ-मुँह धुलाकर कपड़े पहना दिये। स्वय भी तैयार हो गई। आज पति की सालगिरह जो है ! उन्हें अपनी सालगिरह का भान भले ही न रहे, पर वह क्यों न गर्व करे ? बेटे ने आकर पूछा, 'माँ, पिताजी अभी तक नही आए' तो नागलक्ष्मी 'अभी आयेंगे' कहकर बाट जोहने लगी। घड़ी ने छह बजाये। किन्तु उनका पता नही। नागलक्ष्मी द्वार पर खड़ी रही। एक पोस्टमैन आया और हस्ताक्षर लेकर एक लिफाफा दे गया। वह तीन शब्दों का तार था जो राज ने भेजा था। लिखा था, "मंगलवार शाम को पहुँचूंगा।" उसने अर्थ भाँप तो लिया, लेकिन निश्चित नही समझ पाई। 'किससे पूछूं ? कन्नड में पत्र लिखने वाले राज ने तार अंग्रेजी में ही क्यों भेजा ? मैं अंग्रेजी नही जानती, इसलिए मेरी खिल्ली उड़ा रहा है क्या ? आने दो उसे, खूब खरी खोटी सुनाऊँगी' उसने सोच लिया।

रात को आठ बजे डॉ० राव घर आये। तार देखकर कहा—"कल शाम को राज आ रहा है।"

"तो मैंने जो अर्थ लगाया था, वह ठीक ही था !" नागलक्ष्मी ने सगर्व कहा।

"हाँ, तू होशियार जो है। उसके आने के पश्चात् अंग्रेजी सीख ले और मेरी मदद कर !"

"बस, यही तो बाकी है, अंग्रेजी सीखना और आपकी सहायता करना। आप जानते है कि मेरी किस्मत में विद्या है ही नही। छोड़िए, आज के नाटक का कार्यक्रम रद्द हो गया; मगर राज को लेने सब साथ जायेंगे। महाराज ने क्या कहा ?"

"उन्हें मैंने अपनी पुस्तक पहले ही भेज दी थी। उन्होंने पढ़ ली है। कहते थे बड़ी पसन्द आई। विश्वास दिला या है कि मैं जो ग्रंथ लिखने जा रहा हूँ, उनके प्रकाशन में वे पूरी सहायता करेंगे।"

"इसी उद्देश्य से आप उनसे मिलने गये थे, मुझे नहीं बताया।"

"शायद किसी विचार में मग्न था—भूल गया। अब समय हो गया है। देखो, मुन्ने को भूख लगी होगी।"

नागलक्ष्मी बेटे को लेकर रसोईघर में चली गयी।

भाई को लेने के लिए डॉ० सदाशिवराव अकेले ही स्टेशन गये। राज ने गाड़ी से उतरते ही बड़े भाई को नमस्कार किया। घर पहुँचे तो नागलक्ष्मी ने कहा—"साँवले हो गये हो और कुछ दुबले भी।"

"खिलाने के लिए तुम जो वहाँ नहीं थीं। सोचा कि अगर इसी के लिए शादी कर लूँ तो तुम बुरा मान जाओगी। बस! यों ही समय काट दिया।"

"जैसे हर काम में तुम मेरी सलाह लेते हो! अच्छा, आओ बैठो। थोड़ा शर्बत पी लो।"

एक मित्र डॉ० राव से मिलने आये। दोनों की बातचीत अध्ययन-कक्ष में चलती रही। पृथ्वी अपने चाचा को भूल चुका था। दूर खड़ा देखता रहा। इंग्लैंड जाने के पहले दो साल के पृथ्वी को वही खिलाता था। उसने भाभी से पूछा—"नागु, यह बताओ कि ये दो साल कैसे बीते? भैया के ग्रंथों ने इंग्लैंड में काफी प्रसिद्धि पाई है। वे तुम्हें कुछ समय देते भी हैं या पहले की तरह पढ़ने में रमे रहते हैं?"

"उनका स्वभाव कभी बदल सकता है?"

"फिर भी पत्नी को अकेली देख कभी-कभी कुछ सोचते तो होंगे?"

"तुम ही पूछो उनसे। अच्छा यह बताओ कि ये नाटक कैसे थे जिनका तुमने पत्र में उल्लेख किया था?"

राज को नाटक और नाटक-मंच के प्रति विशेष आसक्ति थी। उसने विदेश में खूब अंग्रेजी नाटक और ऑपेरा देखे। कुछ प्रसिद्ध अभिनेताओं से उसका वैयक्तिक परिचय भी हो गया था। उसने शृंगार के नये यंत्रों से लेकर यंत्रों द्वारा नियंत्रित साज-सज्जायुक्त रंगमंच के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली थी। वह भाभी को उन सब के बारे में लिखकर बताता था। इसका यह मतलब नहीं कि वह सारी बातें समझ ही जाती हो, दूसरों से बातें सुनने की उसकी आदत है; और फिर राज तो बातूनी है

ही। इस तरह दोनों की निभती। नागलक्ष्मी ने कहा—"इस शहर में एस० एस० एस० नाटक कंपनी आई हुई है। पंद्रह दिनों से 'वसंतसेना' खेला जा रहा है। सारा शहर देखने जाता है। कल हम जाने वाले थे कि तुम्हारा तार आ गया। फिर सोचा, कल तुम्हारे साथ ही जायेंगे।"

राज ने हँसकर कहा—"नागु, तुम भी झूठ बोल रही हो। अभी-अभी कह रही थी कि वे तुमसे बोलते नहीं और अब कह रही हो कि कल नाटक देखने जा रहे थे।"

"नहीं बाबा! कल उनकी सालगिरह थी। मैंने ही नाटक देखने का आग्रह किया था। महाराज से मिलकर शाम तक लौटने वाले थे, लेकिन रात के आठ बजे लौटे। इतने में तुम्हारा तार आ गया।"

आगंतुक को विदा करके डॉ० राव भीतर आये। तुरन्त क्या बोलना चाहिए, यह न समझ, राज को देखकर कहा—"इंग्लैंड की आब-हवा अच्छी है। तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर गया है।"

राज ने हँसकर उत्तर दिया—"नागु का कहना है, मैं उतर गया हूँ; और आप कहते हैं मेरा स्वास्थ्य सुधर गया है। किसे सच मानूँ?"

"मैंने सच कहा है" नागलक्ष्मी ने बीच में ही कहा।

"हाँ, ठीक है!" डॉ० राव मान गये।

भोजन करते समय डॉ० राव ने पूछा—"मेरे ग्रंथ देखे?"

"केवल देखे ही नहीं, समालोचनाएँ भी पढ़ी हैं। यह मालूम होने के बाद कि मैं लेखक का छोटा भाई हूँ, ऑक्सफोर्ड के इतिहास के प्राध्यापकों से मेरा परिचय हो गया। सुना है भविष्य में इससे भी महान् ग्रंथ लिखने की योजना है।"

"तुझसे किसने कहा?"

"मातुश्री नागलक्ष्मी एण्ड कम्पनी ने बुलेटिन भेजा था।"

"योजना तो बड़ी अवश्य है। नंजनगूडु श्रीनिवास श्रोत्रिय ने आशीर्वाद के साथ एक हजार रुपये दिये हैं। कल महाराज को सारी योजना बताई थी। उन्होंने मदद देने का वादा किया है। गत छह महीनों से विश्वविद्यालय के अधिकारियों को लिख रहा हूँ। एक बार कुलपति से भी मिला था। उनकी बातों से ऐसा लगा मानो वे कहना चाहते है—'तुम तो एक लेक्चरार हो, तुम्हारा योग्य काम है पढ़ाना। तुम्हारे लेखन-कार्य से हमारा

क्या वास्ता ?' शोधकार्य के लिए प्रवास करना पड़ेगा। न पर्याप्त धन है और न अन्य सुविधाएँ ही। बार-बार छुट्टियाँ भी नही मिलती। महाराज से सहायता मिलेगी।"

विदेश के विद्वानों, संशोधकों, पाश्चात्य शैक्षणिक संस्थाओ से मिलने वाले प्रोत्साहन और सहायता को स्मरण कर राज ने कहा—"इस देश के विश्वविद्यालयों की ऐसी नीति और व्यवस्था के कारण ही हमारे अनेक विद्वान् पश्चिम की ओर जा रहे हैं। आपके ग्रंथ को ही देख लीजिए। अगर आप इस ग्रंथ के आधार पर नये ग्रंथ की योजना आक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज को बतायें तो वे वांछित सहायता दे सकते हैं। भारत का इतिहास लिखने वालों को भारत की अपेक्षा इंग्लैंड में अधिक विषय और सुविधाएँ मिलती है।"

नागलक्ष्मी बीच मे ही बोल उठी—"ये अगर इंग्लैंड गये तो परिवार को भुला ही देंगे और वही बस जायेंगे।"

"तुम्हें डरने की जरूरत नही। इन जैसे विद्वानों के वहां जाने पर वे पत्नी के रहने की भी व्यवस्था कर देते हैं। और फिर तुम्हें छोड़कर, भैया अपने खाने की व्यवस्था कैसे करेंगे? दूसरों का पकाया तो वे खाते नहीं। अब थोडा 'रसम्' डालो।"

"तेरी बातें ही किसी को पागल बनाने के लिए काफी है" कहकर नागलक्ष्मी 'रसम्' डालने लगी।

तब डॉ० राव का मन विश्व-प्रसिद्ध ब्रिटिश म्यूजियम ग्रंथालय और पाश्चात्य विश्वविद्यालयों के बारे में सोच रहा था।

पृथ्वी एक ही दिन में चाचा से घुलमिल गया। नाटक के लिए तीनों निकले तो वह चाचा का हाथ पकडे था। नाटक के प्रति राव की रुचि नही थी, किन्तु भाई के आग्रह को अस्वीकार नही कर सके। चामराजपुर से शिवरामपेट तक पैदल गये। विद्वान्, अनपढ सभी नाटक देखने आते थे। राव को नाट्य-स्थल पहुँचने तक मार्ग मे अनेक परिचितों ने रोका और कुशल-क्षेम पूछा। पत्नी और पुत्र के साथ राव को देखकर कुछ वृद्ध प्राध्यापकों ने समीप आकर व्यंग्य किया—'बैक टु लाइफ, काग्रेचुलेशन' (पुनः जीवन की ओर, अभिनंदन)। कुर्सियोंवाली पंक्ति मे राव की बायी

ओर राज और दायी ओर नागलक्ष्मी बैठ गये। पृथ्वी चाचा की गोद में जा बैठा। राज की बुद्धि रंगमंच संबंधी अध्ययन की सीमा पारकर आलोचना के स्तर पर पहुँच गयी। नाटक देखने की उत्सुकता नहीं थी उसमें। डॉ० राव विद्वान् थे। ऐतिहासिक खोज की दृष्टि से कई वर्ष पहले 'मृच्छकटिक' नाटक का अध्ययन कर चुके थे। अब पुन: उस जमाने का जन-जीवन, नागरिकता, सामाजिक स्थिति आदि मस्तिष्क मे घूमने लगी। विस्मय और कुतूहल तो केवल नागलक्ष्मी और पृथ्वी के मनों में था। नागलक्ष्मी जीवन में पहली बार पति के साथ नाटक देखने आई थी।

बचपन में अपने गाँव के लोगों द्वारा खेले गये 'शनि महात्म्य', "दानशूर कर्ण' आदि एक-दो नाटक उसने देखे थे। तब रंगमंच साज-सज्जायुक्त नही थे। इस नाटक के बारे मे उसने काफी सुना था। पृथ्वी परदे पर दिखाई देने वाले चित्रों के संबंध में चाचा से प्रश्न करता।

पहले अंक में चारुदत्त और विदूषक दिखाई पड़े। वसंतसेना का पीछा करता हुआ राजा का साला शकार कह रहा था—'अरी वसंत-सेने ! रुक जा। मेरी वासना बढ़ाती हुई, रात्रि में निद्रा-भंग करने वाली तू, भयभीत, गिरती-पडती क्यों भागी जा रही है ? इस समय तो तू मेरे वश में वैसे ही आ गई है, जैसे रावण के वश में कुंती···जिस प्रकार हनुमान ने विश्वावसु की बहन का हरण किया था, उसी प्रकार मैं भी तो तुम्हारा अपहरण कर रहा हूँ।'

अंतिम वाक्यों को सुनकर दर्शकगण ठठाकर हँस पड़े। नागलक्ष्मी भी हँस पडी और पास ही बैठे पति के हाथ पर हाथ रखकर बोली—"देखिए वह राजा का साला है, लेकिन कितना बुद्धू है। है न ?"

इतिहासज्ञ डॉ० राव का मन विचारों में डूबा हुआ था। इतिहास के हर काल मे अधिकारियों के सगे-संबंधियों को, चाहे वे निरे मूर्ख ही क्यों न हों, पुरस्कार मिलता है। नागलक्ष्मी ने पुन. हाथ दबाकर कहा—"नही, आप नाटक नही देख रहे हैं।" राव बोले—"नही, काफी अच्छा है।"

शकार कह रहा था—"उसके हार की सुगंध मुझे सुनाई दे रही है, लेकिन अन्धकार से भरी मेरी नाक को उसके आभूषणों की आवाज स्पष्ट दिखाई नहीं देती।"

नाट्यगृह पुनः हँसी से गूंज उठा। नागलक्ष्मी भी हँस रही थी। लेकिन डॉ० राव की बुद्धि को हास्य की इस पुनरावृत्ति में कोई नवीनता नही जान पडी।

बीच मे, अंक समाप्त होने पर, राज ने भाभी से पूछा—"ये लोग नाटक अच्छा खेलते हैं न ?"

"बहुत अच्छा। शकार का पार्ट किसने किया है ?"

"नागेंद्र राव ने। चारुदत्त का पार्ट करने वाले सुब्बैया नायडू ने कैसा सुन्दर गाया है !"

तीसरे अंक मे चारुदत्त के घर में सेंध लगाते हुए शर्विलक कह रहा था—"यहाँ की पक्की ईंटों को खीचना चाहिए। खिले हुए कमल-सी, सूर्य-मडल-सी, अर्द्ध-चन्द्र-सी, फैले हुए तालाब-सी, त्रिकोण स्वस्तिक-सी या पूर्णकुभ-सी—इनमें से कौन-सी सेंध कहाँ लगाऊँ, कहाँ अपनी चतुराई दिखाऊँ कि कल नगरवासी जब देखें तो देखते ही रह जायें ?"

नागलक्ष्मी को यह प्रकरण नही भाया; लेकिन राव को बड़ा ही कुतूहलपूर्ण लगा। 'उस काल के स्थापत्य शिल्प में इस तरह की विभिन्न ईंटों का उपयोग करते थे ? इनके उपयोग से मकान को क्या लाभ होगा ? ये वर्णन शिल्पशास्त्र में आये है, तो शिल्पशास्त्र कब लिखा गया होगा ?' इन सबका विशेष रूप से अध्ययन करने का उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया।

"रगमच सज्जा यद्यपि साधारण थी, किन्तु नाटक प्रभावशाली रहा।" राज का मत था। क्योंकि इंग्लैंड में उसने नाटक देखे थे। पृथ्वी गहरी नीद मे था। नागलक्ष्मी ने तन्मयता से नाटक देखा। चारुदत्त को मौत की सजा देने का ऐलान सुनकर, उसकी आँखें भर आई थी। अंत में चारुदत्त निर्दोष साबित हुआ और जब वसतसेना एवं उसकी पत्नियाँ मिलती है तो नागलक्ष्मी का मन आनन्द से भर उठता है। फिर भी क्षणभर के लिए सोचने लगी कि चारुदत्त की पत्नी सौत के साथ कैसे रहेगी ? रोहिताश्व सोने की गाड़ी के लिए रोने लगा तो उसने एक बार राज की गोद में सोये पृथ्वी की ओर देखा। नाटक देख घर लौटे तो रात के चार बज चुके थे।

इसके एक सप्ताह बाद विश्वविद्यालय के उच्चाधिकारियों से पत्र

मिला कि राव लेक्चरार से असिस्टेंट प्रोफेसर बना दिए गए हैं। साथ ही यह भी सूचना दी गयी थी कि उनके द्वारा लिखे जाने वाले ग्रंथ के लिए प्रतिवर्ष पाँच सौ रुपये दिये जायेंगे। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में एक अलग कमरा दिया जायेगा। छुट्टी की सुविधा भी दी जायेगी।

"महाराज से मिलना बड़ा ही लाभदायक रहा"—राज ने कहा।

डॉ० राव ने महाराज के निजी सचिव को अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए एक पत्र लिखा।

३

डॉ० सदाशिवराव गत एक महीने से यात्रा में है। वे भारत के मुख्य-मुख्य ऐतिहासिक स्थानों को पहले ही देख चुके थे। अब उन स्मरणों को ताजा करने के लिए पुनः भ्रमण पर निकले है। कन्याकुमारी से लेकर तजाऊर, मदुरा, चिदबर, महाबलिपुर आदि स्थानों को देखते हुए हैदराबाद से एलोरा के गुफा-मंदिरों मे आये। तीन दिनों तक एलोरा की भव्य शिल्प-कला का अध्ययन कर देवगिरि, औरंगाबाद होते हुए अजंता पहुँचे।

एक हल्का-सा होलडाल, कपडे-लत्तों के लिए छोटा-सा बक्सा, फ्लास्क, एक कीमती कैमरा, खाकी कमीज, धूप से बचने के लिए सिर पर हैट, नोट लिखने के लिए कागज-पेंसिल और दूर की वस्तुएँ देखने के लिए एक कीमती दूरबीन—ये उनकी यात्रा के सामान थे। अजंता की गुफा से थोड़ी ही दूर पर फरदापुर के अतिथिगृह में ठहरे। यही से रोज गुफाओं की कला का अध्ययन करने जाते। पहले दिन उस निर्जन प्रदेश को देखा, दुबारा दूरबीन से चारों ओर निगाह दौड़ाई और फिर नोट लिखे—

"घोड़े के पेट के आकार के इस पहाड़ पर गुफाएँ खोदी गई है। उसके सामने एक और पहाड़ है। लगता है एक ही पहाड़ को खाई द्वारा

विभाजित किया गया है। यहाँ मानव-निवास के योग्य कोई सुविधा नहीं है। जगल के बीच ही बौद्ध भिक्षुओं ने गुहा-चैत्यों की स्थापना क्यों की ? चैत्य-निर्माण के लिए उपयुक्त पत्थरो का होना भी एक कारण हो सकता है। लेकिन मेरे विचार से ये चैत्य अजंता के भिक्षुओं के लिए तप और साधना के स्थल बन गये होंगे। इसी कारण बस्ती से दूर यह पहाड़ खोजा गया।"

उन्होंने एक जगह लिखा था—"सातवी शती से १८१६ तक इस गुफा के बारे मे कोई कुछ नही जानता था। आसपास के लोगों से भी यह छिपी रही। आधुनिक काल में प्रथम बार मानव इतिहास की इस उत्कृष्ट कला निर्मिति को प्रकाश में लाने का श्रेय कुछ आंग्ल सेनाधिकारियो को है—इस तर्क को स्वीकार नही किया जा सकता। शायद राजकीय परिस्थितियों और उनका धर्म-परिवर्तित होने के कारण आसपास के लोगो मे इन गुफाओं के प्रति श्रद्धा घट गई होगी। परिणामस्वरूप इन चैत्यो की ओर ध्यान नही दिया गया होगा। आंग्ल संशोधक ऐसे भ्रम मे दीखते हैं मानो उन्होंने ही इस सब को खोज निकाला है। क्या कोलबस से पहले अमरीका में दूसरे लोग नही पहुँचे थे ? इस बात के प्रमाण मिलते है कि उसके पहले भी अमरीका में हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ थी। कोलबस से पूर्व जगत् के अन्य लोगों को भी अमरीका का पता था।"

दूसरे दिन सुबह डॉ० राव चौबीस नबर की अपूर्ण गुफा देख रहे थे कि एक वृद्ध दम्पति आये। पुरुष की उम्र साठ से अधिक ही होगी। सफेद धोती और कमीज पहनी हुई थी। हाथ में छाता। श्याम वर्ण, मध्यम शरीर। पत्नी शायद पचास पार कर चुकी थी। उसका सफेद साडी पहनने का ढंग देखकर डॉ० राव समझ गये कि वे शायद सिंहल के हैं। पुरुष ने राव के पास आकर अंग्रेजी में कहा—"क्षमा कीजिए, लगता है आप एक संशोधक हैं। यह गुफा इस स्थिति मे क्यों है ? क्या अकुशल कारीगरों द्वारा बनाई गई है ?"

डॉ० राव ने कहा—"यह एक अपूर्ण गुफा है। हम अजता की गुफाओं के तीन स्तर मान सकते हैं। पहले अकुशल कारीगर इन्हे खोदते थे। शायद आसपास के किसान धर्म-कार्य समझकर यह कार्य करते थे।

दूसरे स्तर पर शिल्पी के निर्देशानुसार कुशल कारीगर स्तंभ, मूर्ति आदि को अर्ध-स्फुट आकृति देते थे और अंतिम स्तर पर मँजे हुए शिल्पी उस देवालय को अंतिम स्वरूप देते थे। इन कार्यों में कई दशक लग जाते थे। शायद इस गुफा का प्रथम स्तर का कार्य होते-होते देश की राजकीय स्थिति में उथल-पुथल हुई होगी और इसकी प्रगति रुक गई होगी!"

वृद्ध ने सारी बात पत्नी को समझाई। भाषा सुनकर डॉ० राव को विश्वास हो गया कि वे सिंहल के ही हैं। उन्होंने कुछ और प्रश्न पूछे और डॉ० राव ने उत्तर दिये। अंत में परस्पर परिचय हुआ। वृद्ध ने कहा—"हम आपको कल से देख रहे हैं। आपके कार्य को देखकर ही मेरी लड़की ने कहा कि आप संशोधक हैं। हम फरदापुर के जिस अतिथिगृह में ठहरे हैं, आप भी वहीं हैं। आपने हमारी ओर ध्यान नहीं दिया। हम पश्चिमी सीलोन में स्थित कलुतर के निवासी हैं। मेरा नाम है जयरत्ने। मेरी बेटी इतिहास की छात्रा है। कैम्ब्रिज से एम० ए० कर स्वदेश लौटे एक वर्ष हो चुका है। वह और किसी गुफा में सामग्री संग्रह कर रही है।"

डॉ० राव ने अपना परिचय दिया। ग्यारह बज गये थे। थक भी गये थे। जयरत्ने ने कहा—"खाने के लिए आपको गेस्ट हाउस जाना पड़ेगा?"

"नहीं, गेस्ट हाउस का नौकर यहीं ले आयेगा।"

"हमें भी वहीं ला देता है। बस, आता ही होगा। कल भी इसी समय आया था। चलिए, कुछ पीछे चलकर बैठें।"

तीनों चौबीस नंबर की गुफा से निकलकर बारह नंबर की गुफा के पास जा रहे थे कि सामने एक महिला दिखी। वय लगभग २६ वर्ष के, सिंहली साड़ी में। गोल चेहरा और उस पर विद्या का गांभीर्य। रंग माता-पिता से ही पाया था। कांतियुत आँखें। कानों में हीरे की बालियाँ। हाथ में नोटबुक और पेंसिल। राव समझ गये कि इन्हीं की लड़की है। इतने में जयरत्ने ने परिचय कराया—"यही है मेरी लड़की करुणरत्ने। देख बेटी, ये है संशोधक—जैसा कि तुम कह रही थी। हमें इन्होंने अनेक बातें समझाईं। नाम है सदाशिवराव।"

परस्पर अभिवादन हुआ। करुणरत्ने तुरन्त कुछ नहीं बोली। स्मरण करते हुए पूछा—"डॉ० सदाशिवराव आप ही हैं?"

"हाँ !"

"तो 'प्राचीन भारतीय राजतन्त्र को धर्म की देन' आपकी ही पुस्तक है ! वह पुस्तक तो अभी तक मुझे नही मिली। उसकी समालोचना पढ़ी है। ऐसे ग्रंथ के लेखक से मिलकर वडी प्रसन्नता हुई।"

"यही-कही वैठ जायें। बूढे हैं, थक गये हैं !" जयरत्ने ने कहा।

पास ही दस नवर की गुफा के द्वार पर छाया मे चारों वैठ गये। तत्पश्चात करुणरत्ने ने पूछा—"मैं सोचती हूँ आपने इन सबको पहले भी देखा होगा। फिर अब इतनी सूक्ष्मता से क्यों देख रहे हैं ? कोई नया ग्रंथ लिखने की योजना है ?"

"जी हाँ, लगभग पाँच जिल्दों मे एक वडे ग्रथ की योजना है।"

"क्या मैं जान सकती हूँ कि कौन-सा विषय होगा और दृष्टिकोण क्या होगा ?"

इतने मे अतिथिगृह का नौकर दीख पड़ा। उसके सिर पर एक टोकरी थी। धूप मे चलने से पसीना बह रहा था। कमीज पूरी-की-पूरी भीग गई थी। उसने टोकरी नीचे रखकर पूछा—"साहेब, आप सब साथ में खायेंगे ? पानी लेकर अभी दस मिनट मे आता हूँ" कहकर एक बड़ा डिब्बा लेकर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा।

महाराष्ट्रीय ढग से बना भोजन स्वादिष्ट था। भूख भी जोरों से लगी थी। दाल, सब्जी, रोटी, भात, दही था। खाते-खाते परस्पर परिचय गहरा होता चला। जयरत्ने महायान पंथ के बौद्ध थे। कलुतर मे उनका व्यापार चलता है। पद्रह मील दूर गाँव मे रबर और काली मिर्च के बाग हैं। गाँव का कामकाज उनका पुत्र देखता है। बौद्ध होने के कारण धार्मिक मनोभाव से वे भारत स्थित महत्त्वपूर्ण बौद्ध स्थलों को देखने के लिए निकले हैं। लेकिन पुत्री का उद्देश्य भिन्न था। उसने कहा—"यद्यपि मैं माता-पिता के साथ आई हूँ, मेरी यात्रा का विशिष्ट उद्देश्य है। मैं बौद्ध-धर्म के आधार पर सिंहल-संस्कृति का अध्ययन करना चाहती हूँ। अपने देश के समस्त ऐतिहासिक स्थलों को देख चुकी हूँ। तथ्य-संग्रह भी काफी किया है। लेकिन निर्देशन के अभाव मे मैं अकेली लिख नही सकूँगी। फिर भी समय-समय पर यथाशक्ति सामग्री का सग्रह करती रहती हूँ।"

नौकर खाना परोस रहा था। करुणरत्ने की माँ ने सिर्फ चावल खाये। सबने महसूस किया कि दाल भी उन्हें नहीं भायी। लेकिन और कोई चारा न था। जयरत्ने दाँत के सेट लगाये हुए थे। उन्होंने दो रोटियाँ खायी। करुणरत्ने और राव ने भरपेट खाना खाया। अंत मे नौकर के चावल-दही परोसने के बाद जयरत्ने ने कहा—"अजंता मे हीनयान पथ की गुफाएँ है। महायान की भी हैं। मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मैं महायान पंथी हूँ। हीनयान की गुफा में भगवान् बुद्ध की मूर्तियाँ नही होती। यद्यपि देवालय मे कितना ही उत्कृष्ट कार्य क्यो न हो, मूर्ति के अभाव में वह गृहपति से रहित घर-सा प्रतीत होता है। महायान पथ की गुफाओं में शांति-मूर्ति, धर्मचक्र मुद्रा युक्त भगवान् बुद्ध की मूर्ति रहती है। देवालय में प्रवेश करने पर सुरक्षा एव अभयभावना जाग्रत होती है।"

डॉ० राव ने कहा—"यह सच है। बौद्ध मत के ऐतिहासिक विकास के प्रथम चरण को हीनयान कहते है। बुद्ध की विचार-क्रांति उस समय प्रज्वलित थी। 'समस्त चीजों का शून्य मे ही पर्यवसान होना चाहिए'—इस तर्क से गुरु-पूजा भी अवैचारिक है। लेकिन निरा विचारवाद मनुष्य की आशा-आकाक्षाओ को तृप्त नहीं कर सकता। अततः बुद्ध-पूजा की प्रवृत्ति प्रारभ हुई। कुछ इतिहासकारो का कथन है कि यह हिंदू धर्म का प्रभाव है। यद्यपि इसमे सचाई है, लेकिन महायान पंथ के उदय का यही एक कारण नही है। ऐसा कोई भी धर्म नही जिसमे पूजा-प्रवृत्ति न हो। अत्यन्त कठोर निषेध न करें तो कोई भी धर्म एक-न-एक स्तर पर मूर्ति-पूजा पद्धति में विकसित होता ही है।"

अब तक सब खा चुके थे। नौकर चला गया था। सबने थोड़ी देर आराम किया। करुणरत्ने की माता वही पत्थर पर लेट गई। पिता ने दीवार से पीठ लगाकर पैर फैला दिये। करुणरत्ने ने डॉ० राव से पूछा—"क्या आपका नोट लेने का काम पूर्ण हो गया?"

"जी नही! क्यों?"

मैं जानना चाहती हूँ कि आप नोट किस प्रकार लिखते है। नबर एक की गुफा का मेरा अध्ययन अब भी शेष है। आपके पास समय हो विषय मुझे भी वही समझा दें—बडी कृपा होगी।"

"मैंने उस गुफा के नोट अभी नहीं लिये हैं। आइए, दोनों

लिखेंगे।"

"डैडी, हम नंबर एक गुफा में हैं। आप आराम करने के पश्चात् वहाँ आ जाइएगा।" करुणरत्ने ने पिता से कहा।

बाहर धूप तप रही थी। डॉ० राव सिर पर हैट पहनकर निकले। रत्ने ने आँचल से सिर ढँक लिया। दोनों गुफा के अंदर गये। रोशनी दिखानेवाला मुख्य-मुख्य मूर्तियों एवं चित्रों पर प्रकाश डालता और वे जाँच करते। रत्ने ने कहा—"अब हमें अलग-अलग नोट लेने की आवश्यकता नहीं है। आप बताते जाइए, मैं लिखती जाती हूँ। रात में दूसरी प्रति बनाकर आपको दे दूंगी।"

डॉ० राव चित्रों एवं मूर्तियों को परखते और नोट लिखाते। रत्ने लिखती—"इस गुफा मे बुद्ध की बडी मूर्ति धारण-चक्रमुद्रा में है। बायें हाथ की कनिष्ठिका पर दायें हाथ की तर्जनी रखकर शिष्यों को दिये जानेवाले उपदेश के हर अंश पर जोर देने वाली है यह मुद्रा। इस मूर्ति की मुखाकृति पर भिन्न-भिन्न कोणों से फेंके गये प्रकाश से भिन्न-भिन्न भाव व्यक्त होते हैं। बुद्ध के बैठे हुए धर्मचक्र के पास से प्रकाश डालकर देखें तो लगता है मानो चेहरा शांति की प्रतिमूर्ति है। मूर्ति की बायीं ओर से प्रकाश डालें तो मुख पर मृदुहास खेलता-सा प्रतीत होता है। उसी प्रकाश को दायीं ओर से डालें तो मुख अत्यन्त गंभीर दिखाई देता है। यह मूर्ति स्थापत्य-कला के चरमोत्कर्ष को प्रस्तुत करती है।"

डॉ० राव बोलते जा रहे थे और रत्ने लिखती जा रही थी। राजकुमार द्वारा आश्रमवासियों को दिये जाने वाले उपदेश का चित्र, राजकुमार के स्नान का चित्र, पत्नी के साथ बातचीत करते समय का चित्र, पद्मपाणि बोधिसत्व आदि सबका वर्णन लिख लिया गया। चित्रों में प्रदर्शित प्रति दिन उपयोग मे आनेवाली वस्तुओं, आभूषण, केशबंध शैली, मानव शरीर का आकार आदि के आधार पर तत्कालीन संस्कृति, जन-जीवन आदि अनेक विषयों को समझा।

संध्या के लगभग पाँच बजे जयरत्ने वहाँ आये। रोशनीवाला निश्चित समय तक काम करके चला गया। डॉ० राव टार्च के प्रकाश मे चित्रों के सूक्ष्म भागों को बारीकी से देख-देखकर लिखा रहे थे। जयरत्ने भीतर आकर बोले—"लगता है दोनों ने सारी गुफा को पुस्तक में ही उतार लेने

की ठान ली है। अब चलिए भी, गाड़ी खड़ी है।"

काफी अँधेरा हो चला था। अब और अधिक अध्ययन करना कठिन था। दोनों जयरत्ने के साथ बाहर निकले। पहाड़ से उतरे। बैलगाड़ी में बैठने के बाद जयरत्ने कह रहे थे—"छब्बीस नंबर की गुफा में हम पहली बार गये। बुद्ध का महानिर्वाण तो वहीं है। लगभग पच्चीस गज लंबी प्रभु की मूर्ति वहाँ अपने अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा में लेटी है। हम दोनों अब तक वहीं थे।"

डॉ० राव थक गये थे। गाडी में टिककर आराम करने के प्रयत्न में थे। चार आदमी थे, अतः ठीक तरह बैठने के लिए भी जगह नहीं थी। रत्ने भी थक गई थी। फिर भी डॉ० राव के चेहरे से थकावट का अनुमान कर वह पिता के पास सरक गई जिससे डॉ० राव को कुछ और जगह मिल गई। गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ती चली।

जयरत्ने दूसरे दिन जाने वाले थे, लेकिन करुणरत्ने दो दिन और रहना चाहती थी। डॉ० राव के लिखाये नोट उसे उपयोगी लगे। दोनों ने मुख्य-मुख्य गुफाओं का वर्णन एवं उनके काल की संस्कृति का पता लगाया। डॉ० राव खड़े-खड़े ही बोलते जाते और वह भी खड़े-खड़े ही लिखती। शीघ्रलिपि में लिखे गये नोटों से तीन कापियाँ भर गयी। सारा परिवार दूसरे दिन बस से जलगाँव और वहाँ से दिल्ली जानेवाला था। डॉ० राव ने औरंगाबाद से पूना होते हुए अपने शहर जाने की योजना बनाई। यहाँ एक महीना रहे। अब उत्तर भारत की यात्रा की योजना बनाई।

फरदापुर का अतिथिगृह गत चार दिनों से उनका अपना घर-सा बन गया था। उनके कमरे आमने-सामने थे। अतः रात में भोजन के पश्चात् जयरत्ने डॉ० राव के साथ कुछ समय बातचीत करने चले आते। इस इतिहासकार से बौद्धधर्म संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान कराते हुए उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। दूसरे इतिहासकार तो केवल उसका इतिहास *जानते थे जबकि ये धर्म के अंत.सत्व की दृष्टि से सविवरण इतिहास बताते।* कमरे से जयरत्ने के चले जाने के बाद डॉ० राव लेट गये। तुरंत नींद नहीं आई। अजंता की कला ने उनके मन को जकड़ रखा था। चार दिनों से वे एक दूसरी ही दुनिया में रह रहे थे। कल से फिर वही आधुनिक

रंग-ढंग की दुनिया ।

रात के नौ बज चुके थे। इस निर्जन प्रदेश में फैली चाँदनी ने इस निशा को भी अजंता-सा ही स्वप्न-लोक बना दिया था। डॉ० राव ने सोचा, ऐसी स्निग्ध शांति मे ही बौद्ध भिक्षुओं एव कलाकारों ने पत्थर में जान फूंक दी है। अपनी खिडकी से ही चाँदनी का आनंद लूटना छोड़, वे बाहर निकल आये। अतिथिगृह से लगभग पचास गज दूर जाकर एक पत्थर पर बैठ गये। दिनभर की सारी थकान भूल गये। निशा में मन प्रफुल्लित था। वे जिस भारतवर्ष का इतिहास लिखना चाहते थे, वह उनकी आँखों के सामने स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उनकी कल्पना के सम्मुख हजारों वर्ष की संस्कृति की दीर्घ परम्परा शुद्ध, शुभ्र चाँदनी-सी चमक-दमक रही थी। उनकी लेखनी एक बिंदु पर आकर रुक गयी। इस बिंदु को वे स्पष्ट देख रहे थे। लेकिन संस्कृति की परम्परा का आदि कहाँ? क्या यह भी वेद-सा अपौरुषेय है? या यह ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई थी, जैसा कि इतिहासज्ञों का कथन है? अथवा तीन हजार वर्ष पूर्व? इसका प्रारंभ बिंदु कौन-सा है? क्या हम मानव संस्कृति के इतिहास की मानव जीव शास्त्रज्ञों के दृष्टिकोण से तुलना कर सकते है? डॉ० राव विचार की लहरों मे पूर्णत: लीन हो गये।

पीछे से आवाज आई—"कल सुबह मुंह-अँधेरे बस से जानेवाले अभी तक सोये नही? क्या सोच रहे हैं?" यह करुणरत्ने की आवाज थी। डॉ० राव ने मुड़कर देखा, करुणरत्ने खड़ी थी।

उसने पास आकर पूछा—"आपके चिंतन में बाधा तो नहीं पड़ी?"

"नही, बैठिए।"

"मैं आपसे यह कहने आई हूँ कि हमने जो नोट लिये हैं, वे तीन कापियों मे हैं। उन सबकी प्रतियाँ उतारना यहाँ तो कठिन है। अगर उन्हें आपको दे दूँ तो आप पढ नही पायेंगे। कारण, मैंने नोट शीघ्रलिपि में लिखे हैं। हमें देश पहुँचने मे एक महीना लग जायेगा उसके बाद शीघ्र ही उन सबको टाइप कर आपके पास भेज दूंगी। क्या यह ठीक रहेगा?"

कुछ क्षण सोचने के पश्चात् डॉ० राव ने कहा—"आप जानती ही हैं कि मुझे इसकी कितनी आवश्यकता है। भूलिए नही।"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा।"

इन दोनों का सबंध जानकर ही रामायण-महाभारत को ऐतिहासिक ग्रंथ माना गया है।"

रत्ने लगभग दस मिनट इन्ही बातों को मन-ही-मन दुहराती रही। उसने कैम्ब्रिज की स्नातकोत्तर उपाधि के लिए विशेष रूप से इतिहास का अध्ययन किया है। इतिहास का स्वरूप क्या है, उसके विषय-क्षेत्र कौन-से है आदि विषयो पर यद्यपि उसने अनेक वादों का अध्ययन किया किन्तु ऐसा विषय-निरूपण नही पढा था। डॉ० राव के विचारों के बारे में उसके मन मे एक शका उठी : "आपका कहना है इतिहास को चाहिए कि मूल्य-परिवर्तन के युग का, उसके कारण एवं परिवर्तन का निर्देशन करे। इतिहास-कार जब मूल्य-परिवर्तन के युगों की चर्चा करता है तो कम-से-कम पर्याय रूप मे, उसे मूल्य का निष्कर्ष देना ही पड़ता है। क्या उसे वैसा करना चाहिए? इस दृष्टि से इतिहास प्रगतिगामी विकास है या प्रतिगामी मानव पीढी की करुण कथा?"

"अगर इतिहास सदा प्रगतिशील है तो इसका अर्थ हुआ कि हमारे पूर्वजो की संस्कृति हमारी अपेक्षा हीन थी। और अगर विगति ही उसकी दिशा है तो हम अनिवार्यतः अधःपतन के पथ पर बढ़ रहे हैं। भारतीय दृष्टि मे काल को क्रमशः कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग के नाम से विभाजित किया गया है। इसके आधार पर कहना पड़ेगा कि इतिहास मूलतः विगति की ओर बढ़ रहा है। लेकिन कलियुग ही तो अन्त नहीं है। यह युग बीतेगा और युग-चक्र घूमेगा। पुन. कृतयुग आयेगा।"

"तो क्या इस परिक्रमा का कोई अत नही?"

"मानव-इतिहास की आदि-कल्पना करना जितना असम्भव है, उसके अंत सम्बन्धी निष्कर्ष पर पहुँचने की आशा भी वैसी ही मूर्खतापूर्ण है। इस अनंत परिक्रमा के सिलसिले मे मूल्यांकन में दुर्बलता भी हो सकती है और सबलता भी। इस दृष्टि से देखें तो मानव इतिहास को भगवान की लीला कह सकते हैं। अतः अपना मौलिक निष्कर्ष देते समय इतिहासकार को बहुत सतर्क रहना चाहिए।"

रत्ने धीरे से बोली—"गत चार दिनो से हम यहां अजन्ता में है। हर वाद-विवाद को भुलाने वाले इस स्थान पर, इस प्रशात निशा मे, आप यह बता रहे हैं। उसे माना जा सकता है—ऐसा मन कहता है। क्या

आप एक कृपा करेंगे ? इसके लिए मैं सदा कृतज्ञ रहूँगी।"

"ऐसी कौन-सी कृपा है ?"

"मुझे कैम्ब्रिज से आये एक वर्ष हो गया। हमारे गाँव में उच्च अध्ययन की सुविधा नहीं है। मेरी इच्छा है कि अगले वर्ष मैं कोलम्बो विश्व-विद्यालय में अध्यापिका या शोध छात्रा के रूप में नाम लिखा लूं। आपसे निवेदन है कि अगर मैं पत्रों द्वारा इसी तरह के उलझे प्रश्न पूछूं तो आप सविस्तार उत्तर दें।"

"अवश्य। जितना जानता हूँ, लिखूँगा। मेरा 'मूड' मुझे रोके तो क्षमा कर देना।"

रात का एक बज रहा था। चाँदनी कम होती जा रही थी। चाँद अस्ताचल की ओर जा रहा था। दोनों उठे, धीरे-धीरे अपने कमरों में चले गए। डॉ० राव के 'गुड नाइट' कहने से पहले ही रत्ने ने कहा—"कल आपसे भोजन के पूर्व एक बार मिलूंगी।"

दूसरे दिन दोनों ने एक-दूसरे का पता लिख लिया। नमस्कार कर डॉ० राव ने करुणरत्ने के माता-पिता से बिदाई ली। डॉ० राव मोटर में बैठ रहे थे कि रत्ने ने हाथ जोड़कर कहा—"नोट भेज दूंगी। यह मेरा सौभाग्य है कि एक प्रति मुझे भी मिल रही है।"

४

ज्येष्ठ-आषाढ़ में कपिला ने फिर अपना पहले-जैसा रूप धारण कर लिया। किन्तु इस बार की बाढ़ से जन-हानि नहीं हुई। नंजनगूडु की नगर-सभा की ओर से एक बोर्ड लगा है, जिस पर लिखा है—"सावधान ! यहाँ कोई न तैरे।" लेकिन तैराकों पर इसका प्रभाव न पड़ा। श्रोत्रियजी के पुत्र को स्वर्गवासी हुए एक साल हो गया। पुत्र की मृत्यु के अपार दु:ख को भूल जाना असंभव था, लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे दु:ख घटता गया। श्रोत्रिय-दम्पति का ध्यान उनका पौत्र चीनी

था कि पुत्र को खोकर कोई इस तरह सांत्वना दे सकता है ? अगर हमें भी वैसी ही सहनशक्ति मिल जाय, तो बड़े-से-बड़े कष्ट सह सकेंगी ! है न ?"

"यह तो ठीक है, लेकिन मनुष्य को ऐसा नहीं बनना चाहिए। दूसरों के दुःख में हाथ बँटाना चाहिए। इससे लोगों को सांत्वना मिलती है। डेढ़ वर्ष से हम चुपचाप आँसू के घूँट पी रहे हैं, उनके सामने रो नहीं सकती। अगर हमारा रोना, आँसू बहाना देखकर वे भी रोते, आँसू बहाते तो हमें भी सांत्वना मिलती। है कि नहीं ?"

इतने में बगल के कमरे से मंद-मद खर्राटों की आवाज आने लगी। भागीरतम्मा आगे कहने लगी, "देखा लक्ष्मी सुख से सो रही है। नंजुंड जब छोटा था, वही खिलाती थी। स्कूल ले जाती। अपने ही पुत्र की तरह प्यार करती। जब वह नदी की गोद में चिर निद्रा में लीन हो गया तो वह भी बहुत रोई थी। तत्पश्चात् शायद इन्होंने उसे भी दर्शन सुनाया हो, सांत्वना दी हो। दुःख के घूँट पीकर अपने काम में लग गयी। एक तरह से वह सुखी है। सुख-दुःख दोनों में समान होना चाहिए, जैसा कि तू कहती है।"

इतने में कात्यायनी की आँखें बोझिल होने लगीं। पास में सोया बालक कभी-कभी जागकर रोने लगता। बहू की नींद उचट न जाय, इस विचार से सास बच्चे को अपने पास लिटाकर दूध पिलाती। बच्चा रोता होता तो दीवानखाने में श्रोत्रियजी अपने पास बुला लेते। दीये के प्रकाश में दादा का चेहरा देखता, तो तुतलाते हुए 'दादा-दादा' कहता उनके पास चला जाता। 'तुम सो जाओ' कहते और पौत्र को लेकर पिछवाड़े के बगीचे में चले जाते। उसे आकाश के नक्षत्र दिखा-दिखाकर घूमते और वह कन्धे से लगा सो जाता। वे धीरे-धीरे भीतर आते, अपने बिस्तर पर उसे सुलाकर शाल ओढ़ा देते। इसके बाद नींद आती तो सो जाते; अन्यथा ऊपरी मंजिल पर अपने अध्ययन कक्ष में दीप जलाकर पढ़ने लगते।

चीनी दो साल का हुआ तो उसे पकड़ना मुश्किल होने लगा। लक्ष्मी सदा उसके पीछे रहती। फिर भी वह सबकी आँखें बचाकर सड़क पर चलने लगता। एक दिन देवालय के आँगन में चला गया, लेकिन घर का

गर्मी के दिनों में गुडल में घुटने-घुटने पानी रह जाता है और वह भी दूसरे किनारे पर। अतः बच्चों के डूबने का भय न था। सास-बहू ने दोनों द्वार बद किये। दोपहर के तीन बजे फिर बुखार चढ़ा। शाम को श्रोत्रियजी घर आये तो बच्चे का शरीर आग-सा तप रहा था। आँखें लाल हो रही थी, चेहरा मुरझा गया था और अर्धचेतन अवस्था थी।

श्रोत्रियजी तुरन्त वेंकटाचल वैद्य को बुला लाये। नाड़ी देखने के बाद वैद्य ने बताया, "सन्निपात है जो इक्कीस दिन तक रहेगा। सावधान रहना चाहिए। गोली देता हूँ। डरने की बात नहीं।"

वैद्य का विश्लेषण ठीक था। बालक का बुखार नही उतरा। पूरा होश भी नही आया। कभी-कभी दादा के बुलाने पर 'हूँ' कर देता, मानो उसे कोई दूर से बुला रहा हो। और किसी की सुध ही नही थी उसे। वह न रोता और न हँसता। घर, दादा-दादी, माँ, लक्ष्मी सबको खोयी हुई विस्मृति मे अपने अस्तित्व को धकेल रहा था। उसकी श्वास भारी थी और दुर्बलता इतनी कि उस भार को सहने की शक्ति भी उसमें नही रही।

बारहवें दिन तक तबीयत खराब रही। उसके बाद तो बालक की चिन्ताजनक स्थिति की आशंका से घर का हर आदमी विचलित हो उठा। लेकिन किसी ने कुछ नही कहा। पंद्रहवें दिन साँस रुकने लगी। बुखार के कारण सदा बद रहने वाली पलकें अधखुली-सी दिखाई पड़ी। आँखों मे कांति नही, चेहरे पर चेतना नही। हमेशा बच्चे के साथ ही रहने वाली भागीरतम्मा ने पति को पुकारा। श्रोत्रियजी ने पास आकर हाथ-पैर छू कर देखे। पैर ठण्डे पड़ते जा रहे थे। माथे पर पसीने की बूँदे थी। साँस रुक-रुककर चल रही थी। बच्चे के बचने की उम्मीद छोड़ने की घड़ी पास आ रही थी। श्रोत्रियजी विचलित नही हुए। पास ही भयाकुल खड़ी लक्ष्मी को वैद्य को लिवा लाने के लिए भेजा। बच्चे को अपनी गोद में लेकर पत्नी से थोड़ी भभूत ले आने को कहा।

बच्चे का क्षीण शरीर ठंडा पड़ता जा रहा था। गर्मी लाने के लिए उसके हाथ-पैरो में भभूत मली जाने लगी। छाती पर नीलगिरी तैल लगाया और वैद्य की प्रतीक्षा में बैठ गये। कात्यायनी भाँप गई। वहाँ खड़े रहना उसके लिए असह्य हो उठा। सीधे रसोईघर मे चली गई।

उमड़ते दुःख को वह रोक न सकी। सिसक-सिसककर रोने लगी। आँचल मुँह मे ठूँस लिया। फिर भी आँसू न थमे। जोर-जोर से रोने लगी। बाहर से वैद्य के आने की आवाज सुनाई दी।

श्रोत्रियजी ने बहू से कहा—"बेटी, ऐसे वक्त पर रोने से कुछ नहीं होता। जाओ, वैद्य को यहीं बुला लाओ।"

वैद्य ने नाडी देखी। एक गोली शहद के साथ मिलाकर बच्चे के मुँह में डाली। उसे चूसने की शक्ति या होश बच्चे में न था। वैद्य ने कहा, "घबराने की बात नही। अपने आप पिघलकर गले से नीचे उतर जाएगी।" शायद भभूत मलने की वजह से पैरों का ठंडा होना रुक गया, लेकिन पुनः गर्मी चढ नही रही थी। लगभग दो घंटे बाद जाते समय वैद्य ने एक गोली देकर कहा—"अब मै जाता हूँ, इस गोली को दो-दो घंटे बाद घिसकर जीभ मे लगाना। अब मैं सुबह आऊँगा।"

वैद्य के चले जाने के पश्चात् कात्यायनी दुःख से घुटती बच्चे के पास आई। भागीरतम्मा की आँखों में आँसू नहीं थे। लेकिन वृद्धा के चेहरे पर दु.ख स्पष्ट दीख रहा था। लक्ष्मी पास आकर बोली, "शीनप्पा, मैं बच्चे को गोद में सुला लेती हूँ। लाओ, आहिस्ते से मुझे दे दो।" विचारमग्न श्रोत्रियजी ने कहा—"नही, उसे मेरी ही गोद में रहने दो।" और फिर बहू की ओर देखकर कहा—"दीवानखाने में घड़ी है, उसे यहीं ले आओ। दो घंटे में एक बार दवा देनी पड़ेगी। निश्चित समय पर मुझे याद दिलाना। स्वयं मैं दवा दूँगा, तुम लोगों से यह काम न होगा।"

भागीरतम्मा भीतर से ताम्र-पात्र में कपिला का जल ले आई। बच्चे को आराम देने की दृष्टि से श्रोत्रियजी पद्मासन लगाकर बैठ गये। उनका शरीर आजानुबाहु था। इतना ऊँचा कि द्वार-प्रवेश के समय झुकना पडता। साठ की उम्र, फिर भी हृष्ट-पुष्ट शरीर। दिन में बीस मील चलने की क्षमता, गजब की स्फूर्ति, विशाल चेहरे पर सात्विक कांतियुक्त चमकती आँखें। "यः स्मरेत् पुंडरीकाक्षं सबाह्याभ्यंतरशुचिः" का उच्चारण करते हुए पात्र से जल लेकर चारों ओर छिड़का। फिर आचमन कर दायें हाथ से यज्ञोपवीत की ब्रह्म गाँठ पकड़कर आँखें मूँदे मन-ही-मन गायत्री-पाठ करने लगे।

कात्यायनी की आँखें बालक के चेहरे की ओर लगी हुई थी। भागी-

रतम्मा और लक्ष्मी श्रोत्रियजी का चेहरा देख रही थी। उन दोनों को एक तरह से ढाढस बँध रहा था।

श्रोत्रियजी कट्टर सनातनी थे। उनका पूर्ण विश्वास था कि मनुष्य गृहस्थ-धर्म के निमित्त शादी करता है। वह गृहस्थ बनता है, इस संसार के अपने कर्त्तव्यों को निभाने के लिए। तत्पश्चात् संतान होती है, वंश-वृक्ष को कायम रखने के लिए। संतानहीन मनुष्य को अपने वंश-वृक्ष रूपी परिवार का अंतिम मनुष्य बनकर केवल शून्य को छोड़कर मरना पड़ता है। पितृत्व से प्राप्त यह जीव पितृ-ऋण से मुक्त होता है, अपनी सन्तान द्वारा ही।

अपने वंश के प्रति उन्हें अपार अभिमान था। उनका विश्वास था कि श्रोत्रिय-वंश उतना ही प्राचीन है जितना कि श्रोत्र। जिस तरह गोत्र प्रवर्त्तक ऋषियों के काल का पता लगाना कठिन है, उसी तरह प्राचीन वंश का मूल भी खोजा नहीं जा सकता। जो वंश मानव ज्ञान से भी पुराना है, उसका इतिहास कोई पूर्णतः नहीं बता सकता। फिर भी उनका विश्वास है कि व्यक्ति का गौरव, अभिमान उसके अपने वंश से ही उपलब्ध होता है। "काश्यपावत्सारनैद्रवप्रवरत्रयान्वित आश्वलायन समन्वितः ऋक् शाखाध्यायी श्री श्रीनिवास श्रोत्रियोऽहं भो ईश्वर त्वामभिवादयामि" द्वारा अपने प्रवर को रोज संध्या के समय स्मरण करते तो इन्हें एक विशिष्ट अव्यक्त आनन्द मिलता। वे अपना हर कार्य इस प्रज्ञा से करते कि उस स्तर का जीवन न बिताया तो वंश ही कलंकित हो जायेगा।

पुत्र की मृत्यु के पश्चात् पौत्र ही उनके वंश का आधार था। पुत्र के विवाह के बाद वे निवृत्त जीवन बिताने लगे थे, लेकिन अब पौत्र को विवाहित जीवन बिताते हुए देखने की इच्छा से पुनः प्रवृत्तिमय जीवन प्रारंभ किया है। इनके नित्य जीवन में, लोभ, झूठ आदि निम्न प्रवृत्तियाँ नहीं है। और अब भविष्य मे गृहस्थ बनने वाले पौत्र के लिए घर की स्थिति को बिगड़ने से बचाना उनके कर्त्तव्यों मे से एक है। पिता नजुंड श्रोत्रिय जब स्वर्ग सिधारे, तब श्रीनिवास श्रोत्रिय अठारह वर्ष के थे। लगभग उसी समय शादी हुई। बीमार पिता इतने दिन जीवित रहे, यही काफी था। पुत्र की शादी करके उन्होंने अंतिम साँस ली। माँ इससे चार वर्ष

पहले ही सिधार गई थीं। पिता का इकलौता पुत्र होने के कारण काफी जायदाद मिली थी। उससे इतनी आमदनी होती थी कि साल-भर चैन से रह सकते थे। उन्होंने न कंजूसी दिखाई, और न धन का दुरुपयोग ही किया। दुर्दिन के विचार से कुछ रुपये बैंक में रख देते और शेष दान-धर्म के कार्यों में लगा देते। मंदिर मे हर वर्ष रथोत्सव, विद्वान-संगीतज्ञों को, पूजा-पाठ के लिए यात्रियो को, बाढ़ या अकाल के समय किसानों को बीज की मदद देने आदि मे खर्च करते।

निर्लिप्त जीवन उन्होंने बचपन से ही पाया था। लेकिन जो बालक उनके वंश का आधार था उसे अपनी गोद मे मरणोन्मुख देखकर उनकी चित्त-शांति विचलित हुए बिना न रही। गायत्री-पाठ के समय भी उनका मन अटूट भक्ति से गायत्री छंद में लीन न हुआ। उनके हृदय की पुकार थी कि माँ गायत्री ही इस बालक को बचायेगी। सकाम मन की प्रार्थना में शुद्ध भक्ति कैसे आ सकती है ? कभी सकाम पूजा न करने वाले श्रोत्रियजी आज मध्य रात्रि के समय आँखे मूँदे अपने पौत्र के लिए प्रार्थना कर रहे हैं।

पुत्र की मृत्यु के बाद पौत्र ही भागीरतम्मा के पुत्र-वात्सल्य का केंद्र है। वे उसे ही पुत्र समझकर उसके पालन-पोषण मे लगी हैं। वह बालक भी चला गया तो इस बुढ़ापे में उनके प्रेम को कौन स्वीकार करेगा ? "हे प्रभु ! किस जनम के पाप का प्रायश्चित्त करवा रहे हो ?" कहती हुई वह अपने कुल देव की शरण में चली गई थी।

पति की मृत्यु से कात्यायनी सब-कुछ खो चुकी थी। अब उसके लिए इसे भुलाना असंभव था। छोटी उम्र से ही कठिनाइयों में पली थी। पिता श्रीरंगपट्टण में वकील थे। पिता की दूसरी शादी हुई। बेटी ने उनका थोड़ा-सा प्यार पाया, लेकिन माँ का प्यार उसे फिर कभी न मिला। रोज रेल से मैसूर पढ़ने जाती। इंटरमीडिएट पास किया। कालेज में विलक्षण बुद्धि की छात्रा भी कहलाई। योग्य एवं उत्तम संबंध समझकर पिता ने श्रोत्रियजी के लड़के से शादी कर दी। पति बी० ए० में था। शादी के बाद एक बार परीक्षा दी। सफल नही हुआ। दुबारा परीक्षा देने की तैयारी कर ही रहा था कि पत्नी-पुत्र, माता-पिता सभी को छोड़, इस दुनिया से कूच कर गया।

पति की मृत्यु के बाद उसे भविष्य अंधकारमय दीख पड़ा।

मन हमेशा बीते दिनों की याद करता रहता। बच्चे की बीमारी के बाद उसे अपना भाग्य स्पष्ट दीखने लगा— मेरा एक बच्चा है, सास-ससुर हैं, बच्चे को बड़ा होना है, पढ़ना है, वह भी गृहस्थ बनेगा। ये सब मुझसे ही तो संवर्धित है! भविष्य के इन दृश्यों के प्रति वह अभी तक अंधकार में थी। इस चित्र के मिटने का समय आया तो वह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। बालक ससुर की गोद मे सोया अब भी मुश्किल से साँस ले पा रहा था। भीतर से उमड़ते दुःख को दबा सकने मे अपने को असमर्थ पा वह वहाँ से उठी और रसोईघर में जाकर रोने लगी।

इस परिवार का और एक जीव है लक्ष्मी। उसके माँ-बाप श्रोत्रियजी के पिता के जमाने से ही इनके घर में नौकर थे। लक्ष्मी जब पन्द्रह साल की थी, श्रोत्रियजी ने ही खर्च करके उसकी शादी कर दी थी। लेकिन शादी के चौथे वर्ष ही उसके पति की हत्या हुई! विधवा लक्ष्मी पुनः श्रोत्रियजी के घर आ गई। कुछ समय बाद उसका पिता भी चल बसा। माँ तो लक्ष्मी के जनमते ही उठ गई थी। अब लक्ष्मी भी श्रोत्रियजी के परिवार की एक सदस्या बनकर उनके सुख-दुःख मे भाग लेती है। जिन हाथों ने नजुंड श्रोत्रिय को खिलाया था, उन्हीं से अब नन्हे चीनी को खिला रही है। शीनप्पा श्रोत्रियजी के मन के सुख-दुःख को बारीकी से भाँप लेती है। अब इस परिवार का अंकुर मुरझा जाने का वक्त आ गया है। अपनी जी-जान से सेवा करना, वह जानती है। यह भी जानती है कि विधाता के विधान को वह मिटा नहीं सकती। लेकिन शीनप्पा श्रोत्रियजी के गायत्री मंत्र मे उसे पूरा विश्वास था। अनासक्त भाव अगर किसी में था तो केवल इसी में।

रात-भर किसी की पलक नहीं लगी। सबका चेहरा उतरा हुआ और आँखें सूजी हुई थीं। सुबह छह बजे वैद्यजी आये। बालक की नाड़ी और हाथ-पैरों को देखकर कहा—"संकट टल गया है। बुखार के अलावा सब ठीक है। हाथ-पैर गर्म है। आज सोलहवाँ दिन है। पाँच दिन मे बुखार भी चला जायेगा। धीरज धरिए।"

"सच कह रहे हैं वैद्यजी ?" आतुरता से भागीरतम्मा ने पूछा।

"हाँ, माँजी, श्रीकंठेश्वर की कृपा है" विश्वास दिलाया और गोलियाँ देकर, फटे दूध का छना पानी देने को कहकर वैद्यजी चले गये। बालक

को बिस्तर पर सुलाकर और कात्यायनी को वहीं रहने को कहकर श्रोत्रियजी स्नान करने गये।

बाद के पाँच दिन बुखार तेज तो रहा, लेकिन बालक की साँस निरन्तर सामान्य गति से चलती रही। फटे दूध का पानी पिलाने पर गले से उतर जाता। घर में सबको शांति मिली। इक्कीसवें दिन सचमुच बुखार उतर गया और एक-दो दिन में बच्चा पूरे होश में आ गया। होश में आते ही दुर्बल स्वर में बालक ने पुकारा, "दा···दा !"

पास ही बैठी कात्यायनी ने श्रोत्रियजी को आवाज दी। पूजा अधूरी ही छोड़कर वे दौड़ आये। बालक के माथे पर हाथ रखकर पुकारा, 'चीनी।' बालक न बोला। लेकिन उसके चेहरे से यह स्पष्ट था कि वह दादा की आवाज पहचान गया है। पुत्र की आवाज पुन: सुनकर कात्यायनी की आँखों से आँसू झरने लगे। बहू को देखकर श्रोत्रियजी ने कहा—"बेटी, जिस तरह हम सुख को स्वीकार करते हैं, उसी तरह दु:ख को भी स्वीकार करना चाहिए। भावावेग में कोई काम नहीं बनता।"

ससुर की बात कात्यायनी न सुन पायी। पास आकर उसने बच्चे का हाथ पकड़ लिया।

इसके बाद एक महीने तक श्रोत्रियजी स्वयं बालक की देखभाल करते रहे। वैद्य द्वारा दी गई दवा लेह्य आदि बालक को यथासमय देते रहे।

५

राजाराव के ऑक्सफोर्ड से लौटने पर कालेज के कला-क्षेत्र में नयी जान आ गई। विदेश जाने से पहले भी वह कालेज के नाटक संघ का अध्यक्ष था। तब भी विद्यार्थियों से उत्तम नाटक करवाता था। अब विदेश में विशेष अध्ययन करके लौटने के बाद अध्यापक वर्ग में उसका मान और भी बढ़ गया। परिणामस्वरूप उसके प्रस्तुत किये नाटकों की प्रतिष्ठा भी बढ़ी। उसके मैसूर लौटने के चार महीने पश्चात् इंग्लैंड की एक प्रसिद्ध शेक्स-

पियर नाटक मंडली भारत आई। मैसूर मे इस मंडली के चार नाटक होने थे। नाटक मंडली का रेलवे स्टेशन पर स्वागत करने से लेकर रंगमंच की व्यवस्था, टिकट-बिक्री, पहले दिन दर्शकों को मंडली और उसके सदस्यों का परिचय देना आदि समस्त कार्यों की जिम्मेदारी राज पर ही थी। उसे भी ऐसे कार्यों मे बड़ी रुचि थी। मंडली को मैसूर में बड़ी सफलता मिली। अंतिम दिन के नाटक के पश्चात् मंडली के मैनेजर ने राजाराव को रंगमंच पर बुलाया, और गुलदस्ता भेंट करते हुए उसके सहयोग, रंगमंच-रचना के प्रति उसके अनुभव आदि की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। राज की प्रतिष्ठा मे चार चाँद लग गये।

कालेज के प्रिंसिपल अपने कालेज को पाठ्येतर कार्यक्रमो में भी आगे बढ़ते हुए देखना चाहते थे। कालेज के नाटक संघ के लिए अलग से एक विशाल कमरा दिलवाने के अलावा, उन्होंने कालेज के खुले नाट्यगृह में हर माह एक नाटक खेलने की सुविधा भी दे दी। एक नाटक खेला गया और इससे प्राप्त धन से राजाराव ने संघ के लिए आवश्यक परदे, दृश्यालंकार-साधन आदि खरीद लिये।

राज मे गंभीर अध्ययन-वृत्ति पहले से ही नही थी। वह बुद्धिशाली युवक अवश्य था। लेकिन बड़े भाई की तरह विद्वान बनने में या ग्रंथ-रचना मे उसकी रुचि नही थी। कालेज में प्रस्तुत करने के लिए वह स्वयं नाटक लिखता था। रंगमंच पर वे नाटक सफल भी होते थे। लेकिन उन्हें प्रकाशित करने की चिंता उसने कभी नही की। वह जानता था कि उनका कोई साहित्यिक मूल्य नही है। विदेश से आने के बाद उसने यथार्थवादी ढंग के कुछ एकांकी भी लिखे। वह किसी से भी जल्दी ही घुलमिल जाता और किसी भी समाज मे अपने वाक्चातुर्य से प्रभाव जमा लेता था। सभा मे किसी का परिचय कराता, धन्यवाद व्यक्त करता तो श्रोताओ के सिर अपने-आप हिलने लगते। अंग्रेजी तो उसी सरलता और अंदाज में बोलता, जैसे वह उसकी मातृभाषा हो। विद्यार्थी तो उसे अपना 'हीरो' ही मानते थे।

डॉ० सदाशिवराव की उत्तर भारत की यात्रा समाप्त हुई। अब वे अपने महाग्रंथ का प्रथम खण्ड लिखने की तैयारी करने लगे। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उन्हें अलग से एक सुसज्जित कमरा मिल गया है। कुर्सी-

मेज, आराम-कुर्सी, पंखा, पुस्तकों के लिए अलमारी आदि हर सुविधा उपलब्ध है। उन्होंने अपने लिए एक टाइपराइटर भी खरीद लिया। लेकिन ठीक से टाइप करना नहीं जानते थे। राज अच्छा टाइप कर सकता है, लेकिन ऐसे कार्यों में उसकी रुचि नहीं। अतः बड़े भाई की ग्रंथ-रचना में किसी तरह का सहयोग नहीं देता। असिस्टेंट प्रोफेसर होने के नाते अब डॉ० राव का वेतन बढ़ गया है। राज को भी वेतन मिलता है। अतः पैसों की तंगी नहीं है। राज के आने के बाद घर की जिम्मेदारी डॉ० राव के कंधों से उतर गई। इससे पहले भी उन्होंने घर की जिम्मेदारी की ओर कभी ध्यान नहीं दिया था। नागलक्ष्मी ही यथाशक्ति सँभालती थी। 'बच्चे को बुखार आ गया है, किस डाक्टर के पास जायें?' 'आपके बिस्तर का खोल फट गया है, चलें नया ले लें'—जैसी बातें वह कभी-कभी पति से कहती। डॉ० राव पत्नी के साथ दवाखाने तक जाते। छः महीने में एक बार पत्नी के साथ बाजार जाना ही पड़ता। अब यह काम भी राज के जिम्मे हो गया। पृथ्वी को 'अ, आ, इ, ई' सिखाने से लेकर भाभी के लिए साड़ी, भैया के लिए कागज, स्याही, फाइल आदि लाना भी उसी का काम है।

डॉ० राव सुबह नौ बजे उठते हैं। स्नान करने के बाद कुछ समय अगासी पर बैठकर बिताते। दस बजे राज के साथ बैठकर भोजन करते, फिर कालेज को चल देते। कालेज में सप्ताह में तीन-चार घंटे पढ़ाते। मन न लगता तो लिख भेजते, 'आज मैं क्लास नहीं लूँगा।' और पुस्तकालय के अपने कक्ष में चले जाते। अमुक पुस्तक का अमुक अध्याय पढ़ना, अमुक ग्रंथ में वर्णित उस काल के जन-जीवन से संबंधित टिप्पणी लिखना, प्राच्य वेत्ताओं द्वारा प्रकाशित ग्रंथों को पढ़ना और मुख्य-मुख्य स्थानों पर निशान लगाना, कई बार प्राच्यसंग्रहालयों में जाना और पांडुलिपियाँ ढूँढ़ना, शंकास्पद विषयों पर अपने विदेशी विद्वान् मित्रों को पत्र लिखना, अर्थात् इनका कार्य उतना ही अपरिमित है, जितना भारत का इतिहास। दोपहर में तीन बजे चपरासी होटल से थोड़ा नाश्ता और कॉफी ले आता। इसके बाद वे फिर अपने कार्य में लग जाते। शाम को करीब सात बजे पुस्तकालय से घर लौटते। इस परिश्रम से उनके थके दिमाग को न किसी की याद आती और न रहती ही। ऐसी स्थिति में वे किसी से कुछ न बोलते

और अगासी पर जाकर आराम-कुर्सी पर बैठ जाते। आठ बजे के करीब राज खाने के लिए बुलाता, तो नीचे उतरते और परोसी हुई पत्तल के सामने बैठ जाते। कभी-कभी राज, पृथ्वी और नागलक्ष्मी से बात कर लेते, अन्यथा चुपचाप भोजन के बाद अध्ययन-कक्ष में चले जाते। उनका यह अध्ययन-कक्ष खरीदे गये और पुस्तकालय से लाये गये ग्रंथों से भरा हुआ था। रात के दो-तीन और कभी-कभी सुबह के पाँच बजे तक उनका अध्ययन चलता। सुबह नौ बजे उठते। नहाकर भोजन करते और पुनः अध्ययन में डूब जाते। रविवार और छुट्टी के दिन भी पुस्तकालय जाते। उन्हें पुस्तकालय की एक अतिरिक्त चाबी दे दी गयी थी।

एक रविवार दोपहर को पृथ्वी को बुखार आ गया। बुखार की गर्मी में बालक हठ कर रहा था : "काका, मुझे अण्णा (पिताजी) के पास ले चलो।"

"नहीं बेटे! अण्णा रात को आयेंगे और तेरे पास ही सोयेंगे। अब चुप रहो" कहकर राज मना रहा था। कुछ समय तक हठ करने के पश्चात् वह आँख मूँदकर सो गया। खाट पर सोये बालक के पास राज बैठ गया। रसोईघर के काम से निपटकर नागलक्ष्मी भी पास ही एक कुर्सी पर बैठ गयी। बालक और राज को देखकर उसकी आँखें भर आयी। वह अनायास ही रो पड़ी। यह देख राज ने कहा—"रो क्यों रही हो? शाम को डाक्टर को बुला लेंगे। बुखार आया है तो उतर भी जायेगा।"

"मैं इसलिए नहीं रोई" आँचल से आँसू पोंछते हुए नागलक्ष्मी ने कहा।

"तो फिर किसलिए?"

"बुखार आता है, चला जाता है। बच्चा 'अण्णा-अण्णा' की रट लगा रहा है, क्या उन्हें घर में नहीं रहना चाहिए?"

"उन्हें क्या मालूम कि इसे बुखार आ गया है। सुबह तो यह ठीक था। इसलिए वे रोज की तरह आज भी लाइब्रेरी चले गये।"

"रोज की तरह चले गये, यह तुम कितनी आसानी से कह गये। रविवार को भी क्यों जाते हैं? पत्नी और बच्चे की तनिक भी चिंता हो, तब न?"

राज चुप रहा। वह जानता है कि जब भाभी गुस्से में हो, बोलना

नहीं चाहिए। लेकिन नागलक्ष्मी फिर बोली, "इनसे शादी हुए ग्यारह साल हो गये। शुरू-शुरू में तीन दिन तक 'नागु-नागु' पुकारते रहे। इसके बाद मैं भुला ही दी गयी। फिर तीन वर्ष तक पी-एच० डी० करते रहे, पत्नी को पूर्णतः भूल गये। 'आजकल एक पुस्तक लिख रहा हूँ' कहकर और पाँच साल निकाल दिये। अब एक और भूत सवार हुआ है। कहते हैं 'महाग्रंथ लिख रहा हूँ, पाँच बड़े-बड़े जिल्दों में!' पच्चीस सालों में उसे पूर्ण करने की योजना है। उन्हें किसी की फिक्र ही नहीं। तब तक मैं भी पचास की हो जाऊँगी। न जाने किस नक्षत्र में इनका जन्म हुआ था! शादी से पहले हमारे गाँव के तिप्पा जोयसजी ने जन्मकुंडली देखकर कहा था दोनों की जोड़ी सदा सुखी रहेगी।"

"क्यों, निभ तो रही है! अब झगड़ा किस बात का? तुम अपनी ओर से झगड़ना भी चाहोगी तो भैया चुप ही रहते है।"

"चुप नहीं रहेंगे तो क्या करेंगे? तुम्हें सारी दुनिया की बातें समझ में आती हैं, लेकिन यह बात नहीं। चुप रहो।" उसकी आँखें पुनः भर आईं।

राज आगे कुछ न बोला। उससे यह छिपा नहीं है कि अपने ग्रंथ की रचना में लीन उसका भाई अपने पत्नी-बच्चों से ही क्या, छोटे भाई से भी कभी बात नहीं करता। लेकिन उसे भैया से कोई शिकायत नहीं। इंग्लैंड में उसने प्रसिद्ध विद्वानों को अध्ययन करते देखा था। वह यह भी जानता था कि एकनिष्ठा के बिना महत् ग्रंथ-रचना का कार्य संभव नहीं है। इसी कारण भाभी से पूछा, "क्या तुम नहीं चाहती कि भैया महाग्रंथ लिखकर प्रसिद्ध विद्वान माने जायें? उन्हें महान् विद्वान् बनने का सम्मान मिलेगा तो तुम्हें खुशी नहीं होगी क्या?"

"खुशी क्यों न होगी! उन्हें पढ़ने-लिखने से मैं थोड़े ही रोकती हूँ? लेकिन बीवी-बच्चे को इस तरह भुला तो न दें!"

"यह काम ही ऐसा है। भैया ही नहीं, इंग्लैण्ड के विद्वान् भी ऐसे ही होते है। हमारे देश में भैया-जैसे तो बिरले ही हैं।"

"तुमने कहा न कि इंग्लैंड में भी ऐसे लोग हैं, उनकी पत्नियाँ क्या करती हैं?"

"उनकी पत्नियों को यह समस्या नहीं रहती। क्योंकि···, खैर छोड़ो।"

कहकर वह चुप हो गया। उसने ऑक्सफोर्ड में देखा था कि प्रसिद्ध प्रोफेसरों की पत्नियाँ अपने पतियों के अध्ययन मे मदद करने की क्षमता रखती हैं। वे अपने पति की पढाई-लिखाई मे, 'नोट' तैयार करने में, प्रूफ रीडिंग आदि मे मदद करती है। पति के निजी-सचिव का कार्य वे ही करती है। राज के प्राध्यापक की पत्नी भी वैसी ही थी। इसलिए पति-पत्नी के बीच बातचीत के लिए अनेक विषय होने के बावजूद, पत्नी के सहयोग के बिना पति की कोई भी बौद्धिक साधना पूरी नही हो पाती। पत्नी के नाराज होने का भी कोई कारण नही रहता। उस देश की पद्धति ही निराली है। वे मुक्त भाव से अपनी अभिरुचि, और जीवन-साधना के अनुरूप अपना साथी चुन लेते है। कभी इस बात का आभास हुआ कि उनका साथ नही निभ सकता, तो तुरन्त अलग हो जाते है और पुन. अनुरूप साथी ढूंढ लेते हैं। इस देश की पद्धति उचित है या उस देश का रिवाज, इसका निर्णय करने का प्रयास राज ने नही किया।

उसे मालूम है कि भाई-भाभी के बीच अपार बौद्धिक अतर है और भाई की बौद्धिक साधना मे भाभी किसी तरह की मदद नही कर सकती। नागलक्ष्मी शादी के बाद राज के साथ मैसूर के पतिगृह मे आई तो राज ने उसे अंग्रेजी सिखाने की कोशिश की थी। किसी तरह उसे कालेज भेजने की आशा भी की थी। इसमे भाई का प्रोत्साहन भी था। लेकिन नागलक्ष्मी का पढने-लिखने का मन न था। पढने-लिखने की आवश्यकता भी प्रतीत नही हुई। 'मेरे भाग्य मे विद्या लिखी ही नही है पढ-लिखकर करना भी क्या है?' कहकर वह दोनों को चुप कर देती थी।

राज ने बीच मे ही बात रोक दी तो नागलक्ष्मी ने ही पूछा—"चुप क्यो हुए, राज?"

"यो ही। उस देश के विद्वान् भी भैया की तरह है। वहाँ की स्त्रियाँ भी तुम्हारी ही तरह सब-कुछ सहती है।"

"उसे जाने दो। तुम भी उन्ही की तरह पढे हुए हो। जिस तरह तुम मेरे साथ बोल लेते हो, उसी तरह वे क्यो नहीं बोल सकते?"

"मैं तो 'चैटर-बाक्स' अर्थात् बातूनी आदमी हूँ।"

उसे हँसाने का प्रयत्न करते हुए राज ने कहा—"मैं थोड़े ही भैया

की तरह पुस्तक लिखता हूँ ! नाटक खेलना मेरा मुख्य काम है। बात करना ही मेरी पढ़ाई है । क्या मैं भी पुस्तक लिखना शुरू कर दूँ ?"

"नही बाबा ! तुम नाटक ही खेलते रहो।" नागलक्ष्मी फिर कुछ याद करती-सी बोली, "तुम भी पच्चीस वर्ष के हो गये, शादी कर लो। मुझे घर मे राहत मिल जायेगी।"

"मुझे शादी नही करनी है। अब सुखी हूँ। नही तो वह भी—'आप पर आठो पहर नाटक का ही भूत सवार रहता है, मेरी चिंता ही नही' कहती हुई तुम्हारी तरह ही कोसा करेगी।"

उस दिन नागलक्ष्मी का मिजाज कुछ गर्म ही रहा। शाम को पाँच बजे राज बालक को लेकर डाक्टर के पास गया और दवा ले आया। डाक्टर ने कहा कि "कोई गंभीर बीमारी नही है, कल बुखार उतर जायेगा —सब कुछ ठीक हो जायेगा।"

रात को सात बजे डॉ० राव घर आये तो राज घर मे न था। उनके आते ही नागलक्ष्मी ने पूछा—"रविवार को भी वहाँ गये बिना काम नही चल सकता क्या ?"

उसकी आवाज के भाव को समझ डॉ० राव चुप रहे। उसने पुनः पूछा—"चुप क्यो है ?" तब डॉ० राव ने कहा—"गुस्से में कोई प्रश्न करे तो उसका उत्तर शान्ति से देने पर भी सुनने वाले का क्रोध बढ ही जाता है और क्रोध मे उत्तर दे तो भी बढता है। इसलिए चुप रहने मे ही विवेक है !"

तब उसने डॉ० राव का हाथ पकड़कर, कमरे मे पृथ्वी के पास ले जाकर कहा, "बच्चे को दोपहर से बुखार है।"

"राज घर पर नही था ?"—बच्चे के माथे पर हाथ रखकर डॉ० राव ने पूछा।

"था ! वह नही तो और कौन करता ? डाक्टर के पास जाकर दवा लाया। लेकिन बच्चे के पिता को इसकी रत्ती-भर चिन्ता नही !"

राव ने कुछ नही कहा। बालक के पास चुपचाप बैठ गये। पति को दो मिनट तक एकटक निहारकर नागलक्ष्मी ने कहा, "चुप बैठने के सिवा आपको कुछ सूझता भी है ?"

"मैं क्या करूँ ? राज दवा ले आया है। और देखभाल तुम करती

हो।"

"हाय री किस्मत !" कहकर नागलक्ष्मी सिसक-सिसककर रोने लगी।

डॉ० राव दुविधा में पड़ गये। उन्होंने पत्नी का हाथ पकड़कर अपने पास बिठाया। फिर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"तेरे मन की बात मैं समझ सकता हूँ नागु ! खैर, छोड़ो। अब मैं जल्दी घर आ जाया करूँगा।"

उसके लिए इतना ही काफी था। दो मिनट में ही अपने-आप सँभलकर पति की बाँहों को दोनों हाथों से कसकर कहा—"मैं यह नहीं कहती कि आप पढ़ें नहीं। मुझे इस तरह भुलाकर पढ़ें, तो मैं जिवू कैसे ?"

राज के आने की आवाज सुनाई पड़ी। नागलक्ष्मी उठकर रसोईघर में चली गयी।

नागलक्ष्मी को नींद न आई। बच्चे को बीच में सुलाकर पति-पत्नी दोनों लेट गये। डॉ० राव पत्नी से खुले दिल से बातचीत कर रहे थे। घर के कम्पाउण्ड की मोगरे की लता और पड़ोस की नई नौकरानी से लेकर इस बार राज द्वारा हैदराबाद से लाई हुई तुअर की दाल तक के बारे में बड़ी लगन से अपने पति को सुना रही थी। वे यथाक्रम 'हूँ-हूँ' कहते रहे। ग्यारह बजे नागलक्ष्मी को नींद आ गयी। बालक भी सो गया। लेकिन यह डॉ० राव के सोने का वक्त न था। वे धीरे से उठे और अपने अध्ययन-कक्ष में चल दिये।

अजंता से लौटने के एक माह बाद करुणरत्ने का रजिस्टर्ड लिफाफा आया। खोलकर देखा तो लगभग साठ से अधिक टाइप किये पृष्ठ थे। ये थी दोनों द्वारा लिये गये 'नोटों' की प्रतियाँ। डॉ० राव ने प्रारम्भ से अंत तक पढ़ डाला। शुद्ध अंग्रेजी में क्रमबद्ध लिखा गया था। रत्ने को लिखाने के लिए उन्होंने अजन्ता का वर्णन अवश्य किया था, लेकिन एक गुफा से दूसरी गुफा में जाते समय मौखिक रूप में जो कुछ कहा था, उसमें लिखित क्रमबद्धता नहीं थी। किन्तु रत्ने से प्राप्त हुई इस लेख की प्रतियाँ एक सुव्यवस्थित निबंध-सी थी। टाइप में एक भी गलती नहीं—कोई अनुभवी कुशल टाइपिस्ट ही ऐसा काम कर सकता है।

इसके साथ रत्ने का एक पत्र भी था जिसमें लिखा था—"यहाँ आने

के बाद मैं कोलंबो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे गयी। डॉ० गुलाम यज-दानी कृत 'अजन्ता के चित्र और अध्ययन' की चार जिल्दों को देखा। उसमे केवल वास्तविक वर्णन ही था, जैसा कि आपने लिखाया था, उसमें ऐति-हासिक मौलिक विवेचन नही है। इसे टाइप करते समय मैं इसका महत्त्व समझ गयी। इसी को थोड़ा परिष्कृत कर पुस्तक-रूप मे प्रकाशित किया जाय तो विद्वान् इसका स्वागत करेंगे। आप अनुमति दें तो मैं अपनी योग्यता के अनुसार इसे प्रकाशन-योग्य रूप देकर आपके पास भेज दूंगी।

"इतिहास से सबधित आपके विचार मुझे जँचे है। मैं जो 'बौद्धधर्म की पृष्ठभूमि मे सिंहल की सस्कृति' नामक शोध-ग्रथ लिखना चाहती थी, अब मुझे लग रहा है कि उसे आपके बताये हुए दृष्टिकोण से ही लिखूँ। भारत का सास्कृतिक इतिहास लिखने की आपकी योजना भव्य है। भगवान से प्रार्थना है, आपके प्रयत्न पूर्णतः सफल हों।

" मेरे माता-पिता ने आपको याद किया है—उनका नमस्कार स्वीकार हो।"

केवल तीन दिन के परिचय से ही उनके शोधकार्य के प्रति इतनी आत्मीयता दिखाने वाली इस विदेशी युवती के प्रति डॉ० राव का स्नेह जागा। उसकी भेजी हुई प्रति को उन्होंने दुबारा पढ़ा। वास्तव में वह पुस्तक-रूप मे प्रकाशित करने योग्य निबंध था। फिर भी उन्होंने इस ओर अधिक उत्साह न दिखाकर उसे एक फाइल में रख दिया। टाइप की हुई प्रतियों के लिए उन्होंने रत्ने को धन्यवाद दिया।

उन्होंने ग्रंथ के प्रथम खण्ड की सारी सामग्री तैयार कर ली थी। यह भी हिसाब लगाया कि अब से तीन महीने बाद लिखना प्रारंभ कर देना चाहिए। उनके अब तक के ग्रंथों को इंग्लैंड की जिस प्रकाशन कम्पनी ने प्रकाशित किया था, उसने पत्र-व्यवहार किया और ग्रंथ के सम्पूर्ण खण्डों को प्रकाशित करने की स्वीकृति दे दी। [illegible] कम्पनी ने भी उन्हें काफी आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया।

'भारतीय संस्कृति का [illegible] और [illegible]' [illegible] का प्रारम्भ था। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को [illegible] प्रस्तुत किया [illegible]
डॉ० राव ने [illegible]

रूप देने लगे। इतने में रत्ने का एक और पत्र आया।

"मैने आपका 'प्राचीन भारतीय राजतन्त्र को धर्म की देन' पढा। इसमे पहले केवल समालोचना पढी थी। कल्पना भी नही की थी कि यह ग्रंथ इतने उच्च स्तर का होगा! यह पत्र आपका अभिनन्दन करने के लिए नही लिख रही हूँ—मैं ऐसे लेखक का अभिनन्दन करने के योग्य भी नही। मेरा एक निवेदन है। मैं 'बौद्धधर्म की पृष्ठभूमि मे सिंहल की सस्कृति' पर जो ग्रंथ लिखना चाहती हूँ, आशा है, उसमे आपका पूर्ण मार्गदर्शन मिलेगा। उसी को पी-एच० डी० के लिए शोध-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत करने का इरादा है। तत्पश्चात् प्रकाशित कराने की बात सोच रही हूँ। इस शोध-कार्य मे आपके मार्गदर्शन की इच्छा सँजोए हूँ—आपकी स्वीकृति की अपेक्षा है। मेरे माता-पिता और भाई ने भी इस योजना को पसन्द किया है। कृपया मुझे अपनी छात्रा के रूप में स्वीकार करें। आपकी स्वीकृति पाते ही मैं यहाँ से रवाना हो जाऊँगी।"

विश्वविद्यालय-क्षेत्र में ऐसी विदुषी छात्रा को शिष्या के रूप मे पाना, प्रोफेसरों के लिए गौरव की बात है। किन्तु डॉ० राव ने महसूस किया कि शोध-कार्य के लिए इतनी दूर से अकेली युवती का आना ठीक नही। फिर यह सोचकर कि वह इंग्लैंड अकेली ही तो गयी थी और दो साल शिक्षा पाकर लौटी है डॉ० राव ने पत्र लिखा—"मेरे मार्गदर्शन मे तुम्हारे शोध-कार्य करने मे मुझे कोई आपत्ति नही है। तुम अपनी सुविधानुसार कभी भी आ सकती हो।"

एक दिन शाम के चार बजे नागलक्ष्मी आँगन मे चमेली के पौधे के पास खड़ी थी। सफेद साडी पहने एक साँवले रंग की युवती ताँगे से उतरी और फाटक के पास आकर अंग्रेजी मे पूछने लगी—"डॉ० सदाशिवराव हैं?"

नागलक्ष्मी प्रश्न समझ गयी। कन्नड मे 'हैं' कह दिया, लेकिन रत्ने न समझ सकी। उसने पुन: अंग्रेजी मे पूछा, तो नागलक्ष्मी की समझ में न आया। अब रत्ने लौट ही जाने वाली थी कि राज आ गया। परस्पर बातचीत के बाद उसने आगंतुक युवती को भीतर ले जाकर बैठाया और भाभी से कॉफी बनाने के लिए कहा। कॉफी पीने के बाद राज ने पूछा—"आपका भोजन हो चुका है?"

"जी हाँ। रेल से उतरने के बाद एक होटल में भोजन करके ही यहाँ आई हूँ।"

"आपके आने की तारीख आदि के बारे में मेरे भैया जानते हैं ?"

"लिखा था। उन्होंने पत्रोत्तर भी दिया था।"

"शायद वे भूल गये होंगे। अपने अध्ययन में उन्हें कुछ भी याद नहीं रहता। मेरे साथ आइए। पुस्तकालय में स्थित उनके कमरे में ले चलता हूँ।"

जाते-जाते रास्ते में रत्ने और राज ने परस्पर अधिक परिचय कर लिया। डॉ० राव कमरे में आराम-कुर्सी पर पीठ टेककर बैठे, किसी नोट के बायीं ओर लाल पेंसिल से कुछ रिमार्क लगा रहे थे। मेज पर हस्त-लिखित पांडुलिपियाँ, पेन, पेंसिल, आठ-दस अधखुली किताबें पड़ी हुई थीं। सारा कमरा पुस्तकों से भरा पड़ा है। कमरे में अभी तक दोपहर की गर्मी थी, लेकिन लगता है राव पंखा चालू करना भूल गये हैं। वे पैर पसारकर बैठे थे। रत्ने को भीतर आते देखकर, कुछ तनकर बैठते हुए उन्होंने कहा —"आइए-आइए, स्वागत है! मैं भूल ही गया था। कब आयीं ?"

रत्ने और राज दोनों पास की कुर्सियों पर बैठ गये। डॉ० राव ने कुशल-समाचार पूछा—"आपके माता-पिता कुशल तो हैं ?"

"कुशल हैं! आपको नमस्कार कहा है।"

डॉ० राव अभी तक अध्ययन की धुन में ही थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि अब क्या बोलना चाहिए। कुछ न कहकर चुप बैठ गये। इस चुप्पी से रत्ने को कुछ संकोच हुआ। इसे ताड़कर वातावरण को कुछ हलका बनाने के उद्देश्य से राज ने कहा—"आप बहुत दूर आ गयी हैं।"

"ओह! दूर कहाँ ?"

राज ने तुरन्त कहा—"सिंहल और भारत के बीच ज्यादा दूरी तो नहीं है, अन्यथा रावण सीता को एक ही बार में कैसे उठा ले जाता ?"

रत्ने हँस पड़ी। डॉ० राव भी 'मूड' में आ गये। उन्होंने कहा— "रामायण के कवि ने सिंहल को अवश्य देखा होगा। यद्यपि कवि ने सिंहल के राजा रावण को राक्षस कहा है, फिर भी वेदनिष्ठ, ब्रह्म तपस्वी के रूप में उसका वर्णन किया है। सांस्कृतिक दृष्टि से ये दोनों देश एक ही हैं।"

राज ने कहा—"भैया, ये इतनी दूर से आयी हुई हैं और आप उनका कुशल-समाचार पूछना छोड़कर इतिहास पर व्याख्यान देने लग गये।"

डॉ० राव ने अपनी गलती महसूस कर रत्ने से पूछा—"कहाँ रहने की व्यवस्था की है ?"

"होटल में।"

"आपको होटल में रहने की आवश्यकता नहीं थी। सीधे घर आना चाहिए था। अब एक काम कीजिए। मेरे भाई के साथ जाकर सारा सामान यहाँ ले आइए। रजिस्ट्रेशन के लिए कल विश्वविद्यालय को अर्जी देंगे। एक-दो दिन तक लड़कियों के होस्टल में रहने की व्यवस्था की जा सकती है।"

राज और रत्ने के चले जाने पर डॉ० राव पुनः अध्ययन में लग गये। रत्ने और उसके सामान के साथ सात बजे के करीब राज घर लौटा। रत्ने को अंग्रेजी में अपनी भाभी—गुरु-पत्नी—का परिचय कराया। रत्ने ने नमस्कार किया। नागलक्ष्मी ने प्रति नमस्कार किया। अन्दर रसोई बनाते समय मौका पाकर नागलक्ष्मी ने राज से पूछा—"युवतियाँ शादी कर घर बसाना छोड़कर इतनी दूर क्यों जाती हैं ?"

"क्यों, पढ़ने के लिए ! वह इंग्लैंड जाकर उतना ही पढ़ी है जितना कि मैं। अब भैया के मार्गदर्शन में पढ़ने आई है। भैया को आप क्या समझती है ?"

"क्या तुम्हारा ही सम्बन्ध है उनसे ? मेरा कुछ नहीं ?" नागलक्ष्मी ने गर्व से कहा।

"क्या सबंध है, यह तुम उन्हीं से पूछो" कहकर राज बाहर चला गया। डॉ० राव आठ बजे घर आये। तब तक राज अतिथि से बातें करता रहा। इंग्लैंड के छात्र-जीवन के बारे में उनकी बातचीत चल रही थी।

घर में वात्सल्यमयी सास, ससुर और एक प्यारा बच्चा है। जीवन की सारी सुविधाएँ भी हैं। फिर भी कात्यायनी को जीवन नीरस लग रहा था। स्वर्गीय पति की स्मृति-वेदना पहले-जैसी उत्कट नहीं थी। वह अब कभी-कभी सास-ससुर से हँसकर बात कर लेती। बच्चे के साथ कभी घोड़े का खेल, तो कभी आँख-मिचौनी खेलती। फिर भी समय बिताना उसके लिए कठिन था। सुबह उठकर घर में झाड़ू देती, चौक पूरती, रंगोली सजाती। इस बीच सास-ससुर नहा-धो लेते। ससुर पूजाघर में होते और सास रसोईघर में। अन्य कार्य लक्ष्मी करती। बच्चे को कपड़े पहनाकर, खुद स्नान करती। फिर सबके कपड़े धोकर सुखाने डालती। बस, यही उसका घर का काम होता था। बाकी समय कैसे बीते? सास कभी-कभी चौपड़ खेलती। लेकिन कात्यायनी की उसमें रुचि नहीं थी।

पति के देहान्त के बाद कात्यायनी के पिता उसे कुछ दिनों के लिए अपने साथ श्रीरंगपट्टण ले गये थे। लेकिन उसे वहाँ भी शांति न मिली, वहाँ उसकी सौतेली माँ जो थी। 'माँ' उम्र में उससे सिर्फ आठ वर्ष बड़ी थी। पिता, आचार में ससुर से भी बढ़कर थे। ससुर के आचार और पिता की शुद्धाचारिता में बड़ा अंतर था। अगर श्रोत्रियजी अपने आचरण को प्रकाश प्रदान करने वाले धर्म के अंत:सत्त्व को पहचानने का प्रयत्न करते, तो वकील श्रीकंठय्य धर्म के बाहरी रूप का हर तरह से पालन करते। नंजुंड की मृत्यु के पश्चात् श्रीकंठय्य कात्यायनी के पुन: विवाह के पक्ष में थे, लेकिन श्रोत्रियजी ने इसे कोई महत्त्व नहीं दिया। पिता के घर अधिक दिन न रह, वह नंजनगूडु लौट आई। कभी-कभी वह अकेली ही बगीचे में जाती और पौधों की क्यारियाँ बनाती। घास-तिनके निकाल फेंकती। पौधों को पानी देती। घर के पिछवाड़े मोगरा-चमेली की लताओं में सुन्दर सुगंधित फूल खिलते। कात्यायनी इनमें भरपूर पानी डालती। लेकिन बगीचे में काम करते-करते पति की याद आ जाती। पहले वे दोनों मिलकर पानी डालते थे। फूलों से लदे कुटिया के आकार के मोगरे के पौधों की ओट में फूल चुनते समय कई बार पति ने छेड़-छाड़ की थी।

इस पर वह कृत्रिम क्रोध प्रकट करती थी। अब जब कभी वह बगीचे में आती, वे स्मृतियाँ उभर आती।

बगीचे में हरे-भरे पौधे लहलहा रहे थे। फसल कटने के बाद घर के पिछवाड़े का जो खेत सूखकर बंजर-सा दिखाई देता था, अब हरा-भरा हो उठा था। सदा बंजर रहना न प्रकृति का नियम है, और न धर्म ही। लेकिन कात्यायनी यह सोचकर आह भरती कि मेरा मुरझाया जीवन सदा के लिए मुरझा गया। लेकिन बच्चे को देखती तो मन भर आता। किंतु बच्चे के पालन-पोषण में ही उसकी चेतना पूर्णतः लीन नहीं हो सकती थी। कभी-कभी बगीचे में काम करते समय श्रोत्रियजी अचानक वहाँ आ जाते। बहू को देख कहते—"इस कड़ी धूप में यह क्या करती हो बेटी? अन्दर जाओ।" ससुर के वात्सल्य की याद करती तो दुःखमय जीवन में नयी उमंग पैदा हो जाती। कभी-कभी उसे अपने कालेज जीवन की याद हो आती। हर रोज वह रेल से श्रीरंगपट्टण से मैसूर आती थी। कालेज में वह कुशाग्र बुद्धि की छात्रा मानी जाती थी। सीनियर इंटरमीडिएट में एक बार विद्यार्थियों ने 'सावित्री-सत्यवान' नाटक खेला था, जिसमें उसने सावित्री का उत्तम अभिनय किया था। दर्शकों के अश्रु-कण रोके न रुकते थे। 'सत्यवान' को यम से मुक्त कराने वाली कात्यायनी, वास्तविक जीवन में अपने विवाह के दो वर्ष भी पूर्ण न कर सकी! इंटरमीडिएट उत्तीर्ण होते ही उसकी शादी हो गई थी और आगे की पढ़ाई भी रुक गई थी। लेकिन उसे इसका कभी दुःख नहीं हुआ। श्रोत्रिय-दम्पति-से सास-ससुर, नंजुंड जैसे पति के सम्मुख कालेज-अध्ययन का क्या महत्त्व!

अब उसे एक नई बात सूझी। नंजनगूडु से कई लड़कियाँ रोज कालेज में पढ़ने मैसूर जाती हैं। मैं भी क्यों न बी० ए० कर लूँ? इस विचार के पीछे उसकी और एक आशा मँडरा रही थी। उसका पति पहली बार बी० ए० में न बैठ सका। दूसरी बार बैठा तो दो विषयों में फेल हो गया। तीसरी बार घर पर ही पढ़ता रहा। लड़के को बी० ए० बनते देखने की माँ-बाप की बड़ी इच्छा थी। पति की सारी पुस्तकें दुमंजिले पर रखी थीं। कात्यायनी ऊपर गई, अलमारी खोलकर देखा। संस्कृत, अंग्रेजी, इतिहास आदि की कई पुस्तकें रखी थीं। सब व्यवस्थित जिल्द में हैं और

उन पर एन० एस० नजुड श्रोत्रिय भी लिखा है। कई-एक पुस्तकों पर स्वयं उसी ने नाम लिखे थे। एक बार पति ने पेंसिल से पत्नी का नाम 'कात्ती' लिख दिया था, जिसे कात्यायनी ने रबर से मिटा दिया था। वह चिह्न आज भी अमिट था।

फिर से कालेज जाने की उसकी आशा धीरे-धीरे बलवती होती गई। शंका थी कि ससुर मानेंगे या नहीं। लेकिन उनसे पूछने का निश्चय कर, एक दिन उसने पूछ ही लिया। उन्होंने कहा—"बेटी, अब नियमित खाना-पीना छोड़ने और रेल में चक्कर लगाने की जरूरत भी क्या है? आराम से घर मे रहो। चीनी के बड़ा होने पर उसे पढ़ायेंगे।"

"आज वे होते तो इस साल बी० ए० अवश्य कर लेते! हमारी किस्मत में कुछ और ही बदा था। उनके नाम से इतना मैं कर लूं तो भी मन को एक तरह से शांति ही मिलेगी" इतना कहकर वह चुप हो गयी।

किसी बात पर ध्यान न देना श्रोत्रियजी का स्वभाव नहीं था। पिछले कुछ दिनो से वे बहू के नीरस जीवन को देख रहे थे। सोचा, अगर कालेज जाने से इसका दिल बहल सकता है, तो ठीक ही है। फिर भी कहा—"मैंने तुमसे भगवद्गीता पढ़ने के लिए कहा था। कालेज जाने के बदले भगवद्गीता पढो। मन को शांति मिलेगी। उपनिषद् भी पढ़ो। चाहो तो रोज पूजा के बाद मैं पढ़ा दिया करूँगा। खाने, पहनने का अभाव हो तो दूसरी बात है। भगवान् की कृपा से कोई कमी नहीं है। मेरा तो विचार है कि तुम-जैसों के लिए कालेज की अपेक्षा उपनिषद्-भगवद्गीता ही अधिक उपयुक्त है।"

श्रोत्रियजी बिना कोई विशेष अर्थ लगाये कह गये थे, लेकिन अन्तिम वाक्य 'तुम-जैसों के लिए' सुनकर कात्यायनी के मन को आघात लगा। आँखों से आँसू छलक पड़े। श्रोत्रियजी कारण न समझ पाये किन्तु आँसू देख उन्होंने सात्वना देते हुए कहा—"तुम पढ़ना ही चाहती हो तो पढ़ो। उसमें रोने की क्या बात है?"

आँसू पोछकर कात्यायनी ने कहा, "भगवद्गीता पढ़ने का प्रयत्न किया, पर उसके प्रति रुचि नहीं जागी। मैं क्या करूँ? अलमारी में रखी उनकी किताबें पढ़ने लगी तो मन रम गया।"

"तू ठीक कह रही है बेटी। हर चीज का एक वक्त होता है!"

कहकर श्रोत्रियजी चुप हो गये।

एक दिन दोपहर में कात्यायनी बच्चे के साथ ऊपर सो रही थी। भागीरतम्मा, लक्ष्मी और श्रोत्रियजी नीचे आँगन में बातचीत कर रहे थे। भागीरतम्मा ने कहा, "इतना सब हो चुकने के बाद, अब कालेज क्या? वह दुनिया क्या जाने? उसने पूछा और आपने हाँ कह दिया! घर में बेटे की देखभाल करते हुए आराम से नहीं रहा जाता?"

पत्नी को समझाते हुए श्रोत्रियजी ने कहा, "अभी छोटी उम्र है। घर में बैठकर करना भी क्या है? एक-दो साल पढ़ने दो।"

"इस छोटी उम्र में जो-कुछ भी हुआ, क्या इसका हमें दुःख नहीं है? सिर मुंड़ा लेती तो अनेक कार्यों में हाथ बँटा सकती थी। पूजाघर की सफाई करती, राँगोली माँडती, नैवेद्य बनाने में मदद करती। इन कार्यों के साथ व्रत सम्बन्धी कथाएँ पढ़ती। किसी तरह समय बीतता ही। वह ठहरी आजकल की लड़की। आप मुंडन कराना नहीं चाहते थे, और मेरा मन भी इतना कठोर न था। अब क्या होता है?"

लक्ष्मी ने बीच में ही कहा—"अब वह पति की पढ़ाई की इच्छा पूरी करने के लिए ही जा रही है न? पति के नाम पर पढ़ेगी, अपने लिए तो नहीं? पढ़ने दो, तुम्हारा क्या जाता है?"

भागीरतम्मा यह सोचकर चुप रह गई कि बहू आखिर बी० ए० की डिग्री हासिल करने ही तो जा रही है, जिसे स्वर्गीय पुत्र न पा सका। उनकी चुप्पी ही सम्मति सूचक थी। अब श्रोत्रियजी ने कहा, "इस छोटी उम्र में सिर मुँडाकर घर बैठाने की परपरा अब किसे भाती है? कोई स्वतः प्रेरित होकर ऐसा करे, तो ठीक है। 'ये सब अलकार जिसके लिए होने चाहिए, उसी के चले जाने से अब उनका क्या महत्त्व?' यह भाव जब तक अंत मन में नहीं उपजता, तब तक बाहर से कोई न लादे, यही उचित है।"

इतने में बाहर से किसी के आने की आहट हुई। लक्ष्मी ने जाकर देखा। आगंतुक डा० राव थे। श्रोत्रियजी तुरन्त बाहर आये और हाथ जोड़कर बोले: "आइए, आइए! दर्शन हुए डेढ़ साल हुआ न? अंदर दीवानखाने में चलिए।"

चमड़े के बड़े थैले को अपने साथ लेकर डॉ० राव दीवानखाने में कुर्सी पर बैठ गये। श्रोत्रियजी भीतर से एक बड़ा गिलास मठा लाकर उनके सामने रखते हुए बोले, "खाने के लिए कुछ लेंगे?"

"अभी एक-दो घण्टे कुछ नहीं लूंगा। भोजन के तुरन्त बाद निकला था।"

कुछ समय तक परस्पर कुशल-क्षेम की बातें हुईं। डॉ० राव ने महाराज से प्राप्त सुविधाओं की चर्चा की। श्रोत्रियजी ने पूछा, "आपका ग्रंथ कहाँ तक पहुँचा?"

"यही बताने के लिए आया हूँ। प्रथम खण्ड के कुछ अध्यायों की सामग्री तैयार कर ली है। प्रथम अध्याय 'भारतीय संस्कृति का आदि और आधार' तैयार है। यही मुख्य अध्याय भी है। इस संबंध में आपसे कुछ विचार-विमर्श करना चाहता था।"

"अवश्य! हाथ-पाँव धो लीजिए और थोड़ा आराम कर लीजिए। बाहर कड़ी धूप है।" कहकर श्रोत्रियजी डॉ० राव को गुसलखाने में ले गये। लौटकर डा० राव ने थैले से टाइप किये हुए कुछ कागज निकाले।

"चलिए, ऊपर चलें। मैं भी वृद्ध हो चला हूँ। स्मरण-शक्ति कम होती जा रही है। अकस्मात्, किसी ग्रंथ को देखना पड़ा, तो फिर वहाँ जाना पड़ेगा।"

दोनों सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे कि कात्यायनी बच्चे को लेकर नीचे उतर रही थी। बच्चा अभी-अभी जागा था। उसे देखकर डॉ० राव ने पूछा, "कैसी हो बहन?"

"आप कब आये?" कात्यायनी ने पूछा।

और फिर दोनों विद्वान् अध्ययन-कक्ष में मृगछाले पर आमने-सामने बैठ गये। अपने कागजों पर एक बार नजर डालकर डॉ० राव ने कहा, "अपौरुषेय वेदोपनिषद् ही भारतीय संस्कृति का आदि और आधार हैं—इस सिद्धांत के साथ ग्रंथ प्रारंभ होता है। आगे के समस्त भागों में, आने वाली संस्कृति का हर आधार वेदोपनिषदों में होना चाहिए। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि मूर्ति-पूजा, नागपूजा, प्रकृति-आराधना आदि का उल्लेख वेदोपनिषदों में नहीं है। ये सब बाद में अनार्य संस्कृति से आ मिले हैं। इस मत को अगर मान लिया जाय तो ग्रंथ का आरंभ ही

गलत हो जाता है। इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?"

प्रश्न को गहराई से सोचने के पश्चात् श्रोत्रियजी ने कहा, "हम यह क्यों स्वीकार करें कि प्रकृति-पूजा अनार्यों की देन है और वह निम्न स्तर की आराधना है? नागपूजा आदि पद्धतियाँ आर्यों की क्यों नहीं हैं? वेदों में भी तीन तरह की उपासना के सकेत मिलते है—भूतोपासना, भूताभिमानी देवोपासना और अतर्यामी उपासना। भूतरूपी अग्नि की उपासना करते समय भूताभिमानी देवता अग्नि को ही कृति उपलब्ध होती है। लेकिन उसे अग्नि के रूप मे अन्तर्यामी परब्रह्म ही पाते हैं। अंतरार्थ को जाने बिना की जाने वाली भूत-पूजा निम्न स्तर की है। अर्थ को जानकर की जाने वाली प्रकृति-पूजा वेदो मे भी है।"

दोनो साँझ के सात बजे तक इसी तरह चर्चा करते रहे। डॉ० राव बीच-बीच मे अपनी नोट बुक मे कुछ निशान लगाते जाते। तीनों वेदो से, श्रोत्रियजी को अनेक मत्र कठस्थ थे, जिन्हे वे उद्धृत करते। कभी-कभी मुद्रित सस्कृत ग्रंथो के पन्ने पलट-पलटकर डॉ० राव को दिखाते।

रात के आठ बजे श्रोत्रियजी अध्ययन-कक्ष से बाहर निकले। स्नान किया और पूजा-पाठ के लिए चले गये। डॉ० राव चर्चित विषयो पर दीवानखाने मे बैठे सोचते रहे। नौ बजे भोजन के पश्चात् पुन: अध्ययन-कक्ष मे चर्चा करने बैठे। रात के करीब एक बजे दोनों नीचे उतरे और लेट गये। अब श्रोत्रियजी ने अपनी बहू की पढाई के बारे में पूछा। डॉ० राव ने कहा, "एक तरह से अच्छा ही है, घर मे बैठकर करेगी भी क्या?"

"यह तो ठीक है। लेकिन मेरी पत्नी सहमत नही है। कालेज के बारे में उसकी धारणा अच्छी नही है।"

"अच्छे लोग कही भी रहे, कुछ नहीं होता। बिगडने वाले कभी और कहीं भी बिगड जाते है। कालेज बुरा तो नही है। मैं भी कालेज म ही रहता हूँ न?"

श्रोत्रियजी को डॉ० राव की बात पसंद आई। उन्होंने पूछा, "गर्मी की छुट्टियो के बाद कालेज कब खुलने वाला है?"

"दस दिन और हैं। उसे चौबीस जून को भेज दीजिए। मुझे विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी मे एक कमरा दिया गया है। वही बैठता हूँ। उस दिन फार्म भरकर दे देंगे। फिर नियमित रूप से जाना होगा।"

श्रोत्रियजी ने अब निर्णय कर लिया कि कात्यायनी कालेज जायेगी।

श्रोत्रियजी के घर के पास डॉ० श्रीपादराव रहते हैं। उनकी बेटी वासंती इस साल सीनियर बी० ए० मे है। जब वासती को पता चला कि कात्यायनी भी उसी कालेज में पढने वाली है तो वह स्वय जाकर पूछताछ करके आयी। कात्यायनी को खुशी हुई कि चलो, दोनों साथ-साथ कालेज जाया करेंगी। श्रोत्रिय-दम्पति को भी तसल्ली हुई। डॉ० राव ने अन्तिम तारीख से पहले ही श्रोत्रियजी के नाम प्रवेश-पत्र भेज दिया था। फार्म पर संरक्षक के रूप मे श्रोत्रियजी ने हस्ताक्षर किये। भागीरतम्मा के कहने पर कात्यायनी ने फार्म भगवान के सामने रखा, प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया और फार्म लेकर कालेज जाने के लिए तैयार हो गयी।

उस दिन सुबह से ही कात्यायनी एक अजीब-सी परेशानी और भय महसूस कर रही थी। सोच रही थी कि घर छोड़कर रोज कालेज जाकर क्या हासिल करूँगी? भोजन करते समय भी यह प्रश्न उसके दिमाग में घूमता रहा कि सुबह नौ बजे घर से निकली तो शाम के साढे छह बजे तक घर की छाया भी नही मिलेगी, बच्चे के प्यारे-प्यारे तुतलाते बोल अनसुने ही रह जायेंगे। क्या कालेज में मन लगेगा? दो साल तक ऐसा ही करना होगा। इसी विचार मे खोयी थी कि भोजन करते समय चीनी आया और तुतलाते हुए पूछने लगा, "माँ, हमको छोड़कर तू अकेली खा रही है?"

"तेरी माँ मैसूर में कालेज पढने जा रही है बेटे!" परोसती हुई भागीरतम्मा ने कहा।

"कालेज क्यों जा रही है?" बालक का दूसरा प्रश्न था। कात्यायनी उत्तर न दे पायी। पौने नौ बजे वासती श्रोत्रियजी के घर आयी। कात्यायनी सास-ससुर के चरण स्पर्श कर जाने लगी तो चीनी मचल उठा, "माँ, तुम मत पढ़ो, नही तो मुझे भी ले चलो" और उसने आँचल पकड़ लिया। श्रोत्रियजी ने बच्चे को गोद मे उठा लिया और उसे समझाने लगे, "बेटे, माँ शाम को आ जायेगी, तू घर में ही रह।" "अच्छा, जल्दी घर आना" बच्चे ने कहा।

दुविधा में पड़ी कात्यायनी वासती के साथ स्टेशन पहुँची। घर

केवल पांच मिनट के फासले पर स्टेशन है। गाड़ी में महिलाओं के डिब्बे में बैठी कि उसकी आँखें भर आयीं। वासंती ने सान्त्वना दी। गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी तो कात्यायनी को महसूस हुआ कि गाडी उसे कहीं ले जा रही है। शाम को साढ़े छह बजे इसी गाड़ी से घर लौटना है यह उसे याद ही नहीं रहा। चामराजनगर-मैसूर के बीच छोटी रेल धीमी गति में चल रही थी। ज्येष्ठ की बारिश शुरू ही हुई थी। कपिला कुछ भरी थी। जब गाडी नदी के पुल पर आयी तो पूर्व दिशा की ओर बह रही कपिला के दोनों किनारों पर उसकी नजर पड़ी। आधे मील पर श्रीकण्ठेश्वर मंदिर अचल खड़ा था। उस मंदिर के बायीं ओर कतार में सीढ़ीदार स्नान-घाट हैं। इन्हीं स्नान-घाटों पर दो साल पहले, उसके सिंदूर का स्वामी उसके जीवन को शून्य बनाकर जा चुका था। तब भी ज्येष्ठ मास ही था। उस साल बारिश जल्दी शुरू हो गई थी, इसलिए नदी में आज की अपेक्षा अधिक प्रवाह था।

गाडी आगे बढ़ी। वासंती कात्यायनी से बात करने लगी। वे दोनों सहेलियाँ तो नहीं थीं, फिर भी थोड़ा परिचय अवश्य था। इस साल-भर के सह-यात्रा से उनका परिचय स्नेह में बदल गया। वासंती ने बात-चीत के दौरान इस बात की सावधानी बरती कि कात्यायनी के कोमल भावों को ठेस न पहुँचे। पूछा—"आप ऐच्छिक विषयों में क्या ले रही हैं ?"

"इतिहास, इंग्लिश और संस्कृत।"

"इन्हीं विषयों को क्यों चुना ?"

कात्यायनी चुप रही। उसका पति इन्हीं विषयों को सीखता था। घर में उनकी सारी किताबें पड़ी थीं। किताबों की सुविधा के कारण ही उसने ये विषय नहीं चुने थे। कुछ क्षण बाद बोली—"हम कोई भी विषय लें, उससे क्या होता है ? चार दिन आना है। पास हों या फेल, कोई फर्क नहीं पड़ता।"

चामुंडी पर्वत दूर से ही दिखाई दे रहा था। अचल खड़े, बादलों से बातें करते उस पर्वत के प्रति, कात्यायनी का एक अव्यक्त आकर्षण था। पति के साथ वहाँ दो बार हो आयी थी। उस ऊँचाई से चारों ओर के गाँव, तालाब आदि का अवलोकन किया था। वास्तव में पर्वत की ऊँचाई और

स्थैर्य ही उसके आकर्षक के कारण थे। लेकिन अब ज्येष्ठ के बादलों ने उसे घेर लिया था। उस मेघावरण में पर्वत का स्थैर्य स्पष्ट नही दिखाई दे रहा था। वह खिडकी से बाहर की ओर देख रही थी। पर्वत अपना स्थान बदल रहा था—पहले वह गाड़ी के दाहिनी ओर था, अब एकदम सामने आ गया। इतने में गाडी रुकी। यह दक्षिण मैसूर का स्टेशन है।

और पांच मिनट मे चामराजपुर स्टेशन आ गया। दोनो उतरी और कालेज की ओर चली। नजनगूड् के और भी अनेक विद्यार्थी उतरे। कालेज के 'लेडीज कामनरूम' मे प्रवेश करते ही वासंती ने पूछा—"तुम किसी से मिलना चाहती हो ?"

"डॉ० सदाशिवराव जी मे।"

"अच्छा, उनसे ? उन्हे सब जानते है। लेकिन बहुत ही कम लोगों ने उन्हे देखा है। सच कहूँ तो मैंने भी नही देखा !"

"लाइब्रेरी में उनका एक कमरा है।"

"आओ, लाइब्रेरी में ले चलती हूँ। तुम उनसे मिल लो। लेकिन शाम को पाँच बजे तक लेडीज रूम में अवश्य आ जाना। साढे पाँच बजे चामराजपुर स्टेशन पर गाड़ी आ जाती है।" डॉ० राव के कमरे के पास कात्यायनी को छोडकर वासंती लौट आयी।

चपरासी ने दरवाजा बताया। 'पलश डोर' धीरे से खोलकर कात्यायनी भीतर गई। डॉ० राव मेज के पास कुर्सी पर बैठे, गंभीरतापूर्वक कुछ लिखा रहे थे। उनके सामने बैठी थी सफेद साड़ी पहनी लगभग पच्चीस वर्ष की सांवली लडकी। वह शीघ्र लिपि में नोटबुक मे लिखती जा रही थी। बीच-बीच में डॉ० राव मेज पर फैले कागजों को देखते जाते थे। सारा कमरा पुस्तकों मे भरा पड़ा था। कात्यायनी करीब दस मिनट अंदर खड़ी रही, लेकिन किसी ने उसकी ओर ध्यान नही दिया। वह लौट जाना चाहती थी, लेकिन ऐसा करना उचित न समझ, वहीं खड़ी रही। पाँच मिनट बाद डॉ० राव एक कागज को गौर से देखने लगे तो युवती को कुछ राहत मिली। उसने सिर उठाया और दृष्टि कात्यायनी पर पड़ी। उसने डॉ० राव से अंग्रेजी में कहा—"देखिए, कोई आया है।"

डॉ० राव ने द्वार की ओर देखा। एकाध मिनट आगंतुक को पहचान

नहीं सके। चश्मा उतारकर उन्होंने कात्यायनी को देखा। संकोचवश कात्यायनी ने सिर झुका लिया। एक मिनट बाद कुर्सी से उठकर उन्होंने कहा, "आओ, आओ! आज चौबीस तारीख है न? आये कितनी देर हुई? बिना आवाज दिये गुमसुम खड़ी रही तो खड़ी ही रहोगी और मैं अपने काम में लगा रह जाऊँगा। यहाँ आओ।"

इतने में उस युवती ने कात्यायनी के लिए एक कुर्सी सरका दी। कात्यायनी बैठ गई। डॉ० राव ने परस्पर परिचय कराया—"ये है करुण-रत्ने। सिंहल की हैं। कैम्ब्रिज में एम०ए० किया है। अब यहाँ शोधछात्रा हैं।" और फिर कात्यायनी की ओर इशारा करके कहा—"मेरे गुरु श्रीनिवास श्रोत्रियजी हैं न, उनकी बहू हैं। हमारे कालेज में भरती होना चाहती हैं।"

दोनों ने एक-दूसरे को नमस्कार किया। डॉ० राव ने कात्यायनी से पूछा—"कहाँ है एप्लीकेशन फार्म? मुझे दे दो।" उसे देखकर कहने लगे, "इतिहास, संस्कृत, इंग्लिश—इन्हीं विषयों को नंजुंड श्रोत्रिय भी पढ़ रहा था। ऐसे अच्छे शिष्य को बचा रखने का भाग्य मुझे न मिला। मैं अब बी० ए० को नहीं पढ़ाता। इतिहास पढ़ाने वाला होन्नय्या, मेरा ही विद्यार्थी है। ऐच्छिक इंग्लिश मेरा भाई ही पढ़ाता है। शायद नरसिंह शास्त्री संस्कृत पढ़ाते हैं!" कहकर उन्होंने घंटी दबायी। चपरासी भीतर आया। उससे कहा—"कालेज जाकर राजाराव को बुला लाओ!" और फिर कात्यायनी की ओर मुड़कर पूछा—"तुम रोज सुबह घर से कितने बजे निकलोगी?"

"पौने नौ बजे।"

"पौने नौ? और घर पहुँचते-पहुँचते शाम के छह-सात बज जायेंगे। हमारा घर यहीं चामराजपुर में है। रोज डेढ़ बजे विश्राम के समय जल्दी घर जाकर भोजन कर लिया करो।"

"नहीं, नंजनगूडु से अन्य लड़कियाँ भी आती हैं। मैं भोजन साथ लाऊँगी।"

"वह भी लाना। लेकिन वह मुझे दे दिया करो और तुम घर पर ही भोजन करो" कहकर वे जोर से हँस पड़े, "संकोच न करो, यह भी तुम्हारा ही घर है न?"

डॉ० राव की हँसी का कारण रत्ने समझ न पायी। उन दोनों की बातों के कुछ अंग्रेजी वाक्य और संस्कृत शब्दों के अलावा वह कुछ न समझ सकी। डॉ० राव ने स्वयं हँसी का कारण समझाया। इतने में राज आ गया। कात्यायनी को उसका परिचय देकर उन्होंने राज से पूछा—"नजुड श्रोत्रिय को तुम जानते थे न ?"

"जानता था। हम दोनों सहपाठी थे। वे सीनियर बी० ए० में इंग्लिश पढ़ते थे। द्वितीय वर्ष आनर्स में मैं उनके पेपर भी पढ़ता था।"

"ठीक है।" कात्यायनी से कहा—"अपना एप्लीकेशन फार्म, फीस के पैसे आदि इसे दे दो। पढ़ाई कब प्रारंभ होगी इसकी सूचना पत्र द्वारा यह तुमको दे देगा। तुम्हें कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं। अब इसके साथ घर हो आओ।"

"नहीं। मैं···" कहकर संकोच में कुछ कहना चाहती थी कि डॉ० राव ने कहा—"तुम कभी हमारे घर नहीं आयी। कम से कम घर तो देखोगी या नहीं ? अब शाम को ही गाडी मिलेगी।"

कात्यायनी ने अपना फार्म और पैसे राज को दे दिये। उनके यहाँ से निकलने के पहले रत्ने ने राज से पूछा—"इस साल आप कौन-सा नाटक खेलेंगे ?"

"चंद्रगुप्त मौर्य। उसे ऐसा प्रस्तुत कराऊँगा कि सारे इतिहासकार झूठा कहकर गालियाँ देंगे।" और हँसता हुआ चला गया। कात्यायनी भी चली गयी। डॉ० राव की दृष्टि पुन. नोट्स में गड गयी।

कात्यायनी सकुचाती हुई चल रही थी। राज उसके बारे में अपने भाई से सुन चुका था। उसका सकोच दूर करने के उद्देश्य से राज ने पूछा—"आपने कौन-से विषय लिये है ?"

"हिस्ट्री, इंग्लिश, संस्कृत।"

"चयन बड़ा सुन्दर है। हिस्ट्री भैया का विषय है। शेष दो, साहित्य है। शायद आपको साहित्य से काफी लगाव है।"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। राज ने पुन: पूछा—"आपने कहानी, उपन्यास काफी पढ़े होंगे ?"

सकुचाती हुई बोली—"थोड़े !"

"थोड़ा-थोड़ा पढ़ने से ही बहुत हो जाता है। अब तो कालेज

न ? लाइब्रेरी से किताबें लेकर पढ़िए। कन्नड के समस्त उपन्यास पढ़ लिये हैं?"

"दो वर्ष पहले पढ़ती थी—अब नहीं।"

इतने में घर आ गया। श्रोत्रियजी के घर के बारे में नागलक्ष्मी जानती थी। राज ने परिचय दिया तो कात्यायनी के प्रति नागलक्ष्मी के मन में विशेष अनुकंपा जाग उठी। वह मनस्ताप अनुभव कर रही थी कि राज ने कात्यायनी से पूछा—"आप सुबह कितने बजे घर से निकली हैं?"

"पौने नौ बजे।"

"तो अब खाना खाइए। भाभी परोसेंगी।"

नागलक्ष्मी ने जो पहले खाने के लिए कुछ बनाना चाहती थी, राज की बात सुनने के बाद कात्यायनी को भोजन के लिए विवश किया। निरुपाय होकर कात्यायनी को भोजन करना ही पड़ा। राज ने कहा—"हर रोज दोपहर का खाना यहीं खाकर जाइये। घर तो पास ही है।"

दोनों भाइयों से एक ही तरह की बात सुनकर कात्यायनी को आश्चर्य हुआ। वह जान गयी कि उनकी सज्जनता ही इसका कारण है। नागलक्ष्मी-कात्यायनी दोनों भीतर बैठकर बड़ी देर तक बातें करती रहीं। दोनों परस्पर आत्मीय बन बैठी। अंत में कात्यायनी कालेज जाने के लिए निकली तो नागलक्ष्मी ने कहा—"दोपहर का भोजन रोज यहीं करना। जब कभी सुविधा हो, आकर थोड़ा-बहुत अवश्य खा-पी जाना। यह भी तुम्हारा ही घर है।"

राज कालेज को चला। उसने कहा—"चलिए, आपको कालेज तक पहुँचा दूँ। मुझे भी नाटक का 'रिहर्सल' कराने जाना है।"

डॉ० राव, राज और नागलक्ष्मी के हार्दिक स्नेह से कात्यायनी का मन हलका हो उठा। सुबह घर से निकलते समय मन में जो संकोच था, अब दूर हो चला। लौटते समय राज के साथ संकोच भी घट गया था। फिर भी उसने राज से किसी तरह की बात नहीं की। उसे 'लेडीज रूम' के पास छोड़कर राज लौटा, तो वह भीतर जाकर अकेली बैठी रही। वहाँ सात-आठ अपरिचित लड़कियों के अलावा कोई नहीं था। वासंती अभी नहीं आई थी। जल्दी घर पहुँचने के लिए उसका मन व्याकुल हो रहा था। वासंती के कमरे के द्वार तक दो-तीन बार आकर देखा। लेकिन

सामग्री जुटा ली थी। संगृहीत सामग्री को विस्तृत रूप में प्रस्तुत करने में वह असमर्थ थी। एक-दो महीने डॉ० राव के सान्निध्य में रहकर उसे लेखन-कार्य की पद्धति समझ में आ गयी। और लिखना उसके लिए वैसा कठिन नहीं रहा। इसलिए अपने कार्य की अपेक्षा, अपने मार्गदर्शक के ग्रंथ की रचना में निष्ठापूर्वक सहयोग देने में उसे गौरव और सौभाग्य जैसा लगने लगा।

प्रथम जिल्द का लेखन-कार्य प्रारंभ करने के बाद डॉ० राव दूसरा सब कुछ भूल गये। रात को आठ बजे घर लौटते। ग्रंथ के अतिरिक्त उन्हें और कुछ न सूझता। कोई कुछ पूछता तो अनसुनी कर जाते। किसी और बात की न आवश्यकता लगती, न संभावना।

"लेखन-कार्य कहाँ तक पहुँच गया भैया?" कभी-कभी राज प्रश्न कर बैठता।

"प्रथम खण्ड आधा हो गया है।"

"पूरा होने में और कितने दिन लगेंगे?"

"लगभग छह महीने में पहली प्रति तैयार हो जायेगी।"

बस, बातचीत यहीं रुक जाती। राज को न अधिक पूछने की उत्सुकता है और न इस संबंध का उसे कोई ज्ञान ही। उसका मन तो अपने किसी नाटक अथवा पाठ्येतर कार्यक्रमों में ही चक्कर काटा करता। घर आने पर भाभी से इधर-उधर की बातें करता, और पृथ्वी के साथ खेलता। बात किये बिना चुपचाप बैठना उसके स्वभाव के विपरीत था।

एक दिन डॉ० राव रात के आठ बजे घर आये। राज अभी नहीं आया था। पृथ्वी अपनी माँ से जिद करके रो रहा था। रोज शाम को राज उसे साइकिल पर बाहर ले जाता, लेकिन आज वह नाटक में व्यस्त रहने के कारण अब तक नहीं लौटा था। पृथ्वी पिता को देखते ही परेशान करने लगा कि उसे आज वे ही घुमाने ले जायें। वे 'यहाँ आओ' कहकर रोज की तरह आरामकुर्सी पर बैठ गये। बालक ने जिद न छोड़ी।' 'मुझे साइकिल पर बैठाकर ले चलो' कहते हुए वह उनकी कमीज पकड़कर रोने लगा। आज वे केवल थके ही नहीं थे, बालक को समझाने के लिए उपयुक्त शब्द भी नहीं ढूँढ़ पा रहे थे। समस्त भारत के सांस्कृतिक इतिहास के . . । में लगी उनकी बुद्धि बेटे को मनाने के लिए शब्द नहीं ढूँढ़ पा रही

थी; तो इसमें आश्चर्य भी क्या है। वे मौन रहना चाहते थे। अतः बालक से कहा—"हठ न करो बेटे, माँ के पास जाओ।"

इतना सुनना था कि नागलक्ष्मी भीतर से फुफकारती हुई आयी, मानो इसी प्रतीक्षा में थी, बोली—"माँ के पास जाओ, माँ के पास जाओ! माँ ने नही तो क्या आपने बच्चे की देखभाल की है? बच्चा कब से हठ कर रहा है, थोड़ा बाहर ले जाते तो क्या हो जाता? चाहते, तो मैं भी चलती!"

इस समय पत्नी का क्रोध ठंडा करने की शक्ति उनमें न थी। उन्हें तो चाहिए था एक-दो घण्टे का मौन फिर तीन घण्टे का अध्ययन या लेखन-कार्य। उन्होंने एक बार पत्नी की ओर देखा और चुप रह गये। यह देखकर नागलक्ष्मी को निराशा हुई। फिर पूछने लगी—"माँ-माँ कहकर हमेशा सिरदर्द पैदा करने के लिए क्या वह मुझ अकेली का बेटा है? वह आपकी भी तो सतान है?"

डॉ० राव अब भी कुछ नही बोले। क्रुद्ध व्यक्ति से बोलने पर क्रोधाग्नि भड़क उठती है—इस मानव-स्वभाव से परिचित थे, इसलिए वे आरामकुर्सी पर चुपचाप बैठे रहे। नागलक्ष्मी अब जरा ऊँचे स्वर में बोली, मानो अपने-आपसे कह रही हो—"शादी हुए इतने साल हो गये, न पत्नी की चिन्ता, न बच्चे की चिन्ता। अब ऐसे ही रहिए। मैं आँखें मूँद लूँ तब पता लगेगा कि नागु होती तो कितना अच्छा होता!"

डॉ० राव को यह अच्छा नही लगा। बोले—"ऐसा अशुभ क्यों बोलती हो? यहाँ आओ।" माँ की जोर की आवाज सुनकर बच्चा चुप हो गया था। नागलक्ष्मी ने पास जाकर कहा, "क्या है?"

"आओ, यहाँ बैठो" कहकर आरामकुर्सी के हत्थे की ओर सकेत किया।

"नहीं। रुलाने के बाद ही क्या खाने के लिए आमंत्रित करने की जरूरत पड़ती है?" वह दूर हट गई। बच्चा भी माँ के पास चला गया। डॉ० राव चुपचाप बैठे रहे।

पाँच मिनट बाद नागलक्ष्मी पति के पास आयी। कुर्सी के हत्थे पर बैठकर कहने लगी—"आप हर काम में अति कर बैठते हैं। हर रविवार को तेल-मालिश कराकर गरम पानी से स्नान क्यों नही किया करते?

जरा शीशे में स्वयं को देखिए तो सही ! दिन-ब-दिन किस तरह सूखते जा रहे हैं !"

"मगर मेरी पुस्तक का आकार बढ़ता जा रहा है न ?" डॉ० राव हँस पड़े ।

"पुस्तक, पुस्तक ! पत्नी नहीं चाहिए, बेटा नहीं चाहिए । स्वयं अपनी भी चिन्ता नहीं ! केवल पुस्तक का पागलपन ! मेरे मरने पर शायद आपको अक्ल आयेगी !"

"क्यों निरर्थक अशुभ बोले जा रही हो ?"

"तो क्या करूँ ? मेरी टीस को आप क्या जानें ! सप्ताह में किसी दिन एक घड़ी भी मुझसे बोलने का समय मिला आपको ? कभी घुमाने ले गये ? आपको मेरी जरूरत नहीं है तो मैं क्यों रहूँ ?" कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं । डॉ० राव का मन पिघला, "उठो, टहल आएँ" और खड़े हो गये । "साढ़े आठ बज गये हैं, अब तो राज आता ही होगा" वह यह कह ही रही थी कि फाटक के पास साइकिल की आवाज सुनाई पड़ी । वह कहने लगी, "कल उठते ही तेल मलकर स्नान करना न भूलें ।"

"कल नहीं । अभी बहुत लिखने को पड़ा है ।" इतने में राज भीतर आ पहुँचा । पृथ्वी चाचा की प्रतीक्षा में ही था । दौड़कर साइकिल के पैडल पर चढ गया ।

दूसरे दिन सुबह दस बजे लाइब्रेरी के कमरे में डॉ० राव रत्ने को लिखा रहे थे । पाँच मिनट लिखने के बाद रत्ने ने कहा, "सर, लगता है आज आप 'मूड' में नहीं हैं ।"

"क्यों ?"

"विषय-निरूपण में क्रमबद्धता नहीं लगती ।"

"कोई बात नहीं, आगे लिखो ।"

पाँच मिनट बाद रत्ने पुन. कहने लगी, "सर, सचमुच आप 'मूड' में नहीं हैं । बार-बार गलती हो रही है । एक बार 'पुराणों' के बदले 'कालिदास के नाटक' कह गये, और एक बार 'प्राचीन भारत की संस्कृति' के बदले 'बेबिलोन की नागरिकता' कह गये ।"

"अच्छा !"

"आपने जो लिखाया, क्या उसे एक बार पढ़कर सुनाऊँ ?"

"नहीं, आज रहने दो। तुम ठीक कहती हो।" डॉ० राव आरामकुर्सी से पीठ टिकाकर कहने लगे—"आज तुम अपना अध्ययन करो। आज मुझसे कुछ न होगा।"

रत्ने बाहर आयी और अध्ययन के लिए आवश्यक ग्रंथ देखने लगी। डॉ० राव आरामकुर्सी पर शांत बैठे रहे। नागलक्ष्मी की कल रात की बातों से उनका मन विचलित हो उठा है। 'मेरे मरने पर आपको अक्ल आयेगी'—नागलक्ष्मी का यह वाक्य अब भी उनके कानों में गूँज रहा है। सोचने लगे, कभी इतने कठोर वचन न बोलने वाली नागलक्ष्मी कल ऐसी तीखी बातें कैसे कह गयी ! इसका उत्तर भी मिला। उन्होंने भी कई बार सोचा कि जहाँ तक हो सके, समय निकालकर पत्नी से बातें करनी चाहिए। लेकिन उनकी समस्त संकल्प शक्ति को उस बृहद् ग्रंथ ने जकड़ रखा था ! समय ही कहाँ है ? ग्रंथ-निर्माण और उनका जीवन दोनों में कोई अन्तर ही नहीं रहा था। निद्रा, आहार सब-कुछ उनके इस प्रज्ञाजीवन के बाह्य रूप बन चुके थे। लगा, ग्रंथ को भुलाकर दिन में आधा घण्टा भी पत्नी के साथ बातचीत में बिताने में उतनी ही यातना का अनुभव होता जितनी कुछ खोकर नया जीवन प्रारंभ करने में।

आध घण्टे बाद रत्ने किताबें लेकर लौटी। डॉ० राव को देखकर बोली—"सर, आप शून्य-मुद्रा में बैठे हैं। आपको एकाध दिन के आराम की आवश्यकता है। आप बहुत परिश्रम कर रहे हैं। मानव मस्तिष्क यंत्र तो नहीं है ! आप घर जाइए।"

रत्ने की सान्त्वना डॉ० राव को अच्छी लगी। उन्होंने पूछा—"तुम क्या कर रही हो ?"

"कल रात कुछ लिखा था, उसे जाँचूँगी।"

"चलो, कहीं घूम आयें।"

क्षण-भर सोचकर वह बोली—"यह भारत है !"

"तो क्या हुआ ? चलें, शायद वृंदावन के लिए बारह बजे एक गाड़ी है। शाम को लौट आयेंगे। मैं भी काम करने के 'मूड' में नहीं हूँ।"

कमरा बंद करके दोनों निकल पड़े। कालेज के आँगन के बाहर आयसराय मार्ग से ताँगा लेकर स्टेशन पहुँचे। शटल ट्रेन में द्वितीय श्रेणी

नहीं थी। तृतीय श्रेणी मे ही बैठ गये। गाड़ी चली तो रत्ने बोली, "वृंदावन देखने की इच्छा थी। लेकिन कभी छुट्टी ही नहीं मिली। आपका मूड बिगडा और आज देखने का अवसर मिल गया।"

गाड़ी धीमी चल रही थी। कन्नंबाडी स्टेशन पहुँचते-पहुँचते मध्याह्न का पौन बज गया। दोनों उतरे और होटल में गये। नाश्ता किया। कुछ समय टहलने के बाद फलवाले उद्यान के उस पार वृक्षों की छाया में वे बैठ गये। डॉ० राव का मन अध्ययन-जगत् से बाहर घूम रहा था। हर रोज पुस्तकालय में ऊब जाने पर अपने कमरे में बैठनेवाले, आज खुले मैदान मे शीतल छाया मे बैठे है। पास ही बहते हुए पानी की आवाज तंबूरे के तारो से झंकृत ध्वनि-सी सुनाई दे रही है। पक्षी काफी ऊँचाई पर आकाश में उड़ रहे हैं। मौन भंग करते हुए रत्ने से पूछा—"अब एक वर्ष मे तुम्हारा शोध-कार्य समाप्त हो जायेगा और 'डॉक्टरेट' भी मिल जायेगी। तत्पश्चात सिंहल लौटकर क्या करोगी?"

"यह मेरे लिए समस्या है।"

"शोध-कार्य आगे बढ़ाओ। इसका यही एक उपाय है। एक विषय का शोध-कार्य दूसरे विषय या उसी विषय के लक्ष्य-बिन्दु की ओर ले जाता है। वह निरंतर बढता है। यह शोध-शक्ति और अभिरुचि पर निर्भर है।"

"मैं नही समझती कि वैयक्तिक रूप से अकेली शोध-कार्य कर सकूँगी!"

"ऐसा कभी नही सोचना चाहिए। अब भी तुम 'डॉक्टरेट' के लिए जो कार्य कर रही हो, उससे तुम्हें शोध-कार्य की प्रेरणा मिलेगी। वास्तविक कार्य तो अब होना है।" फिर कुछ सोचते हुए से बोले—"या उपाधि पाने के पश्चात् स्वदेश लौटकर शादी करके सुखमय जीवन बिता सको तो भी अच्छा है। ऐसी ही प्रवृत्ति का पति मिल जाए, तो दोनों मिलकर शोध-कार्य को आगे बढाओ।"

रत्ने कुछ देर रुकी, फिर धीरे से नि.श्वास छोड़ा। डॉ० राव ने सिर उठाकर रत्ने को देखकर पूछा—"क्यों, शादी में तुम्हारा विश्वास नही है क्या?"

"है!"

पहचानकर उसे उपलब्ध करने का प्रयास कब करेगी? यहाँ आने के पश्चात् आपने ही मुझे आत्मदर्शन कराया।"

रत्ने से प्रशंसा के शब्द सुनकर डॉ० राव पुलकित हो उठे। आज तक किसी ने इतनी सहजता और मुक्तकंठ से उनकी ऐसी प्रशंसा नहीं की थी। उनके ग्रंथ को पढ़कर विद्वानों ने प्रशंसा-पत्र लिखे थे, पत्रिकाओं में विद्वत्तापूर्ण समालोचनाएँ निकली थीं। लेकिन शिष्य-भाव से किसी ने सामने ऐसी प्रशंसा नहीं की। कैम्ब्रिज में पढ़ी एक युवती से यह सब सुनकर डॉ० राव ने अद्भुत आनन्द का अनुभव किया लेकिन एक अव्यक्त लघु यातना से वे बोले— "रत्ने, विद्वानों और संशोधकों का मार्ग भूलों के जीवन के समान है। सदा सब कुछ भुलाकर अध्ययन में डूबे रहना पड़ता है। क्या स्त्री-सहज विवाहित जीवन की तुम पूर्णतः उपेक्षा कर सकती हो?"

प्रश्न सुनकर वह अवाक् रह गई। चमकदार आँखें झुक गईं। तत्काल अपने को सँभालकर, कुछ स्मरण करते हुए उत्तर दिया—"मेरे विवाह का प्रश्न भी उठा था। मेरा भाई, अपने व्यापार के अलावा एक पार्टनर के साथ नारियलों का भी निर्यात करता है। दोनों समवयस्क हैं। भाई का सहपाठी होने के कारण वह घर आया था। उस समय मैं बीस वर्ष की थी और बी० ए० में पढ़ रही थी। वह बी० ए० करके व्यापार में लग गया था। एक दिन उस युवक ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया। मैंने कुछ नहीं कहा। घरवालों ने सोचा, लड़की शायद शरमा रही है। भाई को इस संबंध में बड़ी दिलचस्पी थी। उसका वह मित्र तो मेरे लिए पागल ही हो गया था। मैंने फौरन कोलम्बो जाकर एम० ए० करने की इच्छा प्रकट कर दी। विवाह के बदले मुझे और आगे पढ़ाना माता-पिता को पसंद न था। लेकिन मैंने जिद की। उन्हें मानना ही पड़ा। वह युवक यह सोचकर इंतजार करता रहा कि एम० ए० के बाद विवाह के लिए तैयार हो जाऊँगी। कोलम्बो से लौटने पर मुझे अपना आगे का मार्ग दीख पड़ने लगा। मेरा अध्ययनशील जीवन और व्यापारी पति का जीवन कभी एक पथ पर चल ही नहीं सकते—यह स्पष्टतः समझकर मैंने उसे लिख दिया कि वे मेरी प्रतीक्षा न करें। उसने पत्रोत्तर दिया, "तुम्हारे अध्ययन में बाधा नहीं पड़ेगी।

"कुछ नही !"

"सकोच न करो !"

"कुछ नही" कहकर वह पुन: चुप हो गयी। लेकिन कुछ क्षण बाद प्रश्न किया—"आपका व्यक्तिगत जीवन···?"

"मेरे पास वैयक्तिक नाम की कोई चीज नही है। आखिर क्या जानना चाहती हो ?"

"आप सदा अध्ययन-रत रहते हैं। आपकी पत्नी पढी-लिखी नहीं है। आप दोनों के बीच प्रेम-भाव रहता है या नही ?"

"यह क्यो पूछ रही हो ?" आवाज मे क्रोध नही है, यह जानकर रत्ने ने कहा—"यो ही ! अपने भाई के मित्र के प्रस्ताव को ठुकराना उचित था या नही, इसे आपके उदाहरण से जानना चाहती हूँ।"

डॉ० राव हँस दिये। फिर कहने लगे—"इस विषय में शिष्या ही गुरु से अधिक विवेकी है।"

"वह कैसे ?"

अनजाने ही डॉ० राव अपनी विवाह-सबधी बातें बताने लगे। रत्ने ध्यान से सुनने लगी।

"मैं माता-पिता के स्वर्गवास के पश्चात् मामा के यहाँ रहने लगा। तब बारह साल का था। पढ़ने मे शाला मे प्रथम स्थान पाता रहा और लोअर सेकेंडरी परीक्षा मे प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ। मैसूर के तातय्या अनाथालय मे आश्रय मिला। मरिमल्लप्प हाईस्कूल मे भर्ती हो गया। हाईस्कूल मे तातय्या स्वय पढ़ाते थे। वे अपने पुस्तकालय से मैकॉले, जॉनसन आदि इतिहासकारो के लेख पढने देते। मैं बी० ए० करने के पूर्व ही अपने विषय का महत्त्व समझ गया था। एम० ए० मे मुख्य विषय के रूप मे इतिहास ही लिया। अच्छे अको मे उत्तीर्ण होने पर उसी कॉलिज मे लेक्चरार की नौकरी मिल गयी।

" नागलक्ष्मी, मेरे मामा की इकलौती बेटी है। उस समय वह तेरह वर्ष की थी और मैं तेईस का। मामा ने अपनी लड़की नागु का विवाह मुझसे करने का प्रस्ताव रखा। मैं इनकार न कर सका। लड़की ऊँची, हृष्ट-पुष्ट एव सुन्दर थी। लम्बे बाल और देखने में सुलक्षणा। गृह-कार्यों मे भी कुशल। मैंने अपने विवाह अथवा होनेवाली पत्नी के बारे

मे कभी सोचा भी नही था। मेरी धारणा केवल इतनी थी कि अध्ययन पूर्ण हो जाने के बाद विवाह करना जीवन का एक कर्त्तव्य है। विद्यार्थी-जीवन मे मेरी कक्षाओं में छात्राएँ अधिक नहीं थी। मैंने अपनी कक्षा की छात्राओं से कभी बात नही की थी। अपने प्राध्यापकों द्वारा बताये ग्रथों को पढता, नोट लिखता और विषय का मनन करता रहता था।

" मामा के प्रस्ताव के बाद जब पहली बार मैं गाँव गया तो नागलक्ष्मी अपने-आपको छिपाती रही। लेकिन मैं भी उसी घर मे पला था, अत: मुझे घर के हर कोने मे जाने की आजादी थी। वह मोगरे के फूलों से गुँथी वेणी की सुगध चारो ओर फैलती रहती और काम करते समय काँच की चूडियों की झकार मन को झकृत कर देती। ऐसी स्थिति में मैं मामा के प्रस्ताव को अस्वीकार न कर सका।

" विवाह के बाद मैं मैसूर मे ही बस गया। नागलक्ष्मी राज के साथ घर आयी। राज कुणिगल हाईस्कूल मे दो साल पढ़ चुका था। विवाहित जीवन के प्रारभिक दिनो मे मैने अपनी पत्नी को कभी दूर नही रहने दिया। मेरे प्राध्यापक मुझे 'डॉक्टरेट' के लिए प्रेरित करते रहे। विवाह के पूर्व से ही मै काफी अध्ययन करता रहा हूँ। दो वर्ष बाद प्राध्यापक सेवा-निवृत्त होने वाले थे। अत. इससे पहले शोध-प्रबध पूर्ण कर लेना चाहिए था। घर के सारे काम-काज राज ही देखता था। मुझे कभी आर्थिक समस्याओं में भी नही उलझना पड़ा, क्योकि पत्नी बडी मितव्ययिता मे कुशलतापूर्वक घर-खर्च चलाती थी। मुझे और चाहिए भी क्या था। मै शोध-कार्य में लग गया और दो वर्ष मे डॉक्टर सदाशिव-

थी। घर-गृहस्थी राज और नागलक्ष्मी के जिम्मे थी; और अब तो मैं पूर्णतः इतिहास-शोध में लग गया हूँ।"

अपने विवाहित जीवन का विवरण देते हुए डॉ० राव ने आगे कहा—"विवाह के बाद दो-चार दिन कोई भी स्त्री-पुरुष अपनी पत्नी या पति के प्रति आकर्षित रहता ही है। वैसे मुझ-जैसों को तो आजीवन एकाकी रहना चाहिए।"

अपने गुरु की बातें अत्यंत ध्यानपूर्वक और सहानुभूति से सुनने के बाद रत्ने बोली—"यह अनिवार्य नहीं है। कैम्ब्रिज में मैंने देखा है, मेरे प्रोफेसर की पत्नी अपने पति के बौद्धिक जीवन में काफी सहयोग देती थी। मैं अब जो कार्य आपके लिए कर रही हूँ, ये सब वह अपने पति के लिए करती थी।" वाक्य के उत्तरार्द्ध को यद्यपि वह बिना किसी पूर्व विचार के कह गई थी, किन्तु बाद में उसने संकोचवश सिर झुका लिया। परंतु डॉ० राव ने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

डॉ० राव ने कहा—"यह मुझ अकेले का प्रश्न नहीं है। यह भारत के लिए संधिकाल है। माता-पिता द्वारा निश्चित विवाह पूर्वकाल में उपयुक्त था। समाज के परम्परागत धंधों में उसी समाज की कन्या पति के कार्य में हाथ बँटा सकती थी। अब धंधा, कुल पर आधारित नहीं रहा। अब तो व्यक्ति की अभिरुचि उसकी वृत्ति को निर्धारित करती है। लेकिन इच्छानुसार विवाह करने का अवसर अब भी समाज दे नहीं पा रहा है। इस संधिकाल में विषम विवाह होना असंभव नहीं है। साथ ही विवाह संबंधी स्वतंत्र विचार की प्रवृत्ति अभी जागी ही नहीं है।"

रत्ने ने पूछा—"प्राचीन भारत में विवाह की कल्पना वर्तमान से भिन्न थी न?"

"प्राचीन भारत में यह धारणा थी कि विवाह गृहस्थ धर्म के लिए, वंशोद्धार के लिए है। प्रथम दृष्टिकोण अब भी थोड़ा बचा है लेकिन द्वितीय अंश प्रमुख नहीं रहा। वंशोद्धार की कल्पना अपना महत्त्व खो रही है। मेरा भी एक पुत्र है। मैं नहीं जानता कि वह मेरे नाम को रोशन करेगा या नहीं। लेकिन मेरी यह अदम्य इच्छा है कि यह ग्रंथ मेरा शिशु बनकर, मेरी इच्छा-शक्ति, बुद्धि-शक्ति एवं समस्त जीवन के रक्त-मांस के साथ चिरजीवी बन जाय। मेरी पत्नी, जिसने शास्त्रोक्त रीति से मेरा

हाथ पकड़ा है, मेरे ग्रंथ की रक्षा नहीं कर सकती। तुम इस कार्य मे मेरी मदद कर रही हो !"

अंतिम वाक्य सुनकर रत्ने का चेहरा शर्म से लाल हो उठा। बिना किसी विशिष्ट संकेतार्थ के उक्त वाक्य कहने मे डॉ० राव को कोई संकोच नही हुआ। उन्होने पुनः कहा —"इस विषय मे तुम मुझसे अधिक आगे बढ़ गयी हो। मुझे विश्वास है, तुम अपना जीवन-साथी अपने योग्य ही चुनोगी। यह सत्य है कि स्त्री या पुरुष के लिए गृहस्थ-जीवन अनिवार्य है। इसके बिना जीवन नीरस रहता है।"

रत्ने अनजाने ही 'सच है' कहने जा रही थी कि चुप रह गयी।

शाम के छह बज चुके थे। निकलने से भी साढे छह की गाडी नहीं मिल सकती। अब तो साढे आठ की गाड़ी मिलती। अत. आधा घण्टा वही बैठे रहे। दोनों अपने-अपने विचार-लोक में विचर रहे थे। अपने जीवन के बारे मे डॉ० राव ने आज पहली बार स्पष्ट बात कही थी। रत्ने को अपने जीवन-साथी का रूप दिखाई नही दे रहा था, किन्तु आशा-पूर्ण मन से वह उसकी कल्पना कर रही थी। करीब सात बजे तक सब ओर अंधकार छा गया। वह विशिष्ट दिन नही था, इसलिए वृंदावन मे बिजली की रोशनी नहीं थी। विचारों की दुनिया से मुक्त होकर डॉ० राव ने कहा—"अँधेरा हो गया, हमे पता ही नही चला। उठो, अब चलेगे।"

रत्ने उठी। फल के पेडों को पार कर, नदी के बीचवाले पुल से होते हुए, होटल जाना था फिर वहाँ से स्टेशन। डॉ० राव चश्मा लगाये थे फिर भी अँधेरे मे स्पष्ट दिखाई न देने के कारण सँभल-सँभलकर पग रखते हुए चल रहे थे। यह देखकर रत्ने ने अपना हाथ बढाकर कहा, "आपको चलने मे कष्ट हो रहा है। प्रकाश आने तक आपका हाथ पकड़े चलती हूँ।"

डॉ० राव उसका हाथ पकड़कर जल्दी-जल्दी चलने लगे। दस कदम चलने के पश्चात् हँसते हुए कहने लगे—"शोध-कार्य मे मैं तुम्हारा मार्ग-दर्शक हूँ, लेकिन इस अंधकार मे तुम मेरी मार्गदर्शक बन गयी हो।"

रत्ने का मन दूर भविष्य में खोया हुआ था। फिर भी उनकी यह

बात उसने सुन ली थी। वह उनके हाथ को और मजबूती से पकड़कर जल्दी-जल्दी चलने लगी।

८

कात्यायनी का कालेज-अध्ययन सिलसिले से चल रहा था। वह सुबह ठीक पौने नौ बजे खाना खाकर, और दोपहर के नाश्ते का डिब्बा तथा किताबें लेकर वासंती के साथ स्टेशन पहुँच जाती। दोनों नौ बजे की गाड़ी के लेडीज डिब्बे मे बैठतीं और चामराजपुर स्टेशन पर उतर जातीं। उस डिब्बे में सात-आठ और लड़कियाँ भी पढ़ने के लिए जाती थीं। तीस-चालीस लडके दूसरे डिब्बे मे बैठते थे। गाड़ी में एक घंटा बीतता था। लड़कियाँ हँसी-मजाक करते हुए समय काटतीं। यदि कोई लडकी अपने सहपाठी लडके से बात करती तो कानाफूसी शुरू हो जाती। किसी का विवाह निश्चित हुआ कि अभिनंदन के बहाने मजाक शुरू। इस सब में कात्यायनी भी रस लेती। लेकिन उसका कोई मजाक नहीं उड़ाता था। उसका वैधव्य भी इसका कारण हो सकता है; अथवा माँ होने के कारण चेहरे पर उभरा प्रौढ़ गांभीर्य।

कालेज के नाटक संघ की ओर से महीने मे एक बार नाटक प्रस्तुत किया जाता था। नाटक शाम को छह बजे शुरू होता था। कात्यायनी देखने के लिए नहीं रुकती थी, लेकिन कई लड़कियाँ नाटक देखकर रात को नौ बजे की गाड़ी से लौटती थीं। कात्यायनी के मन में भी नाटक देखने की इच्छा होने लगी। लेकिन इतनी देर से घर लौटना वह ठीक नहीं समझती थी। साथ ही कालेज के बाद मन चीनी को देखने के लिए बेचैन रहता था। वासंती ने कई बार आग्रह किया पर वह नहीं रुकी।

पीरियड न होने पर वह डॉ० राव के घर चली जाती। कालेज के लेडीज कामनरूम मे समय बर्बाद करने की अपेक्षा नागलक्ष्मी के घर हो आना वह उचित समझती थी। सुहाग टीका न लगाने वाली गंभीर

"यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर नही हुआ ?"

वह शरत् के स्त्री-पात्रो को बहुत पसद करती है। 'देवदास' की पार्वती, 'शेप प्रश्न' की कमला, 'श्रीकात' की राजलक्ष्मी ने उसके मन को काफी प्रभावित किया है। इन पात्रो को क्यो पसद करती है, इसका विश्लेपण वह नही कर पाती। 'उनके स्त्री-पात्र मुझे भाते है' उसने सिर्फ इतना ही कहा।

"शरत् के स्त्री-पात्र अत्यत प्रेमल हैं। इस स्त्री-सुलभ गुण में उनका व्यक्तित्व भी डूब जाता है। क्या इसीलिए आप उन्हे पसद करती है ?"

इस प्रश्न का उत्तर देने में उसे सकोच हुआ। उसका चेहरा फीका पड़ गया। इसे छिपाने के लिए उसने मुंह दूसरी ओर फेर लिया। क्षण-भर में उसके चेहरे पर पसीने की बूंदें उभर आयी। फिर वह उठकर भीतर नागलक्ष्मी के पास चली गयी।

इतने दिनो से कात्यायनी यहाँ आ-जा रही है लेकिन उसने डॉ० सदाशिवराव को घर मे कभी नही देखा ! वह जानती थी कि वे हमेशा पुस्तकालय मे रहते है। उसने बारीकी से अनुभव किया कि नागलक्ष्मी किस तरह एकाकी जीवन बिताती होगी। लेकिन इस बारे मे उन्होंने कभी स्पष्ट बात नही की थी। एक दिन कात्यायनी ने कहा—"आप घर में अकेली ऊब जाती होगी। अपने देवर की शादी कर दीजिए। आपका एकाकीपन दूर हो जायेगा।"

"पढते-पढ़ते मनुष्य की अक्ल मारी जाती है। इग्लैंड जाने से पहले कहता था—'वहाँ से लौटकर शादी करूँगा, तुम्हारी पसद की।' अब कहता है – 'शादी ही नही करनी।' उसका प्रश्न है, 'क्या शादी के बिना आदमी नहीं जी सकता' ?"

कात्यायनी ने सोचा, जो सदा नाटक के प्रति अभिरुचि रखता है, कालेज के विद्यार्थियो का प्रिय अध्यापक बन गया है, अच्छी नौकरी पर है, उसका मनोभाव ऐसा क्यों ? फिर सोचती कि इसके बारे में मैं क्यों सोचूं !

एक दिन राज ने उससे पूछा — "इतने दिन हो गये, आप एक बार भी हमारा नाटक देखने नही आयी ?"

"देखने की इच्छा तो है, लेकिन समय पर घर पहुंचना पड़ता है।

"नंजनगूडु की कई लड़कियाँ नाटक देखने के लिए रुकती है। आपकी सहेली वासंती ने गत वर्ष एक नाटक मे भाग भी लिया था।"

नागलक्ष्मी भी वही खडी थी। उसने कहा, "मैंने भी सुना था। नाटक के दिन किसी ने कहा था कि वह लड़की नजनगूडु से आती है। कौन-सा पार्ट था उसका ?"

"कैलास के एक नाटक मे जीवू का पार्ट था।"

नागलक्ष्मी कात्यायनी से कहने लगी—"हर बार नाटक देखने के लिए राज मुझे भी ले जाता है। आप भी आइए। राज बहुत ही सुन्दर ढग से नाटक प्रस्तुत करता है।"

"घर में पूछूंगी" कात्यायनी ने उत्तर दिया।

यद्यपि अन्य लड़कियाँ महीने मे एक बार नाटक देखकर देर से घर लौटती थी, किन्तु कात्यायनी सदा समय पर घर पहुँचती। उसके सास-ससुर यह जानकर सतुष्ट थे कि उनकी बहू अपनी स्थिति की गभीरता को जानती है। घर आते ही कपडे बदलती और हाथ-पैर धोकर सास के कामकाज मे हाथ बँटाने लगती तो भागीरतम्मा कहती—"अरे, कालेज से थककर आयी है, मैं बनाये लेती हूँ।" कभी-कभी श्रोत्रियजी उसे खेती, आय-व्यय, किसानो से अपना लेन-देन आदि के बारे मे समझाते। "बेटी, मैं बूढा हो चला हूँ, इन सबका पता तुझे होना चाहिए" कहकर जमीन सर्वे नम्बर, विस्तार, लगान आदि की जानकारी देते। कुछ दिनो से तो जायदाद-सबधी सब कागज-पत्र उसको ही सुपुर्द कर दिये। अब इन सबको व्यवस्थित रूप से पेटी मे रखना, ससुर के माँगने पर आवश्यक पत्र ढूँढ़कर देना—यह सारी जिम्मेदारी उसी की हो गयी थी। पत्र माँगने का कारण, उससे सबधित विषयो की जानकारी देते हुए कहते—"तू पढी-लिखी है, इनके बारे मे तुझे पूरी जानकारी होनी चाहिए। अगर कही मैंने बीच ही मे आँखें मूंद ली तो चीनी को कौन बतायेगा ?"

वह कहती, "ऐसा मत कहिए, भगवान् करे वह समय कभी न आये।"

एक दिन वासती ने उनके घर आकर भागीरतम्मा से कहा
एक अच्छा नाटक है, अग्रेजी मे। नाम है 'मैकबेथ'। ...
हमें उसे पढ़ना है। आपकी बहू आ नही रही है। आप ही क...

भागीरतम्मा की इच्छा नहीं थी, लेकिन श्रोत्रियजी ने कहा—"अगर परीक्षा में सहायक है तो तू भी देख आ बेटी। नाटक दस बार पढ़ने की अपेक्षा एक बार देखने से याद हो जाता है; क्योंकि वे प्रत्यक्ष दृश्य मस्तिष्क में बैठ जाते हैं।"

उस दिन पहली बार कात्यायनी ने नाटक देखा। राज ने ही 'मैकबेथ' का पार्ट किया था। नाटक समाप्त होने के पश्चात् रंगमंच पर आकर कालेज के प्रिंसिपल ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा—"मैंने कभी यह न सोचा था कि शेक्सपियर के पात्र को कोई भारतीय इतने उत्तम ढंग से प्रस्तुत कर सकेगा!"

"नाटक कैसा रहा?" अगले दिन राज ने कात्यायनी से पूछा।

"आपका पार्ट सचमुच अद्भुत था। आपने कक्षा में भी कभी 'मैकबेथ' इतने कलात्मक ढंग से प्रस्तुत नहीं किया था।"

"खैर, आपने कल एक नाटक तो देख लिया। आप-जैसों से प्रोत्साहन न मिले तो बड़ी मेहनत से प्रस्तुत करने वाले हम लोगों को तृप्ति कैसे मिलेगी?"

राज के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कात्यायनी पुलकित, उल्लसित हो उठी, लेकिन संकोचवश मौन रही। लेकिन नागलक्ष्मी ने कहा, "गाना नहीं, नाच नहीं, भाषा भी समझ में नहीं आती। अंग्रेजी नाटक भी कोई नाटक है? मैं तो ऊब गयी थी।"

उसकी बात सुनकर राज हँस पड़ा और कात्यायनी को भी हँसी आयी।

कात्यायनी का कालेज का प्रथम वर्ष पूर्ण हुआ। नौ माह कैसे बीते, पता ही न लगा। जूनियर परीक्षा के पेपर अच्छे हुए थे। वैसे रोज की रेल-यात्रा से ऊब गयी थी। सोचती थी, गर्मी की छुट्टियों में इससे मुक्ति मिलेगी। लेकिन छुट्टी क्या मिली, वह पहले से अधिक ऊब गयी। कालेज के दिनों में वह जल्दी उठकर स्नान करती। सबके कपड़े धोती। बालक के उठने से पहले दो घंटे अध्ययन करती। पति की पुस्तकों के अलावा पुस्तकालय से किताबें लाकर पढ़ती। पाठ में मन न लगने पर, कालेज और लौटते समय कोई उपन्यास उठा लेती, और विश्राम के समय

लेडीज कामनरूम मे बैठकर अधूरे उपन्यास को पूरा पढ़ डालने का यत्न करती अथवा नागलक्ष्मी के पास चली जाती।

छुट्टियाँ होने के एक सप्ताह बाद वासती श्रोत्रियजी के घर आयी। उसके चेहरे पर नयी आभा झलक रही थी, जिसे वह यत्न करने पर भी छिपा न सकी। वह फाइनल बी० ए० की परीक्षा दे चुकी थी। कात्यायनी ने पूछा—"आज बड़ी खुश नजर आ रही हो, क्या बात है ?"

"नही तो !"

"छिपा क्यों रही हो ? खुशी तो चेहरे से साफ-साफ झलक रही है। क्या प्रथम श्रेणी मे आने की उम्मीद है ?"

"ना बाबा ! वे दें तो भी मुझे नही चाहिए।"

"आखिर बात क्या है ?"

खुश खबर देने के लिए ही वह आयी थी। शरमाते हुए उसने कहा, "अब बीस दिन बाद तुम्हें हमारे घर भोजन के लिए आना होगा।"

"सच ! बधाई है। वर कहाँ का है ?"

"मैसूर का। हमारे कालेज से ही इस वर्ष एम० ए० की परीक्षा दी है।"

"अरे, मुझे तो कुछ पता ही नही लगा। यह प्यार छिप-छिपकर ही चला ! खैर, कोई बात नही। बधाई है, बधाई।"

वासती का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। अपनी ही जाति के लड़के से वह प्यार करती रही थी। दूर का सबंधी था। वे रोज कालेज मे मिलते थे। वासती विश्राम के समय लेडीज रूम में नही जाती थी। अपने प्रेमी के साथ कुछ ही दूर तालाब के किनारे घूमने निकल जाती थी। इस सबध में उसने कभी कात्यायनी से भी चर्चा नही की। हो सकता है कालेज की अन्य लड़कियाँ जानती हों, लेकिन सदा गभीर रहने वाली कात्यायनी से इस बारे मे किसी ने कुछ नही कहा था।

वासती के चले जाने पर भी इस बारे में सोचकर कात्यायनी प्रसन्न होती रही। भगवान् से प्रार्थना की कि वासती के पति को लम्बी उम्र मिले, उसका जीवन सुखमय हो, वह खुशी से अपना भविष्य बिताये। लेकिन अपना भविष्य क्या है ? कालेज की पढ़ाई एक साल तक और चलेगी। फिर वही घर में रहना होगा। अपने पति के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने की

इच्छा से ही वह कालेज जा रही है। लेकिन वह इच्छा अब कुछ अनाकर्षक प्रतीत होने लगी है। अगर वह बी० ए० कर लेती है तो स्वर्गीय पति को क्या मिलेगा? और जहाँ तक घर-बार के व्यवहार का प्रश्न है, बी० ए० करने से उस कार्य में कौन-सी विशिष्ट सुविधा मिलने वाली है? फिर भी अगले साल उसे कालेज जाना है।

कात्यायनी को नागलक्ष्मी की याद आती। नागलक्ष्मी के भोले स्वभाव एवं विश्वासपूर्ण मन का स्मरण करने पर हृदय में स्नेह उमड़ आता। साल-भर में एक दिन भी कात्यायनी ने डॉ० राव को नहीं देखा था। सुनने में आया कि आजकल उनके सिर पर लेखन-कार्य का ही भूत सवार है। हमेशा लिखने में ही व्यस्त रहते हैं। इससे नागलक्ष्मी को कितना दु:ख होता होगा? फिर भी वे सुहागिन हैं। कम-से-कम उन्हें इस बात का संतोष तो है कि एक फर्लाङ्ग दूर पुस्तकालय में बैठकर पति लिख रहे हैं। वे रोज वेणी बाँधती है, माथे में सिंदूर और भौंहों के बीच चंद्राकार टीका लगाती है। क्या यह कम सौभाग्य है।

नागलक्ष्मी की याद के साथ ही कात्यायनी को राजाराव का स्मरण हो आता। वे कितने प्रभावशाली हैं। शेक्सपियर को इतने उत्तम ढंग से कौन पढ़ा सकेगा? सारा कालेज ही उनके अध्यापन पर मुग्ध है। नाटक सिखाना, उसे प्रस्तुत करना और स्वयं अभिनय करना—कितनी कुशलता है! कालेज की अनेक लड़कियाँ उनके प्रति आकर्षित हुई हैं। लेडीज रूम में लड़कियाँ निर्लज्जतापूर्वक परस्पर पूछतीं, "आज कैसा था मैकवेथ?"

"ब्यूटीफुल!"

"ऐसी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए? तू लेडी मैकवेथ थोड़े ही है!"

"अगर मैं लेडी मैकबेथ होती तो क्या तू मुझसे ईर्ष्या न करती?"

"सिली! डोंट वरी, वी शैल शेयर।"

कात्यायनी सोचती, 'कई लड़कियाँ अध्यापकों के बारे में बातें करते समय गांभीर्य नहीं दिखातीं। वे शायद इसी तरह समय गँवाने के उद्देश्य से कालेज आती होंगी।' फिर भी राजाराव प्रतिभाशाली है, स्नेह का पात्र है, विनोदी भी है। मुझ जैसी गूँगी को भी कितनी जल्दी बातें करना सिखा दिया! अपने नाम पर मुझे किताबें दिलाता है। इतना सब कुछ

होते हुए भी वह शादी करना नही चाहता ! न जाने क्या कारण है ! उसकी पत्नी बनकर कोई भी लडकी सुखमय जीवन विता सकेगी ।'

छुट्टी के दिनों में दोपहर को कात्यायनी घर के पिछवाड़े लगे फूल के पौधों एवं साग-सब्जी की क्यारियों मे पानी देती। आम के पेड़ से लिपटी मोगरे की लताओं को सींचते समय उसे पति की याद आ जाती। 'इसी लता को सींचते समय मुझे छेड़ते थे वे।' यह उसे प्रिय लगता था लेकिन किसी के देख लेने के भय से वह कृत्रिम नाराजी प्रकट करती। अब? सोचकर पीड़ा होती और दूसरे पौधो के पास चली जाती। पहले वह वालों मे फूल खोंसती थी और पति को उतने से सतोप नही होता था। आज भी फूलों का ढेर लगता है। अधिकाश फूल देवपूजा के लिए होते है। पूजा के पश्चात् आठ-दस फूलों को प्रसाद-रूप में उसकी सास लगा लेती है। वाकी शाम की पूजा के लिए और बचे हुए फूल माँगने पर अन्य स्त्रियों को दे दिये जाते।

कई वार मन में आता कि फूलो का उपयोग पूजा के लिए अधिक उचित है या स्त्रियों की वेणी के लिए। देवपूजा के लिए इनके उपयोग के विरुद्ध वह नही थी, लेकिन उनसे वेणी सजाने मे जो आनन्द मिलता है उसे कौन निर्लक्ष्य कर सकता है? एक दिन मोगरे की लता को सींचते-सींचते उसने देखा, जिस आम्र-वृक्ष से लता लिपटी है, वह भीतर से सूख चुका है।

उसने ससुर को वताया तो उन्होने नौकर के द्वारा उसे कटवा दिया। और लता को वाँस का आधार दिला दिया। कात्यायनी से कहा, "पास ही एक नया आम्र-वृक्ष लगवा देते हैं, रोज पानी सींचा करो।" पद्रह दिनों में नये अकुर आ गये। वाद मे श्रोत्रियजी ने लता को इस नये पौधे का आधार देने की सोची। कात्यायनी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नये पौधे का आधार पाकर पुष्पलता में अधिक फूल खिलने लगे हैं। उसे भय था कि पेड़ के साथ ही लता भी मुरझा जायेगी।

छुट्टियों में केवल डॉ० सदाशिवराव-जैसे लोग काम करते है। राज के लिए यह नीरस समय था। फरवरी से लेकर कालेज प्रारंभ होने के पद्रह दिन वाद तक उसका नाटक सघ भी सो जाता है। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं

के पश्चात् कुछ दिन उसे परीक्षा का कार्य करना पड़ता था। फिर लगभग दो महीनो के लिए उसे आलसी बनकर रहना पड़ता था। इस साल की छुट्टियो मे उसे एक अज्ञात उदासी ने घेर लिया। उसे जीतने के लिए वह कालेज की व्यायामशाला मे गया। लेकिन यह क्रम तीसरे दिन रुक गया! सोचा, अब शास्त्रीय संगीत सीखूं। अपने नाटक के लिए आवश्यक पार्श्वगायन स्वय गाने का विचार था। एक शिक्षक नियुक्त किया। संगीतज्ञ ने कहा—"कण्ठ को गाने के लायक बनाने के लिए कम-से-कम तीन वर्ष परिश्रम करना होगा। अच्छा हो आप वाद्य सगीत सीखें।" उन्होंने वायलिन सीखने की राय दी। उसी दिन एक पुरानी वायलिन खरीद लिया। और स-प-स सुर जमाना भी सीख लिया। रोज दो-तीन घण्टे परिश्रम करता, लेकिन पद्रह दिन बीत जाने पर भी जब आवश्यक सुर नही निकाल सका तो उत्साह घट गया। सगीत-अध्यापक आते रहे। उन्हें तो अपनी फीस चाहिए थी।

राज ने सोचा, इस बार ऐसी उदासी क्यों लग रही है। जितना सोचता, उतना विचार मे उलझता जाता। कोई कारण समझ मे नही आता। भाभी से बातें करने, पृथ्वी को घुमाने ले जाने की इच्छा भी न रही। कभी अकेला ही मुँह अँधेरे सात-आठ मील साइकिल पर निकल जाता। लेकिन गर्मी के इन दिनो मे आसपास के खेत सूखे दिखाई देते थे। इन्हें देखकर वह विचारों मे खो जाता।

राज सोचता, मानव कल्पित समाज, रीति-रिवाज, नीति-नियम आदि जीवन की मूलभूत शक्ति को कुठित कर देने वाली बीमारियाँ हैं। इन बुराइयों से ऊपर उठाकर, जीवन की मूल चेतना का दर्शन कराना ही राज के मतानुसार साहित्य का उद्देश्य है। उसने सोचा, पेड़-पौधों, हरियाली, तरु-लताओं की आड़ मे कूकती कोयलो की मधुर ध्वनि के अभाव मे सूखे खेत क्या मूल चेतना के प्रतीक हैं? नही, यह वस्तुस्थिति नही है। अत मे उसने उस ओर जाना ही छोड़ दिया।

उस साल चैत्र मास के पूर्वार्द्ध मे तीन-चार बार हल्की-हल्की बारिश हुई। धरती की तपन घट गयी और वह मुस्करा उठी। कालेज के पीछे के विशाल मैदान में हरी घास उग आयी। सारा शहर लहलहा उठा। एक सप्ताह बाद राज साईकिल पर सवार होकर जब उस ओर निकला तो

वर्षा से पंद्रह दिनों में ही हुए इस परिवर्तन को देखकर मुग्ध हो गया। किसान खेत जोत रहे थे। खेतों में हरियाली खेल रही थी। मार्ग के दोनों ओर पेड़ नई शोभा लिये हर्ष से झूम रहे थे। पक्षी गाते, चहचहाते स्वच्छंदतापूर्वक उड़ रहे थे। यह परिवर्तन देखकर उसे लगा कि यही प्रकृति का मूल रूप है, इसी में चेतना छिपी है। आगे वृक्ष सघन हो गये थे। कहीं-कहीं डालियाँ इतनी झुक गयी थीं कि साइकिल पर से उचककर उन्हें पकड़ा जा सकता था। वट-वृक्ष झूले-से झूल रहे थे।

और थोड़ा आगे दस-पंद्रह आदमी रास्ते के पेड़ों पर चढ़कर डालियाँ काट रहे थे। राज को बड़ा दुःख हुआ। साइकिल से उतरकर, पेड़ काटने वाले मजदूरों के अधिकारी से पूछा—"इतने अच्छे घने वृक्षों को क्यों कटवा रहे हैं?" बीड़ी का कश लेकर नथुनों से धुआँ छोड़ते हुए उसने उत्तर दिया, "राँड की सन्तान की तरह घने वृक्षों से क्या लाभ? आने-जाने वाली बसों की छतों से टकराते हैं। सरकारी सब-ओवरसियर ने काटने का आदेश दिया है।"

उत्तर सुनकर राज को अच्छा नहीं लगा। लेकिन वह क्या करता? अतः साइकिल घुमायी और घर की ओर लौट पड़ा। वह करीब पंद्रह मील दूर निकल आया था।

दिन-भर उसे अधिकारी का वह उत्तर कुरेदता रहा। जहाँ कहीं आदमी की गतिविधियाँ अधिक होती हैं, वहाँ प्राकृतिक शोभा की यही दुर्दशा होती है। लोग वास्तविकता में निहित नवीनता को नष्ट करके उस पर अपनी ही इच्छा लादते हैं। मानव-जीवन पर भी ऐसे ही आघात होते रहते हैं—ऐसे ही बंधन बाँध दिये जाते है। शहरी जीवन तो इन बेड़ियों में बुरी तरह जकड़ा हुआ है। कितने आदमी इसी तरह बँधे छटपटा रहे हैं! इससे मुक्त हुए बिना मूल स्थिति के चैतन्य का अनुभव करना असंभव है। उस दिन रात को जब वह लेटा, तो प्रकृति-शोभा को उजाड़कर, मनुष्य का अपने लिए मार्ग आदि बनाने और आदमी के स्वच्छंद आनंद को दबाकर सामाजिक जीवन को नियमबद्ध करने की तुलना करते हुए उसका मन एक नाटक की कल्पना कर रहा था। उस नाटक का कोई पात्र नहीं, कथावस्तु नहीं। सारी प्रकृति ही उस नाटक की नायिका थी और समस्त मानव-वर्ग उस नायिका के हत्यारे के रूप में खड़ा था। ८

विरोध-शक्ति का निर्माण करके उसके मस्तिष्क में घूम रहा था। काफी रात बीते उसे नीद आई। तब तक डॉ० राव भी सो चुके थे।

सुबह-सुबह उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न मे भी वही नाटक! अब तक एक पात्र का सृजन हो चुका था और नाटक को मूर्त्त रूप भी मिल गया था। लगभग बाईस-तेईस की एक सुन्दर युवती! मनमोहक लावण्य-मय रूप! शरीर स्वस्थ, शुभ्र ज्योत्स्ना-सा चमक रहा है। चलती तो चरण ऐसे रक्तिम हो उठते, मानो रक्त अब फूटने ही जा रहा है। लंबी-लंबी अँगुलियां, केवल चित्रकार द्वारा ही चित्रित की जाने वाली अँगुलियों-सी। शरीर साँचे मे ढला-सा। लम्बे-लम्बे, घने काले, घुंघराले बाल, जो पीठ पर सर्पिणी-से लटक रहे है। मुख-मुद्रा गभीर! अग-अग में सुकुमारता है, प्रस्फुटित स्त्री-चैतन्य। पूर्णत. वस्त्रहीन एक अप्सरा, एक पुष्प-लता के नीचे चट्टान पर पैर लटकाये बैठी है। घनीभूत होकर सामने खड़ी चाँदनी-सी उसकी सर्वांग शोभा, शारीरिक सुघड़ता के सागत्व और तरुणाई के लावण्य से सजीव हो चमक रही है। प्राकृतिक सौन्दर्य छिपाने के लिए शरीर पर आवरण नही है। सामान्य स्त्री को अपनी नग्नता पर जो सकोच हो सकता है, उसका उसमें अभाव है। उसके पार्श्व मे लाल गुलाबों का ढेर है। दोनों हाथों से एक सुन्दर पुष्पमाला गूँथ रही है। पौधों के उस ओर से एक स्वर से सैकड़ों लोगों के चिल्लाने की आवाज आ रही है—'तू विधवा है, तेरे इस हार को कोई स्वीकार नही करेगा।'

स्वप्न टूट गया। आँखें खुली तो उसने निश्चय किया कि इसी कथा-वस्तु के आधार पर एक नाटक लिखूंगा। स्वप्न की उस अप्सरा को अपने स्मृति-पटल पर लाने का प्रयत्न किया। उसका स्पष्ट चित्र राज के नेत्रों मे अवश्य था, लेकिन याद नही आ रहा था कि चित्र किसका है। दो दिन बाद आँखों पर छाये बादल हट गये। वह चित्र किसी और का नहीं, उसी की छात्रा कात्यायनी का था। यह क्या! उसे भी आश्चर्य हुआ।

गर्मी की छुट्टियों के पश्चात् आज कालेज खुलने वाला था। सुबह दस बजे राज घर के आँगन मे कुर्सी पर बैठा, अपने नाटक को उलट-पलट रहा था। उसने इस साल का कार्यक्रम इसी नाटक से प्रारंभ करने का निश्चय किया था। पाडुलिपि मे दो-तीन बार सशोधन कर चुका था। टाइप करने

के लिए अपनी छात्रा को सौंपने से पहले वह आज फिर उस पर नजर डाल रहा था। उसे लगा, फाटक खोलकर कोई आ रहा है। सिर उठाकर देखा, कात्यायनी थी। उसके हाथ मे रूमाल में बँधी एक पोटली थी। उसकी महक से राज जान गया कि मोगरे के फूल है। उठकर कहा—"ये मुझे दे दीजिए।"

अप्रत्याशित राज के आँगन मे बैठे होने और फूल माँगने पर कात्यायनी क्या कर सकती थी! उसने फूल की पुड़िया राज को दे दी। राज ने उसे खोला। सुंदर पुष्पहार था। राज विस्मित हो उठा। सोचने लगा, ये घटनाएँ आकस्मिक क्यों घटती है? पूछा—"यह किसके लिए है?"

"नागलक्ष्मम्मा के लिए।"

भ्रमित होकर कहा—"बैठिए, भाभी पड़ोस मे हल्दी-कुकुम के लिए गयी है। एक-दो मिनट मे आ जायेगी!"

कात्यायनी पास की कुर्सी पर बैठ गयी। उसकी छुट्टियों के बारे में राज ने प्रश्न किये। दोनो आपसी कुशल-समाचार की बातें कर ही रहे थे कि नागलक्ष्मी आ गयी। उसके साथ कात्यायनी भीतर चली गयी। राज ने पुष्पमाला भाभी को सौंप दी। आधे घण्टे बाद कात्यायनी रसोईघर से लौटी तो राज ने कहा, "देखिए, आपसे एक काम है।"

"मुझसे?" कात्यायनी ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, मैंने एक नाटक लिखा है।"

"सच! मैं अभी तक यही समझती थी कि आप केवल नाटक प्रस्तुत करते है और उसमें भाग लेते है।"

"ऐसी बात नही है। कई नाटक लिखे हैं मैंने। लेकिन एक भी प्रकाशित नही हुआ है। यह नया नाटक है। इसमें आपको पार्ट करना होगा।"

"क्या कह रहे है सर! मैं तो मर जाऊँगी।" वह हैरान थी।

"मैं जानता हूँ कि इंटर मे पढते समय आपने एक बार पार्ट लिया था।"

"किसने कहा?"

"किसी ने भी कहा हो। अब आपको स्वीकार करना पड़ेगा।"

कात्यायनी गंभीर हो उठी। इतने में नागलक्ष्मी भी आ पहुँची

कात्यायनी ने कहा—"तब और अब में बहुत अन्तर है। कोई क्या कहेगा ?"

"कोई कुछ नही कहेगा। हमारी नाटक-सस्था में कितनी ही लड़कियाँ भाग लेती है। इसे मैने ही लिखा है। मेरा विश्वास है नायिका की भूमिका आप ही अच्छी तरह निभा सकेंगी।"

कात्यायनी नही मानी। वह कालेज चली गयी। दो-तीन दिन राज ने विवश किया तो मानना ही पड़ा। उसने एक बार मेकअप करके रंग-मंच पर अभिनय करने का आनदानुभव किया था। अब भी वह विचार उसे आकर्षक लगा। लेकिन मन मे उसे इस बात का भय भी था कि अगर सास-ससुर को पता लग गया तो ? लेकिन वासती इस साल कालेज में नही आ रही थी। वह अब ससुराल में थी। इसकी खबर देने वाला दूसरा कोई था ही नही।

"आपने नाटक मे अग्रेजी लिखा है, मैं पार्ट नही कर सकूँगी।"

"मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अच्छी तरह कर सकेंगी। कन्नड नाटक होता तो और किसी छात्रा को सौप देता। कई छात्राएँ पार्ट देने का आग्रह कर रही हैं। आप 'आप्शनल इग्लिश' की छात्रा हैं, आपको इसे करना ही पडेगा।"

नाटक की टाइप की हुई एक प्रति कात्यायनी को देते हुए राज ने कहा—"एक बात याद रखे। यह नाटक है, कला है। किसी व्यक्ति को दृष्टि मे रखकर नही लिखा गया। इसके सभी पात्र प्रतीक मात्र हैं। इस नाटक मे पात्रो की केवल कथा ही नही है, गहन अर्थ भी है। केवल कथोप-कथन पढने से ही नाटक समझ मे नही आ सकता। यह तब स्पष्ट होगा, जब उसे रगमच पर 'लाइटिंग इफेक्ट' के साथ प्रस्तुत किया जायेगा। मैं आपको इस सबध मे प्रशिक्षण दूंगा।"

कात्यायनी नाटक की पाडुलिपि लेती गयी। दूसरे दिन वह आई तो उसके चेहरे पर तनिक कठोरता थी किन्तु गुरु के सम्मुख नम्र होकर ही बोली—"सर, यह पार्ट किसी और से कराइए।"

"आप समझने की कोशिश कीजिए। यह कला है, नाटक है।"

"मुझे दृष्टि मे रखकर ही आपने इसे लिखा है!" उसकी आवाज मे वेदना थी।

"नही, ऐसा कदापि न सोचिए। यह एक अलग ही ढंग से मेरे मस्तिष्क की उपज है। यह एक रूपक-मात्र है" कहते हुए उसने प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु उसके मस्तिष्क मे कैसे आई—यह समझाया। वह वस्त्रहीन स्वप्न-सुदरी कौन थी—इस बारे में कुछ नही बताया। अत मे कात्यायनी ने पार्ट करना स्वीकार कर लिया। केवल चार पात्रों का नाटक था। उसमे भी कुछ सवाद महीन सफेद परदे के पीछे और कुछ रगमच पर बोले जाने वाले थे। वह एक नयी शैली, नया रूप और नया सदेश लिये हुए था।

कात्यायनी अभिनय के लिए रोज नागलक्ष्मी के घर आती। यही राज उसे अभिनय सिखाता। नागलक्ष्मी अंग्रेजो नही जानती थी, फिर भी वह तल्लीनता से राज का प्रशिक्षण और कात्यायनी का अभ्यास देखती। शेप तीन पुरुप पात्र थे, जिन्हें वह कालेज में प्रशिक्षित करता था। नाटक का नाम था 'द प्राइमोडियल' (मूलतत्त्व)। 'प्रकृति' नायिका थी और 'पुरुप' नायक। पुरुप रगमच पर घूमता है, उसे अधिक अभिनय नहीं करना है। केवल एक ही सवाद है। अन्य दो पात्रों में एक है जगत पर शक्ति के बल पर शासन करने वाला इंद्र और दूसरे है, उस पर धार्मिकता का अकुश लगाने वाले देवगुरु बृहस्पति।

अगस्त की पहली तारीख। शाम के छह बजे नाटक शुरू हुआ। वर्प का प्रथम नाटक था। अतः कुलपति ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। नये विद्यार्थी देखने को आतुर थे कि यह नाटक कैसा है और पुराने विद्यार्थी राजाराव द्वारा रचित नाटक देखने के लिए उत्सुक थे। कालेज का खुला नाट्यगृह खचाखच भरा हुआ था।

हरे-भरे वन में टहलती प्रकृति पुष्प सचय कर रही है। बिल्कुल मौन, शांत! प्रस्तुत दृश्य का अर्थ नेपथ्य से सुनाई दे रहा है। सचित पुष्पो से प्रकृति एक बड़ी माला बनाती है। माला की शोभा को देखकर वह नाचने लग जाती है। इतने में रंगमच पर पुरुप का प्रवेश होता है। पुरुप के सान्निध्य से आकर्पित हो प्रेमालाप करती हुई वह उसके पास पहुँचती है। हाथ की माला उसके गले मे डालना चाहती है! लेकिन पुरुप ने उसका हाथ थामने के लिए हाथ बढ़ाया। इसी बीच बादलों की गड़गड़ाहट और चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार!

अगला दृश्य है इंद्र का न्यायालय। जंजीरों में जकडी 'प्रकृति' एक पार्श्व मे खड़ी है। इद्र सिंहासन पर विराजमान हैं। एक दूसरे आसन पर विराजमान वृहस्पति कहते हैं—"तुझ पर धर्मच्युति का आरोप है।"

"कैसे देवगुरु?"

"तू पहले किसी और पुरुष के ससर्ग में थी। ज्ञानोदय होने पर वह तुझसे दूर चला गया। तू विधवा हुई। अव दूसरे पुरुष को वरमाला पहनाना चाहती है। यह धर्म-विरुद्ध है।"

"जो प्रकृति चिर नूतन है, चिर चैतन्य है उसे कृत्रिम धर्म की रुढ़ियों में वाँधना क्या अधर्म नही है गुरुदेव? मेरा मूल गुण चेतनामय है। मन को आह्लादित कर देने वाली वनश्री, आँखों को शीतलता पहुँचाने वाले सुदर दृश्य, चराचर जीवों को अन्न देने वाली मेरी व्याप्ति आदि पर कोई भी धर्म वैधव्य का स्पर्श नही करा सकता। देवगुरु, क्या आप मेरे एक प्रश्न का उत्तर देंगे?"

"अवश्य! पूछो।"

"क्या प्रकृति के ससर्ग से ही पुरुष की मुक्ति नही है?"

"हाँ, यह ठीक है।"

"अगर आपने मुझ पर वैधव्य का आरोप लगा दिया तो उन अनंत कोटि पुरुषों का क्या होगा जिन्हें अव तक मुक्ति नही मिली है; उन्हें मिलने वाली मुक्ति से वचित रखने वाला आपका धर्म कृत्रिम नहीं तो और क्या है?"

देवगुरु निरुत्तर हो गये। प्रकृति फिर कहती है—"मूलतत्व के मूल गुण को कृत्रिम रूप से रोकने वाले धर्म, नीति, राजशासन, सामाजिक नियम, जनमत का आरोप आदि असत्य के प्रतीक हैं। प्रकृति चिरयौवना है। उसके सुदर स्वरूप को रौंदने का प्रयास करने वाला धर्म स्वय मिट जाता है।"

पुन. वादलों की गर्जना। सभी ओर अधकार। फिर मद प्रकाश। इद्र और वृहस्पति अपनी गलती पर पछता रहे हैं। दोनों निर्जीव होकर गिर पड़ते है। अव रगमच पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। हाथ मे पुष्पमाला लिये, नृत्य करती हुई प्रकृति रगमच पर प्रवेश करती है। अपने चिरतन यौवन का गीत गाती है। पुरुष उसके निकट आता है। लेकिन प्रकृति अव

उसे पुष्पमाला नहीं पहनाती। पुरुष कहता है—"प्रकृति, तू विधवा नहीं, चिर सुमंगला है।"

प्रकृति उसे माला पहनाती है। इंद्र और बृहस्पति को एक बार कृपा दृष्टि से निहारती है। उनके हाथ-पैर आते हैं। दोनों उठते हैं और प्रकृति के चरणों में झुकते हैं। वह अभयदान देती है। दोनों खड़े हो जाते हैं। रंगमंच का प्रकाश धीरे-धीरे मंद हो जाता है और परदा गिर जाता है।

दर्शकों की करतल-ध्वनि से हॉल गूँज उठा।

नेपथ्य में कात्यायनी आयी। उसके दोनों हाथों को जोर से दबाते हुए राज ने कहा—"अद्भुत! मेरी कल्पना को आपने सार्थक कर दिया है।"

"प्रशिक्षण आपका ही था।" कात्यायनी अपने हाथ छुड़ाना भूल ही गयी।

इस बीच रंगमंच पर मेज-कुर्सियाँ रखी गयीं। प्रिंसिपल और कुलपति कुर्सियों पर बैठ गये। तीसरी कुर्सी पर राज बैठा। संस्था के सचिव ने पुष्पमाला से कुलपति का स्वागत किया। पीछे बैठे विद्यार्थियों ने आवाजें दीं, 'पुरुष को भी माला'। क्योंकि उन्हें राज का अभिनय बहुत ही पसंद आया था। प्रिंसिपल ने उठकर विद्यार्थियों से शांत रहने की अपील की।

खामोशी छा गयी। कुलपति उठे और माइक के सामने खड़े होकर वक्तव्य देने लगे, "मैं जीवविज्ञान का प्राध्यापक रह चुका हूँ। मैं नाटक के संकेतार्थ ठीक-ठीक तो नहीं समझ सका; किन्तु निस्संदेह मिस्टर राजाराव ने उसे बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखा है। आप सब लोगों की ओर से मैं उनका अभिनंदन करता हूँ। नायिका के रूप में मिस, मिस, मिस···" कहकर राज की ओर देखा। राज ने कहा, "कात्यायनी!" "हाँ, तो मिस कात्यायनी ने अद्भुत अभिनय किया है। अन्य तीनों पात्रों का पार्ट भी संतोषजनक रहा। संक्षेप में यही कहूँगा कि नाटक उत्तम रहा।"

"जीवविज्ञान के विद्यार्थी के नाते मैं यह समझ सकता हूँ कि प्रकृति चिरनूतन है, हमारे जीवकोश मरते रहते हैं और नये उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के मरने पर भी उसके जीवकोश हवा में जीवित रह सकते हैं। अतः निष्कर्ष यही है कि सारा संसार जीवमय है।"

कार्यक्रम समाप्त हुआ तो रात के साढ़े आठ बज चुके थे। राज ने

कात्यायनी से कहा, "इस वक्त आपका साथ देने के लिए कोई नहीं मिलेगा। चलिए, मैं स्टेशन तक छोड़ आता हूँ।"

'मेकअप' उतार और अपने कपड़े पहनकर कात्यायनी निकल पड़ी। राह चलते राज ने पूछा, "वाइस चांसलर ने आपको तीन बार 'मिस, मिस, मिस' कहा, ध्यान दिया था ?"

कात्यायनी कुछ न बोली। वह सोच रही थी, उसे आज पार्ट ही नहीं करना चाहिए था। जब तक रंगमंच पर रही, अपने-आपको बिसार चुकी थी। पूरी तन्मयता से अभिनय किया था। नाटक समाप्त होते ही संकोच ने घेर लिया। राह-भर वह चुपचाप चलती रही। स्टेशन निकट आने पर कहा, "स्टेशन पर नंजनगूडु जानेवाले विद्यार्थी होंगे, वे उलटा-सीधा समझेंगे। अब आप घर जाइए।"

राज चुपचाप लौट पड़ा।

९

एक साथ शोध-कार्य करने वाले डॉ० राव और रत्ले दोनों कुछ ही दिनों में निकट स्नेही बन गये। दोनों का ध्येय एक, दिशा एक। एक के कार्य के लिए दूसरा आवश्यक था। विद्वत्ता के क्षेत्र में रत्ले विद्यार्थी-स्तर को पार कर ऊपर उठ चुकी थी। अतः डॉ० राव उससे छात्रा के अतिरिक्त मित्र-भाव से भी व्यवहार करते थे। काम करने का 'मूड' न होने पर बैठकर बातें करते। लेकिन बात का विषय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने शोध-कार्य से ही संबंधित होता था। एक बार रत्ले ने सलाह दी—"प्राध्यापक बनकर आपको इंग्लैंड जाना चाहिए।" डॉ० राव ने कहा—"पहले यह काम पूरा हो जाये। आयु बची तो भविष्य में यह भी सोच सकता हूँ।" रत्ले कभी-कभी डॉ० राव की दृष्टि में न आयी हुई सामग्री लाकर प्रस्तुत करती तो वे कृतज्ञता से धन्यवाद देते। लेकिन यह कृतज्ञता उसे नहीं भाती थी। एक बार कुछ रूठी-सी आवाज में बोली—"मैं कई बार कह चुकी

हूँ कि आप मुझे धन्यवाद न दें। इतना भी याद नहीं रख सकते तो आपका टाइपराइटर लेकर मैं अपने देश चली जाऊँगी।"

"ऐसा ही करो। वहीं से सब टाइप करके भेज दिया करना" डॉ० राव हँस पड़े।

एक दिन काम का मन नहीं था तो दोनों रत्ले के होस्टल की ओर चल दिये। लौटते समय चाय पीने के लिए होटल की तरफ जा रहे थे कि बस कण्डक्टर की आवाज आयी—'चामुंडी हिल, चामुंडी हिल, अर्जेन्ट!' मंगलवार था। रत्ले ने अब तक चामुंडी पहाड़ नहीं देखा था। डॉ० राव ने कहा—"इस बस से पहाड़ तक जाकर शाम तक क्यों न लौट आयें?" उसने भी मान लिया।

दोनों कुछ समय तक पहाड पर स्थित देवालय, महिषासुर की मूर्ति आदि देखते रहे। लौटने वाली बस पकड़ने का प्रयत्न करने के बदले वहीं रह गये और धूप ढलने पर पैदल ही लौटने का निश्चय करके एक पेड़ की छाया में बैठ गये। कुछ समय बाद रत्ले ने पूछा, "क्या आप पुनर्जन्म को मानते है ?"

"क्यों?"

"यों ही पूछा।"

"एक पुराने पंथ को छोड़कर, भारत के समस्त दर्शन पुनर्जन्म को मानते है। पुनर्जन्म, और आत्मा की अनन्तता—ये दोनो एक ही वाद के दो रूप है। बौद्ध धर्मावलम्बी होने के कारण शायद तुम आत्मा की नित्यता को नहीं मानती होगी!"

"दर्शन-ग्रंथों की बात नहीं, इतना बताइए कि आप उसे मानते हैं क्या?"

डॉ० राव क्षण-भर के लिए विचारमग्न हो गये। उन्होंने दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन किया था लेकिन यह सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी कि इस सम्बन्ध मे उनका व्यक्तिगत विचार क्या है। पाँच मिनट तक डॉ० राव को विचार मे डूबे देखने के बाद रत्ले ने कहा—"आत्मा अवश्य अविनाशी है। यह प्रत्यक्ष देखा नहीं जाता कि देह त्यागने के पश्चात् आत्मा भी नष्ट होती है। लेकिन इस दुनिया में जन्म लेकर मरने के बाद कुछ पीढ़ियों तक व्यक्ति की मूल साधना के चिह्न के रूप में कुछ बच जाये तो मान सकते है कि वह उसी व्यक्तित्व का अविनाशत्व है।"

"इतने सीमित अर्थ से काम चलेगा ?"

"मेरे लिए तो इतना बस है सोचती हूँ ! तो मुझे ऐसा ही लगता है। उत्कट भावात्मक क्षणों में मुझे भी लगता है कि पुनर्जन्म को मान लेना चाहिए। यह आशा स्वाभाविक है कि जो इस जीवन में अप्राप्य है, वह भावी जन्म में प्राप्त हुआ, लेकिन यह एक सान्त्वना, मन की तसल्ली मात्र है।"

डॉ० राव गंभीरता से उसकी बातें सुनते रहे। रत्ने ने पूछा—"मेरी बात समझ में आयी ?"

न जाने रत्ने ने क्या कहा और डॉ० राव क्या समझे। फिर भी 'हूँ' कह दिया। वह भी चुप हो गयी। कुछ क्षणों के बाद रत्ने ने फिर कहा—"उदाहरण के लिए, आपके जाने के पश्चात् भी आपके ग्रंथ रह जायेंगे। इस दृष्टि से आप अविनाशी हैं।"

शिष्या द्वारा श्रद्धा से कही गयी यह बात सुनकर डॉ० राव का शरीर पुलकित हो उठा। फिर भी उन्होंने कहा—"तुम अपनत्व के कारण ऐसा कह रही हो। तुम्हारे विचारों को मानने का मनोभाव मुझ में नहीं है, सो बात नहीं। रत्ने, तुममें बुद्धिमत्ता है, तुम विद्वत्ता की ओर बढ़ रही हो, इसी दिशा में चलती रही तो तुम मुझसे भी आगे बढ़ जाओगी।"

क्षण-भर दोनों चुप रहे। फिर निःश्वास छोड़ते हुए रत्ने ने कहा, "हमारे वैयक्तिक प्रयत्न करने से क्या होता है ? वांछित सहायता और प्रोत्साहन चाहिए। मार्गदर्शन करने वाला भी चाहिए। अन्यथा हमारी चेतना का परिपूर्ण विकास नहीं होता। सच है न ?"

"सच है।"

उस दिन दोनों अपने व्यक्तिगत जीवन की सीमा पार कर, साधना-जगत् की बातें कर रहे थे। उनकी आत्माएँ निकट प्रतीत हो रही थीं। सूर्यास्त तक वे वहीं बैठे बातें करते रहे। वहाँ से मंदिर तक पहुँचने के पहले ही विद्युत-दीप जल चुके थे। नदी को पीछे छोड़, आगे बढ़े और सीढ़ियों तक आये तो उन्हें कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। रत्ने ने उनका दाहिना हाथ थाम लिया। डॉ० राव ने हँसते हुए कहा—"अभी-अभी तुमने कहा था न, कि मार्गदर्शन कराने वाले की जरूरत होती है। तुम न होतीं तो मैं लौट भी न पाता !"

"हाँ-हाँ ! इस पहाड़ से उतरने का रास्ता तो मैं नही जानती। आपके बिना मै कुछ नही कर सकूँगी।" वह हँस पड़ी।

दोनों नीचे उतरे। रात के आठ बज गये थे। चामुंडीपुर में ताँगा मिला और उस पर सवार हुए। डॉ० राव वाइसराय रोड पर उतर गये और रत्ने उसी ताँगे में आगे बढ़ गई।

डॉ० राव के ग्रंथ के प्रथम खण्ड का लेखन-कार्य समाप्त हो गया। उन्होंने दो-तीन वार उसे जाँच भी लिया। जिसे लिखने में पाँच वर्ष लगने का अनुमान लगाया था। वह केवल तीन वर्षो मे ही पूर्ण हो गया। रत्ने के आने से पहले उन्हे अकेले ही काम करना पड़ता था। अब कार्य की गति मे तीव्रता आ गयी है। रत्ने की अपनी 'थीसिस' भी पूर्ण हो गयी। उसे उसने विश्वविद्यालय मे प्रस्तुत कर दिया। लेकिन अपने गुरु के प्रथम खण्ड की सामग्री व्यवस्थित रूप मे टाइप कर देने के बाद ही स्वदेश लौटने की इच्छा से वह दिन-रात परिश्रम करने लगी। छह सप्ताह में कार्य पूर्ण कर दिया। उसने एक प्रति खुद सुन्दर ढग से 'पैक' की और उसे डॉ० राव के पत्र के साथ इग्लैंड के प्रकाशक को भेज दिया।

रत्ने की स्वदेश-वापसी की पिछली रात डॉ० राव सो न सके। उसने दो वर्ष उनके कार्य मे सहयोग दिया। उनके लेखो को पढ़ा। त्रुटियों आदि की ओर ध्यान खीचा। वैतनिक सचिव से भी अधिक व्यवस्था से, अत्यन्त निकट सम्बन्धी की आत्मीयता से, बौद्धिक सहयोग देने वाले विद्वान् मित्र की तरह उसने ग्रथ का कार्य किया। डॉ० राव सोचने लगे, क्या शेष खण्डों को मैं अकेला पूर्ण कर सकूँगा ? जिसके हर तरह के सहयोग से इस महाग्रथ का निर्माण हुआ, अब वह जा रही है, डॉ० राव को अकेला छोड़कर। वह नही आती तो क्या मैं अकेला काम न करता? उन्होंने शात रहने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ !

वे रात-भर नही लेटे, नीद भी नही आई। सुबह चार बजे उठे। रत्ने के होस्टल की ओर निकल पड़े। होस्टल मे कोई अब तक उठा नही था, लेकिन रत्ने के कमरे में बत्ती जल रही थी। पहरेदार कम्पाउण्ड के फाटक पर सोया हुआ था। उसे उठाकर सूचना दी—"करुण रत्ने से कहो।

पहरेदार की नींद पूरी खुली न थी। उसने उसी खुमार में कहा—"इस वक्त लड़कियाँ बाहर नहीं आ सकतीं—यह रूल है।"

उन्होंने झकझोरकर उसकी खुमारी भगा दी और उसे बुलाने के लिए भेजा। रत्ने उसके पीछे-पीछे आ गयी।

"चलो, टहल आयें।"

"कमरे में ताला लगा आऊँ।"

वह ताला लगाकर लौटी। कुक्करहल्लि के तालाब की ओर दोनों चल पड़े। सुबह के साढ़े चार बजे थे। रत्ने ने बात प्रारम्भ की—"क्या बात है, इतनी सुबह यहाँ उठकर आना पड़ा?"

"न जाने क्यों, रात-भर नींद नहीं आई। तुम आज जा रही हो न?"

वह बोली नहीं। अपना हाथ बढ़ाकर उसने डॉ० राव का हाथ पकड़ लिया। एक बार वृन्दावन में डॉ० राव ने जो बात कही थी, वह याद हो आई। दोनों चुपचाप तालाब के पास पहुँचे। पास ही एक लता-मंडप देखकर रत्ने ने कहा, "और कितनी दूर जायेंगे। यहीं बैठ जायें।"

दोनों बैठ गये। घड़ी देखी, पाँच बज गये थे। सारा मैसूर शांत था। सामने तालाब के पानी में कोई हल्की-सी भी लहर नहीं थी—शांति-ही-शांति। दोनों समझ ही नहीं पाये, क्या बोलें। डॉ० राव ने पूछा—"इतनी जल्दी उठ गयी थी?"

"मुझे भी रात-भर नींद नहीं आई"—कहते हुए उसने डा० राव का हाथ जोर से भींच लिया। उभरते दुःख को उसने अब तकदबा रखा था। रात-भर जिस बेचैनी का अनुभव किया था, उसका स्मरण आते ही वह रोने लगी। सान्त्वना देते हुए डॉ० राव ने उसे अपनी बाँहों में कस लिया। रत्ने ने उनकी गोद में सिर रख दिया।

गत तीन सालों से उनकी परस्पर आत्मीयता गहरी होती जा रही थी। अब दोनों एक-दूसरे की आकांक्षाओं को समझ गये थे। एक ही ध्येय को लेकर दोनों का जीवन चल रहा था। कई बार दोनों ने गम्भीर विषयों से हटकर आत्मीयता की बातें की थीं।

रत्ने की मानसिक व्याकुलता को समझकर डॉ० राव ने कहा—"स्वदेश जाकर क्या करोगी?"

"आप तो जानते ही हैं।" कुछ समय चुप रहने के बाद रत्ने ने कहा,

पहरेदार की नींद पूरी खुली न थी। उसने उसी खुमार में कहा—"इस वक्त लड़कियाँ बाहर नही आ सकती—यह रूल है।"

उन्होने झकझोरकर उसकी खुमारी भगा दी और उसे बुलाने के लिए भेजा। रत्ने उसके पीछे-पीछे आ गयी।

"चलो, टहल आयें।"

"कमरे मे ताला लगा आऊँ।"

वह ताला लगाकर लौटी। कुक्करहल्लि के तालाब की ओर दोनों चल पड़े। सुबह के साढे चार बजे थे। रत्ने ने बात प्रारम्भ की—"क्या बात है, इतनी सुबह यहाँ उठकर आना पड़ा?"

"न जाने क्यों, रात-भर नीद नही आई। तुम आज जा रही हो न?"

वह बोली नही। अपना हाथ बढाकर उसने डॉ० राव का हाथ पकड़ लिया। एक बार वृन्दावन मे डॉ० राव ने जो बात कही थी, वह याद हो आई। दोनों चुपचाप तालाब के पास पहुँचे। पास ही एक लता-मडप देखकर रत्ने ने कहा, "और कितनी दूर जायेंगे। यही बैठ जायें।"

दोनो बैठ गये। घड़ी देखी, पाँच बज गये थे। सारा मैसूर शांत था। सामने तालाब के पानी में कोई हल्की-सी भी लहर नही थी—शांति-ही-शांति। दोनों समझ ही नही पाये, क्या बोले। डॉ० राव ने पूछा—"इतनी जल्दी उठ गयी थी?"

"मुझे भी रात-भर नीद नही आई"—कहते हुए उसने डा० राव का हाथ जोर से भीच लिया। उभरते दुःख को उसने अब तकदबा रखा था। रात-भर जिस बेचैनी का अनुभव किया था, उसका स्मरण आते ही — रोने लगी। सान्त्वना देते हुए डॉ० राव ने उसे अपनी बाँहो लिया। रत्ने ने उनकी गोद मे सिर रख दिया।

गत तीन सालों से उनकी परस्पर आत्मीयता गहरी हो थी। अब दोनों एक-दूसरे की आकाक्षाओं को समझ गये थे। ९ को लेकर दोनों का जीवन चल रहा था। कई बार दोनों विषयो से हटकर आत्मीयता की बातें की थी।

रत्ने की मानसिक व्याकुलता को समझकर डॉ "स्वदेश जाकर क्या करोगी?"

"आप तो जानते ही हैं।" कुछ समय चुप रहने के

ारे खण्ड को आप जल्दी प्रारंभ करें।"

"तुम्हारे बिना नहीं हो सकता।"

"कृपया ऐसा न कहें। मैं न आती तो भी आप उसे लिखते ही। एक र्क की हैसियत से मैंने आपकी सेवा की है। टाइपिंग के लिए आप सी को नियुक्त कर लीजिए।"

कुछ रुककर फिर बोली—"मेरे बिना भी आपका महाग्रंथ पूरा होगा। ा मन कहता है कि आपसे सम्पर्क न रहने पर मेरी अल्प शक्ति का पयोग नहीं हो सकेगा। किन्तु कोई चारा नहीं।"

अब पंछी जाग गये थे। मंद-मंद उजियाला फैलता जा रहा था। उठिए, अब चलें" कहकर रत्ने ने हाथ पकड़कर उठाया। दोनों रे-धीरे चलकर होस्टल पहुँचे। छह बज चुके थे। होस्टल के फाटक के स पहुँचकर डॉ० राव ने कहा—"साढ़े सात बजे गाड़ी छूटती है। तुम्हें मान बाँधना हो तो जाओ। मैं यहीं इन्तजार करता हूँ, स्टेशन लूंगा।"

"सामान बाँध लिया है। कहीं दिखाई पड़े तो एक ताँगा बुला लीजिए। अभी चलना उचित होगा। देर हुई तो विदा देने के लिए एक-रो सहेलियाँ आ सकती है।"

साढ़े छह बजे तक स्टेशन पहुँचे। ट्रेन प्लेटफार्म पर आ चुकी थी। द्वितीय श्रेणी में सामान रखवाकर दोनों गाड़ी में बैठ गये। यहाँ और कोई न था। एक दिन पहले ही रत्ने ने धनुष्कोटि का टिकट कटा लिया था। कुछ समय तक दोनों मौन रहे। बाद में रत्ने ने कहा—"प्रथम खण्ड की छपाई का काम एक सप्ताह में प्रारम्भ हो जायेगा। आज ही प्रकाशक को लिख दीजिए कि प्रूफ जाँचने के लिए, अनुक्रमणिका बनाने के लिए, फार्मों को सीधा मेरे सिंहल के पते पर भेजें।" फिर द्वितीय खण्ड के बारे में कुछ बातें हुईं। इतने में उस डिब्बे में और भी यात्री आकर बैठ गये। वे इधर-उधर की बातें कर रहे थे कि गाड़ी छूटने का समय हो गया। घंटी बजी। डॉ० राव उतर गये। रत्ने भी उतर आई और डॉ० राव के चरण छूकर नमस्कार किया। गार्ड ने सीटी दी। गाड़ी चलने लगी। खिड़की से रत्ने का हाथ पकड़कर डॉ० राव भी गाड़ी के साथ-साथ चलने लगे। गाड़ी की रफ्तार बढ़ी और दोनों के हाथ छूट गये। रत्ने

आँखों से आँसू वह चले।

डॉ० राव द्वितीय खण्ड के लिए अध्ययन करने लगे। वे यथावत् सुबह नौ बजे पुस्तकालय जाते। रात के आठ बजे तक पढ़ते-लिखते। लेकिन अकेले होने के कारण पहले का-सा उत्साह नहीं रहा। सदर्भ-ग्रंथों को ढूँढना, विषयों के क्रम के लिए निशान लगाना आदि कार्य स्वयं को करने पड़ रहे थे। उनका अधिकाश समय इसी मे व्यतीत होने लगा। अपने विद्यार्थी, होन्नय्या की जो एम० ए० करने के बाद अब उनके ही कालेज मे लेक्चरार है, मदद लेनी चाही। लेकिन उसकी न अध्ययन मे रुचि थी और न शोधकार्य मे। शादी के बाद वह अब पत्नी के साथ सुखमय जीवन बिताना चाहता था। रत्ने की तरह विद्वत्ता, अंग्रेजी पर अधिकार, सस्कृत-प्राकृत का ज्ञान, शीघ्रलिपि-टाइप और परिश्रम के प्रति उत्साह दिखाने वाला उन्हे कोई न मिला।

फिर भी डॉ० राव अपना कार्य करते रहे। रत्ने के पत्र आ रहे थे कि लंदन से प्रूफ बराबर आते रहते है। एक दिन प्रकाशक का पत्र आया जिसमे लिखा था कि छपाई का कार्य पूर्ण हो चुका है, तुरन्त भूमिका लिखकर भेजिए। डॉ० राव ने [illegible] महाराज [illegible] ोत्साहन एवं रत्ने से मिली अनुपम से [illegible]
दिया।

एक महीने मे खण्ड प्रकाशित [illegible]
इच्छा-शक्ति, बौद्धिक ज्ञान एवं [illegible]
स्वरूप निर्मित [illegible]
स्वर्णाक्षरों मे [illegible]
खण्ड : डॉ० सद [illegible]
आनन्द-विभोर [illegible]
कर ही दम लूंगा [illegible]
सचिव को एक पत्र। [illegible]
राजेन्द्र महाराज को [illegible]
उत्तर मिला की [illegible]
असम्भव है। १९५५ [illegible]

के बाद समाचार-पत्रों में महाराज के स्वर्गवास का समाचार था।

डॉ० राव के अवचेतन में यह भावना सदा रही कि महाराज उनके कार्य में अनुग्रह का हाथ बढ़ाने वाली एक शक्ति हैं। अब वह शक्ति भी नहीं रही। उन्हें चिन्ता हुई कि अगर फिर बाधाएँ आईं तो कौन रक्षा करेगा? महाराज के निधन पर कालेज में जो शोक-सभा हुई थी, उसमें बोलने के लिए वे भी आगे आये थे। उसी दिन कालेज के विद्यार्थियों और नये प्राध्यापकों ने उन्हें पहली बार प्रत्यक्ष देखा था। स्वर्गीय महाराज को श्रद्धांजलि देकर बैठने से पहले डॉ० राव ने दो बार आँखें पोंछी थीं।

प्रथम खण्ड प्रकाशित होने से कालेज से सम्बन्धित लोगों में डॉ० राव की कीर्ति और बढ़ गयी। कई प्राध्यापक विश्राम के समय किसी भी विषय पर उनसे चर्चा करना अपना गौरव समझने लगे। अनायास ही भेंट हो जाने पर 'द्वितीय खण्ड का कार्य कहाँ तक हुआ' पूछना, सामान्य शिष्टाचार की बात हो गयी थी। इसी बीच इतिहास-विभाग के प्रोफेसर सेवा-निवृत्त हो गये। अब इस विभाग को उन्हें ही सँभालना पड़ा। फिर भी वे पुस्तकालय के बाहर बहुत कम आते थे।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे डॉ० राव रत्ने की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस करने लगे। किसी भी विद्वान् के लिए श्रेष्ठ शोध-कार्य में चिन्तन और विषय निरूपण के साथ अन्य कामों की जिम्मेदारी सँभालना कठिन है। छह महीने बीत जाने पर भी द्वितीय खण्ड के लिए उपयुक्त सामग्री का अल्पांश भी तैयार नहीं हुआ। केवल ग्रंथ खोजने, नोट्स लेने में ही सारा समय चला जाता। इसके अतिरिक्त अध्ययन के समय मन में उठती शंकाओं पर विचार-विमर्श के लिए योग्य व्यक्ति के अभाव में उनकी स्थिति मरुभूमि के एकाकी यात्री-सी हो गयी थी।

जिसका फिर यहाँ आना संभव नहीं, उसे याद करने से क्या लाभ? उसे भुलाने का प्रयत्न कर वे यथाशक्ति अपने-आप काम करने की कोशिश करते। लेकिन उन्हें रत्ने की जरूरत केवल एक क्लर्क अथवा विद्वान् मित्र के रूप में ही नहीं थी। डॉ० राव अपने जिस महाग्रंथ के निमित्त समस्त शक्ति अर्पित कर रहे थे, उन्हें विश्वास था, उसी प्रकार रत्ने में भी उसके लिए अपना जीवन निछावर करने की शक्ति है। उसकी मदद के बिना अपनी शक्ति के भरोसे कार्य करना उन्हें नीरस प्रतीत हो

आँखो से आंसू वह चले।

डॉ० राव द्वितीय खण्ड के लिए अध्ययन करने लगे। वे यथावत् सुबह नौ बजे पुस्तकालय जाते। रात के आठ बजे तक पढ़ते-लिखते। लेकिन अकेले होने के कारण पहले का-सा उत्साह नही रहा। सदर्भ-ग्रंथो को ढूंढना, विषयो के क्रम के लिए निशान लगाना आदि कार्य स्वयं को करने पड़ रहे थे। उनका अधिकाश समय इसी मे व्यतीत होने लगा। अपने विद्यार्थी, होन्नय्या की जो एम० ए० करने के वाद अव उनके ही कालेज मे लेक्चरार है, मदद लेनी चाही। लेकिन उसकी न अध्ययन में रुचि थी और न शोधकार्य मे। शादी के वाद वह अव पत्नी के साथ सुखमय जीवन विताना चाहता था। रत्ने की तरह विद्वत्ता, अग्रेजी पर अधिकार, सस्कृत-प्राकृत का ज्ञान, शीघ्रलिपि-टाइप और परिश्रम के प्रति उत्साह दिखाने वाला उन्हे कोई न मिला।

फिर भी डॉ० राव अपना कार्य करते रहे। रत्ने के पत्र आ रहे थे कि लंदन से प्रूफ वरावर आते रहते है। एक दिन प्रकाशक का पत्र आया जिसमे लिखा था कि छपाई का कार्य पूर्ण हो चुका है, तुरन्त भूमिका लिखकर भेजिए। डॉ० राव ने भूमिका मे महाराज से प्राप्त प्रोत्साहन एव रत्ने से मिली अनुपम सेवा का उल्लेख कर प्रकाशक के पास भेज दिया।

एक महीने मे खण्ड प्रकाशित हो गया। वह डॉ० राव के रक्त, मास, इच्छा-शक्ति, वौद्धिक ज्ञान एव जीवन की एकमात्र महत्वाकांक्षा के फल-स्वरूप निर्मित महाग्रथ का प्रथम खण्ड था। काली 'स्टिफ वाइडिंग' पर स्वर्णाक्षरों मे छपा हुआ था—'भारत का सास्कृतिक इतिहास : प्रथम खण्ड : डॉ० सदाशिवराव।' जिस दिन ग्रथ डॉ० राव के हाथ आया, वे आनन्द-विभोर हो उठे। *मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि अन्य खण्डों को लिख-*कर ही दम लूंगा। रत्ने के पास भी एक प्रति भेज दी। महाराज के निजी सचिव को एक पत्र लिखकर इच्छा व्यक्त की कि वे स्वय आकर कृष्ण राजेन्द्र महाराज को ग्रथ समर्पित करना चाहते हैं। निजी सचिव का उत्तर मिला की महाराज की अस्वस्थता के कारण अभी भेंट होना असम्भव है। स्वस्थ होते ही भेंट की व्यवस्था कर दी जायेगी। चार दिन

के बाद समाचार-पत्रों में महाराज के स्वर्गवास का समाचार था।

डॉ० राव के अवचेतन में यह भावना सदा रही कि महाराज उनके कार्य में अनुग्रह का हाथ बढ़ाने वाली एक शक्ति है। अब वह शक्ति भी नही रही। उन्हें चिन्ता हुई कि अगर फिर बाधाएँ आईं तो कौन रक्षा करेगा? महाराज के निधन पर कालेज में जो शोक-सभा हुई थी, उसमें बोलने के लिए वे भी आगे आये थे। उसी दिन कालेज के विद्यार्थियों और नये प्राध्यापकों ने उन्हें पहली बार प्रत्यक्ष देखा था। स्वर्गीय महाराज को श्रद्धांजलि देकर बैठने से पहले डॉ० राव ने दो बार आँखें पोंछी थीं।

प्रथम खण्ड प्रकाशित होने से कालेज से सम्बन्धित लोगों मे डॉ० राव की कीर्ति और बढ़ गयी। कई प्राध्यापक विश्राम के समय किसी भी विषय पर उनसे चर्चा करना अपना गौरव समझने लगे। अनायास ही भेंट हो जाने पर 'द्वितीय खण्ड का कार्य कहाँ तक हुआ' पूछना, सामान्य शिष्टाचार की बात हो गयी थी। इसी बीच इतिहास-विभाग के प्रोफेसर सेवा-निवृत्त हो गये। अब इस विभाग को उन्हें ही सँभालना पड़ा। फिर भी वे पुस्तकालय के बाहर बहुत कम आते थे।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे डॉ० राव रत्ने की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस करने लगे। किसी भी विद्वान् के लिए श्रेष्ठ शोध-कार्य मे चिन्तन और विषय निरूपण के साथ अन्य कामों की जिम्मेदारी सँभालना कठिन है। छह महीने बीत जाने पर भी द्वितीय खण्ड के लिए उपयुक्त सामग्री का अल्पांश भी तैयार नही हुआ। केवल ग्रंथ खोजने, नोट्स लेने में ही सारा समय चला जाता। इसके अतिरिक्त अध्ययन के समय मन मे उठती शंकाओं पर विचार-विमर्श के लिए योग्य व्यक्ति के अभाव में उनकी स्थिति मरुभूमि के एकाकी यात्री-सी हो गयी थी।

जिसका फिर यहाँ आना संभव नही, उसे याद करने से क्या लाभ? उसे भुलाने का प्रयत्न कर वे यथाशक्ति अपने-आप काम करने की कोशिश करते। लेकिन उन्हें रत्ने की जरूरत केवल एक क्लर्क अथवा विद्वान् मित्र के रूप मे ही नही थी। डॉ० राव अपने जिस महाग्रंथ के निमित्त समस्त शक्ति अर्पित कर रहे थे, उन्हें विश्वास था, उसी प्रकार रत्ने मे भी उसके लिए अपना जीवन निछावर करने की शक्ति है। उसकी मदद के विना अपनी शक्ति के भरोसे कार्य करना उन्हें नीरस प्रतीत हो

रहा था।

इतने मे रत्ने की 'थीसिस' का नतीजा निकला। परीक्षकों ने उ
'डॉक्टरेट' उपाधि देने के साथ-साथ 'थीसिस' प्रकाशित करने की भ
सिफारिश की। इसकी सूचना एव अपनी ओर से अभिनन्दन भेजते हु
डॉ० राव ने लिखा—

"तुमने अपने पिछले पत्र मे मेरे कार्य के बारे मे पूछा था। वह त
चल ही रहा है। अब मैं अड़तीस का हो गया हूँ, रात मे बहुत ही क
दिखाई देता है। सोलह साल की उम्र से निरन्तर पढ़ता आ रहा हूँ।
कम-से-कम ग्रथ पूर्ण होने तक भगवान् मेरी ज्योति बनाये रखे। तुम्हा
न रहने से मेरा समय और शक्ति अन्य तैयारियो मे ही व्यय हो जात
है। प्रथम खण्ड को पाँच वर्ष मे पूर्ण करने की योजना थी, लेकिन तुम्हा
सहयोग से तीन वर्ष में ही वह पूरा हो गया। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय पत्रि
काओ में उसकी प्रशसा हुई है। शेष खण्डों को मैं अकेला पूरा कर सकूँगा
इस बात मे मेरा विश्वास घटने लगा है। जब तक जिन्दा रहूँगा तब तक
प्रयत्न तो करूँगा ही। आगे भगवान् की इच्छा !

"आजकल तुम क्या कर रहो हो ?"

एक सप्ताह बाद रत्ने का उत्तर आया—

"डॉक्टरेट के लिए परिश्रम मैंने किया, लेकिन सारा श्रेय आपको ही
मिलना चाहिए। आपकी प्रखर विद्वत्ता का ही यह फल है। अगर मुझे
वहाँ आना पड़ा, तो उपाधि-पत्र सर्वप्रथम आपके चरणों मे रख दूँगी।

"प्रथम खण्ड की समालोचना मैंने देखी है। गर्व अनुभव हुआ।
भूमिका में मेरी सेवा की प्रशसा अधिक हुई है। केवल आत्म-तृप्ति के
लिए मैंने यथा-शक्ति सहयोग दिया है। लेकिन हर वाक्य मे उसका जो
उल्लेख किया वह आपकी परिपक्वता का द्योतक है। इसे जितनी अधिक
आत्मीयता से मैं समझ सकती हूँ, और कोई नही समझ सकेगा।

"आपने मेरे कार्यों के बारे मे जो पूछा है, अभी तो कुछ नही कर
रही हूँ। दो माह पूर्व मेरी माताजी गुजर गयी। इसी दुःख मे डूबी हूँ।
अकेली हूँ। मेरे मानसिक जीवन मे प्रवेश करने वाला कोई साथी न होने
से इस द्वीप मे सुप्तावस्थापूर्ण जीवन का अनुभव कर रही हूँ। कभी-कभी
सोचती हूँ, अगर आप सिहल के होते और हमारे ही गाँव मे रहते, अथवा

मैं मैसूर की होती और वही रहती तो अपने इन ग्रंथों के लिए परिश्रम कर पाती। खण्डों को 'आपके' न कहकर 'अपने' कह रही हूँ। जो आत्मा एक बार प्रकाश देख लेती है, उसे अधकार में रहना वड़ा ही कष्टप्रद लगता है।

"पत्र अवश्य लिखा कीजिए।"

गुरु से विदा लेकर अपने देश लौटते समय रत्ने में अपने माता-पिता और भाई से मिलने का उत्साह था। लेकिन उसे इस वात का वडा दु.ख भी था कि अव कभी गुरु के दर्शन न कर सकेगी। लेकिन स्वदेश लौटने के सिवा कोई उपाय न था। घर पहुँचने के बाद दो-तीन दिन घरवालों से नया-पुराना होने मे बीत गये। फिर थोड़ा समय भाई के दो बच्चों के साथ खेलने में बीत जाता। किन्तु अव देश में उसका मन नही लगता था। शोध-प्रबध पूर्ण हो जाने के वाद माता-पिता ने अव शादी के लिए आग्रह किया है। उसने स्पष्टतः इन्कार कर दिया कि आगे इस विषय मे चर्चा न करें। वह किसी विश्वविद्यालय मे प्राध्यापिका बनकर जीवन विताना चाहती है। माता को इस उत्तर से बड़ी निराशा हुई।

घर पहुँचने के पन्द्रह दिन वाद ही प्रथम खण्ड के प्रूफ आने लगे। लगभग दो महीने इस कार्य मे लगी रही। लेकिन अब वह चाहती थी कि उसके कार्य को डॉ० राव अपनी आँखों से स्वय देखकर ठीक कह देते। इसके वाद पन्द्रह दिन में उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया। शोक मे शोध-कार्य के प्रति रुचि घट गयी। लगभग महीना-भर माँ की याद में आँसू वहाती रही। अव वह समझने लगी कि शोध-कार्य मे लगे विना दु.ख भुलाना कठिन है। अतः वही कालेज से, इतिहास-सवधी ग्रंथ लाकर पढ़ने लगी। मन मैसूर की ओर खिच जाता। कभी वह सोचती, डॉ० राव के कार्य मे सहायिका बनकर मैसूर ही क्यो न चली जाऊँ ! क्या वहाँ जीवन-यापन के लिए अध्यापिका की नौकरी नही मिलेगी? अपनी इस निष्क्रियता को दूर कर, अपनी अन्तरात्मा द्वारा प्रेरित कार्य मे प्रवृत्त हुए विना, चैन से जी नही सकूँगी ! वह इसी उधेड़-बुन मे थी कि उसे डॉ० राव का पत्र मिला—

"कई दिनों की मानसिक विकलता का अनुभव करने के पश्चात् यह

पत्र लिख रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है, तुम इसे सामान्य दृष्टि से नहीं देखोगी। हम दोनो का सम्बन्ध केवल गुरु-शिष्या का ही सम्बन्ध नहीं रहा है। हम एक महत् ग्रथ के निर्माण मे लगे हुए दो जीव है। हमारी आराध्य देवी एक ही है। उसकी सेवा मे जीवन निछावर करने वाले हम दो भक्त है। उसकी पूजा करना हम दोनों के लिए आवश्यक है। एक का कार्य मत्र-पठन है और दूसरे का तंत्र। एक पूजा के लिए उद्यत होता है और दूसरा फूल, चदन, अक्षत तैयार करता है। ऐसी सेवा से ही उपासना निरन्तर चल सकती है।

"न वहाँ तुम्हे अपनी आत्मा की पुकार दबाकर छटपटाने की जरूरत है, और न यहाँ मुझे असहाय होकर कराहने की। पत्र पाते ही तुरन्त चली आओ। शोध-कार्य के लिए तुम यहाँ रह सकती हो। तुम्हे अपने खर्च के लिए अपने पिता से पैसे माँगने की जरूरत नही। प्रकाशक ने रायल्टी की आधी रकम भेज दी है। वह तुम्हारे लिए चार वर्ष के लिए काफी होगी। अगर तुम यह नही चाहती, तो हम दोनों शादी कर लेंगे। इस दाम्पत्य से अपनी आकाक्षा के रूप मे हम इस ग्रथ को मेरी मृत्यु से पहले ही तैयार कर लेंगे। पत्रोत्तर न दो। तुरन्त चली आओ।"

पत्र की अन्तिम पक्तियाँ पढकर रत्ने का शरीर पसीने से तर हो गया। मैसूर मे कई दिनों तक दोनो मे आत्मीयता से बातचीत हुई थी। अत्यन्त प्रेमपूर्वक जीने वाले दम्पति के स्नेह की अपेक्षा इनकी परस्पर वार्ता मे अधिक आर्द्रता होती थी। जिस दिन रत्ने मैसूर से रवाना हो रही थी, उस सुबह डॉ० राव ने तालाब के पास उसका आलिगन किया था। उसका सिर उनकी गोद मे था। ऐसे सदर्भों में भी उसके मन मे उचित-अनुचित का कोई प्रश्न नही उठा था। बाह्य जगत् का अनुभव न था। उन क्षणों मे उसके साथ कोई था तो विद्या-सागर में तैरता एक विद्वान् जो उसकी सेवा की चाह रखता था। अब भी वह अकेला है। उसे रत्ने की सेवा की आवश्यकता पहले की अपेक्षा आज अधिक है। लेकिन जब विवाह-बधन की बात आई, तो उसके मन मे अनेक समस्याएँ उठ खडी हुई। वे गृहस्थ हैं। घर मे पत्नी है, एक संतान भी है। वह जानती थी कि उनके मन में अपनी पत्नी के प्रति कैसी भावना है। उसने सोचा कि नागलक्ष्मी के विवाहित जीवन में मेरा प्रवेश, विष

उसकी आंखो से आंसू छलक पडे। "वेटी, तेरे मन को शाति मिले" —पिता ने आशिष दी। पहुँचाने के लिए भाई स्टेशन तक आया। भारी मन से उसने कहा—"तेरी शादी का समय अभी बीता नही है। जब शादी की इच्छा हो, मुझे निस्सकोच लिखने न भूलना। मै योग्य वर की खोज करूँगा।"

भाई के चरण छूकर गाड़ी मे चढ़ी तो मन कह रहा था, "शायद फिर देश न लौट सकूं।"

१०

नाटक मे अभिनय के पश्चात् कात्यायनी का नाम कालेज मे प्रसिद्ध हो गया। लेडीज़ रूम मे बैठनेवाली लड़कियो ने उससे परिचय कर लिया। लेकिन कात्यायनी गभीर रहती। अत उससे कोई भी ज्यादा नही बोलती। गत वर्ष उसके साथ जानेवाली वासती को छोड़, और कोई सखी नही थी। हाँ, परिचित तो कई थी।

अगस्त मे 'मूलतत्त्व' नाटक प्रस्तुत किया गया था। कालेज के प्रारभिक दिनो मे किसी ने पढाई की ओर ध्यान नही दिया था। नाटक के कथनोपकथन कण्ठस्थ कर लेने में कात्यायनी को एक माह लगा था। नाटक के बाद पूर्ववत् अपने अध्ययन में लग गई। उस नाटक का हर वाक्य अभी तक उसकी स्मृति मे घूमता रहता था। पढने बैठती तो पन्ने पलटती जाती, लेकिन पाठ समझ मे न आता। नाटक का हर दृश्य, हवा मे चुटकी-चुटकी छोड़ी गई रुई की तरह कल्पना मे उभरता रहता।

पढाई मे मन न लगने पर कात्यायनी नीचे उतर आती। पूजागृह मे पूजा के समय ससुर द्वारा पठित मत्र, घटा-घोष-सा कानो मे गूँजने लगता। मत्र-ध्वनि से वह नाटक की वातें भूल जाती। रसोईघर में चीनी से बातें करती हुई भागीरतम्मा रसोई बनाती। अकस्मात् कही वे बाहर आती और बहू को देखती तो कहती—"काम मैं कर लूंगी, तू पढ़ ले,

परीक्षा देनी है।" ऊपर जाकर वह फिर पढ़ने का प्रयास करती, लेकिन निष्फल। वह नीचे उतरकर घर के बगीचे में चली जाती।

एक दिन सुबह कात्यायनी बगीचे में गई। कुछ दिन पहले लगाये गये केले के वृक्ष खड़े-खड़े मुस्करा रहे थे। अन्य पौधे भी हरियाली लिये लहलहा रहे थे। घर के पिछवाड़े का स्थान भी हरियाली से आच्छादित था। कात्यायनी को सबसे अधिक आकर्षित कर रही थी मोगरे की लताएँ। उसके आधारस्वरूप रोपा गया पौधा अब अपनी जड़ें फैला चुका था। मोगरे की बेल अपनी सुकुमार बाँहें प्रेमपूर्वक फैलाकर उसकी तरुण बाँहों से लिपट गई थी। प्रातः सूर्य अपनी शुभ्र किरणों को सभी दिशाओं में बिखेर रहा था। उस प्रकाश में मोगरे की लताएँ चुपचाप अपने आश्रय को दृढतापूर्वक पकड़े खड़ी थी। उनकी इस चुप्पी में ही चेतना, हर्ष और सौंदर्य प्रस्फुटित हो रहे थे। मोगरे की नसों में क्या है ? पास जाकर कात्यायनी ने लता को आहिस्ता से स्पर्श किया। बाह्य जगत् के कृत्रिम कलंक से न डरते हुए, वह अपने मूलधर्म के अनुसार लहलहा रही थी। उसके हर पत्ते के बीच से अपना मुख दिखाकर कलियाँ खेल रही थी, झूम रही थी। लता प्रति दिन ढेर सारे फूल देती थी।

कात्यायनी के कानों में नाटक की बातें स्पष्ट सुनाई पड़ती—"जो प्रकृति चिरनूतन है, चिर-चेतन है, उसे कृत्रिम धर्म के बन्धनों में बाँधना अधर्म है न देवगुरु ? मेरा मूल गुण ही चेतन है। मन को हर्षित कर देने वाली वनश्री, आँखों को तृप्त कर देने वाले सुन्दर दृश्य, चराचर जीवियों को अन्न देने वाली मेरी व्याप्ति, इन पर किसी भी वैधव्यपूर्ण धर्म का स्पर्श नहीं हो सकता।"

कात्यायनी अब तक इन बातों का केवल अर्थ समझ रही थी। आज हँसती हुई मोगरे की लता के सम्मुख खड़े होकर उसके भाव का भी अनुभव किया। उस भाव के अनुभव से उसका पूरा शरीर काँप गया। नाटक में कैसी चिरन्तन सत्य बातें भर दी है, उन्होंने कहकर मन-ही-मन राज की कल्पना की सराहना की। तुरन्त उसका चित्र आँखों के सामने नाच उठा। नाटक के पश्चात् राज ने उसका हाथ पकड़ा था; उस बात का स्मरण करके उसे सूक्ष्म रोमांच हुआ। यह भी स्मरण हो आया कि बाद में भाषण देते हुए कुलपति ने उसके नाम के पहले 'मिस' शब्द लगा-

कर उसके अविवाहित होने का संकेत दिया था। एक असह्य, अवर्णनीय चेतना उसके व्यक्तित्व को घेरकर उसके शरीर को कँपाने लगी। उसके प्रहार को सहने में अपने को असमर्थ पाकर वह जमीन पर चुपचाप बैठ गई। न जाने कितना समय यों ही बीत गया!

धुँधली विस्मृति में बैठी कात्यायनी को देखकर सास ने कहा—"अरे, यहाँ क्यों बैठी है? समय हो गया। चल, भोजन कर ले।"

भीतर भोजन करने बैठी, लेकिन मन न लगा। रोज की तरह किताबें और टिफिन कैरियर लेकर स्टेशन पहुँची और ट्रेन में बैठ गई। चलती गाड़ी से प्रकृति का चिरनूतन रूप दिखाई दे रहा था। गाड़ी के मार्ग में पड़ने वाली नदी, दोनों ओर के हरे-भरे वृक्ष, लहलहाती फसलें सभी प्रकृति की चिर-नूतनता दिखा रहे थे। थोड़ी दूर पर स्थित चामुंडी-पहाड़ हरी साड़ी पहने खड़ी अद्भुत स्त्री के समान दीख पड़ा। उसके चारों ओर मँडराते बादलों को देखकर उसे ऐसा लगा मानो उसका प्यार पाने के लिए कोई पुरुष आ रहा है।

उस दिन पहला पीरियड था, अंग्रेजी कविता का। राज इस साल अंग्रेजी कविता पढ़ा रहा था। उन दिनों कीट्स का 'द ईव ऑफ सेंट आग्नेस' पढ़ाया जा रहा था। भाव को इस तरह मग्न होकर समझाता कि छात्रों का मन राग-रंजित हो उठता। सारी कक्षा में ऐसी नीरवता छा जाती कि सुई के गिरने की आवाज भी सुनाई पड़ जाये।

कात्यायनी सोचती, 'इस वर्णन में आनेवाला दृश्य भी प्रकृति की मूल चेतना में व्यक्त एक स्वरूप ही है। उस दिन वह नोट्स नहीं ले सकी। भाव-विभोर हो कविता के भाव समझाने वाले राज को वह अपलक देख रही थी। वही नहीं, सारी कक्षा राज को देख रही थी। वह यद्यपि अन्य प्राध्यापकों की तरह सारी कक्षा को देखता रहता, किन्तु बीच-बीच में कात्यायनी को विशिष्ट दृष्टि से देखता। इसे वह ताड़ गई थी। उस दिन तो राज ने अपेक्षाकृत अधिक बार उसे देखा। इस दृष्टि का सामना करने में अपने को असमर्थ पा कात्यायनी अपनी दृष्टि पुस्तक की ओर फेर लेती, लेकिन एक अव्यक्त मधुर शक्ति फिर निगाह ऊपर उठाकर राज को देखने के लिए विवश कर देती।

ज बचपन से ही नागलक्ष्मी के पास पला था। पहले तो उसने उसे त्य सहेली के रूप मे और बाद मे भाभी के रूप मे देखा। एम० ए० र लेने के पश्चात् नौकरी पर लग गया तो लोगो में उसे अपना दामाद नाने के लिए होड़-सी लग गई थी। नागलक्ष्मी सोचती कि अगर राज ी शादी हो जाय तो घर का सूनापन कम हो जायेगा। लेकिन वह शादी लिए तैयार न था। वह छात्रवृत्ति पाकर इग्लैंड जाने की कोशिश में हता था। उसका विश्वास था कि एक-न-एक दिन वह अपने प्रयत्न में फल होगा। इसी विचार से वह अब तक शादी टालता रहा था। ागलक्ष्मी चाहती थी कि छात्रवृत्ति मिलने पर विदेश जाने से पहले राज ी शादी हो जाय, लेकिन डॉ० राव ने इसका अनुमोदन नही किया। वेदेश मे रहने से उसमे विवाह की रूढियों को तोड़ने का मनोभाव जाग ाया था। मैसूर लौटकर कालेज में प्राध्यापक बनकर आया तो डॉ० राव से उसने कहा—"मुझे शादी ही नही करनी है।" इस इरादे के कारण वे भाई के गले जबर्दस्ती किसी लड़की को बाँध देने को तैयार न थे। अपने जीवन की ओर दृष्टिपात करने पर उन्हे राज की बात ठीक जान पड़ती। इसलिए उन्होंने स्पष्ट कह दिया—"इच्छा होने पर उसकी मन-पसंद लड़की से शादी करा देना हमारा कर्त्तव्य है।" राज के नाटक संघ के चारों ओर मँडराने वाली कुछ आधुनिक लड़कियाँ स्वयं राज से शादी का प्रस्ताव रखने के लिए तैयार थी। इसे वह भी भाँप गया था। लेकिन उनमे से कोई भी उसके मन को लुभा सकने मे सफल नही हुई। जब कहीं ऐसी बातें उठने की सभावना होती, वह वहाँ से होशियारी से खिसक जाता था।

राज का मन पूर्णत: कात्यायनी के प्रति आसक्त हो चुका था। उसकी आँखो मे कात्यायनी का रूप छाया हुआ था। उसकी याद में रात-भर करवटें बदलता रहता था। भोजन के प्रति भी उसकी रुचि नही रही। नाटक के प्रति जो उत्साह था, वह भी कम होने लगा था। कात्यायनी अविवाहित होती तो अपनी इच्छा अब तक व्यक्त कर देता। लेकिन उसकी स्थिति राज के साहस को कुठित कर देती। जब उसने यह समझ लिया कि वह उसके प्रति कुछ लगाव दिखा रही है, तो उसे थोड़ी-सी सात्वना मिली। उसने निश्चय कर लिया कि इस अनिश्चित परिस्थिति

करके किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचेगा।
न कालेज में कात्यायनी से उसने पूछा—"कल आप कालेज
।"
छुट्टी है न!"
बात नही। आपसे मुझे एक महत्त्व की बात करनी है। कल
संघ के कमरे मे मिलूँगा, अन्य कोई नही होगा। बेझिझक बातें
"
सकती हूँ कि बातें किस विषय पर होंगी?"
ा सरल विषय नही है कि खड़े-खड़े बातें कर लें।" मुस्कराते
दृढ़ता से राज ने कहा।
दिन दस बजे से पहले ही राज नाटक संघ के कमरे मे जा बैठा
टपटा रहा था। मस्तिष्क में अनजान उद्विग्नता भरी थी।
ीस बार सोचा कि बात किस तरह प्रारंभ की जाय। कोई
पाय नही सूझा। आखिर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उस
ी सूझ जायेगा, वही ठीक होगा। इतने मे कात्यायनी कमरे मे
रोज की तरह उसके हाथ मे पुस्तकें और टिफिन था।
इए" खडे होकर राज ने कहा। वह हिचकिचाती हुई बाहर
ी। दुबारा बुलाया तो भीतर गयी और कुर्सी पर बैठ गयी।
, लेकिन मानो किसी निश्चित विषय की प्रतीक्षा मे बैठी
दो-चार मिनट सोचता रहा, फिर उसने पूछा—"आप जिस
ज चलती हैं, वह कितने बजे यहाँ पहुँच जाती है?"
बजे।"
मौन! नये विषय को खोजकर राज ने पूछा—"आप पहले से
ाई है।"
ायनी ने सिर उठाकर उसे देखा। अपनी असम्बद्ध बात पर
मी आ गई। कात्यायनी के चेहरे पर मंद मुस्कान खेल गई।
होकर राज ने पूछा—"घुमा-फिराकर पहेली बुझाने की
। क्या आप जानती है कि मैंने आपको क्यों बुलाया है?"
नही।"

आप और मैं केवल छात्रा और प्राध्यापक नही है। यद्यपि हम दोनों में से किसी ने कुछ कहा नही, किन्तु वात आप भी जरूर जानती है। सच है न?"

वह खामोश बैठी रही। राज ने ही कहा—"आपके लिए मेरा मन तड़प रहा है। मैने सोचा था, मैं इस जिन्दगी में कभी शादी नही करूँगा। लेकिन अब यह निर्णय हिल गया है।"

यह सुनते ही कात्यायनी को पसीना आ गया। यद्यपि यह अनपेक्षित नही था, किन्तु उसका मन अभिमान, आश्चर्य और आनन्द से पुलकित हो उठा। साथ ही, उस परिस्थिति का स्मरण हो आया जो नये अनुभव के दिनों मे कभी स्पष्ट न थी। अपने पुत्र, सास-ससुर, पति का स्मरण एक साथ उसके स्मृति-पटल पर दौड़ गया। उसे अपनी द्वंद्व-परिस्थिति का वोध इतना स्पष्ट कभी नही हुआ था। अव उसे अपने अस्तित्व के द्वद्व का तीव्र आभास होने लगा।

"चुप क्यों है?"

"मेरी परिस्थिति से आप पूर्णतः परिचित है न?"

"हाँ! यह भी जानता हूँ कि आपका एक वच्चा है। इग्लैंड में मैंने देखा है कि प्रथम पति की सतान होने पर विधवाएँ पुन. शादी कर लेती है। वे वच्चे भी माँ के साथ रहते है। आपका वह पुत्र भी मेरा पुत्र है। मैं उसे प्यार करूँगा।"

जिस द्वन्द्व के वारे मे कात्यायनी कहना चाहती थी, उसके एक अश का उत्तर राज ने स्वय दे दिया था। लेकिन यह उसकी परिस्थिति का पूर्ण हल नही था। उसने कहा—"मेरे सास-ससुर हैं। उनके कुल-गौरव, गाँव में मान-सम्मान आदि के वारे में भी सोचना पड़ेगा।"

"कात्यायनी, यह प्रश्न नया नही है। यह तुम अकेली का प्रश्न नही। क्षमा करना, मैं एकवचन मे वोल रहा हूँ"—कहकर वह उसके चेहरे की ओर देखने लगा। कात्यायनी को असम्मति का कोई सकेत दिखाई न पड़ा तो उसने आगे कहा, "मान-सम्मान का प्रश्न तो मानव जीवन में आनेवाले समस्त विरोधों का मूल है। 'मूलतत्त्व' नाटक में मैंने इसी समस्या को तो प्रस्तुत किया है।"

कात्यायनी की चुप्पी को राज उसकी मौन-सम्मति मानकर उसका

जन्म :

हाथ पकड़कर कहने लगा, "क्या कहती हो ? मन के मूल धर्म से अन्याय करना अनुचित है, तुम्हे भी इतना समझ लेना चाहिए।"

कात्यायनी ने हाथ नही छुड़ाया। उसका मन प्रचण्ड विचार-भँवर मे फँसा चक्कर काट रहा था। वह समझ नही पा रही थी कि क्या हो रहा है। कुछ देर बाद वह शान्त हुआ। "मेरी बात का जवाब दो" कहकर राज ने उसका हाथ दबाया।

"आपके बिना मैं जी नही सकती" कात्यायनी ने कहा।

दोनों के मन को शांति मिली। झंझावात की दो तरंगें जैसे परस्पर मिलकर शान्त होती है, उसी तरह इन दोनों को शान्ति मिली। लगभग एक घण्टे तक दोनों बातें करते रहे। इसके बाद कात्यायनी ने नागलक्ष्मी से मिलना उचित समझा, लेकिन राज ने भाभी को अभी इस सम्बन्ध मे कुछ बताने से मना कर दिया। कमरा बन्द कर वह भी साथ हो लिया।

दिन-भर कात्यायनी का मन प्रफुल्लित रहा। शाम को ट्रेन मे बैठी तो लग रहा था मानो आज सारी प्रकृति आनन्द से हँस रही है। अब तक सिद्धि-सौंदर्य के बिना केवल अपने चैतन्य से लहलहानेवाले प्रकृति-सौंदर्य मे एक नया अर्थ दिखाई देने लगा। सूखी हरियाली में अब फल लगने वाले थे।

शाम को घर पहुँची। रात के भोजन के पश्चात् लेटी तो कात्यायनी का मन विपरीत दिशा मे घूमने लगा। परीक्षा की तैयारी के लिए इस साल ऊपरी मंजिले मे वह अकेली सोती थी। चीनी नीचे दादी के साथ सो जाता था। लक्ष्मी भी भागीरतम्मा के कमरे मे सोती थी। अनायास ही आज कात्यायनी को कालेज का पहला दिन स्मरण हो आया। सास-ससुर के चरण छूकर जिस उद्देश्य से वह कालेज गई थी, उसकी याद हो आई। अपने स्वर्गीय पति के अपूर्ण कार्य, अपूर्ण इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य ने उसके मन को विचलित कर दिया। उसके बताये हुए कारण से सास और खासकर ससुर, दोनो ने तुरत अनुमति दे दी थी। फीस, पुस्तकें, रेल-किराये आदि के लिए ससुर से काफी पैसे मिलते थे। अब कुछ समय मे घर के हिसाब-किताब की जिम्मेदारी भी उसी पर आ पड़ी थी। बच्चा चार साल का हो गया है। अगले वर्ष उसे स्कूल भेजना पड़ेगा। इस परिस्थिति का स्पष्ट चित्र जब उसकी आँखों के सामने उभरा तो उसे लगा अपने संबंधियों

को छोड़कर दूसरा विवाह करना सरासर अनुचित है। उसने सोचा कि आज सुबह का निर्णय, इस परिवार अर्थात् अपने स्वर्गीय पति, विश्वास करने वाले पुत्र, सास-ससुर, इन सबके प्रति अन्याय होगा।

काफी रात गये तक इन्ही विचारो मे कात्यायनी करवटे बदलती रही। अत मे उसने निश्चय कर लिया कि कल से राजाराव से नही मिलना चाहिए। और नागलक्ष्मी के घर जाना भी बन्द कर देना चाहिए। बारह बजे, नीचे उतरकर उसने स्नानगृह मे हाथ-पैर धोये। वहाँ से पूजागृह मे जाकर भगवान् को नमस्कार किया। वह ऊपर जा रही थी कि बैठक मे पढ रहे श्रोत्रियजी ने पूछा—"क्यो बेटी, अभी सोई नही ?"

"भगवान् को नमस्कार करने गयी थी।"

"अच्छा ! जल्दी सो जाओ।"

वह ऊपरी मजिले पर पहुँची। अभी तक ससुर को पढ़ते देखकर उसने अपने-आप निश्चय कर लिया कि परीक्षा के पश्चात् श्रद्धापूर्वक रोज उनसे भगवद्गीता, उपनिषद् का अध्ययन करेगी।

एक सप्ताह तक कात्यायनी राज से नही मिली। कक्षा मे भी नही गयी। इस डर से कि किसी के द्वारा बुलवा न ले, वह लेडीज कामन रूम मे भी नही बैठती। उस सप्ताह उसकी मन स्थिति बड़ी विचित्र रही। दौड़कर उनसे मिलूँ—ऐसी एक अदम्य अभीप्सा उसके सयम को चीरकर ऊपर उठती। लेकिन वह उसे दूनी दृढ़ता से दाब देती। वह आस-पास की प्रकृति के बारे मे अब नही सोचती। अचेत स्वरूप प्रकृति के चेतन रूप मे वह स्वय प्रचण्ड द्वन्द्व-स्थल जो बन गयी थी। धर्म, समाज, नीति आदि काल्पनिक और कृत्रिम रूढियाँ उतनी ही प्रचण्ड शक्ति के साथ फैली हुई थी। उसके मन मे यह जानने की उत्कट जिज्ञासा थी कि वे केवल अभ्यास-बल से प्राप्त विश्वास है या उसकी अन्तरात्मा के मूल्य स्वरूप ? लेकिन जिज्ञासा के सूत्र को पकडकर सत्य को ढूँढ़ना उसकी बुद्धि के परे था। कारण, उसके मन में, जो इन दो शक्तियों की युद्धभूमि थी, जिज्ञासा के लिए आवश्यक शाति और सहन-शक्ति का अभाव था।

एक दिन रात-भर उसे नीद नही आई। कर्म-धर्म की बात सोच-सोच-कर उसका दिमाग खाली हो गया था। अन्तरात्मा से उपजी मन की

पुकार के सम्मुख शेष समस्त भावनाएँ लुप्त हो गयी थी। वह आधी रात के समय खिड़की के पास खड़ी होकर बाहर देख रही थी। अभिषिक्त-सी पूर्ण चांदनी मे मोगरे की लता नये आम्र-वृक्ष का आलिगन कर मुस्कराती खड़ी थी। सुबह तीन बजे तक वही दृश्य देखती रही। तब श्रोत्रियजी जागे। पिछवाड़े बगीचे से होते हुए वे गुंडल नदी की ओर चले गये। कात्यायनी खिडकी के पास ही बैठी थी। श्रोत्रियजी लौटे। कपड़े लेकर सामने के द्वार से वे स्नानघाट की ओर गये। कात्यायनी को सब सुनाई दे रहा था।

शेष दो घण्टे का समय बड़ी मुश्किल से बिताकर, वह नीचे आयी। अब तक वह एक दृढ निष्कर्ष पर पहुँच गयी थी। स्नान करके कपड़े पहने। टिफिन लिया और बगीचे से चमेली के पुष्प चुने। लम्बी-पतली माला बनाई। कदली-पत्र मे लपेटकर उसे अपने रूमाल में रख लिया। भोजन करके घर से निकली तो 'माँ जल्दी आना'—चीनी की यह आवाज उसे स्पष्ट सुनाई नही दी। ट्रेन के धीमी गति से चलने के कारण उसे मन में कोसती हुई वह चामराजपुर स्टेशन पर उतरकर कालेज पहुँची। अभी सवा दस बजे थे। साढ़े दस बजे राज का पीरियड था। इस विश्वास से कि राज अब तक आ गया होगा, वह सीधे प्राध्यापक-कक्ष के द्वार पर पहुँची। चपरासी से राजाराव को बुलाने के लिए कहा। वह बाहर कात्यायनी को देखकर हर्षित हो उठा। उसके "इतने दिनों से···!" वाक्य पूर्ण करने से पहले ही कात्यायनी बोल उठी, "आज छुट्टी ले लीजिए, कहीं एकान्त स्थान पर जायेंगे। मुझे आपसे बहुत कुछ कहना है।" "कालेज के पीछे खड़ी रहो, दो मिनट मे आता हूँ" कहकर राज भीतर चला गया।

राज अपनी साइकिल लेकर आया। दोनों चल पड़े। कुक्करहल्लि के पेड़ो की छाया मे चलते हुए राज ने पूछा, "इतने दिन मेरी नजरों से छिपती क्यो रही?"

"अभी कुछ मत पूछिए! चलिए कहीं बैठकर बताऊँगी; अब कभी ऐसी भूल न होगी।"

चारों ओर हरे-भरे खेत फैले थे। उनके बीच कहीं-कहीं ऊँचे हरे पेड़ खड़े थे। आधे घण्टे तक चलने के बाद भी लोग रास्ते मे घूमते हुए मिलते रहे। अत मे राज ने कहा, "तुम साइकिल पर बैठ जाओ। जल्दी जा

केंगे। कुछ दूर और चलेंगे तो लोग नही मिलेंगे।"

"मुझे साइकिल पर बैठने की आदत नहीं है, गिर गयी तो?"

"मेरी पकड़ मे रहोगी, गिरने का प्रश्न ही नही उठता" और वह ात्यायनी के चेहरे की ओर देखकर हँस पड़ा। कोई देख लेगा, इस सकोच वह हिचकिचाई, लेकिन राज ने उसका हाथ पकड़कर साइकिल पर ागे बैठाया और फिर स्वय सवार हो गया। कात्यायनी का मन एक ाथ अनेक छोटे-बड़े विचारो मे उलझा हुआ था। उसे दोनो हाथो से रकर राज हैंडल पकडे हुए था। शरीर को थोडा झुकाकर पैडल मारता ी कात्यायनी उसकी छाती से सट जाती। आते-जाते लोग उन्हे देखते। ी मील जाने के बाद राज ने पूछा—"और कितनी दूर चलेंगे?"

"मरने तक चलते चलो।"

और एक मील जाने पर एक गाँव मिला। वृक्ष-समूह, तालाब आदि ो पारकर लगभग चार मील और आगे बढ़े। उस निर्जन क्षेत्र मे एक रना मिला। झरने के पास उतरे। राज साइकिल लिये हुए मुख्य मार्ग ोड़ छोटे जगल की ओर बढ़ा। लगभग दो फर्लांग चलने पर निर्जन स्थान मिला। छोटे-छोटे वृक्षो से आवृत वहाँ एक झरना बह रहा था। वहीं ाइकिल रखकर राज ने कहा—"यही बैठें।"

कात्यायनी घास पर बैठ गयी। बगल में बैठते हुए राज ने पूछा— "अब कहो, तुम इतने दिनो तक मुझसे छिपती क्यो रही?"

दीर्घ निःश्वास छोडते हुए उसने कहा—"मन मे एक अजीव-सा द्वन्द्व चल रहा था। कल रात ही निर्णायक स्थिति मे पहुँची हूँ।"

कात्यायनी का हाथ पकड़कर राज ने प्रश्न किया—"क्या द्वन्द्व अब भी है?"

"आप हाथ पकड़े रहते है तो नही रहता। सदा के लिए पकड़े रहें ताकि फिर वह कभी न उठ सके।"

राज की दृष्टि रूमाल में रखी पुष्पमाला की ओर गयी। सुगंध से यद्यपि वह जान गया था, फिर भी पूछा—"इसमें क्या है?"

"आपके लिए ही लाई हूँ" कहकर रूमाल खोलकर माला हाथ में लेकर उसने उसे राज को पहनाना चाहा। बैठी हुई कात्यायनी की विशिष्ट भगिमा, पहनी हुई साड़ी, हाथ में पुष्पमाला देखकर राज की आँखें चौधिया

गयी ।

"कुछ समय बाद पहनाना । एक मिनट यों ही बैठी रहो ।" और वह उसे अपलक निहारने लगा ।

कात्यायनी लगभग तेईस वर्ष की सुन्दर युवती थी । मनमोहक रूप था । गठा शरीर चमक रहा था । चलती तो चरण ऐसे लाल-लाल हो उठते, मानो रक्त प्रस्फुटित होना चाह रहा हो । घनी चाँदनी-सा वर्ण । अँगुलियाँ इतनी सुन्दर कि केवल चित्रकला मे ही चित्रित की जा सकती है । शरीर पर कोई आभूषण नही । सुन्दर घने, घुंघराले काले बाल पीठ पर सर्पिणी-से लटक रहे हैं । गंभीर, लेकिन मुस्कराता चेहरा । स्त्री-सुलभ रूप सुकोमल अगागो से प्रस्फुटित हो रहा था ।

आश्चर्य से राज उसे देख रहा था ।

"ऐसे क्यों देख रहे हैं आज ?"

"आश्चर्य ! मैने 'मूलतत्त्व' सबंधी अपने एक स्वप्न की बात कही थी न ! उसमे तुम इसी सुन्दर भगिमा मे—इन्ही मोहक अंगागो, सौदर्य, भावों मे—स्वप्न मे दिखाई पडी थी । इसी तरह हाथ मे माला थी, लेकिन वह लाल गुलाब की थी । वह निर्वस्त्र थी, किन्तु तुम सफेद साड़ी में हो ।"

लज्जा से कात्यायनी ने सिर झुका लिया । फिर पूछा—"क्या मैं ही आपके नाटक की प्रेरणा थी ?"

"हाँ, अब ऐसा आभास हो रहा है ।"

"तब क्यो नही कहा कि स्वप्न मे मुझे ही देखा था ?"

"तब हममे इतनी निकटता नही थी ।"

राज अब भी अपलक उसे निहार रहा था कि कात्यायनी ने पुष्पमाला उसके गले मे डालकर अपनी आँखें मूँद ली । राज ने धीरे से भुजाएँ पकड़ उसे अपनी गोद मे लिटा लिया और अपनी बाँहों में कस लिया । चारों ओर हरियाली की चेतना लिये वृक्ष खडे थे । झरने का मन्द-मन्द झरता पानी प्रचण्ड चैतन्य का प्रतीक हो उठा था । गले मे पड़ी चमेली की माला की सुगध ने उन दोनों को असाधारण मनःस्थिति मे पहुँचा दिया । युवती के अपूर्व स्पर्शानुभव से राज काँप उठा । पुरुष के सामीप्य से प्रकृति उन्मत्त होकर, उस अचेत स्थिति में भी उसका चैतन्य अपनी मूल शक्ति लिए नाच रही थी । अधखुली आँखों से उसके मोहक मुखड़े को निहारते हुए

राज ने कहा, "प्रकृति !"

"प्रकृति विधवा है ?"

"चिर-नूतन, चिर-चेतन प्रकृति पर धर्म की पावदी लादना अधर्म है।"

नाटक के कण्ठस्थ वाक्य कात्यायनी को स्मरण हो आये। उसी धुन में तन्मय होकर उसने कहा—"चेतना ही मेरा मूल गुण है। मन को हर्षित कर देनेवाली वनश्री, आँखो को तृप्त करने वाले ये सुन्दर दृश्य, वह बहता झरना, क्या इन पर कोई भी धर्म वैधव्य की छाँह छोड़ सकता है ?"

दोनों मौन ! वे अगाध चेतनायुक्त नि.स्तब्धता मे अपने-आपको भूल गये। दोपहर का सूर्य पश्चिम की ओर झुक रहा था। अपने गले का हार उसके गले मे भी डालकर, एक माला मे आवद्ध हो राज ने पूछा—"अब तुम्हारा अन्तर्द्वन्द्व रुक गया ?"

वह अवर्णनीय अनुभव की मौनावस्था मे थी। राज ने उसके चेहरे को ऊपर उठाते हुए पूछा—"अब कहो, मन शान्त हुआ ?"

धीरे से नि.श्वास छोड, अपनी अनुभूति को तात्पर्य-रूप में समझाने की आवाज में बोली—"मैने कई वार सोचा है ! मुझ मे द्वन्द्व कभी मूल रूप मे नही रहा। संसार का अनुभव पूर्ण होने से पहले ही, अनुभव को धोखा देने की स्थिति किसी पर बीतती है तो ऐसे द्वन्द्व का अनुभव होता है। अपनी अनुभूति कह सुनाऊँ तो आप शायद मुझे निर्लज्ज समझ बैठें।"

"नही, कहो।"

"स्त्री को अनुभवों से वंचित करने के लिए हजारो वाधाएँ है। वे सब मानव निर्मित है। कई वार ये वाधाएँ स्त्री की मूल शक्ति का सामना करने मे विफल होती हैं। तव पुरुष सैकड़ों भय-मिश्रित रिवाज फैलाता है। हमारे कई स्वरूपों पर गंदगी का आरोप लगाकर, पुरुषों को हमसे वचित करने का प्रयत्न चलता रहता है। पुरुष तो हमसे दुर्वल है न ?"

"यह वात क्या मुझ पर भी लागू होती है ?" राज ने उसे वाँहों मे लपेट लिया।

"नही ! इसीलिए तो हम एक हुए है। कहिए आप कभी कृत्रिम वाधाओं को मानकर मुझसे विमुख न होंगे ?"

"विमुखता मेरा मूल गुण नहीं है।"

काल-देश को भूल, सुप्त स्थिति में वे दोनों अपनी मूल स्थिति में पहुँच चुके थे। उस हरियाली के आँगन में उनके सामीप्य में विघ्न डालने वाला कोई रीत-रिवाज नहीं था।

कात्यायनी उस दिन सुख से सोयी। उसका मन, जो कई दिनों से अन्तर्द्वन्द्व की युद्धभूमि था, अब सुन्दर नृत्य-मंच बन गया था। वह नियमित रूप से हर रोज राज से मिलती। एक दिन सुबह जल्दी उठकर स्पेशल पीरियड का बहाना बनाकर, सात बजे की गाड़ी से मैसूर चल दी। वह मालगाड़ी थी। उसमें यात्रियों के लिए दो डिब्बे लगे थे। स्त्रियों के लिए अलग डिब्बा न होने की वजह से कात्यायनी को पुरुषों के साथ ही बैठना पड़ा। आज उसे प्रकृति में नया चैतन्य दिखाई पड़ा। अपने चारों ओर के यात्रियों की बातों से ऊबी नहीं, न ही बीड़ी का धुआँ असह्य लगा। खिड़की के उस पार देखते हुए एक किसान ने कहा, "इस बार फसल अच्छी है।"

"फसल जरूर अच्छी है, लेकिन अब भी बारिश की जरूरत है। पृथ्वी और आकाश बार-बार आकर्षित नहीं हुए तो फसल अच्छी न होगी। लगता है आज बारिश होगी। बादल चढ़ रहे हैं"—पास ही बैठे एक अनुभवी वृद्ध ने कहा।

कात्यायनी सुनती रही। उसने बाहर देखा। विशाल खेत वरुण देव की प्रार्थना कर रहे थे। सूखी जमीन आकाश से जल की आशा कर रही थी। उस वातावरण से लगता था, मानो कई दिनों से पानी का दर्शन ही नहीं हो रहा है। किसान कह रहा था—"गर्मी पड़ रही है, बारिश आ भी सकती है।"

कात्यायनी चामराजपुर में न उतरकर सीधे बड़े स्टेशन गयी। साढ़े आठ बजे एक शटल गाड़ी अरसीकेरे की ओर जा रही थी। दोनों के टिकट लेकर राज वहाँ प्रतीक्षा कर रहा था। उसके पास एक बिस्तर और थैला था। वह पूरे सूट में था। शटल में बैठकर दोनों कन्नबाडी उतरे। कात्यायनी की किताबें राज ने थैले में रखीं। कुली से सामान लदवाकर वृंदावन स्थित बड़े होटल में ठहरे। राज ने 'विजिटर्स बुक' में लिखा कि दोनों मद्रास से आये हैं। फिर होटल के नौकर द्वारा बताये

थी। भोजन करते समय वातावरण इतना प्रसन्न था कि आपस में बात तक न हुई। धरती की हरियाली में एक नई शोभा आ गई थी। भोजन समाप्त होते-होते बादल फिर घिर आये। लेकिन ये नये बादल नहीं थे, पहले के घने हो रहे थे। देखते-देखते बूँदा-बाँदी होने लगी। इनमें किसी तरह की मस्ती न थी, पागलपन न था। शांत धरती इस शांत वर्षा का स्वागत कर रही थी। आकाश में काला आवरण नहीं था। अब बादलों में भी आकाश मंद-मंद प्रकाश से सुशोभित था।

लगभग चार बजे राज और कात्यायनी वहाँ से स्टेशन की ओर चले। वर्षा रुक गई थी। बिस्तर और थैला लिये कुली आगे-आगे चल रहा था। अब प्रकृति अट्टहास कर रही थी। धूप निकल आई थी। बादल ओझल हो चुके थे। वे एक शटल गाड़ी में बैठकर मैसूर पहुँचे तब पाँच बज रहे थे। कात्यायनी नंजनगूडु की ओर जाने वाली तैयार खड़ी ट्रेन में बैठ गई। स्टेशन से बाहर निकलने के पहले राज ने कहा—"कल कालेज में मिलेंगे।" स्वीकृति में कात्यायनी ने सिर हिलाया। उसके मुख से कोई शब्द न निकला।

११

डॉ० राव रोज की तरह पुस्तकालय में बैठकर अपने कार्य में लगे हुए थे। कमरे में अब ग्रंथों की संख्या बढ़ गई थी। आवश्यक ग्रंथ वे वहीं मँगा लेते थे। उन्हें व्यवस्थित रखने या उनका उपयोग हो जाने के बाद लौटाने में वे असमर्थ थे। ग्रंथों के उस ढेर में से आवश्यक ग्रंथ ढूँढ़ निकालना बड़ा मुश्किल होता था।

रत्ने को पत्र लिखे दस-पन्द्रह दिन बीत गये थे। उसका कोई उत्तर नहीं आया था। डॉ० राव सोच रहे थे, शायद वह नहीं आयेगी। यह सोचते तो उनका मन रत्ने को और अधिक याद करने लगता। अदम्य उत्कण्ठा से उनका मन कहता, कहीं वह आज ही न आ जाये? एक दिन

नहीं मिलते। लेकिन कितने दिन ऐसे रहना संभव है? हमें सारा जीवन साथ-साथ बिताना है। होस्टल में तुम कितने दिन रह सकोगी? तुम्हारे लिए अगर अलग कमरा लिया जाय तो किसी सामाजिक बंधन के बिना मैं वहाँ कैसे जा सकूँगा? तुम दिन-भर यहाँ अकेली कैसे काम कर सकोगी? लोग क्या कहेंगे? विश्वविद्यालय भी हम पर अनैतिकता का आरोप लगाए बिना नहीं रहेगा। अगर शादी कर लेते हैं तो इन सारी अड़चनों से मुक्त हो सकते हैं।"

"लोग यह नहीं कहेंगे कि पत्नी के होते हुए भी ऐसा किया?"

"केवल चार दिन! 'दूसरी शादी' लोगों के मुँह के लिए चार दिन का आहार हो सकता है, लेकिन हम पर अनैतिकता का आरोप नहीं मढ़ा जा सकता। हम दोनों साथ-साथ अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता से कार्य कर सकते हैं।"

वह पूछना चाहती थी कि इस बारे में घर में बताया या नहीं; लेकिन यह सोचकर चुप रह गई कि इसे सुलझाना इनका काम है, मैं क्यों अप्रासंगिक स्थिति में डालूँ!

दोनों स्टेशन गये। हिन्दू होटल में एक कमरे की व्यवस्था कर रत्ने का सामान रखवाया। "शोधकार्य के सिलसिले में आई है, केवल एक माह के लिए कमरा चाहिए"— कहकर डॉ० राव ने होटल के मैनेजर के पास पैसे जमा करा दिये। फिर दोनों पुस्तकालय में आये तो शाम के पाँच बज रहे थे। कमरे में अव्यवस्थित पड़ी पुस्तकें देखकर रत्ने पूछ बैठी—"यह अव्यवस्थित ढेर क्यों? मैं क्रम से जमाये देती हूँ। अब तो आवश्यक ग्रंथ एवं पृष्ठ निकालने के लिए मैं आ ही गई हूँ।"

"सफर में थक गई होगी, थोड़ा विश्राम कर लो।"

"इतने दिन काम न होने से मेरी तबीयत बिगड़ गई थी। अब सुधर जायेगी" कहती हुई वह ग्रंथों को व्यवस्थित करने में लग गई।

डॉ० राव ने उसी दिन निश्चय कर लिया कि अपनी इस इच्छा को घर में तुरन्त बता देना चाहिए। लेकिन पंद्रह दिनों तक ऐसा नहीं कर सके। विषय का प्रारम्भ कैसे करें—कैसे कहा जाय, इससे उत्पन्न प्रतिक्रिया का सामना कैसे किया जा सकता है, आदि सोचने पर उनका मन

विचलित हो जाता। वे निश्चित रूप से जानते हैं कि यह जानकर नाग-लक्ष्मी को वडा आघात लगेगा। उनका मन कहता कि इस निर्णय से निरपराधिनी नागलक्ष्मी को बड़ा आघात लगेगा। उनका मन कहता कि इस निर्णय से निरपराधिनी नागलक्ष्मी के प्रति क्रूर अन्याय किया जा रहा है। लेकिन उनके निर्णय मे नैतिक सान्त्वना यह थी कि अगर इस निर्णय से पीछे हट जायें तो अपने जीवन की महत्त्वाकाक्षा रूपी शोध-कार्य अपूर्ण ही रह जायेगा। किन्तु नागलक्ष्मी के निरपराध होते हुए भी उनका विचार इस विषम दाम्पत्य से पूर्णतः अलग रहने का न था। उन्हे रत्ने चाहिए, नागलक्ष्मी नही, ऐसी वात नही। उसे छोड़ देने की वात क्षण-भर के लिए भी उनके मस्तिष्क मे नही उठती थी।

एक दिन रात को डॉ० राव घर पर अध्ययन-कक्ष में बैठे थे। पढ़ नही सके। ग्यारह बजे वत्ती बुझाकर, शयन-कक्ष मे जाकर दरवाजा वद कर लिया। अदर वड़े पलग पर नागलक्ष्मी और पृथ्वी सोये थे। वगल में डॉ० राव का विस्तर लगा था। आज वे इस निश्चय से आये थे कि अपना निर्णय पत्नी को वता देना ही चाहिए। उसे नीद आ चुकी थी। वगल मे वैठकर, उसकी वाँह को हिलाकर पुकारा 'नागु'। वह जागी। कमरे मे मद प्रकाश था। अधखुली आँखो से पूछा—"क्या समय हुआ ?"

"ग्यारह !"

"अच्छा !" कहकर पुन· आँखे मूँदकर पति की वाँहो को अपनी वाँहों में भरकर नागलक्ष्मी ने पूछा—"आज मेरा भाग्य खुल गया। कैसे जल्दी सोने आ गये ?"

डॉ० राव की समझ मे नही आया कि आगे क्या वोले। धीरे से केवल 'नागु' कहा। पति के कृश शरीर को अपनी दोनों भुजाओ मे कसकर प्यार से वोली—"पढ़ाई मे दिल नही लगा क्या ? कितने सालो वाद ग्यारह वजे आकर मुझे 'नागु' कहकर पुकारा है ! मैं समझती हूँ। मैं आपकी पत्नी हूँ न ? सो जाइए।" डॉ० राव कुछ नही वोले। नागलक्ष्मी अपने पति की चश्माविहीन आँखो मे गौर से देखते हुए उन्हे एक वार चूमकर वोली—"मैं एक वात कहती हूँ, सुनेंगे ?"

"क्या ?"

"आपके शरीर में काफी उष्णता है। बुखार-सा लग रहा है। अधिक

पढ़ने के कारण आँखें भी धँस-सी गई हैं। आँखें गई तो फिर क्या होगा? भविष्य में हर रविवार को थोड़ा जल्दी उठिए। पुस्तकालय जाने से पहले मैं एक बाल्टी गरम पानी से स्नान कराऊँगी। रोज भोजन के बाद कुर्सी पर बैठ जाइए, मैं तलवों में तेल मल दिया करूँगी।"

डॉ० राव कुछ न बोले। आँखें मूँदकर पत्नी की भुजा पर सिर रखकर लेट गये। "सो गये?" नागलक्ष्मी ने पूछा, तो उत्तर नहीं दिया। 'सो जाइए' और पीठ थपथपाने लगी, मानो माँ बच्चे को सुला रही हो। डॉ० राव का मन थोड़ा-सा जल रहा था। उनकी बुद्धि काबू में नहीं थी। इच्छा-शक्ति पिघल चुकी थी। मन में निहित महत्त्वाकांक्षा की विद्युतशक्ति, पत्नी के स्निग्ध प्रेम से क्षीण हो गई। थोड़ी देर बाद एक दीर्घ निःश्वास ली। "क्यों नींद नहीं आई?" नागलक्ष्मी ने चेहरे की ओर देखते हुए पूछा। उनकी आँखों में आँसू दीख पड़े।

"क्या सोच रहे हैं? मुझसे नहीं कहेंगे?" कोई उत्तर नहीं मिला। "आप नहीं चाहते तो मत कहिए। बचपन में ही माता-पिता के गुजर जाने से अच्छी तरह से आपकी देखभाल के लिए कौन था! हमारे यहाँ भी अधिक न रहे। पढ़ने के लिए मैसूर चले आये। माँ को खोकर बच्चों को जीना नहीं चाहिए। लेकिन अब मैं हूँ न! आपको किस बात की चिन्ता है! इस तरह चिन्ता करना क्या उचित है?" और अपने आँचल से उनके आँसू पोंछने लगी।

"कोई चिन्ता नहीं। तुझे नींद आ रही है, सो जा" कहकर डॉ० राव पास के तकिये पर लेट गये। उनके शरीर पर शाल डालकर नागलक्ष्मी भी चुप हो गई। सारी रात डॉ० राव को नींद नहीं आई। रात के लगभग दो बजे नागलक्ष्मी को नींद आई। वह पति को अपनी बायीं बाँह से ऐसे लिपटाकर सोयी थी मानो रात के अंधकार से भयभीत बच्चे को माँ ने अपने अंक में छिपा लिया हो। उसकी नींद में बाधा न पड़े, इस ख्याल से डॉ० राव अचल लेटे रहे। रात-भर उनके मस्तिष्क में द्वन्द्व रहा। 'इसका कसूर क्या है?' इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। उनका मन केवल इतनी सान्त्वना दे रहा है कि 'मैं इसे त्याग नहीं रहा हूँ। अपने जीवन की महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए ही और एक लड़की को अपना रहा हूँ—बस!'

दूसरे दिन डॉ० राव पाँच बजे उठे। इन दिनों राज सुबह जल्दी उठता और स्नान करके टहलने निकल पडता था। वह स्नान की तैयारी मे था कि डॉ० राव ने कहा—"टहलने जाते समय मुझे वता देना, मैं भी चलूंगा।" हँसते हुए राज ने पूछा—"क्या आप भी स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने लगे ?"

दोनों भाई टहलने निकल पडे।

"मैं तुमसे एक वात पूछना चाहता था" डॉ० राव ने कहा।

राज जानता था कि अवश्य कोई वात भाई के मन को कुरेद रही है। क्या विषय होगा, इसकी अस्पष्ट कल्पना भी उसके मन में न आई थी। "कौन-सी वात ?" राज ने जिज्ञासा प्रकट की। 'कैसे प्रारभ करूँ' इसी दुविधा मे डॉ० राव ने कोई उत्तर नही दिया। राज ताड गया। भाई को उस दुविधा से उबारने के लिए कहा—"सुना है करुणरत्ने आई है।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?"

"लाइब्रेरी मे सुना था कि हिन्दू होटल में रहती है।"

राज से यह सुनकर डॉ० को आश्चर्य तो हुआ, लेकिन इसे अच्छी भूमिका समझकर उन्होंने कहना आरम्भ किया। अपने ग्रथ-निर्माण में आनेवाली वाधाओं की वात कही। अपनी आँखों की कमजोरी के वारे में कहने के पश्चात् वोले—"रत्ने के विना ग्रंथ पूर्ण नही होगा। ग्रंथ का काम न वढ़ा तो विना उसके मैं जिन्दा भी नही रह सकूँगा। उसका इस तरह साथ कार्य करते रहना सामाजिक दृष्टि से अनुचित है। अतः सोच रहा हूँ 'सिविल मैरेज' कर लूं।"

राज कुछ न वोला। कभी-कभी वह भी महसूस करता था कि भविष्य में ऐसा ही कुछ होकर रहेगा। महान् विद्वान् साहित्यकार, अन्यतम कलाकार, वैज्ञानिक आदि के जीवन में ऐसा होता रहता है। खासकर विषम वैवाहिक जीवन मे इसकी अधिक गुजाइश है। लेकिन यह जानकर वह असमजस में पड गया कि उसका भाई भी ऐसा करने की सोच रहा है। अतः उसने पूछा—"नागु के वारे मे क्या सोचा है ?"

"उसे समझाना तुम्हारी जिम्मेदारी है, इसीलिए तुम्हे यहाँ ले आया हूँ। करुणरत्ने को अपनाने का मतलव नागु को त्यागना नही है।"

"फिर भी क्या वह मान जायेगी ? 'तुझे नहीं छोड़ता, तू भी

कहने से क्या कोई भी स्त्री अपने पति को दूसरी शादी की स्वीकृति देती है? मामाजी ने हम अनाथों की देखभाल की। नागु के साथ आपकी शादी करा दी। वे अब नहीं हैं। मामी भी सिधार गईं। आप ग्रंथ लिखते हैं तो इसमें नागु की क्या गलती है? शादी के समय उसकी स्वीकृति की अपेक्षा आपकी स्वीकृति मुख्य थी। आपने पसन्द किया था उसे।"

थोड़ी देर सोचकर डॉ० राव ने कहा—"चर्चा से इस प्रश्न को सुलझा नहीं सकते। तुम आक्सफोर्ड-जैसे स्थानों में रहे हो। मैं जानता हूँ कि नागु के प्रति तुम्हारा बड़ा स्नेह है। मैं भी उसे प्यार करता हूँ। अगर यह ग्रंथ पूर्ण न हुआ तो मैं अशांति से मर जाऊँगा। रत्ने नहीं, तो क्या तुम मेरी मदद कर सकते हो? मैं घर नहीं छोड़ूँगा। नागु को नहीं त्यागूँगा। मेरा विश्वास है कि तुम समझ सकते हो। तसल्ली दिला सकते हो। क्षण-भर के लिए इस विषय को मेरी दृष्टि से समझने की कोशिश करो।"

राज ने भाई की दृष्टि से विषय को समझने की कोशिश की। अधिक प्रयास किये बिना ही उसे स्फटिक-सा स्पष्ट दिखाई दे रहा था। भाभी के प्रति उसका अगाध प्रेम था। भाई की बौद्धिक साधना के प्रति अपूर्व गर्व था। कोई 'ये हैं डॉ० सदाशिवराव के भाई' कहकर परिचय कराता तो उसकी छाती फूल उठती। इन दोनों के बीच वह कर भी क्या सकता है! वह जानता था कि उसका भाई इतना आगे बढ़ चुका है, जहाँ से पीछे हटना मुश्किल है। वह उनसे कठोर बातें नहीं कहना चाहता था। उससे कोई लाभ भी नहीं। यह सोचकर वह चुप रहा। इतना ही कर सकता था कि अधिकतम स्नेहपूर्वक भाभी को समझाकर तसल्ली दिलाये।

डॉ० राव की योजना नागलक्ष्मी के कानों में पड़ी। वह तीन दिन खाना न खा सकी। रात-भर पलकें नहीं मुँदीं। वह जानती थी कि पति के लेखन-कार्य में वह मदद नहीं कर सकती, लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि पति दूसरी शादी कर लें! अपने अध्ययन के हेतु डॉ० राव पत्नी के प्रति बेरुखे ही रहे। फिर भी नागलक्ष्मी ने सब-कुछ सहा। लेकिन उनका दूसरी शादी कर लेना, उसके लिए असह्य था। राज जानता था कि भाभी का मन अनियंत्रित हो गया है। अतः तीन दिन वह कालेज नहीं

गया। घर में ही रहा।

डॉ० राव घर आते। रात के भोजन के बाद अध्ययन-कक्ष में चले जाते। नींद आने पर वहीं आरामकुर्सी पर सो जाते। जब नागलक्ष्मी को यह पता लगा, उसी दिन रात को उनके कमरे में जाकर पति से पूछा, "मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया कि आप दूसरी शादी कर रहे है?"

डॉ० राव के ओंठ नही खुले। "आप जब तक नहीं बोलेंगे तब तक मैं इस कमरे से नही जाऊँगी" कहकर वहीं बैठ गई। एक स्त्री ऐसी परिस्थिति में, लज्जा को सीमित कर, जितना बोल सकती है, उसने कह सुनाया। लेकिन डॉ० राव मूकवत् बैठे रहे। केवल इतना कहा—"राज सब-कुछ बना देगा।"

तीसरे दिन दोपहर को नागलक्ष्मी निराहार बैठी रही। राज ने कहा, "नागु, तुम ऐसे बैठी रहोगी तो मै भी कैसे खा सकूंगा?"

"मुझे अपनी किस्मत पर छोड़ दो, तुम खा लो।"

"तुम्हारे बिना मै नही खाऊँगा, उठो!" राज ने बहुत मनाया, लेकिन वह न मानी। ऐसी विपत्ति मे हर तरह से तसल्ली देने वाले देवर के प्रति उसके भोजन न करने पर वात्सल्य उमड पड़ा।

"राज, माँ गुजर गई। पिताजी चले गये। और अब इन्होंने ऐसा करने की ठान ली है। तुम क्यो मेरी चिंता कर रहे हो?"

"भैया के बारे मे तुम समझी नही! उन्हे अपने ग्रंथ की ही धुन है। रत्ने के बिना ग्रंथ पूर्ण नही होगा। इतना निश्चित है कि अगर ग्रंथ पूर्ण न हुआ तो भैया मानसिक रोग से अंतिम साँस लेंगे! क्या ऐसा मौका आने देना उचित होगा?"

"इस पागलपन में वे मुझे क्यों छोडना चाहते है?"

"तुम्हे छोडने का उनका विचार बिल्कुल नही है। रत्ने से शादी करने के पश्चात् वह भी यहाँ आयेगी। इस घर के लिए आवश्यक सामान लाना, निगरानी रखना मेरी जिम्मेदारी है और भीतर की जिम्मेदारी तुम्हारी। वह रहना चाहती है तो रहने दो। क्या किया जा सकता है!"

"इन्हे ग्रंथ के लिए विद्वानों की मदद चाहिए, तो तुम भी विद्वान् हो। तुम्हारी मदद क्यों नही लेते?"

"इतनी दूर इसीलिए जाना पड़ा कि यह काम मुझसे नही

सकता। नागु, तुम जितना हठ करोगी, काम उतना ही बिगड़ेगा। दूसरी शादी की बात मान लो। वह आकर तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। उसे भी रात-दिन अध्ययन करने की धुन है। तुम एक बेटे की माँ हो, मैं भी साथ रहूँगा ही। इस घर में तुम्हें कोई नीचा नहीं दिखा सकता। वह भी बुरी स्त्री नहीं है। भैया भी तुम्हारी उपेक्षा नहीं करेंगे।"

नागलक्ष्मी ने मन-ही-मन सोचा : 'रत्ने की अपेक्षा वह सुन्दर है। उसके शरीर का सौंदर्य अब भी कायम है। प्रौढ़ भाव ने पहले के सौंदर्य को और बढ़ा दिया है। मुझ-जैसी पत्नी को छोड़कर उस काली लड़की से शादी कर लेने की इच्छा तो इनके पागलपन का सबूत है। चार दिनों में ही अक्ल आ जायेगी और अपने-आप रास्ते पर आ जायेंगे।' लेकिन इस दलील ने उसके दुःख को कम नहीं किया। अब भी खाने के लिए नहीं उठी। पृथ्वी स्कूल गया था। फाटक खोलकर किसी के आने की आहट हुई। राज ने द्वार खोला। "आप तीन दिन से कालेज नहीं आ रहे हैं!" मद स्वर में कहती हुई कात्यायनी भीतर आई। नागलक्ष्मी जानती है कि आजकल कात्यायनी राज से खुलकर बात करने लगी है। लेकिन उसने इस ओर अधिक रुचि नहीं दिखाई। नागलक्ष्मी का चेहरा देखकर कात्यायनी को आश्चर्य नहीं हुआ। लगता था उसे इसका पूर्वाभास हो गया था। फिर भी उसे व्यक्त न कर पूछा—"आपको देखे पाँच-छह दिन हो गये। अरे! आपको यह क्या हो गया? तबीयत अच्छी नहीं है क्या?"

नागलक्ष्मी कुछ न बोली। कात्यायनी रूमाल से वेणी निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए बोली, "लीजिए।"

वेणी को दाहिने हाथ से परे हटाते हुए बोली—"अब फूलों से मुझे क्या लेना!" और उसके आँसू बह चले।

"नागु, तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। वेणी अस्वीकार करने जैसा क्या हो गया है?" राज की बात मानकर उसने वेणी पास रख ली। पाँच मिनट सब मौन रहे। कात्यायनी की नजर राज के चेहरे पर जा पड़ी। तिरछी नजर से राज ने भी देखा। कात्यायनी ने पूछा—"कालेज में एक समाचार सुना था। क्या यह सच है?"

"कैसा समाचार?"

"मालूम नहीं सच है या झूठ। नागलक्ष्मी के आँसू देखकर तो सच लगता है।"

"कहो, बात क्या है ?"

"खबर है कि आपके भाई साहब ने रिसर्च स्टूडेंट मिस करुणरत्ने के साथ कल सिविल मैरेज कर ली है।"

"किसने कहा ?"

"आज लेडीज कक्ष में चर्चा का यही विषय रहा। कहते है कल दोपहर को सब-रजिस्ट्रार के दफ्तर में शादी हुई है।"

राज ने सोचा न था कि उसके जाने बिना ही यह सब होगा। वह सोच रहा था कि पत्नी की अनुमति पाये बिना ही भाई ने ऐसा क्यों किया। कात्यायनी 'देखिए' कहकर नागलक्ष्मी की ओर लपकी। यह जानकर कि पति की दूसरी शादी हो गई, नागलक्ष्मी चक्कर खाकर नीचे गिर पडी और बेहोश हो गई। राज दौड़कर ठंडा पानी लाया। कात्यायनी ने नागलक्ष्मी के सिर पर पानी छिड़का। राज पंखा झलने लगा। पाँच मिनट बीत गये, लेकिन उसे होश न आया। वह न तो पूरी बेहोशी की स्थिति मे थी और न होश ही में। अर्धचेतना की स्थिति में नागलक्ष्मी लेटी थी। "मै जाकर डॉक्टर को बुला लाता हूँ, तुम पंखा झलती रहो" कहकर राज साइकिल लेकर चल दिया।

उसके जाने के पाँच मिनट बाद नागलक्ष्मी को होश आया। उसने उठने की कोशिश की तो कात्यायनी ने टोका और सिर के नीचे तकिये का सहारा दिया। कात्यायनी का हाथ पकड़े वह चुपचाप लेटी रही।

दस मिनट में डॉक्टर आया। भाभी को होश मे आया देखकर राज को तसल्ली हुई। "ऐसा क्यों हुआ बहन ?" डॉक्टर का प्रश्न था।

"मैं नही जानती" नागलक्ष्मी बोली।

"एक इंजेक्शन देता हूँ।"

"नही डॉक्टर !"

आया है तो कुछ तो देना ही चाहिए। कुछ गोलियाँ देकर डॉक्टर चला गया।

"नागु, तुम तीन दिन से कुछ नही खा रही हो। तुम्हारी हालत क्या हुई जा रही है ? चलो उठो, अब खा लो" राज ने समझाया।

"मै नही खाऊँगी, तुम खा लो" लेटे-ही-लेटे बोली।

कात्यायनी परिस्थिति भाँप गई। उसने राज को आँखों से संकेत किया। वह उठकर बाहर चला गया। लगभग एक घण्टे तक कात्यायनी ने किसी तरह समझाकर नागलक्ष्मी को भोजन के लिए मना लिया। उसके 'राज को बुलाओ' कहने पर वह भी आ गया। वह दोनों को भीतर ले गई। कात्यायनी ने ही परोसा। दोनो मे से किसी ने एक कौर से ज्यादा नही खाया।

शादी के बाद भी रत्ने के कार्यों मे किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ। डॉ० राव से भी उसने स्वयं यह नहीं पूछा कि भविष्य मे किस तरह रहना है। वह हर रोज सुबह नौ बजे पुस्तकालय में पहुँच जाती। शाम को सात बजे तक काम करती और उस दिन के शीघ्रलिपि मे लिखे गये नोट लेकर होटल पहुँचती। डॉ० राव का टाइपराइटर उसी के पास है। वह रात के बारह बजे तक नोट टाइप करती। डॉ० राव ने द्वितीय खण्ड का लेखन-कार्य प्रारम्भ नही किया था। रत्ने के आने के बाद पढ़े हुए ग्रंथों के नोट भी उसी को लिखाने लगे। उन्हें भी शीघ्रलिपि मे लिख, टाइप कर वह व्यवस्थित रख देती थी।

पति के घर आने पर नागलक्ष्मी भोजन परोसती, लेकिन उसने बात करना तो पूर्णत. छोड़ दिया था। राज भी साथ मे भोजन के लिए बैठता था। पृथ्वी पिता से कभी खुलकर नही मिलता था। रात को अध्ययन के पश्चात् कमरे मे जाकर नागलक्ष्मी और पृथ्वी के साथ सोना तो डॉ० राव ने छोड ही दिया।

एक दिन डॉ० राव ने रत्ने से कहा—"अब तुम्हें होटल मे रहने की क्या आवश्यकता है? घर में बातें करेंगे। तुम भी वही आ जाओ।"

"एक बात मै स्पष्ट कह देना चाहती हूँ, आप मुझे गलत न समझे।"

"कहो।"

"पूर्व सम्प्रदाय मे पत्नी के साथ रहने के लिए मान जायेंगी, लेकिन मेरा सस्कार भिन्न है। एक छाया के नीचे, एक पति के साथ दो पत्नियों का जीवन बिताना, मेरा सस्कार पसन्द नही करता। दूसरे घर मे रहने ` खर्च थोड़ा अधिक अवश्य होगा।"

"खर्च की दृष्टि से मैं यह नही कह रहा हूँ।"

"तो किसलिए ?"

"हम तीनो के मन की शाति की दृष्टि से।"

डॉ० राव का हाथ पकड़कर रत्ने ने कहा — "उसी दृष्टि से मै विरोध करती हूँ। शाति से रहना कठिन है। मैं अलग रहूँगी। मै अपना खाना आप पकाऊँगी। आप उन्ही के साथ भोजन कीजिए। रात को वही सोइए, मैं 'ना' नहीं कहती। मुझे कोई एतराज नही। हम दोनो के एक होने का उद्देश्य ही अलग है। है न ?"

डॉ० राव उसका मुख निहारने लगे। उसकी आँखें इच्छा-शक्ति से चमक रही थी। "यह सब कहने की क्या आवश्यकता है?" और रत्ने के हाथो को धीरे से दबाया।

एक सप्ताह मे सरस्वतीपुर में मनपसंद घर मिल गया। किस्मत से रत्ने को एक विश्वसनीय नौकरानी भी मिल गई। उसने डॉ० राव से अपने साथ रहने के लिए नही कहा। वे कुछ दिन पत्नी-बच्चे के साथ ही रहे। लेकिन पति-पत्नी के बीच बातचीत बंद थी। राज ने प्रयत्न भी किया कि नागलक्ष्मी अपने पति से बोले, लेकिन वह विफल रहा। रसोई-घर मे अपना विस्तर बिछाकर वह पृथ्वी को लेकर वही सोती। एक-दो महीने इसी तरह बीत गये। एक दिन डॉ० राव अपने सारे ग्रंथ एक गाड़ी में लदवाकर रत्ने के घर ले गये। उस समय राज घर पर नही था। नागलक्ष्मी चुपचाप पूर्ण उपेक्षा से रसोईघर मे ही रही, जैसे उसे कुछ मालूम ही न हो।

डॉ० राव के स्थान-परिवर्तन कर लेने पर रत्ने ने कहा — "यह सत्य है कि इससे हमारे अध्ययन मे सुविधा होगी; लेकिन मै कभी यह नहीं कहूँगी कि आप यही रहे।"

"उस बात को जाने दो।" डॉ० राव ने कह दिया कि उस विषय पर वे कुछ भी कहना नही चाहते।

दूसरे दिन भाई को ढूंढता हुआ राज पुस्तकालय पहुँचा। इससे पहले वह स्वयं कभी वहाँ नही गया था। रत्ने समझ गई कि कल की घटना के बारे मे होगा। उसने राज का स्वागत किया। पाँच मिनट बात की, बाहर चली गई।

"मैं तुम्हें बुला भेजने वाला था। बिना बोलचाल के साथ रहना कब तक चलेगा ? इसके अतिरिक्त यहीं रहने से मेरे अध्ययन में अधिक सुविधा होगी। वहाँ रहने के बारे में रत्ने की कोई आपत्ति नहीं है। नागु से कहना कि जिस दिन उसका मन शांत हो जाये उस दिन मुझे बुला भेजे। मैं घर आता रहूँगा।"

"वह बड़ा दुःखी है।"

"मैं समझता हूँ।"

"उसके बुलावे की प्रतीक्षा मत कीजिए। आप स्वयं आते रहिए। थोड़े ही दिनों में सब ठीक हो जायेगा।"

"अच्छा" डॉ० राव ने स्वीकार किया। थोड़ी देर सोचकर फिर कहा "देखो, इस समय मुझे तुमसे दूना वेतन मिलता है। पुस्तक की रायल्टी भी मिलती है। नागु और पृथ्वी की ओर शुरू से तुम्हीं ने ध्यान दिया है। मैं वहाँ आता रहूँ तो भी जिम्मेदारी तुम्हारी ही है। हर महीने मेरे वेतन के दिन यहाँ आना। खर्चे के लिए कुछ रुपये दूँगा।"

"उसकी जरूरत नहीं।" राज ने खिन्न होकर कहा—"नागु के खाने का पैसा आप देंगे ! हमारी माँ जिंदा होती तो क्या बड़े बेटे से पैसा लेकर छोटे बेटे के घर खाना खाती ? खर्चे के लिए पैसे कम पड़े तो मैं स्वयं आकर कहूँगा। आपको बार-बार शोधकार्य के लिए बाहर जाना पड़ता है; ग्रंथ खरीदने के लिए भी पैसों की जरूरत पड़ती है। पैसों की चिंता न कीजिए।"

राज जाने लगा तो डॉ० राव ने कहा, "यहाँ आकर हमारी भी खबर लेते रहना !"

"अच्छा" कहकर राज चला गया।

आठ दिन रत्ने ने खाना पकाया। लेकिन वह डॉ० राव को नहीं भाया ! इसके अलावा, वे यह नहीं चाहते थे कि वह रसोईघर में समय बर्बाद करे। इसलिए एक नौकर रख लिया और दोनों अपनी उद्देश्य-साधना में रत हो गये।

१२

नवरात्र की छुट्टियाँ समाप्त हुईं। बड़े दिनों की छुट्टियाँ भी बीत गई। राज और कात्यायनी रोज कालेज मे मिलते। नाटक संघ के कमरे मे बैठे दोनो बातें करते। कात्यायनी राज के घर भी हो आती। आजकल नागलक्ष्मी किसी से भी नही बोलती। रसोई बनाकर राज और पृथ्वी को परोसती और चुपचाप रसोईघर के एक कोने में सिमटकर बैठ जाती। राज उसके पास बैठकर, दस बार बात करता तो उत्तर एक ही बार मिलता। पहले भी पृथ्वी पिता के पास नही जाता था। उसमे अब भी कोई परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ा। वह इतना ही समझ सका कि उसकी माँ पहले पलंग पर सोती थी, आजकल रसोईघर के फर्श पर सोती है। वह पाँच साल पार कर, पडोस के बच्चों के साथ स्कूल जाता था। चाचा बाजार जाता तो उसे भी साइकिल पर बैठा ले जाता।

एक दिन राज ने नागलक्ष्मी से पूछा—"नागु इस साल मैं शादी कर लूं?"

देवर के मुख से यह सुनकर उसने तुरन्त प्रश्न किया, "मुझसे पूछ रहे हो?"

"लडकी कौन है, जानती हो?"

"कात्यायनी!"

"तुम कैसे जानती हो?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"ऐसी बातें स्त्रियों की समझ में जल्दी आ जाती है। वह जब घर आती है और तुम दोनों कमरे मे बैठकर देर तक बातें करते रहते हो, इससे कोई भी समझ सकता है।"

"तुमने तो कभी नही बताया कि तुम जानती हो!"

"तुमने क्यो नही बताया कि मैं उससे शादी करने जा रहा हूँ?"

राज शर्म से गड़ गया। नागलक्ष्मी बोली, "उसका भी एक बच्चा है। उसे छोड़कर वह कैसे रह सकेगी?"

"उसे भी ले आयेगी। तुम्हें यह शादी पसन्द है?"

"मेरी पसन्द की बात क्यो पूछ रहे हो? सामाजिक रूढ़ियों, धर्म-

कर्म के विरुद्ध चले तो भविष्य में सबका कल्याण कैसे होगा ?"

धर्म-कर्म संबंधी अपने विचार उसने कई बार नागलक्ष्मी को बताये थे। अब पुन. उस सम्बन्ध मे भाषण देने लगा—"जो मुझे पसन्द नही है, ऐसी किसी लडकी से शादी करके मैं उसके साथ जीवन कैसे बिता सकूँगा ! इसलिए मुझे लगता है कि कात्यायनी ही मेरे लायक लड़की है। तुम भी इसे पसन्द करोगी न ?"

नागलक्ष्मी को अपना जीवन स्मरण हो आया। अब जीवन को वह निर्लिप्त भाव से देखने को कोशिश कर रही थी। उसने कहा—"तुम ठीक कह रहे हो। वैसा ही होने दो।"

उस दिन दोपहर को कात्यायनी ने आकर नागलक्ष्मी से कहा—"आप मुझे अपनी बना लीजिए।"

नागलक्ष्मी मन-ही-मन कह उठी, "तुम दोनों का कल्याण हो।"

मार्च के तीसरे सप्ताह मे कात्यायनी की परीक्षा थी। फरवरी के अन्त मे एक दिन राज ने कात्यायनी से कहा, "अब देर नही करनी चाहिए। अपने घर से अनुमति ले लो तो हम शादी कर लें। तुम्हें अब कालेज मे मिलने वाली लडकी की तरह नही रहना चाहिए।"

इसके लिए कात्यायनी भी उत्कठित थी। घर की सारी बात बताकर, सास-ससुर की अनुमति लेकर, अपने भावी पति के घर जाने की आतुरता गत तीन महीनों से थी। लेकिन घर में कहे तो कैसे ? वह जानती थी कि उसके इस निर्णय से श्रोत्रिय-परिवार पर वज्रपात-सा होगा। वह अच्छी तरह से जानती थी कि उस परिवार का स्तर, मान-सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा और परम्परा से प्राप्त उनका विश्वास आदि उसके इस निर्णय से चूर-चूर हो जायेगे। अब भी वह उसका घर था। पाँच साल पहले इस घर की देहली पर चावल से भरे बरतन को बायें पैर से ठोकर मारकर सम्पत्ति का ज्वार आने का सकेत देकर वह उस घर में प्रविष्ट हुई थी। श्रोत्रिय-परिवार के वश-वृक्ष में उसका नाम अमिट रूप में लिख गया था। उसे मिटाने के लिए वह तैयार थी, लेकिन वह यह जानती थी कि उस स्वच्छ, विशाल पथ का वह स्थल कलकपूर्ण दिखाई देगा। और उन सास-ससुर का क्या होगा, जो पुत्र के स्वर्गवास के पश्चात् ...ि के लिए अपने पौत्र का मुँह जोहते जी रहे है ?

ये विचार उसके मन में पहले भी उठे थे। जब पहली बार दिल खोल-कर उसने राज से बात की थी, उसी दिन यह विचार मन मे चक्कर काट रहा था। लेकिन उसके अतृप्त गृहस्थ-जीवन ने इन विचारों को दबाकर उसे पूर्णतः घेर लिया था। सास-ससुर को अपना निर्णय बताने का दिन आया तो वह विचलित हो गई। राज हर रोज प्रश्न करता, "घर मे पूछा?" और एक दिन क्रोध में कह बैठा—"अगर इतना साहस नहीं था तो मेरे साथ इतनी दूर क्यों चली आईं?" कात्यायनी के मन मे यह विचार भी आया कि बिना बताये एक दिन बेटे को लेकर मैसूर चली जाये और पत्र द्वारा अपना निर्णय सास-ससुर को बता दे। लेकिन वह यह सोचकर चुप रह गयी कि यह नीच कार्य होगा। उस पर ससुर का जो विश्वास था, उसे ओछे तरीके से कलंकित करने के लिए उसका मन तैयार न था।

मार्च का पहला सप्ताह बीत गया। अब पन्द्रह दिनो तक कालेज की छुट्टी के कारण, परीक्षा प्रारम्भ होने तक, कात्यायनी मैसूर नही जा सकती थी। उस दिन राज ने स्पष्ट कह दिया—"अगर तुम घर मे नही बताओगी तो मैं पत्र लिखकर बता दूंगा। तुम्हे आज नंजनगूड़ जाना ही नही चाहिए।"

"आज रात अवश्य कहूँगी। कल क्लास नही है, फिर भी मैं आऊँगी। आप भी आइए। नतीजा बता दूंगी"—यह आश्वासन देकर कात्यायनी शाम की गाड़ी से लौटी। रास्ते-भर वह यही सोचती रही कि पूछूँ कैसे। बात प्रारम्भ कैसे की जाय। आखिर कुछ भी न सूझा। ट्रेन नंजनगूड़ स्टेशन पर पहुँची तो उसके दिल की धड़कन बढ चली। अनजान, अव्यक्त भय से वह कांप रही थी। शरीर पसीने से तर हो गया था। चाल असन्तुलित हो गयी थी। किसी तरह वह घर पहुँची।

"क्यों बेटी, इतना पसीना कैसा? चैत्रमास आ रहा है, कड़ी धूप है, बाहर पैर रखना भी कठिन है। सरकार जल्दी से परीक्षा समाप्त क्यों नही कर देती?" श्रोत्रियजी ने पूछा।

ससुर को बिना उत्तर दिये वह ऊपर चली गयी। पुस्तकें अलमारी में रखकर नीचे उतरी। हाथ-पैर धोये, कपड़े बदले। चीनी ने पास आकर पूछा, "माँ, इतनी देर क्यों हुई?" बेटे को अंक में भर लिया। रात के

भोजन तक किसी से नही बोली। ऊपर अकेली विचारमग्न बैठी रही। अपनी सारी इच्छा-शक्ति को बटोरा और निश्चय किया कि भोजन के पश्चात् ससुर से बात करनी ही है। भोजन के बाद श्रोत्रियजी दीवानखाने में थे। लेकिन बोलने का साहस नही कर सकी। नीचे उतरने के लिए जब उठी, तो पैर इतने अशक्त लगे मानो लुढक ही जायेगी। वह वैसे ही बैठ गयी। नीचे सब सो गये थे। ग्यारह बजे के करीब उसे एक बात सूझी : मुझे जो कुछ भी कहना है, पत्र में लिख दूँ। कल उसे ससुर को सौंपकर मैसूर चली जाऊँगी। शाम को लौटूँगी तो वे स्वयं ही बात छेड़ेंगे। तब बात करना आसान होगा।

हाथ मे कागज-पेंसिल लेकर सोचने लगी कि क्या लिखूँ। लेकिन कुछ नही सूझा। पाँच मिनट बाद वह लिखने लगी। सुबह के लगभग तीन बजे तक लिखती रही। पूरे चौदह पन्ने अपने विचारों से भर दिये। उसने लिखा था कि मनुष्य के मूल स्वभाव को कुचलकर समाज मे किस तरह कृत्रिम रीति-रिवाज और रूढियाँ फैलती हैं। इसका भी विस्तार-पूर्वक विश्लेषण किया कि स्त्री-पुरुष के सहज सुखमय जीवन मे समाज के आचार-विचार किस तरह बाधक बनते हैं। धर्म के मूल प्रश्न को उठा-कर जिज्ञासा व्यक्त की और अन्त मे लिखा .

"मेरा नम्र निवेदन है कि आप समाज के अंधविश्वास के परदे को उठाकर इसे मानवीय दृष्टि से देखें। मेरी जगह अगर आपकी अपनी बेटी ऐसा कदम उठाती तो उसके प्रति जो सहानुभूति आप दिखाते, मैं उसी की अपेक्षा करती हूँ। मैने आपके विश्वास को कभी ठेस नही पहुँचायी। आपकी अनुमति लेकर, आपका पवित्र आशीर्वाद पाकर ही अपने नये जीवन का प्रारम्भ करने जा रही हूँ। आपको सारी बातें कह सुनाना कठिन है, अतः पत्र लिखना पडा। आपके चरणो मे मस्तक नवाकर प्रार्थना करती हूँ कि जब मैं शाम को लौटूँ तो मुझे आशीर्वाद दें।"

लिखे हुए पन्नों मे वह पिन लगाने लगी तो वह टेढी हो गयी। तब छेद करके उन्हें धागे से बाँध दिया और एक बड़े लिफाफे मे बंद कर सो गयी। एक तरह से तसल्ली मिली और उसे नीद आ गयी। आँख खुली तो सुबह के साढे सात बज गये थे। जल्दी-जल्दी स्नान किया। भोजन के पश्चात् टिफिन और पुस्तकें उठाईं। लिफाफा उठाने लगी तो हाथ काँपने

लगा। फिर भी मन को मजबूत बनाकर नीचे उतरी। भगवान् की पूजा कर, श्रोत्रियजी बाहर निकल ही रहे थे कि कात्यायनी ने आवेश के साथ उनके चरणों का स्पर्श किया।

"आज क्या विशेष बात है बेटी ? परीक्षा के अभी पन्द्रह दिन बाकी है।"

"कोई विशेष बात नही, इस पत्र को देख लीजिए"—कहकर लिफाफे को उनके हाथ मे थमाकर फुर्ती से घर से निकल पड़ी। विस्मित होकर श्रोत्रियजी कुछ देर उसे देखते रहे। बाद मे लिफाफे की याद आई।

घर से निकलने पर कात्यायनी उद्विग्न थी। किसी तरह ट्रेन मे चढ़ी। चामराजपुर मे राज दिखाई पड़ा। वह भी आकुल था। बातें करते हुए दोनों घर की ओर चल पड़े। पत्र के बारे मे बताकर कात्यायनी बोली—*"मै कल उत्तर दे दूँगी।"* राज ने *कहा—"अब तुम्हारा आ* जाना ही मेरे लिए अन्तिम उत्तर है।"

शाम को घर लौटते समय कात्यायनी सकोच से दबी जा रही थी। घर पहुँचते ही ससुरजी क्या पूछेंगे, मै क्या उत्तर दूँगी; अनेक कल्पित प्रश्न उसके मस्तिष्क मे उठ रहे थे। एक अव्यक्त भय भी था। फिर भी आज उसके धीरज, इच्छा-शक्ति की परीक्षा का दिन था। अपना समस्त साहस बटोरकर घर मे प्रवेश किया। श्रोत्रियजी एक किसान से बाते कर रहे थे। वह ऊपर चली गई। रोज की भाँति सास के पास जाने की आज हिम्मत नही हुई। वह जानती है कि श्वसुर किसी भी हालत में नाराज नही होते। लेकिन सास की बात ही और है। स्वभाव से शात होते हुए भी उन्हे क्रोध आ जाता है। कभी-कभी अपने पति पर भी बिगड़ उठती है। *कात्यायनी की कल्पना थी कि श्रोत्रियजी ने पत्र की सारी बातें पत्नी से* कही होगी, घर मे बडी उथल-पुथल मचेगी। कात्यायनी ने इसके लिए मानसिक तैयारी कर रखी थी। लेकिन सास को पता ही न लगा कि वह लौट आई है। वे रसोईघर में चीनी से बातें कर रही थी। कात्यायनी नीचे नही उतरी।

साढ़े आठ बजे पूजा के बाद श्रोत्रियजी ने उसे खाने के लिए पुकारा साहसपूर्वक वह नीचे उतरी। श्रोत्रियजी और चीनी खाने के लि . .

बैठे। भागीरतम्मा परोस रही थी। कात्यायनी चर्चा की प्रतीक्षा में थी, लेकिन वातावरण बिल्कुल खामोश था। श्रोत्रियजी सिर झुकाये चुपचाप भोजन करते रहे। चीनी को दादी लाड़-प्यार से परोस रही थी। खाने के पश्चात् कात्यायनी ऊपर चली गई। उसे सीढ़ियाँ चढ़ते श्रोत्रियजी ने देखा, लेकिन वे कुछ न बोले। यह मौन कात्यायनी को असह्य लगा। असम्मति की प्रतीक्षा में वह वाद-विवाद के लिए भी तैयार थी। लेकिन वह मौन—शायद उपेक्षा-रूपी मौन—उसकी सहनशक्ति के लिए अपरिमित था। बेचैनी से वह छटपटाती रही। अंत में साहस कर नीचे आई। श्रोत्रियजी दीवानखाने में बैठे थे। उनके हाथ में कुछ कागज थे। लगता था किसी विचार में डूबे हुए और कहीं देख रहे हैं। कात्यायनी ने पास जाकर पूछा—"पिताजी, जरा ऊपर आयेंगे?"

"आता हूँ, चलो!"

वह ऊपर गई। दो मिनट बाद श्रोत्रियजी ऊपर गये और अपने कमरे में प्रवेश करते हुए कात्यायनी को बुलाया। उसके प्रवेश करने से पहले वे खिड़की के पास बिछे व्याघ्र-चर्म पर बैठ गये। वह खम्भे के पास खड़ी हो गई। ससुर ने "आओ, पास बैठो" कहा तो कुछ निकट सरककर चादर पर बैठ गई। कुछ समय तक दोनों कुछ नहीं बोले।

पाँच मिनट बाद नीरवता भंग करते हुए कात्यायनी ने पूछा—"आपने पत्र पढ़ लिया होगा।"

"हाँ!"

"अनुमति दीजिए।"

एक मिनट मौन रहकर, अपने शांत सामान्य स्वर में श्रोत्रियजी ने कहा—"मेरी अनुमति लेने का प्रश्न ही नहीं है। तुम्हारी बुद्धि के अनुसार निर्णय करने की तुम्हें स्वतंत्रता है।"

श्रोत्रियजी की बात में भर्त्सना नहीं थी। अत्यंत शांत स्वर में ही उन्होंने यह कहा था। फिर भी कात्यायनी को खटका। "आप ऐसा कहेंगे, तो फिर क्या होगा? आप घर के प्रमुख हैं। आपकी अनुमति के बिना मैं कुछ नहीं कर सकती।"

"तुम अब भी मान रही हो कि मैं घर का प्रमुख हूँ? तुम भी इस परिवार की एक सदस्या हो। जब तक तुम्हारे मन में यह भाव रहेगा,

तब तक तुम्हारे कार्य-कलाप पर मेरा अधिकार रहना स्वाभाविक है। लेकिन जिस क्षण तुम्हारे मन मे अलग मार्ग पर चलने का विचार उठा, उस क्षण से वह अधिकार मैं खो बैठा। ठीक है न ?"

कात्यायनी न जाने किन-किन तर्कों के लिए तैयार होकर आई थी। अपने निश्चय के औचित्य को सिद्ध करने के लिए सैंकड़ों तर्क उसके मस्तिष्क मे घूम रहे थे। लेकिन वह सब भूल गई। उसका मस्तिष्क शून्य में भटकता रहा। फिर भी उसने कहा—"इस समाज में अगर स्त्री के जीवन मे कोई दुर्घटना घटी तो उसे पुनः सुधारने की संभावना नही है। विधुर पुरुष दस बार विवाह कर ले तो कोई आपत्ति नही, स्त्री के अतः-करण को समझने की सहानुभूति का प्रारम्भ से ही अभाव है। और···"

उसे बीच ही मे टोकते हुए श्रोत्रियजी ने कहा—"अब समाज या दुनिया के व्यवहार की चर्चा नही करनी है। यह तुम अकेली का प्रश्न है। तुम्हारे निर्णय में मैं बाधक नही बना, और न बनूंगा। अपनी इच्छानुसार चलने की तुम्हे स्वतत्रता है। लेकिन हमारा निर्णय, सकल्प आदि हमारे अपने-अपने धर्म, जिम्मेदारी आदि के अनुसार होना चाहिए न?"

"क्या योग्य समय पर विवाहित होना मानव का सहज धर्म नही है ?"

"जिसे सहज धर्म कहते है, वही धर्म नही है।" इस स्थिति मे भी वे हँसकर बोले—"विवाहित जीवन का सुख पाना ही जीवन का परम लक्ष्य नही है। गार्हस्थ्य जीवन है वंशोत्पत्ति के लिए। वंश बढ़ जाने पर अगर अचानक घर मिट जाय तो फिर उसी में लौटना धर्म नही।"

कात्यायनी समझ न पाई कि आगे क्या बोले। श्रोत्रियजी भी मौन रहे। दस मिनट दोनों मूकवत् बैठे रहे। फिर श्रोत्रियजी बोले—"वाद-विवाद से ऐसे विषयो का निपटारा नही किया जा सकता। व्यक्तिगत सुख के लिए सकुचित विचारों से ऊपर उठकर देखने पर ही धर्माधर्म स्पष्ट गोचर होते है। तुमने कहा कि पुरुष की दस शादियाँ भी हो सकती है। मैने अभी-अभी कहा कि दुनिया की बात नही करनी। कुछ साल पहले मेरे जीवन में भी शादी की बात आयी थी। मैने मार्ग मे ही धर्म को अपनाया। नही, कहना तो यह चाहिए कि धर्म ने पथ दिखाकर मेरी रक्षा की। जो व्यक्ति अपने-आपको धर्म के हाथों सौप देता है, उसे धर्म सदा हाथ पकड़-

कर चलाता है। तुम्हारे पति ने शायद इस बारे में कहा होगा। नहीं तो, अब भी नीचे जाकर तुम अपनी सास या लक्ष्मी से पूछ लो। अब बहुत देर हो गई है, सो जाओ।"

श्रोत्रियजी उठे। कमरे के द्वार पर रुककर बोले—"इस विषय में पूर्ण आजादी है तुम्हें। मुझे भी विश्वास है कि व्यक्ति पर बाह्य जगत द्वारा जबर्दस्ती लादी जाने वाली रूढ़ियाँ धर्म का पूर्ण रूप नहीं हैं।"

वे धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरकर, सोने के लिए दीवानखाने में चले गये। कात्यायनी को याद आया कि उसने आज सास, ससुर, चीनी किसी का बिस्तर नहीं लगाया तो उसे दुःख हुआ। वह उठकर अपने सोने के कमरे में गई। उसकी शक्ति शिथिल हो गई थी। उसे लगा मानो प्रचण्ड रूप से उमड़ती हुई उसकी सहज-चेतना अब सूख गई है। कोसों उड़कर थकने पर पंख समेटकर जिस तरह पंछी एक किनारे जा बैठता है, उसी तरह कात्यायनी अपने बिस्तर पर सिमटकर पड़ गई।

कात्यायनी का पति नंजुड श्रोत्रिय अपने पिता के बारे में उससे अभिमान से बोला करता था। श्रीनिवास श्रोत्रिय के जीवन में भी ऐसी ही एक कठिन समस्या उठ खड़ी हुई थी। धर्म-पथ पर चलकर, परीक्षा में सफल होकर वे आगे बढ़े थे। धीरे-धीरे वे सारी बातें विस्तार-पूर्वक कात्यायनी को याद आने लगीं।

१३

श्रीनिवास श्रोत्रिय की माँ का जब स्वर्गवास हुआ तो वे पन्द्रह साल के थे। वे अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे और मैसूर की संस्कृत पाठशाला में पढ़ते थे। मृत्यु के समय माँ लगभग पचास वर्ष की थी। पचपन वर्ष के वृद्ध पिता ने पुत्र को मैसूर से बुला लिया और फिर नहीं भेजा। घर में पिता-पुत्र ही थे। घर के पीछे एक कुटिया थी, जिसमें उन्हीं के भरोसे ...ने वाला घर का नौकर माचा अपनी बेटी लक्ष्मी के साथ रहता था।

बेटी को जन्म देकर पत्नी के मरने के बाद माचा ने दूसरी शादी नहीं की। तीन साल की बच्ची को अपने संबंधियों के घर छोड़ दिया और जब वह बडी हो गई तब अपने पास ले आया। मालिक के घर मे बाप-बेटी दोनों काम करते, खाते-पीते और वहीं रहते। छोटी उम्र से ही लक्ष्मी उस घर का काम करने लगी थी।

पत्नी की मृत्यु के बाद, घर मे और कोई स्त्री न होने के कारण वृद्ध नंजुंड श्रोत्रियजी को स्वय ही भोजन बनाना पड़ता था। पुत्र श्रीनिवास भी मदद करता। पिछवाड़े की कुटिया मे माचा अपने एवं बेटी के लिए अलग बनाता था। अब लक्ष्मी दस साल की थी। श्रीनिवास से पाँच साल छोटी। नजुंड श्रोत्रिय रोज रसोई करते-करते ऊब गये थे। पुत्र का मन पढ़ाई में ही रमा हुआ था। मैसूर की पढाई रुक जाने पर भी वह यंकप्पा शास्त्री के घर जाकर न्याय, वैशेषिक आदि दर्शन सीखता था। अपनी छह वर्ष की उम्र में ही श्रीनिवास को अमर-कोश कण्ठस्थ हो गया था। उसने मैसूर में सस्कृत साहित्य, रामायण, महाभारत आदि का अध्ययन किया था। संस्कृत ही उस शाला में पढाई का माध्यम थी। अतः भाषा-सौंदर्य के प्रति अधिक रुचि के कारण वह उसमे प्रभुत्व पाने का प्रयत्न करता था।

पुत्र की विद्या-पिपासा में पिता नजुंड बाधक नहीं बने। फिर भी विद्या के लिए धन खर्च करने को वे तैयार न थे। अब श्रीनिवास श्रोत्रिय जितनी जायदाद के मालिक है, उस समय भी उतनी थी। पूजागृह और रसोईघर के बीच वाले कमरे मे गड्ढा खोदकर एक बडे बरतन में चाँदी के रुपये एवं सोना-चाँदी गाड़ रखी थी। नजुंड श्रोत्रिय रोज उस पर बिस्तर बिछाकर सोते। पिता की कजूसी और पुत्र की ज्ञान-पिपासा को यकप्पा शास्त्री जानते थे। अतः बिना किसी प्रतिफल की अपेक्षा किये ही वे श्रीनिवास को पढ़ाते थे। लेकिन अध्ययन के लिए आवश्यक ग्रथ खरीद देने की सामर्थ्य उनमे न थी। इस प्रकार श्रीनिवास का अध्ययन लड़-खड़ाता हुआ चल रहा था।

रोज रसोई बनाने से छुटकारा पाने के लिए, पत्नी की मृत्यु का वार्षिक श्राद्ध होते ही, नजुंड श्रोत्रिय ने पुत्र का विवाह करना चाहा। यद्यपि यह सर्वविदित था कि वे बड़े ही कंजूस हैं, हर कौड़ी को धोकर

भगवान् के हिस्से में डालते हैं फिर भी उनकी स्थिति देखकर लड़की देने के लिए लोगों में होड़-सी लगी थी। श्रीनिवास सुन्दर था। पिता की तरह काला कुबड़ा-सा शरीर नहीं था। गोरा वर्ण, हृष्ट-पुष्ट, भरा-पूरा शरीर, बड़ी-बड़ी चमकीली आँखें, चौड़ा ललाट, दोनों कानों में वजनदार लाल पत्थर जड़ी बालियाँ पहनता था। इस लड़के को दामाद बनाने के लिए नंजनगूड़ु के भी कई लोग आगे आये, लेकिन उसी गाँव की लड़की लेना श्रोत्रियजी को पसन्द न था। दूर का इलाका हासन की एक लड़की से शादी तय की। लड़की अच्छे घराने की थी। साथ ही वर-वधू की जन्म-कुंडलियाँ जैसी मिलीं, वैसी विरली ही मिलती हैं! शादी से पहले, उस जमाने में वर द्वारा कन्या देखने जाने की प्रथा न थी। लड़की छोटी उम्र की थी, लेकिन श्रोत्रियजी ने यह सोचकर उसे पसन्द किया कि रोज रसोई के काम से तो छुटकारा मिलेगा ही। ग्यारह साल की भागीरतम्मा काली होते हुए भी सुलक्षणी थी। लेकिन कद की दृष्टि से बहुत नाटी थी। शादी के दिन कुछ लोगों ने इस पर व्यंग्य भी कसा था। वरोपचार के रूप में एक चाँदी का रुपया, ताँबे का पंचपात्र, धोती, चप्पल, छाता आदि देकर लड़की के पिता ने सुचारु रूप से आठ दिन की शादी की।

बहू के हाथों पकाया भोजन श्रोत्रियजी के भाग्य में न था। शादी के छह महीने बाद ही वे पेचिश से चल बसे। कुछ लोगों ने कहा, शायद बहू का नक्षत्र ससुर से नहीं मिला। मरने से पहले उन्होंने पुत्र को पास बुलाकर जमीन में छिपा हुआ धन बताया। पिता के श्राद्ध के पश्चात् एक रात जब उस स्थान को खोदा गया तो चाँदी के छह हजार सिक्कों के अलावा सोना-चाँदी इतनी निकली कि श्रीनिवास अकेला न उठा सका। वह जानता था कि गहनों में अधिकांश तो उन लोगों के गिरवी रखे हुए हैं जो छुड़ाने में असमर्थ थे। यह सारी सम्पत्ति और घर का सारा अधिकार अपने हाथ में आते ही पूरे घर का स्वरूप ही बदल गया। विद्या-गुरु यकप्पा शास्त्री की बेटी की शादी में एक हजार रुपये देकर वे गुरु-ऋण से मुक्त हुए। गुरु के बताये ग्रंथों में से उपलब्ध ग्रंथों को खरीदा और इनसे मंजले का अध्ययन-कक्ष सजाया।

नौकर माचा की बेटी लक्ष्मी तब बारह साल की थी। माचा ऊँचा-

पूरा आदमी था। कहते है पहले उसने नीलगिरि के चाय-बगान में काम करते हुए एक सुन्दर विधवा युवती से प्यार किया और उसे भगाकर ले आया। नजुड श्रोत्रिय ने दम्पति को आश्रय दिया था। उन्हें भी अपनी जायदाद और धन-सम्पत्ति की रखवाली के लिए माचा-जैसे हृष्ट-पुष्ट एवं विश्वस्त व्यक्ति की आवश्यकता थी। लक्ष्मी ने अपनी माँ का गौर वर्ण और सुन्दरता, हँसमुख स्वभाव और पिता का-सा कद पाया था। लोग कहते थे माचा की पत्नी पति से दो वर्ष छोटी थी। लेकिन रूप ने उसकी उम्र को ढँक दिया था। चार साल पति के साथ रहकर वह लक्ष्मी को जन्म देकर चल बसी। बारह वर्ष की अवस्था में ही लक्ष्मी इतनी सुन्दर थी कि जिसे चाहे, आकर्षित कर सकती थी। बचपन से ही साथ पले श्रीनिवास को वह शीनप्पा कहकर पुकारती। इसी घर में पली होने के कारण वह शुद्ध भाषा बोलती। शादी के दिन अपनी पत्नी को देखकर श्रीनिवास ने एक बार सोचा था—'काश, यह लक्ष्मी ही मेरी पत्नी होती!'

लक्ष्मी के रूपवती होते हुए भी उसकी शादी के लिए उसके पिता के पास पैसे नही थे। कुछ लोगों ने लक्ष्मी का हाथ माँगा भी, लेकिन उनकी हालत अच्छी नही थी। एक दिन श्रीनिवास श्रोत्रिय ने माचा से कहा, "किसी अच्छे घर का योग्य लड़का ढूँढ़कर शादी कर दो। मैं एक हजार रुपये दूँगा।" माचा ने दौड़-धूप शुरू की और मड्य के इलाके में सीमा-प्रदेश कोडियाल के एक युवक को चुना। लक्ष्मी की शादी धूमधाम से सम्पन्न हुई।

एक साल बाद, बड़ी होकर भागीरतम्मा के आने पर श्रीनिवास का घर फिर से सज गया। पत्नी के आने के बाद भी उनका अध्ययन जारी रहा। बार-बार मैसूर जाते और उपलब्ध ग्रंथ खरीद लाते थे। जब कभी कोई विषय समझ मे न आता, तब वे संस्कृत के विद्वानों से पूछ लिया करते थे। यकप्पा शास्त्री ने खुशी से उन सब विषयो को शिष्य को समझाया जो वे जानते थे। श्रीनिवास श्रोत्रिय का जीवन सुख से बीत रहा था कि एक दिन नजनगूडु में प्लेग फैल गया। मृतकों मे माचा भी एक था। लक्ष्मी को बुलाया, लेकिन उसके आने से पहले ही माचा के प्राणपखेरू उड़ चुके थे। वह शव-संस्कार के दूसरे दिन आई। वह वापस जाने . . .

श्रोत्रियजी ने उसे सान्त्वना दी और सौ रुपये हाथ में रखते हुए कहा—"माचा का श्राद्ध अपने गाँव में ही करा देना। यहाँ भी आती रहना। तू भी इसी घर की लड़की है।"

श्रीनप्पा का औदार्य देखकर लक्ष्मी अवाक् रह गयी। उनके चरण छूकर वह चली गयी।

श्रोत्रियजी का अध्ययन चलता ही रहा। नये दाम्पत्य के नये दिन उत्साहपूर्ण थे। तीन वर्ष बीत गये, लेकिन भागीरतम्मा गर्भवती नहीं हुई। इन दिनों श्रोत्रियजी ने धर्मशास्त्र, वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि विषयों का काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे रोज रामायण का पारायण करते थे। ये ग्रंथ श्रोत्रियजी के जीवन पर गहरा व अमिट प्रभाव डालते थे। मानव-जीवन का लक्ष्य क्या है? गृहस्थाश्रम का क्या तात्पर्य है? गृहस्थ के क्या कर्त्तव्य हैं, आदि विषयों पर वे विस्तारपूर्वक चिंतन-मनन करते थे। विवाह के तीन साल बाद भी संतान न होने से वे दुःखी थे। उनका विश्वास था कि वंश-वृद्धि के लिए संतान-प्राप्ति ही विवाह का प्रथम उद्देश्य है। लेकिन अब भी समय था।

एक दिन शाम के छह बजे लक्ष्मी घर आई। आते ही श्रीनप्पा के पैर पकड़कर जोर-जोर से रोने लगी। अनेक तरह से समझाकर, उन्होंने कारण बताने को कहा। बात यह थी कि माचा धोखा खा गया था। लक्ष्मी का पति जुआरी था। हमेशा अँगुली में सोने की अँगूठी और गले में 'चेन' पहने लड़के को सुन्दर एवं योग्य समझकर माचा ने लड़की दी थी। बीस दिन पहले जुए में उसने दूसरों के सारे पैसे जीत लिए थे। रात के दो बजे हारे हुए लोग उसका खून करके भाग गये। अब तीन दिन पहले वे खूनी पुलिस के हाथ लगे। असहाय लक्ष्मी ने यहाँ आकर आश्रय माँगा।

श्रोत्रियजी ने "सब मानव के कर्मानुसार होता है। तू चिंता न कर लक्ष्मी। तुझे इस घर में खाना नहीं मिलेगा क्या," आदि सान्त्वना के शब्द कहे। भागीरतम्मा को भी लक्ष्मी का सहयोग अपेक्षित था। इसके पश्चात् उस हत्या के मामले में पूछताछ के सिलसिले में लक्ष्मी को दो-तीन बार मैसूर कोर्ट में जाना पड़ा। उसे श्रोत्रियजी ही लिवा ले गये थे। अपराधियों को आजीवन सजा मिली।

और दो साल बीत गये। भागीरतम्मा गर्भवती नहीं हुई। श्रोत्रियजी

भागीरतम्मा एक महीना अस्पताल में रही। माँ और लक्ष्मी उसके पास रहीं। श्रोत्रियजी रोज देखने जाते। अस्पताल से लौटने के दिन श्रोत्रियजी को अलग बुलाकर डॉक्टर ने कहा—"बच्चा माँ के गर्भकोश के आकार से बड़ा था। दैहिक दृष्टि से यह विषम दाम्पत्य है। इस बार आपरेशन के कारण बच गयी। अगर पुनः गर्भवती हुई तो मृत्यु निश्चित है। अब दैहिक सबंध को रोकना ही पड़ेगा।"

श्रोत्रियजी का भरा ऊँचा शरीर और चेहरे पर चमकती कांति देखकर डॉक्टर को शायद खेद हुआ होगा! उनसे डॉक्टर ने जो बात कही थी, वही नर्स ने भागीरतम्मा से कही।

श्रीनप्पा ने बच्चे का नाम अपने पिता नंजुड श्रोत्रिय के नाम पर रखा। बच्चा उन्हीं का प्रतिरूप था। आठ महीने बेटी की देखभाल कर भागीरतम्मा की माँ हासन लौट गयी।

घर आने के बाद माँ-बेटे नीचे के कमरे में सोते थे और श्रोत्रियजी ऊपर अपने अध्ययन-कक्ष में। भागीरतम्मा की माँ के रहने तक श्रोत्रियजी का मन काबू में रहा, लेकिन सास के जाने के बाद उनका मन पत्नी के लिए विचलित हो उठा। घर में और कोई नहीं था। लक्ष्मी दिन-भर गाय-बछड़ों के साथ बाहर रहती। घर में सिर्फ पत्नी थी। लेकिन डॉक्टर ने कहा था न कि 'दैहिक दृष्टि से यह विषम दाम्पत्य है। इस बार आपरेशन के कारण बच गयी। अगर पुन गर्भवती हुई तो मृत्यु निश्चित है। अब दैहिक सम्बन्ध रोकना ही पड़ेगा।'

डॉक्टर की चेतावनी श्रोत्रियजी के कानों में सदा गूँजती रही। बच्चे को स्तन-पान कराते समय वे कभी-कभी पत्नी को देखते। भरा शरीर, हृष्टपुष्ट हँस-मुख बालक माँ की गोद में लेटा दूध पीता। बच्चे के शरीर को देखते हुए भागीरतम्मा लड़की-सी दीखती। पत्नी को देखकर पति के मन में सहानुभूति जाग उठती थी। "आइए, बैठिए"—कहकर वह बुलाती तो भी वे वहाँ न ठहरते। घर से खिसक जाते। इस तरह दो महीने बीत गये। चंचल चित्त उनके वश में न रहा। अध्ययन के समय भी मन काबू में न रहता। पूजा के समय भी मन अपने शांत स्वभाव को त्याग, हवा में जलते दीप की तरह काँप उठता। "अनमना भाव से पूजा करने से क्या '—यह सोचकर वे बीच ही में उठ जाते।

भागीरतम्मा यह ताड़ गयी थी, लेकिन विवश थी। नर्स की बात ने उसे भी डरा दिया था। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास था कि पति जबर्दस्ती नहीं करेंगे, लेकिन वह उनके मन मे उठ रहे स्वाभाविक परिवर्तन को समझ रही थी। दैहिक सुख देने में असमर्थ होने के कारण वह पहले से अधिक पति की सेवा करने लगी। एक-दो महीने बीत गये। श्रोत्रियजी ने दूध पीना छोड़ दिया, घी खाना भी बद कर दिया। हर रोज उठने के पश्चात् घर के पिछवाड़े के बड़े बगीचे को खोदकर, बगिया बनाने लगे। इस शारीरिक परिश्रम और पौष्टिक आहार के त्याग से रात को लेटते ही आँख लग जाती। सुबह तक गहरी नींद लेते। लेकिन एक-दो महीने मे वे दुबले हो गये। पहले का-सा शरीर न रहा, चेहरे की चमक जाती रही। "इस तरह घी-दूध छोडने से कैसे चलेगा?"—कहकर भागीरतम्मा घी-दूध परोसने लगती तो श्रोत्रियजी कहते—"मानव-मन को नियत्रण में रखने के लिए इन सबको त्यागना ही पड़ेगा।"

भागीरतम्मा को पति से अपार प्रेम था। उनकी सुन्दर काया के प्रति गर्व था। दिन-प्रतिदिन पति का दुर्बल होना, उसके लिए असह्य हो उठा था। उसके मन में एक विचार आया, 'गाँव में बारह साल की उसकी एक अविवाहित बहन है। उसे बुलाकर पति से शादी कर दी जाय तो समस्या सुलझ जायेगी। वह बहन होने एवं उसकी दीदी होने के कारण घर में मान-सम्मान मे भी किसी तरह का अन्तर नहीं पड़ेगा। लेकिन डर था कि माता-पिता मानेंगे या नही।' एक महीने मे श्रोत्रियजी और भी दुबले हुए। भागीरतम्मा का निर्णय बल पाने लगा। नर्स की चेतावनी से लेकर पति के स्वास्थ्य तक की हर बात बताते हुए, उसकी सलाह के साथ, माँ को पत्र लिखवाया। भागीरतम्मा की बहन उसकी तरह नही थी। सुन्दर व गठे बदन की थी। एक सप्ताह बाद श्रोत्रियजी के ससुर नजनगूडु आये। दूसरे दिन दामाद को लेकर बाहर निकले। दोनों नदी पारकर एक निर्जन स्थान पर बैठ गये। ससुर ने बात शुरू की—"मैं सारी बातें जानता हूँ। सब प्रभु की लीला है। भागू भी मान गयी हैं। घर मे सबकी स्वीकृति है। कावेरी से तुम शादी कर लो। दोनों बहनें साथ-साथ रहेंगी।"

श्रोत्रियजी को आश्चर्य हुआ। पूछा—"क्या इसीलिए आप आये है?"

"हाँ, भागू ने पत्र लिखवाया था। तुम्हें देखकर तरस आता है। तुम्हारे शरीर की क्या हालत हो गयी है ? मैं सब समझ सकता हूँ।" श्रोत्रियजी के ससुर रसिया थे। हासन मे उनकी तीन रखैलें थी, यह बात दामाद भी जानता था।

श्रोत्रियजी मौन रहे। उसे उनकी सम्मति समझकर ससुर ने उठते हुए कहा—"जन्म-कुडलियाँ भी मिलती है। मैं दिखाकर आया हूँ।"

रोज की तरह उस रात श्रोत्रियजी अपने अध्ययन-कक्ष मे सो गये। पठित समस्त ग्रथ उनकी स्मृति मे छा रहे थे। प्रतिदिन पारायण की हुई पोथियाँ, उनकी आँखो के सम्मुख आ गयी। मन मे तीव्र सघर्ष शुरू हो गया। यह सब आधी रात तक चलता रहा। दूसरे दिन संध्या, देवार्चना की और ससुर के नाश्ते के बाद, श्रोत्रियजी उन्हे लेकर बाहर निकले। दलवाई पुल के पास निर्जन नदी-तट की एक शिला पर बैठते हुए श्रोत्रियजी ने कहा—"मैने कल रात सब सोचा। विवाह गृहस्थ-धर्म निभाने और वशोद्धार के निमित्त ही होता है। वशोद्धार के लिए पुत्र ने जन्म लिया है। गृहस्थ जीवन के लिए भागू है ही। पुनः विवाह करना अधर्म है। मैं उसके लिए तैयार नही हूँ।"

दामाद के विचार सुनकर ससुर को आश्चर्य हुआ। इन आदर्शों को वे जानते थे। वे भी सस्कृत के ज्ञाता थे, शास्त्रो का अध्ययन भी कुछ हद तक किया था। वे बोले—"फिर भी हम शरीर की उपेक्षा नही कर सकते। अपनी तन्दुरुस्ती की ओर ध्यान दो। शरीर है तो जीवन है। वह क्षीण होगा, तो क्या होगा ? तुम्हारी यही स्थिति रही तो भागू का क्या होगा ?"

ससुर की बाते श्रोत्रियजी को प्रभावित नही कर सकी। दोनो घर लौटे। उस रात पत्नी और ससुर दोनो ने श्रोत्रियजी को फिर व्यावहारिक बाते बतायी। लेकिन व्यर्थ। ससुर दो दिन वहाँ रहे। उन्होंने दामाद के घर की स्थिति का अध्ययन किया। घर में काम करने वाली लक्ष्मी की ओर भी उनकी दृष्टि पड़ी। बेटी को अपने अनुभव की अत्युत्तम सलाह दी। दामाद ने उन्हे एकागुल किनारदार धोती दी। उन्होंने पौत्र के हाथ मे एक तोले का सुवर्ण-सिक्का दिया। बेटी और दामाद ने पैर छुए और वे अपने गाँव को रवाना हो गये।

श्रोत्रियजी के मस्तिष्क में उनके माने हुए जीवन-आदर्शों एवं अदम्य शक्ति के प्रकृति-गुणों में सदा परस्पर संघर्ष चलता रहता था। अध्ययन के फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि प्रकृति की पकड़ से मुक्त हुए विना मनुष्य स्वतंत्र नहीं है। इस अनुभव को वर्तमान वास्तविक जीवन के अनुरूप ढालकर उन्हें प्रकृति-प्रभाव पर विजय प्राप्त करनी है। इसलिए अपनी समस्त शक्ति से वे उसका सामना कर रहे थे। वे दिन का अधिकांश समय शारीरिक परिश्रम में बिताते। शेष समय अध्ययन में लगाते। मन शांत हो जाने पर अपनी जीत पर मुस्कराते। लेकिन एक-दो घण्टे बाद फिर मन में खलबली मच जाती। देखी हुई सुन्दर स्त्रियों के मुख उनकी आँखों में नाच उठते। लगता, वे उन स्त्रियों से बातें कर रहे हैं। कभी यह भी कल्पना करते कि किसी निर्वस्त्र सुन्दरी ने उनका हाथ पकड़ रखा है। उनकी प्रज्ञा ऐसी कल्पनाओं को रोकने का प्रत्यन करती, लेकिन अतृप्त कामनाएँ एवं जवानी की अभीप्सित इच्छाएँ मिलकर प्रज्ञा के दुर्बल तार तोड़कर अपनी भीषण शक्ति से आगे बढ़ती। जब कल्पना प्रवाह रुककर मन शांत होता तो वे उन विचारों पर पछताते। उनका शरीर दिनों-दिन टूटता जा रहा था।

गाँव लौटने से पहले पिता ने जो सलाह दी थी, वह भागीरतम्मा को नहीं रुची। लेकिन उनके पुनर्विवाह को अस्वीकार कर देने और उनकी बिगड़ती तन्दुरुस्ती को देखकर वह डर गई। उसके पिता व्यावहारिक जीवन के अनुभवी थे। उनकी सलाह भी व्यावहारिक ही थी। भागीरतम्मा ने लक्ष्मी के बारे में सोचा—उसके भी माता-पिता नहीं हैं। पति के साथ चार साल जीवन बिताया ही है। उसे संतान की आशा न होगी क्या? वह अगर मेरे पति के साथ किसी तरह का संबंध रखे तो समाज को पता ही नहीं चलेगा। इसके प्रति सजग रहना चाहिए। अनायास कुछ विपरीत लक्षण दिखाई पड़े तो चुपचाप दवा लेनी पड़ेगी। अत्यंत आवश्यकता पड़ी तो उसी के पिता की एक परिचित स्त्री ही दवा जानती है'''भागीरतम्मा की कल्पना-सरिता निरन्तर बह रही थी। रखैलियों को रख लेना पुरुषों के लिए नई बात नहीं है। उसके पिता, प्रपिता, चाचा इस तरह बाहरी गृहस्थी चला चुके हैं। पिता की अब भी बाहरी गृहस्थी है। फिर भी घर में उसकी माँ बच्चों के साथ सुखी है।

भागीरतम्मा और लक्ष्मी दोनों साथ सोती थीं। रात में कभी बच्चा हठ करने लगता, तो लक्ष्मी उठकर उसे खिलाती-पिलाती। एक दिन रात को भागीरतम्मा ने लक्ष्मी से पूछा—"वे सूखते जा रहे हैं, तू कारण जानती है?"

"मैं क्या जानूँ, बहन!"

"सच कहना।" भागीरतम्मा उसका चेहरा गौर से देखने लगी।

"नर्स ने जो कुछ कहा था, वह आपने ही बताया था और अब अपने पिताजी के आने का कारण भी आपने ही बताया।"

"ओह! मैं भूल ही गई थी।"

बात वहीं रुक गई। भागीरतम्मा पुनः बोली—"एक बात है!"

"कहो, बहन!"

"मैंने सब सोच लिया है। उन्हें जिंदा रहना ही होगा। तू भी यह चाहती है न?"

"क्या कहती है बहन! श्रीनप्पा अगर मर गये तो क्या मैं जिन्दा रहूँगी?"

"बाहर किसी को पता नहीं लगेगा। तू उनके साथ सम्बन्ध बना ले। पत्नी होकर भी इस तरह रहना मेरे भाग्य में लिखा है"—कहकर आँसू बहाने लगी। "एक दिन दोपहर में तू घर में नहीं थी। बच्चा सोया था। उनके चेहरे से मैं समझ गई थी। मैंने उनसे कहा कि डॉक्टर की बात झूठ भी हो सकती है और एक दिन में होता भी क्या है। लेकिन वे यह कहकर बगीचे की ओर निकल गये कि डॉक्टर का हमसे कोई वैर थोड़े ही है जो वह झूठ बोलेगा। भाग्य ही खोटा है। एक दिन में भी अनहोनी हो सकती है। डॉक्टर के मना करने पर भी मैं तेरे प्राण कैसे ले सकता हूँ। आखिर मैं भी तो मनुष्य हूँ।"

भागीरतम्मा की सलाह ने लक्ष्मी को चकित कर दिया। उसने सोचा, कौन पत्नी स्वेच्छा से ऐसा चाहेगी! बचपन से ही उसने श्रीनप्पा को देखा है। उनके महान गुणों के प्रति उसके मन में श्रद्धा और आदर है। उसका पति जब कभी जुआ खेलने जाता, तब उसे श्रीनप्पा की याद आ जाती थी। कई बार उसने चाहा था; कहीं मेरा पति श्रीनप्पा जैसा ही होता! पति हत्या के बाद जब वह श्रोत्रियजी के घर आई, तब भ्रमित थी। लेकिन

शीनप्पा के स्नेहमय व्यवहार और भागीरतम्मा की सहनशीलता से कुछ ही दिनों में वह सँभल गई थी। यौवन की वासना उसे भी सता रही थी। पति जुआरी क्यों न रहा हो, उसके बिना जीवन उसे असह्य लग रहा था। वह जब गाय-बछड़ों को चराने बाहर जाती, तो अनेक युवक शका की नजरो से उसे देखते। लेकिन उसका मन सदा झिझकता। शीनप्पा के प्रति उसमे एक मधुर एवं सूक्ष्म आकर्पण अवश्य था, लेकिन केवल विपय-वासना नही थी।

उसे भागीरतम्मा की बात स्वीकार न थी। भागीरतम्मा करीब पद्रह दिन उन्हीं बातों को दुहराती रही, तो एक दिन बोल पड़ी—"उन्हें स्वीकार है तो मुझे कोई आपत्ति नही।" इसके बाद दो-तीन दिन सिर उठाकर वह शीनप्पा को देख न सकी। तब तक शीनप्पा से एकवचन मे बोलती थी और शीनप्पा को भी यह पसन्द था, लेकिन अब दो दिन से वह बहुवचन का प्रयोग करने लगी तो उन्हें आश्चर्य हुआ। फिर भी उन्होने उस ओर ध्यान न दिया। एक दिन रात के भोजन के पश्चात् पति का हाथ पकड़कर भागीरतम्मा बोली—"एक बात है । आपको स्वीकार करनी होगी।"

"पहले बताओ।"

"आपको स्वीकार करना ही पड़ेगा।"

"शादी की बात है न ? तू पगली है। मुझे क्या हुआ है जो ऐसा कहना चाहती है!"

"शादी की बात नही" कहकर पति को पास बैठाकर अपनी सलाह बतायी। हड़बड़ाकर श्रोत्रियजी ने पूछा—"लक्ष्मी को तू क्या समझ बैठी है ?"

"उसने मान लिया है। उसे भी स्वीकार है।"

श्रोत्रियजी स्तब्ध रह गये, पत्नी का मुख देखने लगे। भागीरतम्मा ने कहा—"मैं तो आपकी सेवा नही कर सकती। दूसरे भी तो ऐसा करते है। मेरी माँ के रहते हुए भी पिताजी की तीन रखैल हैं। कुछ गड़बड़ी हुई तो उपाय भी है। आपको पहले की तरह हृष्ट-पुष्ट रहना चाहिए। कहा गया है न कि चिन्ता ही आदमी की चिता है।" श्रोत्रियजी सुनते जा रहे थे। "आज लक्ष्मी ऊपर मजले पर सोवेगी ! मैंने कह दिया है। आप

ऊपर जाइए" भागीरतम्मा ने समझाया।

श्रोत्रियजी कुछ न बोले। उनका मन मोह में फँस गया था। उनके अंतर्द्वंद्व के दिनों में भी उन्होंने इस दृष्टि से लक्ष्मी की कल्पना नहीं की थी। उसके प्रति उनमें स्नेह था, सहानुभूति थी। वह उसी घर में पली और घर के सुख-दुःख से पूर्णतः परिचित थी। उनकी मदद से ही उसका विवाह हुआ था। पुनः उसी घर में आश्रय लेने आई थी। अब उसने भी इस प्रस्ताव को मान लिया है। यह योजना पत्नी की है, लक्ष्मी को भी उसी ने मना लिया है। मुख खोलकर उनको 'हाँ' करने की भी जरूरत नहीं; केवल ऊपर जाना ही काफी है। मानव जीवन के लिए अपेक्षित लेकिन उनको अनुपलब्ध अत्यंत सुखानुभव अब अपने-आप उनके पास पहुँच गया है। उसे ठुकराना क्या पागलपन नहीं होगा?

बाहर ठंडी हवा बह रही थी। यद्यपि शरीर को वह अच्छी लग रही थी, फिर भी कभी-कभी जोर का झोंका आ जाता था।

श्रोत्रियजी के अध्ययन-कक्ष, जिसमें वे सोते थे, के बगल वाले कमरे में ही लक्ष्मी लेटी थी। श्रोत्रियजी बिस्तर पर बैठे थे। उनका चित्त विचलित था। प्रकृति की समस्त मूल शक्तियाँ पागल होकर आज उनके मस्तिष्क में नाच रही थीं। अपूर्व भाव से आज वे लक्ष्मी के रूप की कल्पना कर रहे थे। लक्ष्मी नीलगिरि इलाके की माँ के गर्भ से जन्मी और पूरे शरीर वाले मामा की बेटी है। माँ सुन्दर थी। तेईस वर्ष की लक्ष्मी ऊँची और गठे हुए बदन की थी। श्रोत्रियजी के समान ही ऊँचा शरीर था। कूर्ग की नारंगी के समान उसके शरीर का रंग था। अंग सुपुष्ट थे। बाहर जाते समय आँचल से मुँह ढँक लेने पर भी उसका सुन्दर रूप किसी को भी लुभा सकता था। वह बगल के कमरे में शायद श्रोत्रियजी की प्रतीक्षा में थी। बाह्य जगत की किसी आपत्ति के बिना वे उसका उपभोग कर सकते हैं। उसका मन काँप उठा। मन उन्माद के प्रवाह में बह चला और साँस की गति बढ़ गयी।

पति के स्वर्गवास के चार वर्ष बाद, आज लक्ष्मी पुनः गृहस्थानुभव पाने की प्रतीक्षा में लेटी है। वह सोचती है, 'श्रीनप्पा यहाँ आयेंगे। आयें तो क्या बोलना चाहिए? किस तरह बर्ताव करना चाहिए? बचपन से ही

शात-गभीर स्वभाव के हैं, लेकिन प्यारा घर-मालिक हैं; मेरी शादी के समय बड़ी मदद की थी; अब पत्नी-सुख के अभाव में दु:खी हैं; आज से हम दोनों का सबंध आजीवन चलता रहेगा।' लक्ष्मी को पाप-पुण्य दिखाई नहीं पड़ा। अपने होने वाले संबध को पति-पत्नी के रूप में देख रही थी। शीनप्पा के कमरे मे कुछ आवाज हुई। शायद वे अब बिस्तर से उठे *होंगे! पैरों की आहट हुई। अब आ रहे होंगे! उसका शरीर काँप रहा* था। वह सिर झुकाए बैठ गई।

उधर, श्रोत्रियजी उठ खडे हुए। लक्ष्मी के कमरे की ओर कदम बढाये। वह रही ठंडी हवा में भी शरीर से पसीना छूटने लगा। पाँच मिनट में सारी धोती पसीने से तर-बतर हो गई। छाती और पीठ पर पसीने की घनी बूँदें दिखाई पड़ी। धोती से मुख पोंछकर खिड़की के पास खड़े हो गये। बाहर अँधेरा था। लेकिन अधकारमय आकाश मे नक्षत्र चमक रहे थे। वे अनादिकाल से इसी तरह चमकते आये है—उनके प्रकाश मे किसी तरह की कमी नही हुई है। कमरे के दूसरे द्वार से श्रोत्रियजी बरामदे में आये। द्वार पर सप्तर्षि मडल चमक रहा था। अरुंधती नक्षत्र भी चमक रहा था। उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाई। अटल, शात ध्रुव नक्षत्र अब भी प्रकाश दे रहा है। सप्तर्षि, अरुधती और ध्रुव नक्षत्रों का काल गिनने का प्रयत्न किया लेकिन अपना पागलपन समझ, विचार बदल दिया। उनका विश्वास कह रहा था, ये सब अनादि, अनन्त ज्योति पुंज है। उनका मन शांत हो रहा था। लगभग आधे घण्टे तक बरामदे में ही खड़े रहे। पैर दुखने लगे तो धीरे-धीरे अपने कमरे मे आकर बिस्तर पर लेट गये।

दस मिनट मे पुन: चित्त-विकार प्रारंभ हो उठा। लक्ष्मी की मूर्ति मानस-पटल पर छा गई। उसके निर्वस्त्र अंग-अंग की कल्पना हो आई। कल्पना मे ही उन्होंने वासना-तृप्ति की। लगभग दस मिनट तक श्रोत्रियजी अपना विवेक खो चुके थे। वे पसीने से तर हो गये। धीरे से उठे, लक्ष्मी के कमरे की ओर पग बढाये।

प्रतीक्षा में लक्ष्मी बेसब्र हुई जा रही थी। धमनियों मे र..
बढ़ चला था। शीनप्पा कमरे मे चहलकदमी कर रहे थे। उनका व
मे जाना, भीतर जाकर लेटना, फिर उठकर टहलना—लक्ष्मी प

गतिविधियाँ मालूम होती रही थी। उसने सोचा, शायद शीनप्पा संकोच कर रहे है, मैं ही उनके पास क्यों न चली जाऊँ ! उसके रोमाचित सर्वांग शात होना चाह रहे थे। लेकिन स्वय-शक्ति से उनका शात होना प्रकृति के विरुद्ध था। पुरुष के सपर्क से आनन्द पाकर ही अपनी आन्तरिक चेतना शात हो सकती थी।

भागीरतम्मा चीनी के साथ नीचे लेटी थी। उसे नीद नहीं आ रही थी। पति को ऊपर गये डेढ़ घण्टा हो रहा था। पति और लक्ष्मी अब तक एक हो गये होंगे ! इस चित्र की कल्पना वह न कर सकी। उसकी आँखें भर आई और सिसक-सिसककर रो पड़ी। साड़ी का पल्ला गोल करके मुँह मे ठूँस लिया, ताकि सिसकियाँ उन्हे सुनाई न पड़ें। पति की तरह उसकी भी भोग की इच्छा थी। डॉक्टर ने गर्भवती न होने की चेतावनी अवश्य दी थी, लेकिन उसकी सभोग-प्रवृत्ति लुप्त नही हुई थी। एक बच्चे की माँ बनकर ही अपनी वासना को किसी तरह दवा सकने मे सफल हुई थी। हृष्ट-पुष्ट पति का यौवन-सुख उसे नही मिला, लेकिन मन निराश नही था। उसके जीवन मे वह अत्यत दु खमग रात थी। लेकिन इसका कारण वह स्वय थी। पति की घटती काया, क्षीण होती तन्दुरुस्ती उसे स्मरण हो आई। हो सकता है कि कुछ दिनों में वे मनोरोग का शिकार हो जायें। दूसरी शादी की अस्वीकृति उसके प्रति अधिक प्यार का कारण था। उसे अपने पिता की उप-पत्नियो की याद आई। माँ का चित्र भी एक बार घूम गया। उसने अपने को तसल्ली दिलाने का प्रयत्न किया और बच्चे को आहिस्ते से उठाकर उसका मुख चूम लिया।

श्रोत्रियजी ने पसीना पोछा। ओढे हुए शाल की ओट मे दियासलाई से कमरे की लालटेन जलाई। लक्ष्मी को प्रकाश दिखाई पड़ा। अब वे आते ही होंगे या मुझे ही वहाँ बुलायेंगे ! उसके हृदय की धड़कन बढ़ चली। चेहरा लाल हो उठा। उन्मादित आँखें अर्धनिमीलित हो गईं।

एक बार श्रोत्रियजी के मन मे आया कि लक्ष्मी को बुला लिया जाय, लेकिन जीभ निर्जीव-सी निश्चेष्ट थी। स्वय उसके पास जाने के उद्देश्य से पग बढ़ाये, लेकिन अचानक इतने लज्जित हो गये कि अपने आपको भी न देख सके। अपनी गुप्त लज्जा को छिपाने के लिए उन्होंने कमरे में जलती लालटेन बुझा दी। लक्ष्मी समझ गई। सोचा, लज्जा से ऐसा

किया, तो मै ही उठकर वहां क्यों न चली जाऊँ ! बगल के कमरे मे पैरों की आहट सुनाई पड़ी। सोचा, उनके पैरो के पास जाकर बैठ जाऊँ। धीरे-धीरे पग बढ़ाये। द्वार तक पहुँची तो उद्वेलित हो उठी। उद्वेग से दम घुटता-सा लगा। अव्यक्त भय भी उसे घेर रहा था। आगे बढ़ने की शक्ति न रही—वह द्वार पर ही बैठ गई।

बाहर जोरों की हवा बह रही थी। उसकी आवाज भीतर आने लगी। दो बार कमरे की खिड़की जोर से खुली और बन्द हुई। श्रीनप्पा ने खिड़की बद करने से पहले दीप जलाने के लिए दियासलाई जलाई। उस प्रकाश मे उन्होने लक्ष्मी को देख लिया। लेकिन हवा के झोंके से दियासलाई बुझ गई। लालटेन नही जली। उन्होंने अनुभव किया, मानो मानव की समस्त काम-शक्तियां उन्हे खीच रही है। अँधेरे मे वे लक्ष्मी की ओर बढ़ रहे थे कि अज्ञात भय ने उनके अन्त.करण को झकझोरा। वे वही जमीन पर बैठ गये। आगे बढने की शक्ति नही रही। आधे घटे से भी अधिक वही बैठे रहे। लक्ष्मी दरवाजे के पास थी। वे धीरे-धीरे उठे और दूसरे द्वार से बरामदे मे चले गये।

लगभग एक घण्टा वही खड़े रहे। भीतर गये तो लक्ष्मी द्वार के पास नही थी। चुपके से द्वार के पास जाकर उन्होने द्वार बंद किया। भीतर आये। खिडकी बंद की। दीप जलाया। 'साख्यकारिका' ग्रंथ निकाला और व्याघ्रचर्म पर बैठकर पढ़ने लगे।

वे प्रकृति-पुरुष से सबधित अतिम भाग पढ़ रहे थे—

रगस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुपस्य तथात्मान प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः॥

अर्थात्, नर्तकी या वेश्या नाट्यशाला मे उपस्थित दर्शकों को अपना नृत्य दिखाकर जिस तरह नृत्य से निवृत्त होती है, उसी तरह प्रकृति पुरुष को अपना स्वरूप दिखाकर निवृत्त होती है।

श्रोत्रियजी का मन इसी प्रश्न मे मग्न था कि प्रकृति का उद्देश्य क्या है ? इसका अन्त क्या है ? एक और श्लोक था—

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुपस्य ॥

अर्थात्, प्रकृति सुकोमल है, अत्यत लज्जामय है। यह जानकर

उसे अपने से भिन्न समझता है, वह पुनः उसकी दृष्टि मे नही पडती। तात्पर्य यह कि विवेक-ज्ञान पाने तक ही प्रकृति का प्रभुत्व हम पर रहता है। वह ज्ञानोदय मुझे कब होगा ? श्रोत्रियजी जानते है कि वह केवल बुद्धि से कल्पित ज्ञान नही है। वे चिंतन-मनन करने लगे कि प्रकृति के मोहजाल से मुक्ति पाना ही इस ज्ञान का सकेत है या ज्ञानोदय होने पर ही यह बधन पिघल जाता है ?

प्रतीक्षा करते-करते लक्ष्मी ऊब गई। वह नीचे उतरी, स्नान-घर मे गई। फिर ऊपर आई। उसके सीढ़ियाँ चढने की आवाज भागीरतम्मा लेटे-लेटे सुन रही थी। स्त्री होने के नाते वह समझ गई थी कि लक्ष्मी स्नानघर में क्यों गई। रुलाई को दवाने के प्रयत्न के बावजूद वह रो पड़ी। असहाय हो, उसने सोने की चेष्टा की; लेकिन नीद नही आई।

प्रतीक्षा से परेशान हो लक्ष्मी बिस्तर पर पड़ गई। शीनप्पा के स्वभाव को पहले से ही जानती थी। वह समझ गई कि धर्म-कर्म के विचार ने शीनप्पा को ऐसा करने से रोक दिया है। उस दिन दोनो मे जो सबध होना चाहिए था, लक्ष्मी की दृष्टि से उसमें किसी तरह की अनैतिकता का प्रश्न ही नही था। वे दोनो मान गये हैं। पत्नी को भी स्वीकार है, डॉक्टर ने पति-पत्नी को अलग रहने की सलाह दी है तो यह लोक रूढ़ि है। शीनप्पा के विचार उसे विचित्र लगते थे। अब उसके मन का आवेग घटने लगा। उन्माद, शरीर-कंपन सामान्य स्थिति में आने लगा। आँखें मूँदकर वह लेट गई। फिर भी आशा की एक मद्धिम किरण उसे दिखाई दे रही थी। उसे ओझल कर, मन सोने के लिए तैयार न था।

श्रोत्रियजी ढाई बजे तक पढते रहे। मन शान्त हुआ, नियत्रित हुआ। केवल नीद उड़ गयी थी। ग्रथ को बद करके रखा। दीप वैसा ही जलता छोड़, सीढियाँ उतरे और नदी की ओर चल दिये। कपिला शात बह रही थी। कुछ समय पानी मे पैर लटकाए पत्थर पर बैठे रहे। अब तक चाँदनी थी। कृष्णपक्ष की दशमी का चाँद आँवले के आकार-सा आकाश मे चढ आया था। श्रोत्रियजी ने धोती पहने ही नदी मे डुबकी लगाई और गीली धोती में ही घर लौटे। भागीरतम्मा अब तक सो चुकी थी। श्रोत्रियजी ने पूजागृह का दरवाजा भीतर से बन्द किया। माथे पर ...प लगाई। संध्या प्रारम्भ किया। एक हजार आठ गायत्री मत्र जपा।

तत्पश्चात् चदन घिसा। वगीचे से फूल लाकर पूजागृह में पुनः आ गये। बहुत देर तक नीद न आने के कारण अतिम वार साष्टांग प्रणाम करते समय श्रोत्रियजी कह रहे थे—'धर्मो रक्षति रक्षितः।"

पूजागृह से निकलने तक श्रोत्रियजी की धोती शरीर पर ही सूख गयी थी। भागीरतम्मा उठी। स्नानादि से निपटकर रसोईघर में गयी। पूजा-गृह का द्वार खुलने की आवाज सुनी। भागीरतम्मा वाहर आई। "क्षण-भर वैसे ही खड़े रहिए"—कहकर अनजान खड़े पति के चरण छुए और आँखों-में-आँखें डालते हुए उसने कहा—"लक्ष्मी ने मुझे सब बता दिया है। मैंने कभी नहीं सोचा था कि आप इतने महान है।"

श्रोत्रियजी पूजा की धुन मे ही थे। कुछ नही वोले। उनका मन एक अव्यक्त और वर्णनातीत शाति से भरा था। चुपचाप वगीचे मे गये और पौधों की क्यारियों मे पानी देने लगे।

दोपहर मे भोजन के लिए वैठे तो उन्होंने कहा—"मैंने संकल्प किया है कि पौष्टिक आहार का सेवन करते हुए भी मन को वश में रखना चाहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी विजय होगी। आज से घी भी परोसो, पीने के लिए दूध भी दो।"

दही-भात खाते समय उन्होंने पूछा—"यह विचार तुझे कैसे आया?"

"पिताजी ने जाने से पहले कहा था कि बेटी, पुरुष के स्वास्थ्य के वारे में तू नही जानती। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा कर।"

श्रोत्रियजी भीतर-ही-भीतर मुस्कराये। कुछ वोले नही। उस दिन से वे पौष्टिक आहार लेने लगे। मैसूर के विद्यार्थी-जीवन मे जिस तरह सुवह उठकर आसन लगाया करते थे, पुनः वैसा ही करना प्रारम्भ कर दिया। अध्ययन मे पहले से अधिक समय लगाने लगे। उनका पुस्तक-भडार वढ़ता जा रहा था, इस तरह अपने मन को वश मे रखने मे [illegible] हुए।

लक्ष्मी कमजोर होने लगी। उस रात के बाद से वह [illegible] के साथ सोने लगी। लेकिन खाने-पीने की रुचि घटने [illegible]। [illegible] लौटने के पश्चात् जो चित्त-शांति मिली थी, वह [illegible] हो गयी। बैठते उसकी आँखों के सामने सीनप्पा का चित्र आने लगा। [illegible]

बैठी । श्रोत्रियजी ने पत्नी से कहा—"अब लक्ष्मी को थोड़ा समझाना पड़ेगा, तू वहाँ न आना ।" लक्ष्मी के पास बैठकर उन्होंने उसका दाहिना हाथ पकड़ा। लक्ष्मी ने सिर झुका लिया । हाथ पकड़े हुए ही उन्होंने कहा—"मनुष्य का गिरना आसान है, उठना बहुत कठिन । सबको अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा । गृहस्थ जीवन भी वैसा ही है । पत्नी के रहते हुए भी, मेरा धर्म-सकल्प है कि मैं ऐसा ही रहूँ । विधवा-जीवन बिताना तेरा कर्म है । तू अब तेईस या चौबीस की होगी । मैं अट्ठाईस का हूँ । अब दस-बीस वर्षों के सुख के लिए नीचे गिरना, दोनों की धर्म-च्युति है । बहुत कठिन होते हुए भी सहना पड़ेगा । तूने भी सुना है न कि जो धर्म का उल्लघन करते हैं, उनकी सात पीढ़ी के पितर रौरव नरक मे गिरते है । क्या इस कारण अपने पितरों को कष्ट देना उचित है ?"

लक्ष्मी चुप रही । वह श्रोत्रियजी की बातों के बारे में सोच रही थी । श्रोत्रियजी ने पुन: कहा—"किसी भी हालत मे मैं तेरा हाथ नही छोड़ूँगा । इसीलिए हाथ पकड़कर कह रहा हूँ । आज से सुबह उठते ही तू भी स्नान कर । पूजा के बाद चरणामृत-प्रसाद दूँगा । श्रद्धा से स्वीकार कर । मन को शांति मिलेगी । रोज पूजा के लिए फूल लाना तेरा काम होगा । प्रात उठकर गाय की पूजा कर ।"

लक्ष्मी कुछ दिनों में चलने-फिरने लगी । वह शीनप्पा से एकवचन मे ही नि.सकोच बात करती । एक दिन उसके हाथ मे एक पत्र देकर श्रोत्रिय जी ने कहा—"लक्ष्मी, किसी का भी जीवन शाश्वत नहीं है । जब तक मैं जिन्दा हूँ, तेरा हाथ नही छोड़ूँगा । अचानक कुछ हो गया तो तुझ पर मुसीबत नही आये, इसलिए तेरे नाम दो एकड़ जमीन लिख दी है । पत्र को अपने सदूक मे रख ले । सरकारी दफ्तर में इसका दर्ज करा दिया है । यदि अचानक यह पत्र कहीं खो भी गया तो भी हिसाब सरकार के पास रहेगा ।"

लक्ष्मी की आँखें डबडबा आईं । "शीनप्पा, यह सब क्यों किया ? एक कौर अन्न खाकर, रोज तुझे आँख-भर देख लेना ही मेरे लिए काफी था !"

पहुँचकर चलने की शक्ति नही रखती, तब तक मैसूर जाकर क्या कहूँगी? किसी निष्कर्ष पर पहुँचने मे मैं असमर्थ हूँ। इन विचारों मे ही उसने शीघ्र स्नान कर लिया। भोजन भी जल्दी किया। एक नोटबुक और सास का दिया टिफिन लिया, अभ्यास-बल से ही राह चलकर स्टेशन पहुँची। मन मे अनिर्दिष्ट, अनिश्चित विचारो का द्वन्द्व चलता रहा। राज को अपना निष्कर्ष बताये पाँच महीने बीत गये थे। उसे हर तरह से पति मानकर ही वह चल रही थी। अनुभव का सस्कार कात्यायनी को राज से कभी किंचित् भी विमुख नही होने देता था। रेल-यात्रा के समय ही किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए उसका मन छटपटाने लगा। पाँच महीने पहले जिस निष्कर्ष पर पहुँची थी, कल रात वह शिथिल पड गया था, लेकिन पूर्णत. समाप्त नहीं हुआ था। हो सकता है, वे आज स्टेशन आये हो! आतकित होकर सोच रही थी कि गाड़ी से उतरते ही क्या करूँगी?

गाड़ी धीमी गति से चल रही थी। खिड़की से चामुण्डी पहाडी दिखाई दे रही थी। गाड़ी कडकोला पहुँची। गर्मी के अतिम दिन थे, पहाड़ी के पेड़-पौधे सूखकर, काले-काले पत्थर-से दिखाई दे रहे थे। पूर्व का सूरज पहाडी के पृष्ठभाग मे आ चुका था। पहाड़ी की छाया दिखाई दे रही थी। अनायास उसे अपने ससुर की याद हो आई। उनकी देहाकृति भी पहाडी-सी भव्य है। उसने सोचा, साठ की इस उम्र मे भी उनकी ऊँचाई, गठा बदन, चलते समय पडते स्थिर कदम, पूजा के समय आँखें मूँदकर बैठने की भगिमा इन सब की तुलना इस पहाड़ी से हो सकती है। इस पहाड़ी और श्रोत्रियजी की मन.निग्रह-शक्ति, सयम और जीवन की समस्याओं का सामना करने की दृढ़ता आदि मे उसे साम्य दिखाई पड़ा। उसका पति जब सिधारा तो सभी रो रहे थे, लेकिन श्रोत्रियजी इकलौते पुत्र को खोकर भी पहाड़ी-से स्थिर समस्त दु.खो का घूँट पीकर शात दिखाई दे रहे थे। मन-ही-मन वह ससुर के उच्च व्यक्तित्व और इच्छा-शक्ति की प्रशसा कर रही थी।

इन्ही विचारों मे डूबी थी कि चामराजपुर स्टेशन आ गया। झुक कर खिड़की के बाहर देखा। राज नही आया था। वह गाड़ी से उतर-स्टेशन के बाहर आई। पहाड़ी अब भी दीख रही थी। दस बज चु

धूप की तपिश बढ रही थी। लेकिन पहाडी का आकर्षण कायम था। आज उस पर चढ़ने की अकारण इच्छा जागी। वह सीधी चल पडी। कृष्णमूर्तिपुर से होती हुई चामुडीपुर पारकर, वगीचो के बीच से आगे बढी। रास्ते-भर धूल थी। हवा का एक झोंका आया और शरीर पर धूल जम गयी।

कात्यायनी इससे पहले भी एक-दो बार इस पहाड़ी पर गयी थी। एक बार पति के साथ गयी थी। सीढियों से ऊपर पहुँचने वाले मार्ग से वह परिचित थी। प्रखर सूर्य सिर पर आ गया था, लेकिन उसकी चिता किये बिना उसने नीलगिरि मार्ग पार किया। पहाड़ी की तराई मे पहुँची ही थी कि दायी ओर बड़ी अग्नि-ज्वाला दिखाई पड़ी। ठहरकर उस ओर देखा। ज्वालाएँ काफी ऊपर तक उठ रही थी। कुछ लोग उसे घेर-कर देख रहे थे। एक के हाथ मे एक लबा बाँस था। उसने मैंसूर का श्मशान देखा नही था, लेकिन सुना था कि मृतक को पहाडी के पास ले जाते है। समझ गयी कि शव का दाह-सस्कार हो रहा है। और कोई समय होता तो वह भयभीत हो जाती। लेकिन आज वह आकर्पक लगा। थोड़ी देर मे चिता के बीच से जोर की 'टप' आवाज हुई। जिसके हाथ में लम्बा बाँस था, वह अधजले शव को पुनः आग मे धकेल रहा था। पगडी पहने ब्राह्मण खडे-खड़े मत्र पढ रहे थे। सस्कार पूर्ण कर वे सब बिना पीछे देखे लौट पड़े।

चिता अभी तक जल रही थी। कात्यायनी कुछ पास जाकर, उसे एकटक देखती रही। शव पूर्णत भस्म हो चुका था। हमारी आशा-आकाक्षाएँ, सुखाभिलापाएँ सब-की-सब जलकर खाक हो जाती है। ये विचार उसके मन मे व्याप्त हो गये। फिर उसने एक निःश्वास छोड़ा। थोड़ी दूर पर और एक शव को ले आते उसने देखा। शव बाँस की बनी अर्थी पर था। चार व्यक्ति उसे कधा दिये हुए थे। कोई आगे-आगे भारी कदमो से चल रहा था। उसके हाथ मे आग थी। शव के पीछे और दो युवक सिर झुकाये आ रहे थे। उनके पास ही लाल शाल ओढ़े पुरोहित निर्विकार भाव से हाथ में कुशा की गड्डी लिये हुए थे। वे पास आये। अर्थी को एक जगह रखा। कात्यायनी के पास आकर पुरोहित जी ने कहा, "यहाँ औरतों का क्या काम? आपका यहाँ आना उचित नहीं है।

-इस स्थान पर आपको नही आना चाहिए। यहाँ से जाइए।" कात्यायनी धीरे चलने लगी और पहाड़ी की तराई में पहुँची। सामने की ओर सीढियाँ चढने लगी। थोड़ा चढने के वाद वह थक गयी। साँस फूलने लगी थी, पसीना छूट रहा था। फिर भी वह बढ़ती ही गयी। लगभग आधी ऊँचाई तक चढते-चढते वह बिलकुल थक गई। चक्कर-सा आने लगा। वह एक पत्थर पर बैठ गयी। नीचे दक्षिण में मैसूर नगर चक्कर काटकर फैला हुआ दीख रहा था। उसके ऊँचे-ऊंचे मकान, शान से खड़ा राज-प्रासाद, बड़े-बड़े महल आदि सभी यहाँ से बहुत छोटे-छोटे दिखाई पड़ रहे थे।

नगर की पश्चिम दिशा मे चमकते तालाव के इस ओर दिखाई देने वाले कालेज को उसने पहचान लिया। तुरंत उसे राज की याद हो आयी। सोचा, शायद वे कालेज में मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अचानक प्रवल इच्छा हुई कि सीधे कालेज जाकर उनसे मिलना चाहिए, लेकिन विचार बदल दिया और पहाड़ी पर चढने लगी।

चढना दूभर हो रहा था। अब तक हवा नाम-मात्र के लिए ही थी। अब ठंडी हवा लगी। मन ने राहत की सास ली। हवा का ठंडापन बढने लगा। एक निष्कर्ष पर पहुँचने का मन में हठ था। पहाड़ी के एक ओर मैसूर, दूसरी ओर लगभग दस मील की दूरी पर नजनगूडु—इन दोनों के बीच झूलता हुआ उसका मन मानो एक तूफान ही वन गया था। पाँच मिनिट वाद आँधी चल पड़ी। सूखे पत्ते, कागज के टुकड़े आदि हवा के भँवर में तीव्र गति से चक्कर काट रहे थे। सारा वातावरण लाल धूल से भर गया। जो मैसूर नगर केवल दस मिनिट पहले साफ दिखाई दे रहा था, अब ओझल हो गया। तेज हवा का एक भँवर पत्थरों से आवर्त नदी की भँवर की भाँति उसके आसपास चक्कर काट रहा था। कात्यायनी डर गयी। कहीं वह भँवर मे न फँस जाय। वही पास की एक चट्टान को पकड़कर बैठ गयी। धूप से बचने के लिए आँखे मूँद ली, क्षणार्ध में तूफान थमा। उसने आँखें खोली। आकाश मे वादल देखकर आश्चर्य हुआ। एक वादल ने उसके सिर पर आकर धूप रोक दी थी। वह उठी और फिर चढने लगी। गर्मी के कारण पसीने से भीगे उसके कपड़े शरीर से चिपक रहे थे। ऐसी गर्मी का उसे कभी एहसास नही हुआ था। मन ५१८५

की तरह था। श्मशान में धधकती आग उसे अब भी दीख रही थी। चित्त थककर मुरझा गया था। ससुर और राजाराव दोनों स्मृति-पटल से ओझल हो गये थे। कात्यायनी भीतरी गर्मी में उलझी थी।

दस मिनिट बाद वर्षा की बूँदें टप-टप पड़ने लगी। कात्यायनी ने सिर उठाकर देखा, काले बादल सिर के ऊपर जमे थे। मूसलाधार वर्षा होने लगी। दौड़कर किसी पेड़ के नीचे नहीं गयी, वर्षा झट तेज हो गयी। वह बैठकर वर्षा का आनन्द लेने लगी। करीब पंद्रह मिनिट पानी बरसता रहा। पहले का तूफान, लाल धूल, वातावरण को कलुषित करने वाले कूड़ा-ककड़ आदि अब नहीं थे। चारों ओर शांत वातावरण था। नये प्रकाश में मैसूर नगर नया-सा दिखाई दे रहा था। दूर से लघु आकार में दृष्टिगोचर होने वाला कालेज भी नवीनता लिये खड़ा प्रतीत होता था। बादल छँट गये। सूर्य पुनः सिर पर चमकने लगा। लेकिन उसमें न पहले-सी तीक्ष्णता थी, न गर्मी ही। अजीब वर्षा है! अचानक आई और उतने ही आकस्मिक ढंग से चली भी गयी।

भीगी साड़ी को हवा-धूप में फैलाकर कात्यायनी ऊपर चढ़ने लगी। अब चढ़ना कठिन न था, उसमें एक तरह का आनन्द था। उसे ससुर का स्मरण हो आया। इस तरह के आनन्द को वे जीवन-भर अनुभव करते होंगे, लक्ष्मी को भी इसी तरह के आनन्द का मार्गदर्शन कराया होगा, उनकी सुख-शांति का मूल इसी चढ़ाई में होगा! इसी बारे में सोचती हुई वह आगे बढ़ती गयी। पाँच मिनिट में पहाड़ी की चोटी पर पहुँच गयी। वहाँ से मंदिर में गयी। श्रद्धापूर्ण नमस्कार कर बाहर आयी और एक पेड़ के नीचे बैठ गयी। उस ऊँचाई पर उसका मन उल्लसित था। मन में कोई द्वन्द्व न था; पाषाण रहित रेतीले समतल में बहती नदी के समान शान्त था। उस शांति में वह एक निष्कर्ष पर पहुँची।

भूख लगने लगी। मंदिर के पास नल से पानी पिया। फिर उसी पेड़ के नीचे बैठ गयी और टिफिन की सामग्री खाने लगी। अब तक साड़ी सूख गई थी। नोटबुक पूरी तरह नहीं सूखी थी। पहाड़ी से उतरने में थकावट नहीं हुई। श्मशान में जो लोग दूसरा शव लाये थे, वे जा चुके थे। मैसूर नगर की गलियों में धूल नहीं थी। पैर दुख रहे थे, फिर भी दोपहर बाद चार बजे कालेज पहुँची। राज को अपना निष्कर्ष सुनाने ही कात्यायनी आयी

थी यहाँ। नाटक-मंडली का कमरा बंद था। गाड़ी आने में और एक घण्टे का समय था। कालेज के मंजले पर जाकर सामने के बरामदे में खड़ी हो गयी। पहाड़ी ने पुनः उसे आकर्षित किया। उसे निहारती रही। न जाने कितनी देर इसी तरह खड़ी रही। नीचे देखा तो राजाराव साइकिल लिये खड़ा, कात्यायनी की तरफ देख रहा था। उसके चेहरे पर गंभीरता थी। उसने कहा—"नीचे आओ।"

कात्यायनी राज की ओर न देखकर, पहाड़ी को देखने लगी। दो मिनट चुप रहने के बाद बोली—"आप ही ऊपर आइए।"

सुबह से प्रतीक्षा करते-करते राज परेशान हो चुका था। उसने इसे उपेक्षा समझा। क्रोध में साइकिल पर सवार हुआ। साइकिल उतार पर अनायास आगे बढ़ती चली गयी।

कात्यायनी की नजर अब भी पहाड़ी पर ही लगी हुई थी।

शाम को घर पहुँची। कपड़े बदलने के बाद उसने ससुर को ऊपर बुलाया। श्रोत्रियजी पूजा के लिए तैयार हो रहे थे, फिर भी वे ऊपर गये। उनके चरण छूकर कहा—"किसी अशुभ घड़ी में मैंने कुछ निर्णय किया था, अब महसूस कर रही हूँ कि वह गलत था। मुझे क्षमा करें।"

"प्रायः सभी के मन में कभी-कभी गलत बात आ ही जाती है। उसके लिए पछताने की जरूरत नहीं। पढ़ाई में मन लगाओ" उन्होंने शांत स्वर में कहा।

वे नीचे उतर रहे थे कि कात्यायनी ने पुनः आवाज दी और संकोच से पूछा—"कल रात की हमारी बातचीत और उस पत्र के बारे में आपने सासजी को बताया है क्या?"

"नहीं। और बताऊँगा भी नहीं। वह पत्र दीवानखाने में है। जाओ, अपने हाथों से फाड़ दो" कहकर वे उतर गये।

कात्यायनी सुबह दस बजे से प्रतीक्षा करा रही थी। शाम को चार बजे मिली भी तो उपेक्षा की दृष्टि से। राज को उस पर बड़ा गुस्सा आया। उसने सोचा, शायद अनुमति नहीं मिली होगी! वह जानता था कि जिस सम्प्रदायनिष्ठ समाज में माता-पिता ही ऐसे संबंध के लिए राजी न हों, वहाँ सास-ससुर से स्वीकृति की अपेक्षा रखना मूर्खता है। यह विवाह तब तक

संभव नहीं जब तक कात्यायनी स्वयं उन्हें छोड़कर बाहर नहीं निकलती। उसने कल उपेक्षा क्यों की ? क्या वह यह कहना चाहती थी कि मैं उसे भुला दूं !

दूसरे दिन भी वह कालेज में कात्यायनी की प्रतीक्षा करता रहा लेकिन वह नहीं आई। दो-तीन दिन स्टेशन तक आकर निराश लौट गया। एक बार सोचा, पत्र लिख दूं। लेकिन अनुचित समझा। दस दिन बाद उसकी परीक्षा होने वाली है। उसके लिए तो अवश्य आयेगी—इस विचार से मन को तसल्ली देने का प्रयत्न किया। घर में भी समय बिताना कठिन था। कई बार उसने नागलक्ष्मी से बात करने का प्रयत्न किया लेकिन उसका मन ऐसा जड हो गया था कि केवल 'हां' 'हूँ' कहने के लिए भी हिलता नहीं था। नियमित रूप से रसोई बनाने के अलावा और किसी बात में उसकी रुचि नहीं थी।

एक दिन खाना परोसते हुए नागलक्ष्मी ने पूछा—"पड़ोस में एक ज्योतिषी आये थे। कहते थे श्रीराम-नाम लिखने से अगला जन्म अच्छा होगा। मरने से पहले मैं एक करोड़ श्रीराम-नाम लिखना चाहती हूँ। उसके लिए कागज और स्याही आदि ला दो।"

राज उस दिन शाम को बाजार गया तो वह एक नोटबुक और पेन ले आया। पेन को देखकर बोली—"मैं इससे नहीं लिख सकती। मुझे होल्डर ही ला दो।" दूसरे दिन राज होल्डर लाया। स्याही तैयार की गयी। स्याही की बोतल, होल्डर, नोटबुक तीनों भगवान के सामने रखकर हल्दी-कुंकुम, फूलों से उनकी पूजा की। पुस्तक उठाकर श्रद्धापूर्वक मस्तक से लगाई। तत्पश्चात् बाहर आकर राज से बोली—"एक पंक्ति में कितनी बार श्रीराम लिखूं और इस पुस्तक में कुल कितने नाम होंगे ? एक करोड़ नाम लिखने में इस तरह की कितनी किताबें लगेंगी ? हिसाब लगाकर बता दो।"

नोटबुक के पन्ने की पंक्तियां गिनने के बाद राज ने कहा—"एक पंक्ति में दस बार 'श्रीराम' लिखा जाये तो एक पन्ने में दो सौ नाम होंगे। दो सौ पन्ने की इस पुस्तक में कुल चालीस हजार नाम होंगे। इस प्रकार ढाई सौ पुस्तकें पूर्ण करोगी तो एक करोड़ नाम होंगे।"

"ठीक है ! जैसे-जैसे मैं समाप्त करती जाऊं, नयी कापी और स्याही

ला दोगे न?"

"अवश्य ला दूँगा। केवल नाम लिखने से क्या मिलने वाला है?"

"केवल नाम कौन लिख रहा है? श्रद्धा से लिखूंगी।"

उसकी श्रद्धा को देखकर राज को मन-ही-मन हँसी आ गई, लेकिन प्रकट नही होने दी। नागलक्ष्मी ने श्रीराम-सेवा प्रारंभ की। पुस्तक की हर पक्ति मे दस बार 'श्रीराम-श्रीराम-श्रीराम' लिखती रही। हर पृष्ठ के अन्त में 'श्रीराम जयराम जय-जय राम सीताराम' लिखकर समाप्त करती। माध्यमिक शाला में पढ़ते समय वह लिखती थी। राज जब विदेश में था, उसे वही पत्र लिखती थी। इन दिनों लिखने की आदत ही छूट गयी थी। अत पहले-पहल लिखते समय अँगुलियों मे दर्द होता था। लिखावट मे गति भी नही थी। उसे अपनी मृत्यु तक, करोड नाम लिख डालने थे। इसी विचार से वह धीमी गति से लिखती जा रही थी। पहले अवकाश के समय अन्यमनस्क नागलक्ष्मी को अब समय बिताने का एक आधार मिल गया।

राज परीक्षा के दिनों की प्रतीक्षा में था। उसे भी निरीक्षक का काम सौंपा गया था। परीक्षा प्रारंभ होने से आधा घटा पहले उसे आफिस पहुँच जाना चाहिए था, और परीक्षा समाप्त होने तक वहीं रहना पड़ता था। अत छह दिन से कात्यायनी से भेंट ही न हो सकी। सातवें दिन सौभाग्य से राज उसी कमरे मे निरीक्षक बना जिसमे कात्यायनी परीक्षा दे रही थी। राज को अन्दर प्रवेश करते देख वह भ्रमित हो गयी। उस दिन वह ठीक-ठीक उत्तर न दे सकी। बीच मे एक बार मौका देखकर, उसके पास झुककर राज ने धीरे से कहा—"परीक्षा के बाद मुझ से मिलना।"

विह्वलता भरा उत्तर मिला, "हूँ।"

परीक्षा के बाद वह मिली। दोनो कालेज के पश्चिम मे एक पेड़ के पास आये तो कात्यायनी ने कहा—"आप मुझे भूल जाइए।" आवाज भारी थी।

"ऐसा क्यों कहती हो?"

"कुछ न पूछिए! आपने एक अयोग्य स्त्री से प्यार किया है। किसी दूसरी लड़की से शादी करके सुख से रहिए। मैं उम्र मे आपसे बड़ी लगती

हूँ।" उसकी आँखें भर आई थी।

"अव हममें से कोई अधिक न वोले। भविष्य मे हम दोनों का मिलना असम्भव है" कहकर वह जल्दी-जल्दी वहाँ से चल पड़ी। राज अवाक्-सा उसकी ओर देखता रहा।

दूसरे दिन प्रधान निरीक्षक से निवेदन करके उसने कमरा वदल लिया। उसका मस्तिष्क शात हो उठा था। गत छह महीने से राज के जीवन को नया मोड़ देने वाली, कात्यायनी वोलने का अवसर न देकर, इस प्रकार का उत्तर देकर चली गयी थी। उसके दिल, दिमाग और, भावनाओं को नयी जिंदगी देने वाली युवती को वह कैसे भूल सकता है? इस जन्म मे तो असभव है। उसे पाने का मार्ग भी राज को दिखाई नही दे रहा था। उसकी आँखे डवडवा आयी। उसने अपने अध्ययन के सिल-सिले में पढ़ा था कि अपार दु ख मे ही मानव अपने अस्तित्व को पहचानने लगता है। उसने मन-ही-मन सोचा कि ऐसा अनुभव और किसी को न मिले। मन की व्याकुलता को रोकने मे असमर्थ होकर एक दिन वह नागलक्ष्मी को हाल सुनाने लगा तो वह वोली—"यह दुनिया ही ऐसी है। तुम भी राम-नाम लिखो। मन को शाति मिलती है। फिर किसी दूसरी लड़की से शादी कर लो।"

"तुम यह बात समझ नही सकती" कहकर वह वाहर चला गया।

अगर अंत में यही उत्तर देना था तो प्रारभ में उसने मेरे प्रति आत्मीयता क्यो दिखाई? राज को इस प्रश्न का उत्तर नही मिला। केवल तेईस पार करने वाली सुघड़ सुदर युवती के मुख से 'मैं उम्र में आपसे बड़ी लगती हूँ' सुनकर राज की ग्रहण-शक्ति भ्रमित हुई जा रही थी। अपने आपको कैसी मिथ्या कल्पना से आवद्ध किया है! उसे आश्चर्य हुआ। उसके साथ विताये हुए दिनो की याद मे ही उसका मन पिघल गया।

जिस दिन परीक्षा समाप्त हुई, कात्यायनी का मन राज को देखने के लिए मचल उठा। लेकिन उसी ने राज को अपने से दूर कर दिया था। एक वार सोचा, शिष्या के नाते गुरु के पास जाकर कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए। लेकिन इस विचार को त्याग, नजनगूडु की गाड़ी पकड़कर घर

पहुँची। सास से कहा—"आज से रोज मैसूर जाने से मुक्ति मिली।"

"हाँ री, इस परीक्षा में पास हुई तो उसका नाम रहेगा" कहकर भागीरतम्मा ने अपने स्वर्गीय पुत्र का स्मरण किया।

अब कात्यायनी अपने बेटे के साथ पहले की अपेक्षा अधिक समय बिताने लगी थी। चीनी पाँच साल का हो गया है। इस साल उसे स्कूल भेजना पड़ेगा। इस बार चैत्र-वैशाख में शुभ मुहूर्त देखकर उसका मुंडन-सस्कार करा, चाँदी के सिक्के से शहद चटाकर, चावल से भरी थाली पर श्री ओ३म् लिखवाने का कार्य नियमित रूप से होना चाहिए। भागीरतम्मा पोते के मुंडन-सस्कार पर लड्डू आदि खाने की चीजों की तैयारी बड़े पैमाने पर करने की सोच रही थी। उन कर्मों पर श्रोत्रियजी का विश्वास था। तीसरे वर्ष में ही बालक का मुडन-सस्कार होना चाहिए था। एक तरह की उदासीनता के कारण उस समय उन्होने वैसा नही किया था। यह कार्यक्रम यद्यपि धूमधाम से मनाने की उत्सुकता उनमें नही थी, फिर भी अगर उससे घर के सदस्यों को खुशी होती है तो उन्हें कोई एतराज नही था।

चीनी की बातों का कोई अत नहीं होता था। जिस किसी चीज को देखता, तो 'क्या है यह ?' 'क्यों है ?' 'कहाँ से आई है ?' 'यह यही क्यों है ?'—जैसे सैकड़ो प्रश्न पूछता। और उसके प्रश्नों का उत्तर देते-देते दादा-दादी थक जाते। वह अब लक्ष्मी के साथ गायों के पीछे-पीछे भी जाता है। कई दिनों से हठ कर उसी के पास सोने भी लगा है।

परीक्षा के बाद कुछ दिनो तक कात्यायनी उदास रही। फिर सोचा, धीरे-धीरे अपने-आप ठीक हो जायेगा—घर के कामो मे अधिक समय बिताने की कोशिश करने लगी। स्वय ही कुछ काम ढूंढ़ निकालती। दोपहर के समय भगवद्गीता भी पढ़ने लगी। सुबह स्नान के पश्चात् पूजा का तीर्थप्रसाद लेती। एक महीना बीत गया। लेकिन उसकी उदासी दूर नही हुई। अपितु चित्त की अशाति बढती गई। रात को ऊपरी मजले से उतरकर वह नीचे सास के पास सोने लगी। प्रारभ से ही अभ्यस्त होने के कारण चीनी दादी के पास ही सोता था। कात्यायनी को रात में नींद न आती। सदा राज की याद आती। वे अब क्या करते होंगे ? क्या इसी तरह याद करते होंगे ? उस दिन की मेरी उन बातों से क्रुद्ध

हुए होंगे ? या दूसरी किसी लड़की से शादी कर लेने का निर्णय न कर लिया होगा ? यह कल्पना भी उसके लिए असह्य थी कि राज किसी और लड़की से शादी कर रहा है।

मन कल्पना के जाल बुनने लगता तो वह भगवद्गीता उठा लेती। श्लोकों को एक-एक कर पढ़ती, उनके अर्थ समझने का प्रयत्न करती। उसकी बुद्धि तो उन्हें समझ लेती, लेकिन मन ग्रहण न करता। भगवद्-गीता के श्लोको मे निहित विचार को लांघकर उसका अपना विचार-प्रवाह आगे बह जाता। स्व-निर्मित सुन्दर नाव में राज के साथ बैठकर उसका मन विहार करने निकल जाता। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे कात्यायनी की उदासी भी बढ़ती गयी। जीवन का उद्देश्य समझ में न आया। खाने-पीने मे रुचि नही। सदा आशा-भरा उसका शरीर अब अग्निज्वाला में फँसी कोमल लता-सा मुरझाता जाता था। शारीरिक शक्ति घट रही थी। शारीरिक शक्ति जितनी घटती गई, आशा-शक्ति उतनी ही प्रबल होती गई। ज्ञान, प्रकृति इन दोनों के संघर्ष मे प्रकृति की जीत होती और जीवन निराशा के अंधकार मे खो जाता। आठों पहर खाते-पीते, उठते-बैठते राज ही आँखों के सम्मुख आता। उसके साथ टहलने जाना, शरीर-से-शरीर सटाकर बैठना, वृंदावन की यात्रा, प्यार की बातें, हँसी-मजाक—सब स्मरण होने लगते। जो अनुभव कुछ दिन पहले चांदनी-से शीतल थे, वे स्मृतियाँ अब श्मशान की अग्नि-सी जलाने लगी। एक दिन सुबह एक कौर भी खा न सकी। दोपहर के विश्राम में आँखें न लगी। रात के भोजन के पश्चात् हाथ धोते-धोते उलटी हो गई। रात सोई तो शरीर तपने लगा। बुखार आ गया था। रात-भर करवटें बदलती रही। सोचा, शायद नही बचेगी। रात के लगभग दो बजे एक विचार आया—"ससुर से कहकर कल ही मैसूर चली जाऊँ। लेकिन उनसे कैसे कहा जाय ? उनके सम्मुख खड़े होकर बोलने की कल्पना से ही वह डर जाया करती थी। सांप को देखने पर जो भय होता है, वैसा भय नही; अपितु अपराधी को भगवान के स्मरण से जो भय होता है, वैसा भय। उन्हें बताये बिना कैसे जाय ? अगर ऐसे ही चली गई तो क्या उनके विश्वास को आघात नही लगेगा ? प्रश्न प्रबल होते गये, लेकिन मन कह रहा था कि उन्होंने ही तो कहा था कि किसी भी कार्य में उसे

पूरी आजादी है।" विवेक ने प्रश्न किया—"फिर भी बिना बताये जाना क्या आजादी का लक्षण है ?"

मन के तीव्र प्रवाह के सम्मुख औचित्य-अनौचित्य का विचार टिक न सका। अपनी भावी भूमिका के बारे मे निश्चय कर लिया। उस पात्र को स्वीकारना होगा अथवा उसी के लिए जीवन बिताना पड़ेगा। मरने के लिए वह तैयार न थी।

दूसरे दिन उठते ही उसने सास से कहा—"भूल गई थी। आज हमारी 'मैडम' की शादी है। मुझे भोजन के लिए बुलाया है। आज तीन तारीख है। मैं मैसूर हो आती हूँ।"

श्रोत्रियजी पूजा मे थे। भागीरतम्मा ने कहा—"हो आओ।"

सफेद साडी पहनकर कात्यायनी बाहर निकली। चीनी ने पूछा—"माँ, कहाँ जा रही हो?" उसे बेटे की याद आ गई। यह सोचकर कि जब तक वह स्वयं नही जाती, बच्चे को कैसे ले जाय। चीनी के पास जाकर उसके दोनों गालों को चूम लिया। चीनी, "माँ, मैं भी चलूँगा"—कहकर रोने लगा, तो "तू बाद मे आना बेटा" कहकर जल्दी-जल्दी वहाँ से चली। उस गली से मुड़ते समय उसने एक बार मुड़कर देखा तो उसकी आँखो मे आँसू थे। उसे रोज की गाड़ी मिली। मैसूर पहुँचने तक उसके दिल की धड़कन बढती जा रही थी।

राज के घर पहुँची। द्वार खटखटाया। पृथ्वी ने द्वार खोला। "चाचा कहाँ है ?" पूछने पर उसने कमरे की ओर सकेत किया। वह अदर प्रविष्ट हुई। राज को देखकर उसे विश्वास न हुआ। वह इतना दुबला हो चुका था कि केवल अस्थि-पजर ही दीख रहे थे। दाढी बढ़ गई थी। पहने हुए कपड़े मैले हो गये थे। उसने कात्यायनी को शका की दृष्टि से देखा। कात्यायनी ने द्वार बद किये। राज के पास जाकर उसके सीने पर अपना सिर रख दिया। फिर कहने लगी—"विश्वास कीजिए, मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगी। चलिए, समाज के सम्मुख आज ही हम पति-पत्नी बन जायें।"

कात्यायनी की बात पर राज ने तुरन्त विश्वास नही किया। विस्मय-पूर्ण आँखों से वह कात्यायनी को निहारने लगा। कात्यायनी ने कहा—"मुझे देखिए, पहनी हुई साड़ी मे ही निकल आई हूँ। जैसे आप चाहेंगे, शादी कर लेंगे—सिविल मैरेज, मदिर मे अथवा कही और। मुझे सब स्वीकार है।

यदि आप यों ही अपने पास रखना चाहें तो वह भी मुझे स्वीकार है। कुछ भी हो, आप मेरे पति हैं" कहकर अपनी बाँहों में भर लिया। राज को उसकी बातों पर विश्वास हुआ। उसने भी कात्यायनी को बाँहों में कस लिया। दोनों के मन का संघर्ष शांत हुआ। छाती की धड़कन थमी और आनन्द-विभोर हो कात्यायनी अपने-आपको भूल गई।

१५

शाम को छह बजे तक कात्यायनी नहीं लौटी, तो घरवालों ने सोचा, शायद रात को दस बजे की गाड़ी से आयेगी। कालेज की गर्मी की छुट्टियाँ होने के कारण रात को अकेली लौटेगी, इस विचार से श्रोत्रियजी स्टेशन तक गये। गाड़ी आयी, लेकिन कात्यायनी नहीं। थोड़ी देर तक प्लेटफार्म की बेंच पर बैठकर राह देखी, बहू के न आने के बारे में सोचने लगे। उन्होंने ताड़ लिया था कि गत एक-दो सप्ताह से बहू का मन बेचैन है। लेकिन उस बारे में सोचना अनुचित समझा। वह पाँच वर्ष के लड़के की माँ है। घर के व्यवहार को निभाने में लगी हुई है। इस साल बी० ए० भी कर लेगी। वह अपनी जिम्मेदारी, धर्म, कर्म सब जानती है। यह सोचकर उसकी असामान्य मनोदशा को पुन. छेड़ना नाजुक विषय है—उन्होंने उस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। एक बार उन्होंने सोचा, शायद राज के पास गयी होगी, लेकिन इस तरह की शंका करना उचित न समझा। घर लौटकर उन्होंने कहा—"इस गाड़ी से भी नहीं आयी। शादी में गयी है। वहीं रहने के लिए किसी ने आग्रह किया होगा। कल आ जायेगी।"

उस दिन चीनी भी नहीं सोया था। लेकिन नींद आने से पहले एक-दो बार पूछा था, "अब तक भी माँ क्यों नहीं आयी ?" दादी ने जब 'कल आने' की सान्त्वना दी तो सो गया। रात बीती। 'कल' आया। मैसूर से आनेवाली सुबह की गाड़ी भी आकर चली गयी। सब भूलकर श्रोत्रियजी पूजा में लग गये थे। लगभग नौ बजे पूजा समाप्त कर, भागीरतम्मा, लक्ष्मी,

चीनी को चरणामृत देने के पश्चात् भागीरतम्मा ने उनके हाथ में एक लिफाफा थमा दिया। वह डाक से आया था। उस पर लिखे पते से ही श्रोत्रियजी समझ गये कि कात्यायनी का पत्र है। उनका अंतःकरण तुरन्त सारी बातें समझ गया था। लिफाफा तुरन्त न खोलकर, एक-दो मिनट बाद मन:स्थिति कुछ स्थिर होने के पश्चात्, दीवानखाने में गये। पाँच मिनट बाद उसे खोला। पूरे चार पन्नों का उनकी बहू का ही पत्र था। उनकी कल्पना सच निकली। गत बार उनसे अनुमति लेते समय की मनोदशा, अपने पूर्व निर्णय से विमुख होना, अन्तर्वेदना आदि का विवरण देकर उसने लिखा था—"आपके उत्तुंग व्यक्तित्व की प्रेरणा से मैंने संयम साधने का प्रयास किया, लेकिन असफल रही। हर व्यक्ति का अपना वैशिष्ट्य, शक्ति और सीमाएँ हैं। जाने से पहले सारी बातें बताना चाहती थी, लेकिन आपके सम्मुख खड़े होने की हिम्मत न कर सकी। दो-तीन दिनों में, एक सामाजिक समारोह में, मेरा विवाह होगा। उस अवसर पर आपको आमन्त्रित करने की धृष्टता नहीं कर सकती। लेकिन आपके चरणों में नतमस्तक हो निवेदन करती हूँ कि मेरे नूतन विवाहित जीवन की सुख-शांति के लिए हार्दिक आशीर्वाद दें।"

श्रोत्रियजी मूकवत् बैठे रह गये। उसकी मनोदशा की कल्पना न कर सके। फिर भी, उसके प्रति क्रोध प्रकट नहीं किया। प्रकृति के आकर्षण से अपने-आपको न बचा पाने वाली एक अभागिन का चित्र उनकी आँखों में घूम गया। मन सहानुभूति से भर गया। जिस दिन से वह बहू बनकर घर आई थी, उसके आचार-विचार का उन्होंने स्मरण किया। उसने कभी अपने सास-ससुर के सम्मुख खड़े होकर आघात पहुँचाने वाली बातें न की थीं। उनकी सेवा इस तरह करती रही थी मानो वे ही उसके माता-पिता हों। पति के जीवन-काल में वह प्यारी पत्नी रही। उस घराने के लिए श्रोत्रियजी द्वारा अपेक्षित सारे गुण उसमें निहित थे। अंत में वही इस तरह घर से निकल खड़ी हुई!

उन्हें अपने घराने की याद आ गई। श्रोत्रिय-वंश में ऐसा कभी नहीं हुआ था। घर में श्रोत्रिय-वंशावली थी। उसमें लगभग गत बारह पीढ़ियों का विवरण था। इन बारह पीढ़ियों से पहले की जड़ इतनी गहरी थी कि वह दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। उनका विश्वास था कि वह गहराई में

छिपी ऐसी जड़ है जो सजीव और पवित्र है। उनके घर में लिखित वंशा-वली में अकाल मृत्यु पाने वालों के नाम है एक पत्नी के रहते हुए दूसरी शादी कर लेनेवालों का भी उल्लेख है, विधवाओं के नाम भी है, लेकिन

सांस लेने वाली स्त्रियों के नाम भी मिलते हैं। जिस तरह महानदी में विलीन होती सहायक नदियों को अपना निजत्व बचाना असम्भव है, उसी तरह इस वंश में आई कन्या का दूसरे वंश से सम्बन्ध जोड़ना असम्भव था। कात्यायनी के इस कदम से इस वंश के इतिहास पर अमिट कलंक लगा है। भविष्य में वह जिस वंश की होकर जीना चाहती है, क्या उसकी पवित्रता बच सकती है? उसे जो अपनाना चाहते हैं, क्या उन्हें अपने वंश की पूर्ण जानकारी होगी? द्वितीय प्रश्न उनके प्रथम प्रश्न का उत्तर था।

वे विचार में डूबे हुए थे कि घड़ी ने बारह के घंटे बजाये। दीवानखाने में भागीरतम्मा आकर कहने लगी—"ऐसे कैसे बैठ गये? भोजन के लिए उठिए। वह अभी तक नहीं आई। यह पत्र कैसा है?"

"किसी आचरण से सम्बन्धित है"—कहकर श्रोत्रियजी भोजन के लिए उठे। दादा के साथ चीनी रोज की तरह बैठा और जो भी भाया माँग-माँगकर भर पेट खाया। श्रोत्रियजी खा नहीं सके। प्रयत्न करने पर भी मुँह का कौर गले से नीचे न उतार पाये।

"आज क्या हो गया है आपको? तबीयत ठीक नहीं है क्या?" भागीरतम्मा ने पूछा।

"तुम लोग खा लो। न जाने क्यों नहीं भा रहा है" कहकर वे उठ गये। लक्ष्मी और भागीरतम्मा के भोजन के पश्चात् दोनों को भीतर कमरे में बुलाकर बैठाया। कात्यायनी के बारे में बताकर कागज पढ सुनाया।

भागीरतम्मा स्तब्ध रह गई। पूछने लगी—"तो क्या पहले भी उसने आपसे बात की थी?"

"हाँ!"

"हमें क्यों नहीं बताया?"

"उसने न बताने का अनुरोध किया था। साथ ही, स्वयं सोच-समझ-कर उसी ने कहा कि यह विचारधारा गलत थी।"

"अब ऐसा कर लिया न ! उसे अपनाने वाला कौन है ?"

"डॉ० सदाशिवराव को जानती हो न ? उनका छोटा भाई राजाराव !"

"अच्छा !" भागीरतम्मा के क्रोध का पारा चढ गया। "हमारे घर का नमक खाये हुए डॉक्टर राव के भाई ने यह काम किया ?"

"भाई ने किया तो वे क्या करे ?"

"छोटे भाई को समझाने के लिए बडे भाई की जबान नही है ?"

"शायद बड़ा भाई यह नही जानता। वे अब दूसरी पत्नी के साथ रहते है" श्रोत्रियजी ने डॉ० राव की दूसरी शादी के बारे मे जितना वे जानते थे, कह सुनाया।

"आपसे किसने कहा ?"

"कात्यायनी ने ही कहा था।"

"उसने सब-कुछ बताया था। हमें आपने कुछ नही बताया। पापिन ! कुलटा ! भोली-भाली बनकर जिस घर मे आई, उसी पर कलक लगा गयी। अच्छा होता वह मर जाती···।" भागीरतम्मा बहू, राजाराव और उसके भाई डॉ० सदाशिवराव—तीनो को शाप देने लगी।

"ऐसी बातें तुम्हारे मुख से नही निकलनी चाहिए। इस उम्र मे भी तुममे सहनशक्ति नही।" श्रोत्रियजी ने शात करना चाहा, लेकिन व्यर्थ।

"आप चुप रहिए। इतनी उम्र होने पर भी आपको समझ नहीं आयी।। उस कुलटा को कालेज भेजने को मैने मना किया था, लेकिन आपने मेरी एक न चलने दी। पति का नाम रखने के लिए कालेज गयी और पति के वश पर कलक लगा दिया। पति के मरते ही सिर मुंड़ाकर, लाल साड़ी पहना देनी चाहिए थी। स्वर्गीय बेटे की जगह पर 'मेरी बहू-मेरी बहू' कह-कर लाड-प्यार से आपने ही उसे सिर पर चढा रखा था। उसने आपके लायक ही काम किया। कहिए, अब भी मेरी बात सुनेगे या नही ? इज्जत तो बचानी चाहिए।"

"क्या कहना चाहती हो ? शाति से कहो।"

"आपकी सहनशक्ति आपको मुबारक हो। मैं जैसा कहती हूँ, वैसा कीजिए। लिखा है न कि शादी दो-तीन दिन मे हो जायेगी। चलिए, मैं भी चलती हूँ। उसके होने वाले पति की आरती उतारकर, बहू की खोपड़ी

चार जमाकर उसके बाल पकड़कर घसीट लायें।"

श्रोत्रियजी चुपचाप पत्नी की सलाह पर सोच रहे थे। भागीरतम्मा ने फिर पूछा—"चुपचाप क्यों बैठे हैं?"

"हमारे मैसूर जाने से कोई लाभ नही। वह अब अबोध बच्ची नहीं है। उसके मन में भी कम द्वन्द्व नही चला था। जबर्दस्ती करें तो भी अधिक दिन टिकने वाली नहीं है। सब अपने पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार चलते है।"

"आप हमेशा दर्शन ही बघारते है! आप युधिष्ठिर हैं। घर में बैठे रहिए! मैं लक्ष्मी को ले जाकर घसीटकर लाती हूँ।"

अब तक चुपचाप सारी बातें सुन रही लक्ष्मी बोली—"शीनप्पा का कहना ठीक है। जबर्दस्ती ले आने से कोई लाभ नही। वह भी उसका कर्म है।"

"तू मुझे दर्शन पढ़ा रही है" भागीरतम्मा कह रही थी कि "लक्ष्मी इसे समझाओ" कहकर श्रोत्रियजी वहाँ से उठकर अपने अध्ययन-कक्ष में चले गये। उनका मन भी विचलित हो चुका था।

'श्री प्रकाश भोजन और वसतिगृह हॉल' मे बीस-तीस मित्रों की उपस्थिति में राज और कात्यायनी ने एक-दूसरे को पुष्पमाला पहनाई। पुरोहित ने वर के हाथो वधू को मगलसूत्र पहनवाया। इस एक घटे के पौरोहित्य कार्य के लिए पडित ने पचास रुपये लिये थे। उपस्थित मित्रों ने अक्षतों द्वारा आशीर्वाद दिया, उपहार दिये और वैयक्तिक रूप से वर-वधू का अभिनन्दन किया। सभी राज के मित्र थे। गर्मी की छुट्टियाँ थी, दो ही दिनों मे विवाह भी होना था, इस कारण अधिक लोग नही आ सके थे। घर से बाहर निकलने का उत्साह न होते हुए नागलक्ष्मी भी होटल मे चली आयी थी। दोनो पक्षों से कन्यादान देने या लेनेवाला कोई बुजुर्ग न था। कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे उपलब्ध कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथो के अध्ययनार्थ डॉ० राव, रत्ने के साथ कलकत्ता गये हुए थे। अतः इस बारे में वे कुछ नही जानते थे। राज और कात्यायनी के प्यार के बारे में उन्हें कुछ भी मालूम नही था।

विवाह-कार्यक्रम समाप्त हुआ। वे उसी होटल के एक कमरे मे गये

और द्वार बद किया। नागलक्ष्मी के चरण छूकर कात्यायनी बोली, "दीदी, मैं नहीं जानती कि मैंने जो कुछ किया, उससे आप सहमत है या नहीं! आप घर की मालकिन है। ज्योतिषीजी ने यद्यपि कन्यादान-विधि नहीं निभाई, तो भी आपने मुझे अपना लिया है। मुझे मार्गदर्शन दें।"

निरासक्त भाव से नागलक्ष्मी ने कहा—"राज की पत्नी हो, अतः तुम हमारे घर की ही हो। मैं सीख गयी हूँ कि गृहस्थी मे रहकर कैसे उससे अछूता रहा जा सकता है। भविष्य में हम सबको चलाने की जिम्मेदारी तुम्हारी है।"

बाहर भोजन की सारी व्यवस्था हो चुकी थी। पत्तलें बिछ गयी थी। उपस्थित मित्रों के आग्रह के अनुसार नवदम्पति साथ ही खाने बैठे। मीठा, नमकीन, चटपटी चीजे, फल, दही, छाछ आदि परोसे गये। खाते-खाते मित्र परस्पर बतिया रहे थे: एक ने कहा, "राजाराव बड़ा लक्की है, चान्स मार दिया। लड़की विधवा है तो क्या हुआ, बडी डीसेंट है। इतनी लवली है कि चार बार विधवा हुई हो तो भी शादी हो सकती है।" दूसरा तुरन्त बोल उठा, "इस विचार से अगर तुमने उससे शादी कर ली तो वह बेचारी पाँचवी बार विधवा हो जायेगी, सावधान रहना।" "बड़े भाई की तरह ही छोटा भाई भी रोमांटिक है। शायद खानदानी परम्परा है"—दूसरे दो-तीन मित्रों ने कहा। "अरे हाँ, डॉ० राव तो कही दिखाई नही दे रहे है" तो दूसरा बोला—"पाणिग्रहण के समय पीले रग की साड़ी पहने जो महिला राजाराव के पास बैठी थी, वह डॉ० राव की पहली पत्नी है।" तीसरे ने समझाने की कोशिश करते हुए कहा—"नो-नो, यू हैव मिस्टेकन। वे शोध-कार्य के लिए कलकत्ते गये हुए है। इस बारे मे वे कुछ नही जानते। डॉ० राव को रोमांटिक नही कहना चाहिए। वे अपने-आपको भूलकर शोध-कार्य में लगे रहने वाले विद्वान् है।" चौथे ने, जो अब तक चुप था, और जिसने कभी राज के नाटक मे एक बार अभिनय किया था, कहा—"महोदय, भोजन बढ़िया बना है! उसे छोड़कर खिलानेवालों पर ही 'कामेंट' करने चले है।" सब लोग खाने पर जुट गये। भोजन परोसते समय सस्कृत के प्रवक्ता ने सस्वर दो श्लोक सुनाये। एक ने 'शाताकारं भुजगशयनं' सुनाया। गत वर्ष अन्तर्कालिज गायन स्पर्धा मे जिसने पुरस्कार पाया और इस वर्ष एम० ए० का

विद्यार्थी है, उसने कन्नड कविता सुनायी—"भृंगद वेन्नेरिवनु कल्पना विलास··।" इस कविता की समाप्ति के पश्चात् सबके बायें हाथ से जांघ पर ताल देने तक दही-भात समाप्त हो चुका था। ताबूल लेकर वैयक्तिक रूप से सब पुनः वर-वधू का अभिनन्दन कर चले गये। राज ने होटल का बिल चुकाया और राज, कात्यायनी, नागलक्ष्मी और पृथ्वी के साथ तांगे में घर लौटे।

विवाह के बाद लगभग पन्द्रह दिन तक नवदम्पति ससार को भूले रहे। नागलक्ष्मी नित्य की भांति रसोई बनाती। पृथ्वी पास-पड़ोस के बच्चों के साथ खेलने खिसक जाता। राज-कात्यायनी कमरे में घुसे रहते। बाहर नही निकलते थे। उन्हे सिनेमा-नाटक किसी मे रुचि नही थी। वे परस्पर अपना वह विरह-अनुभव सुना रहे थे, जब उन दोनो को एक-दूसरे से अलग रहना पड़ा था। दोनो परस्पर अपने मिलन में छिपे अद्वैत अनुभव को अनत बताते। राज उस अनुभव का वर्णन अनंत, अमर, सत्य, निरन्तर आदि शब्दो मे करता। वह अब अमरत्व की बात मानने लगा है। कात्यायनी के अनन्य सौदर्य की वह प्रशंसा करता तो वह राज के आकर्षक मुख-मडल का वर्णन करती। रात को दिन में और दिन को रात में बदलकर, प्रकृति-पुरुष के सम्मिलन मे समय अपना नियम खो चुका था।

पहनी हुई साडी मे ही आई हुई कात्यायनी के लिए राज ने नये-नये डिजाइन की साड़ियाँ खरीदी। उन्हे पहनकर, सिर मे फूल खोसकर माथे पर सिंदूर लगाकर आईने मे अपने को देखती तो कात्यायनी को लगता कि उसका स्त्रीत्व सार्थक हो रहा है। राज उसे अपनी बाँहो में भर लेता, उसके अग-सौष्ठव की प्रशसा करता तो वह सार्थकतापूर्ण भावों मे विभोर हो जाती। अपने पति को सिर नवाकर चुपचाप अपने आपको उसकी बाँहो मे सौप देती। इस भाव से आनन्द उमड़ पड़ता कि उसका अस्तित्व परस्पर एक-दूसरे के लिए ही है।

कुछ दिनो के बाद कात्यायनी नागलक्ष्मी के काम मे हाथ बँटाने लगी। वह आती तो नागलक्ष्मी 'ना' नही कहती, और नही आती तो बुरा नही मानती। उसे अपना काम करना ही है। काम से निपटने के 'श्रीरामनाम' लिखने मे खो जाती। कात्यायनी कभी बात करने

का प्रयत्न करती तो वह उत्साह नहीं दिखाती। इस स्थायी परिवर्तन को समझकर कात्यायनी भी उससे अधिक बात करने का प्रयास नहीं करती थी। हो सका तो रसोई बनाने में हाथ बँटा देती।

पृथ्वी पहले से ही कात्यायनी को जानता था। वह यह भी जानता था कि उसकी शादी उसके चाचा के साथ हुई है। रास्ते में खेलते समय लडकों ने कहा था—"तेरे चाचा ने विधवा से शादी कर ली है।" वह इसका अर्थ भी जानता था। सात साल के पृथ्वी की बुद्धि विलक्षण थी। राज के कहने पर वह उसे 'चाची' कहकर पुकारता था। चाचा पृथ्वी को पहले की तरह ही प्यार करता था। कभी-कभी उसे साइकिल पर बिठाकर ले जाता। कात्यायनी उसे पास खीचकर उसके सिर पर हाथ फेरती। चाची के साथ खुलकर रहने में वह झिझकता और वहाँ से भागने की कोशिश करता। लेकिन चाची बुरा न मान जाय, इस ख्याल से वही खडा रहता। कभी 'आप' सबोधन करता तो कात्यायनी कहती—"नही, जिस तरह अपने चाचा को 'तुम' कहते हो, उसी तरह मुझे भी 'तुम' कहा करो।" राज ने भी यही कहा। उसके बाद वह कहने लगा, "चाची यहाँ आओ, यह देखो।" कभी-कभी 'चाची' उसके लिखे पाठ देखकर, गलतियाँ सुधारती।

पृथ्वी को देखते ही कात्यायनी को चीनी का स्मरण हो आता। उसी के गर्भ का मास-पिंड है चीनी। घर से निकलते समय उसने "माँ मैं भी चलूँगा" कहा था तो "तू बाद मे आना बेटा" कहकर आयी थी। अब उसे बच्चे की याद सताने लगी। पहले पृथ्वी को देखने से चीनी की याद आती थी, लेकिन अब उठते-बैठते, खाते-पीते, हर क्षण चीनी का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमता रहता। अतः उसने निश्चय किया कि बच्चे को ले आना ही ठीक होगा। कभी-कभार सास-ससुर को भी याद आ जाती। कभी यह भी सोचती कि बच्चे को ले आऊँ तो उनको कौन सहारा देगा। उनके बुढ़ापे के बारे मे सोचती तो उनके प्रति सहानुभूति जाग पड़ती। उसकी अंतरात्मा की गहराई से एक मद्धिम ध्वनि निकलकर कहती, तुमने उन्हें छोड़कर शायद उचित नही किया। लेकिन उसका मन उसे छिपाता रहा—बच्चे को वहाँ छोड़ने की कल्पना उसके लिए असह्य थी।

विद्यार्थी है, उसने कन्नड कविता सुनायी—"भृंगद बेन्नेरिवंतु कल्पना विलास''।" इस कविता की समाप्ति के पश्चात् सबके बायें हाथ से जांघ पर ताल देने तक दही-भात समाप्त हो चुका था। ताबूल लेकर वैयक्तिक रूप से सब पुनः वर-वधू का अभिनन्दन कर चले गये। राज ने होटल का बिल चुकाया और राज, कात्यायनी, नागलक्ष्मी और पृथ्वी के साथ तांगे में घर लौटे।

विवाह के बाद लगभग पन्द्रह दिन तक नवदम्पति संसार को भूले रहे। नागलक्ष्मी नित्य की भाँति रसोई बनाती। पृथ्वी पास-पड़ोस के बच्चो के साथ खेलने खिसक जाता। राज-कात्यायनी कमरे मे घुसे रहते। बाहर नही निकलते थे। उन्हे सिनेमा-नाटक किसी मे रुचि नही थी। वे परस्पर अपना वह विरह-अनुभव सुना रहे थे, जब उन दोनो को एक-दूसरे से अलग रहना पड़ा था। दोनों परस्पर अपने मिलन मे छिपे अद्वैत अनुभव को अनत बताते। राज उस अनुभव का वर्णन अनत, अमर, सत्य, निरन्तर आदि शब्दो मे करता। वह अब अमरत्व की बात मानने लगा है। कात्यायनी के अनन्य सौंदर्य की वह प्रशसा करता तो वह राज के आकर्षक मुख-मडल का वर्णन करती। रात को दिन मे और दिन को रात मे बदलकर, प्रकृति-पुरुष के सम्मिलन मे समय अपना नियम खो चुका था।

पहनी हुई साड़ी में ही आई हुई कात्यायनी के लिए राज ने नये-नये डिजाइन की साडियाँ खरीदी। उन्हे पहनकर, सिर मे फूल खोसकर माथे पर सिंदूर लगाकर आईने मे अपने को देखती तो कात्यायनी को लगता कि उसका स्त्रीत्व सार्थक हो रहा है। राज उसे अपनी बाँहो में भर लेता, उसके अग-सौष्ठव की प्रशसा करता तो वह सार्थकतापूर्ण भावों मे विभोर हो जाती। अपने पति को सिर नवाकर चुपचाप अपने आपको उसकी बाँहो मे सौप देती। इस भाव से आनन्द उमड़ पड़ता कि उसका अस्तित्व परस्पर एक-दूसरे के लिए ही है।

कुछ दिनों के बाद कात्यायनी नागलक्ष्मी के काम में हाथ बँटाने लगी। वह आती तो नागलक्ष्मी 'ना' नही कहती, और नही आती तो बुरा नही मानती। उसे अपना काम करना ही है। काम से निपटने के पश्चात् 'श्रीरामनाम' लिखने मे खो जाती। कात्यायनी कभी बात करने

एक दिन रात को लेटे-लेटे कात्यायनी ने राज से पूछा—"चीनू को ले आने के बारे मे आपका क्या विचार है?" राज मौन रहा। कात्यायनी ने पुन: पूछा—"क्यों, चुप क्यो है?"

"कुछ नही!" कुछ स्मरण करते हुए उसने कहा, "मैंने तो पहले ही कहा था कि ले आओ। वह भी तो हमारा ही बच्चा है।"

इस उत्तर से कात्यायनी को अपार आनन्द हुआ। अपनी दोनों भुजाओ मे पति को कसकर कहा—"आप कितने अच्छे हैं! उसे लिवा लाने के लिए क्या मेरे साथ नही चलेंगे?"

"मेरा चलना ठीक नही, तुम्ही हो आओ।"

"उनके सम्मुख जाकर 'बच्चे को ले जा रही हूँ' कहने की हिम्मत मुझ अकेली मे नही है। आप होंगे तो बोल सकूँगी।"

कुछ सोचकर राज ने सलाह दी—"सबसे पहले पत्र द्वारा उन्हें पूर्व-सूचना दे दो कि अमुक दिन आ रही हूँ। बच्चे को साथ भेजने की बात लिख दो। उसी दिन वहाँ पहुँच जाओ। तब बात प्रारभ करना कठिन नही होगा।"

दूसरे ही दिन वह पत्र लिखने बैठी। लेकिन लिखते समय कुछ सूझता ही नही था। हाथ काँप रहा था। आखिर, मनोबल दृढ़ किया और पाँच पन्ने का लबा पत्र लिखा। अपने विवाह का उल्लेख कर, सास-ससुर का आशीर्वाद पाने की बात लिखी। किस तरह माँ-बच्चों का सबंध इस ससार के समस्त सबधो का मूल है, सतान की याद में माँ की ममता में निहित वेदना को स्मरण कर लिखा—"अपनी बेटी की वेदना समझना आपके लिए कठिन नही होगा! मैं चार दिन में अर्थात् बीस तारीख को दोपहर बारह बजे की गाडी से आ रही हूँ। कृपया बच्चे को मेरे साथ भेज दे। पूज्या माताजी एव लक्ष्मी को साष्टाग नमस्कार।"

लिफाफे पर अतिरिक्त टिकट लगाकर, राज डाक-पेटी मे डाल आया।

बीस तारीख आई। सुबह भोजन के पश्चात् ... निकल पड़ी। स्टेशन तक राज भी गया। ... मास ... हो गयी थी। पहाड़ी प्रदेश के बारि... दियाँ ... थी। एक

ही छाने में दोनों स्टेशन आये। कात्यायनी गाड़ी में चढ़ गई। लेकिन मन भयभीत था। राज शाम को छह बजे स्वयं स्टेशन आने की बात कह ही रहा था कि गाड़ी चलने लगी। लगभग डेढ़ महीने के बाद वह नजनगूडु जा रही है। शायद यह अन्तिम सफर है। आकाश में सूर्य का पता लगाना मुश्किल था। नजनगूडु पहुँचने तक बारिश होती रही। कबलीमठ पार कर गाड़ी जब धीमी गति से पुल पर से गुजर रही थी तो अधभरी कपिला साफ-साफ दिखाई दे रही थी। दूर कतार में दीख रहे स्नान-घाट, मंदिर, नदी की दायी ओर दूर-दूर तक ऊँचे-ऊँचे पेड़ों का झुंड—सभी चिर-परिचित दृश्य। अनायास उसे याद आया—ऐसी ही ज्येष्ठ मास की बारिश में कपिला ने उसके पति को अपने मे आत्मसात् कर लिया था। उस दिन कितने आँसू बहाये थे। उन दिनों की मानसिक वेदना को स्मरण कर रही थी कि स्टेशन आ गया।

गाड़ी से उतरते-उतरते कात्यायनी का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। रास्ते में कोई पहचान ले तो? नये जीवन के विषय में सारा नगर जानता है। यह सोचकर कि वह किसी से क्यों डरे—वह घर की ओर चलने लगी। अब तक पत्र उन्हें मिल गया होगा। घर के सदस्य अब तक किसी निष्कर्ष पर पहुँच गये होंगे! अगर वे बच्चे को सौंपने से इन्कार कर दें तो? सास जरूर आग-बबूला होंगी, लेकिन ससुर सारासार का विचार करेंगे ही। सारी बातें तो पत्र में लिख दी है। बोलने की आवश्यकता ही नहीं है। इन्हीं विचारों में खोई, कदम बढ़ा रही थी। द्वार पर पहुँची। द्वार आधा खुला था। भीतर दीवानखाने मे प्रवेश किया। वहाँ से भीतरी प्रांगण के बगल में रसोईघर, भोजनघर और पूजाघर हैं। सीधे भीतर जाने का साहस नही हुआ। दीवानखाने में कुर्सी पर बैठ गई। भीतर से मन्त्रोच्चार की सस्वर ध्वनि आ रही थी—

काश्यपगोत्रोत्पन्नस्य मम पितुः नजुडशर्मणः
वसुरूपस्य प्रातिसांवत्सरिक श्राद्ध निमित्त प्राचीनावीती…

ऐसा लगा कि घर में कोई धार्मिक कार्य चल रहा है। एक बार मुड़कर द्वार की ओर देखा। दीवानखाने के फर्श पर दृष्टि पड़ी। सारा घर साफ किया गया था, लेकिन रांगोली नहीं माँड़ी गई थी। आभास हुआ कि श्राद्ध मनाई जा रही है। आज किसकी पुण्य-तिथि है? अचानक उसे याद आया

एक दिन रात को लेटे-लेटे कात्यायनी ने राज से पूछा—"चीनी को ले आने के बारे में आपका क्या विचार है?" राज मौन रहा। कात्यायनी ने पुन. पूछा—"क्यों, चुप क्यो है?"

"कुछ नही!" कुछ स्मरण करते हुए उसने कहा, "मैंने तो पहले ही कहा था कि ले आओ। वह भी तो हमारा ही बच्चा है।"

इस उत्तर से कात्यायनी को अपार आनन्द हुआ। अपनी दोनों भुजाओं मे पति को कसकर कहा—"आप कितने अच्छे हैं! उसे लिवा लाने के लिए क्या मेरे साथ नही चलेंगे?"

"मेरा चलना ठीक नही, तुम्ही हो आओ।"

"उनके सम्मुख जाकर 'बच्चे को ले जा रही हूँ' कहने की हिम्मत मुझ अकेली मे नही है। आप होंगे तो बोल सकूँगी।"

कुछ सोचकर राज ने सलाह दी—"सबसे पहले पत्र द्वारा उन्हें पूर्व-सूचना दे दो कि अमुक दिन आ रही हूँ। बच्चे को साथ भेजने की बात लिख दो। उसी दिन वहाँ पहुँच जाओ। तब बात प्रारभ करना कठिन नही होगा।"

दूसरे ही दिन वह पत्र लिखने बैठी। लेकिन लिखते समय कुछ सूझता ही नही था। हाथ काँप रहा था। आखिर, मनोबल दृढ़ किया और पाँच पन्ने का लबा पत्र लिखा। अपने विवाह का उल्लेख कर, सास-ससुर का आशीर्वाद पाने की बात लिखी। किस तरह माँ-बच्चो का सबंध इस ससार के समस्त सबधों का मूल है, सतान की याद मे माँ की ममता में निहित वेदना को स्मरण कर लिखा—"अपनी बेटी की वेदना समझना आपके लिए कठिन नही होगा! मैं चार दिन मे अर्थात् बीस तारीख को दोपहर बारह बजे की गाड़ी से आ रही हूँ। कृपया बच्चे को मेरे साथ भेज दें। पूज्या माताजी एव लक्ष्मी को साष्टाग नमस्कार।"

लिफाफे पर अतिरिक्त टिकट लगाकर, राज डाक-पेटी मे डाल आया।

—

…त तारीख आई। सुबह भोजन के पश्चात् कात्यायनी निकल पडी। …ान तक राज भी गया। ज्येष्ठ मास की वर्षा प्रारभ हो गयी थी। …ड़ी प्रदेश के बारिश के पानी से नदियाँ कुछ हद तक भरी हुई थी। एक

ही छाते में दोनों स्टेशन आये। कात्यायनी गाड़ी में चढ़ गई। लेकिन मन भयभीत था। राज शाम को छह बजे स्वयं स्टेशन आने की बात कह ही रहा था कि गाड़ी चलने लगी। लगभग डेढ़ महीने के बाद वह नंजनगूडु जा रही है। शायद यह अन्तिम सफर है। आकाश में सूर्य का पता लगाना मुश्किल था। नंजनगूडु पहुँचने तक बारिश होती रही। कवलीमठ पार कर गाडी जब धीमी गति से पुल पर से गुजर रही थी तो अधभरी कपिला साफ-साफ दिखाई दे रही थी। दूर कतार मे दीख रहे स्नान-घाट, मंदिर, नदी की दायीं ओर दूर-दूर तक ऊँचे-ऊँचे पेड़ों का झुंड—सभी चिर-परिचित दृश्य। अनायास उसे याद आया—ऐसी ही ज्येष्ठ मास की बारिश में कपिला ने उसके पति को अपने में आत्मसात् कर लिया था। उस दिन कितने आँसू बहाये थे। उन दिनों की मानसिक वेदना को स्मरण कर रही थी कि स्टेशन आ गया।

गाड़ी से उतरते-उतरते कात्यायनी का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। रास्ते मे कोई पहचान ले तो? नये जीवन के विषय में सारा नगर जानता है। यह सोचकर कि वह किसी से क्यों डरे—वह घर की ओर चलने लगी। अब तक पत्र उन्हे मिल गया होगा। घर के सदस्य अब तक किसी निष्कर्ष पर पहुँच गये होंगे! अगर वे बच्चे को सौंपने से इन्कार कर दें तो? सास जरूर आग-बबूला होगी, लेकिन ससुर सारासार का विचार करेंगे ही। सारी बातें तो पत्र मे लिख दी है। बोलने की आवश्यकता ही नहीं है। इन्हीं विचारों में खोई, कदम बढ़ा रही थी। द्वार पर पहुँची। द्वार आधा खुला था। भीतर दीवानखाने में प्रवेश किया। वहाँ से भीतरी प्रागण के बगल में रसोईघर, भोजनघर और पूजाघर है। सीधे भीतर जाने का साहस नहीं हुआ। दीवानखाने में कुर्सी पर बैठ गई। भीतर से मंत्रोच्चार की सस्वर ध्वनि आ रही थी—

काश्यपगोत्रोत्पन्नस्य मम पितुः नजुंडशर्मणः
वसुरूपस्य प्रातिसांवत्सरिक श्राद्ध निमित्तं प्राचीनावीती…

ऐसा लगा कि घर में कोई धार्मिक कार्य चल रहा है। एक बार मुड़कर द्वार की ओर देखा। दीवानखाने के फर्श पर दृष्टि पड़ी। सारा घर साफ किया गया था, लेकिन रांगोली नही मॉड़ी गई थी। आभास हुआ कि श्राद्ध मनाई जा रही है। आज किसकी पुण्य-तिथि है? अचानक उसे याद आया

कि इसी ज्येष्ठ मास में उसका पति स्वर्ग सिधारा था, हर साल इस दिन श्राद्ध मनाया जाता है। 'ओह ! किस दिन मैं यहाँ आई हूँ ! बिन सोचे स्वयं कार्यक्रम बनाकर आज ही आना था ! क्यों न लौट चलूँ ! और किसी दिन आऊँ !' सोचती हुई द्वार तक पहुँची ही थी कि लक्ष्मी सामने आ गई। सिर झुकाये खड़ी कात्यायनी से लक्ष्मी बोली—"अभी आयी क्या ? लौट क्यों रही है ? आ बैठ।"

"नही लक्ष्मी, आज श्राद्ध है।"

"हाँ, नजुड का श्राद्ध है। तुझे याद नही ? चल, बैठ। तेरा पत्र आया था।"

अब क्या किया जा सकता था ! कुछ कहना व्यर्थ था। दीवानखाने मे बैठ गई। लक्ष्मी कुछ देर वही बैठी। लेकिन किसी को समझ नही पड़ रहा था कि क्या बोला जाय। कात्यायनी सिर झुकाये बैठी थी। लक्ष्मी उठकर बगीचे मे चली गयी। भीतर मत्र-जाप चल रहा था। ऐसे ही विशेष कार्यों मे उपस्थित रहने वाला पुरोहित-वर्ग आज भी उपस्थित था। मत्रोच्चार स्पष्ट सुनाई नही दे रहा था। चीनी बीच-बीच मे प्रश्न कर रहा था। श्रोत्रियजी धीमी आवाज मे उत्तर दे रहे थे। करीब पद्रह मिनट मे भोजन-कार्य समाप्त हुआ। शास्त्रीजी कह रहे थे, "अन्न च पायस भक्ष्य—पहले अन्न, उसके बाद खीर और तत्पश्चात् मिठाई परोसिये।" और एक आवाज आई—"बड़े परिश्रम से प्राप्त ऐसा भोजन ब्राह्मण जन इतना खायें कि रात को न खाना पड़े।" दोनों ब्राह्मणों ने 'अस्तु' कहा। गगाजली की आवाज हुई। मत्र-पठन खत्म हुआ। भोजन प्रारम्भ हुआ। आवाज से ही कात्यायनी सब-कुछ समझ रही थी। भागीरतम्मा परोस रही थी।

कुछ देर शाति रही। फिर एक ने पूछा—"देव-कार्य और पितृ-कार्य में मुख्य अतर क्या है ?"

कात्यायनी को आश्चर्य हुआ। वह समझ गई कि प्रश्नकर्त्ता उसके पिता श्रीकठय्याजी हैं। वे आज क्यों आये ? दामाद की मृत्यु के बाद कुछ दिनों के लिए बेटी को अपने घर ले गये थे। बस, उसके बाद कभी नहीं आये। एक पत्र तक नही लिखा था। पहले उसे बहुत प्यार करते थे, किन्तु अपने दूसरे विवाह के पश्चात् वह प्यार किसी और के हिस्से मे

चला गया था। पौत्र के बारे में बातचीत करने के लिए आज शायद श्रोत्रियजी ने ही बुलाया होगा !

भीतर श्रोत्रियजी प्रश्न का उत्तर दे रहे थे—"देवकार्य में यज्ञोपवीत बायी भुजा से दाहिने चगुल के नीचे रहना चाहिए। मुख पूर्व या उत्तर दिशा की ओर हो। दाहिनी ओर मुड़कर प्रदक्षिणा करनी चाहिए। तर्पण करते समय 'स्वाहा' और 'वषट्' कहना चाहिए। पितृ-कार्य में यज्ञोपवीत बायी ओर आना चाहिए। दक्षिण की ओर मुख हो। तर्पण करते समय 'स्वधा' कहना चाहिए। देवकार्य मे काटे गये कुशो का उपयोग किया जाता है और पितृ-कार्य के लिए जड सहित उखाड़े गये कुश चाहिए'''।"

उनकी बातें एक विषय से दूसरे विषय पर चलती रहीं। श्रीकंठय्यजी वकील थे, अत. उन्होने कानून-सबधी प्रश्न पूछा—"पुत्र का अर्थ क्या है ? पुत्र का अर्थ केवल उसके माता-पिता तक ही सीमित है अथवा भावी पीढ़ी तक उसकी अर्थ-व्याप्ति होती है ?"

श्रोत्रियजी कह रहे थे—"इसका भी उत्तर मिलता है। 'अथ एवं पुत्र पद प्रपौत्र पर्यंतर तत्पर्यंतानमेव पार्वण विधिना पिंडदानोपकारकत्वस्या-विशेषात् ।' पुत्र भावी तीन पीढियों तक मे समाया है। कारण, वे तीनों पार्वण श्राद्ध मनाने के अधिकारी है। उनके द्वारा अर्जित पिंड से पितृ एक समान संतुष्ट होते है।" उनकी बातें श्राद्ध से पैत्रिक सपत्ति पर आ टिकी—"पिता की जायदाद न मिलने पर भी पिता का कर्ज ब्याज के साथ अदा करना पुत्र का कर्त्तव्य है। पौत्र केवल मूलधन अदा करेगा। प्रपिता के यदि पुत्र-संतान ही न हो तो उस कर्ज को कौन अदा करेगा ?"

"क्या ये जानते है कि मैं यहाँ अकेली हूँ"—कात्यायनी सोचने लगी। इतने में चीनी बाहर आया। वह भी, अपने पिता के श्राद्ध में भाग ले रहा था। पाँच वर्ष का बालक एक गीली लँगोटी पहने था। दीवानखाने मे बैठी कात्यायनी को उसने देख लिया। पहले तो दूसरी कोई महिला समझ पास नही आया, लेकिन कुछ देर बाद पहचानकर पूछा—"माँ, इतने दिन कहाँ गई थी ?" भीतर के लोग भी उसकी आवाज सुन सकते थे। कात्या-यनी ने हाथ के सकेत से उसे पास बुलाया। वह आगे बढ़ा और दीवान-खाने के द्वार के पास रुक गया।

"मेरे पास आओ चीनी"—धीरे से कात्यायनी ने कहा।

"माँ, आज पिताजी का श्राद्ध है, तुम नही जानती ? मैं शुद्धाचार मे हूँ। तुम मुझे छू नही सकती !" और भीतर दौड़ा। कात्यायनी दुविधा मे पड गई। लेकिन पाँच मिनट बाद वह फिर सीधा माँ के पास आया और उसकी गोद मे अपना हाथ टेककर पूछने लगा—"इतने दिन तक तुम कहाँ गयी थी माँ ?"

"मैसूर गयी थी, बेटे।"

"अब कभी न जाना" बालक ने कहा। कात्यायनी उसका सिर अपनी छाती से लगाने के लिए आगे झुकी, लेकिन "पिताजी का श्राद्ध-कार्य समाप्त होने पर आऊँगा। दादीजी प्रसाद देने वाली है। तुम्हें भी लाकर दूंगा"—कहकर भाग गया। द्वार के पास रुककर, "वहाँ क्यो बैठी हो, अदर आओ।"—कहता हुआ भीतर दौड़ा।

ब्राह्मणों का भोजन हुआ। पुनः मंत्र-जाप प्रारभ हुआ। आधे घण्टे के बाद श्राद्ध का कार्यक्रम समाप्त हुआ। दस मिनट बाद पुरोहित जी रसोईघर में गये और भागीरतम्मा से बातें करने लगे। आखिर मे यह कहकर कि "अब हम चलते है, आपका भोजन करना बाकी है," निकल पड़े। दीवानखाने से निकले तो कात्यायनी को देखा। दूसरे आगतुकों की नजर भी उस पर पड़ी। कात्यायनी को मानो शूल चुभ रहे थे। वह दीवार को ही देखती रही। कभी नजर उठाकर न देखने वाले इन ब्राह्मणो का व्यवहार उसे असह्य लगा। लेकिन लाचार थी।

थोड़ी देर बाद श्रोत्रियजी भी वहाँ आये और बोले—"पत्तल बिछी है, उठ भोजन कर ले बेटी।" पहले जैसा ही ममतापूर्ण व्यवहार और मधुर ध्वनि सुनकर उसे तसल्ली हुई। "मेरा भोजन हो चुका है। आप कर लीजिए।" "कोई बात नही, अब तक पच गया होगा"—कहकर वहीं खड़े रहे। बिना अधिक बोले वह भोजन के लिए उठी। श्रोत्रियजी, श्रीकठय्या और चीनी एक पक्ति मे बैठे थे। कात्यायनी के लिए अलग पत्तल बिछायी गयी थी। खाते समय सभी मौन थे। भागीरतम्मा परोस रही थी। खीर, पकौड़ी, भजिया, लड्डू, आम, केले आदि से पत्तल भर गयी थी। कात्यायनी दो ही कौर दाल-भात खायी। अधिक खाने के लिए किसी ने विवश नही किया। दही-भात आने तक चीनी ऊँघने लगा था। आज, जबकि साल मे एक बार स्वर्गीय पिता को भोजन कराने के

उपलक्ष्य में सुबह से उसे उपवास करना पड़ा था, दो कौर पेट में पहुँचा तो झपकी आने लगी। श्रोत्रियजी के आचमन करने के पश्चात् श्रीकंठय्यजी भी उठे।

हाथ धोकर कात्यायनी दीवानखाने में वहीं आकर बैठ गई, जहाँ पहले बैठी थी। आधे घण्टे तक वहाँ कोई नहीं आया। हर क्षण उसे यातना देने लगा। श्रोत्रियजी आये और पास ही खाट पर बैठ गये। कात्यायनी की समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह बात प्रारम्भ की जाय। पाँच मिनट बाद श्रोत्रियजी बोले—"तेरा पत्र मिला था।"

"उसमें मैंने सब-कुछ लिख दिया था" साहस बटोरकर कात्यायनी बोली। इस बीच भीतर से भागीरतम्मा आयी और एक ही साँस में उबल पड़ी—"न लिखती तो और क्या करती? तूने तो अपने कर्म से अपने माता-पिता, सगे-सबंधियों की प्रतिष्ठा बढ़ाई है न? अब बच्चे को ले जाकर क्या अपनी तरह ही कुकर्म कराना चाहती है? इस घर को सूना बनाना चाहती है?" श्रीकंठय्याजी भी आकर श्रोत्रियजी की बगल में बैठ गये। वे ऊँचे, स्थूल शरीर के पूर्ण व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। उतने ही कट्टर सनातनी भी थे। भागीरतम्मा फिर बोली—"इस शर्मनाक काम से तेरा जी नहीं भरा? अब बच्चे का अपने नये पति से परिचय कराने कि 'चीनी, ये ही तेरे पिताजी हैं' और इसे ले जाने आई है? तुझमें कोई लाज-शर्म बची भी है? तेरे पिता भी यहाँ बैठे हैं। वे तेरे आचार-विचार को उचित मानें तो कहें। दूसरी बातें बाद में होंगी। क्या हमने तुझे खाने-पीने के लिए नहीं दिया? गालियाँ दीं? कपड़े-लत्तों की कमी थी? उनसे ही कह।"

श्रीकंठय्यजी ने एक बार खाँसकर मानो कात्यायनी से यह कहना चाहा कि वह उनकी ओर देखकर बोले। वातावरण शांत हुआ। वे पुनः खाँसे। कात्यायनी कुछ न बोली। तीसरी बार पहले की अपेक्षा जोर से खाँसना भी बेकार गया। वे अंग्रेजी में बोलने लगे। उन्हें अदालत की भाषा बोलने की आदत थी। यद्यपि भागीरतम्मा भाषा नहीं समझ सकी, तथापि बात का गाम्भीर्य समझ गई थी। श्रोत्रियजी को विवरण समझ में नहीं आया, लेकिन बात के ढंग से भाव समझ गये। धर्मशास्त्र पर आधे घण्टे का भाषण देकर, कानूनी मुद्दा बताते हुए श्रीकंठय्यजी ने कहा—

"इंग्लैंड में भी बच्चे पर पिता के वश का अधिकार है। मां विधवा होकर दूसरी शादी कर लेती है तो भी उन बच्चों के वश का नाम पिता के वश के साथ चलता है।" अत मे बेटी के कारण अपने वश मे लगे कलक का उल्लेख कर धिक्कारा—"यू आर ए डिस्ग्रेस टु द फेमिली। बेटर इफ सच एन अनवर्दी डाटर इज नाट वार्न···"(कुटुंब के लिए तू कलक है। ऐसी नालायक बेटी जन्म न लेती तो ही अच्छा था!)। वे बोलते जा रहे थे। श्रोत्रियजी समझ गये। उठकर श्रीकठय्यजी से बोले—"जो होना था, हो चुका। अब डांटने से क्या लाभ! हमारे मुख से अपशब्द नही निकलने चाहिए। आप दोनों भीतर जाइए। मैं उससे बात करता हूँ।"

श्रीकठय्यजी की बातों मे भागीरतम्मा का यकीन था। पति की बात न मानकर वही खड़ी होकर बोलने लगी—"आप क्या जानते है युधिष्ठिर? वे वकील है। आप चुप रहिए, उन्हे बोलने दीजिए।" कात्यायनी का दुख उमड पडा। उसके पिता यहाँ कभी नही आते थे। उन्होंने कभी यह नही पूछा कि बेटी जिंदा है या नही। वे ही आज उसे ऐसे डांट रहे है, जैसे कोई पुलिस चोर को। उसे लगा—"अगर मेरी माँ होती···" मन ने प्रश्न किया, 'मेरी मां के मरने के पश्चात् इन्होने दूसरी शादी नही कर ली थी?' अपनी इस अत.पीड़ा से वह सिसक-सिसककर रो पड़ी।

श्रोत्रियजी ने पुनः कहा—"आप दोनों भीतर जाइए।"

"मैं नही जाऊँगी। वह आपका ही नही, मेरा भी पोता है। बेटे का लालन-पालन मैंने किया है। मेरे दुख को आप क्या जानें? यह मेरे बेटे की वश-बेल है। पालन-पोषण मैंने किया है" कहकर भागीरतम्मा जोर-जोर से रोने लगी।

"आप बुजुर्ग रोयेंगे तो किसी का भला नही होगा। धीरज धरिए"—कहकर श्रीकठय्यजी भागीरतम्मा को समझाने लगे। "सारी बातें मुझ पर छोड़ दीजिए" अधिकारपूर्ण वाणी मे कहकर श्रोत्रियजी उठे और दोनों को एक-एक हाथ से पकड़कर दरवाजे के बाहर ले गये। भागीरतम्मा अभी भी रो ही रही थी। श्रोत्रियजी ने अंदर से कुंडी लगा दी। अब दीवानखाने मे केवल कात्यायनी और श्रोत्रियजी थे।

कात्यायनी अब भी सिसक रही थी। श्रोत्रियजी एक कुर्सी खीचकर

उसके पास बैठकर समझाने लगे—"ऐसे मामलों में रोने से कोई लाभ नही। धीरज धरो बेटी! अब गुस्से में बोलने वाला कोई नही है। जो भी कहना है, मुझसे कहो।"

कात्यायनी ने सिर उठाकर श्रोत्रियजी का चेहरा देखा। शांत मुख! पाँच मिनिट बाद कात्यायनी की रुलाई थमी। आँचल से आँसू पोंछकर कहने लगी—"आप जानते हैं कि जन्म देने वाली माँ के लिए अपनी संतान को छोड़कर रहना कितना कठिन है। मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।"

"सच है!" श्रोत्रियजी ने सिर हिलाया।

"मैं जानती हूँ कि आप भी उसके बिना घर में ऊब जाते हैं। लेकिन चीनी के बिना मैं कैसे रह सकती हूँ? उसे मेरे साथ भेज दीजिए।"

दो मिनिट चुप रहकर श्रोत्रियजी ने शात चित्त से कहा—"बेटी, यह केवल मन या हृदय का प्रश्न नही है। इसे विस्तृत पृष्ठभूमि मे देखना पड़ेगा। बच्चे के प्रति माँ को ममता है। वही ममता हममे नही है क्या? तेरा पति गुजर गया, तुझे नया पति मिल गया। क्या हमें मृत बेटे के बदले नया बेटा मिल सकता है?"

कात्यायनी के पास इसका कोई उत्तर न था। श्रोत्रियजी आगे बोले—"मृतक हमारा बेटा था। उसका बेटा केवल तेरा बेटा कैसे हो सकता है? मेरे मतानुसार बच्चे न केवल पिता के होते है और न माता के—वे वश की निधि है। वैयक्तिक रूप से कोई अधिकार स्थापित करने का प्रयास करता है तो बच्चे उसके हाथ नही लगते। जब तक व्यक्ति वंश के सदस्यो मे एक बनकर रहता है, तब तक उस वश की हर वस्तु पर उसका अधिकार रहता है। उस दायरे से बाहर निकल जाने के पश्चात् यह कहना कहाँ का न्याय है कि उस वृत्त का केंद्र बिंदु मेरा है?"

"मैंने हक, अधिकार की बात नही की; केवल माँ के हृदय की पुकार सुनाई है।"

"वश-वृक्ष को छोड़कर कोई भी मातृत्व का गौरव नही गा सकता। मातृत्व, पितृत्व, भ्रातृत्व—सभी वश की पृष्ठभूमि मे रहते है। वश का उद्देश्य पूर्ण करने के लिए ही स्त्री-पुरुष पति-पत्नी बनते हैं। इस उद्देश्य से बाहर मातृत्व कहाँ से आता है?"

"आपका और मेरा जीवन-दृष्टिकोण भिन्न है। आपके मतानुसार व्यक्ति वंश के लिए है और मैं व्यक्ति के जीवन को ही अधिक महत्त्व देती हूँ।"

श्रोत्रियजी चुप रहे। इस बहस को और आगे न बढ़ाकर इतना ही कहा—"मूल दृष्टिकोण में ही अंतर है, तो चर्चा से कोई लाभ नहीं। चर्चा आगे नहीं बढानी चाहिए। यह तो तुम भी मानती होगी कि बच्चे जिस तरह अपने माता-पिता के हैं, उसी तरह दादा-दादी, नाना-नानी के भी है।"

कात्यायनी को पुरानी घटना याद आई। चीनी छह महीने का था। कात्यायनी और नजुड दोनों रसीली बातचीत मे मग्न थे। पति कहता था, "मुन्ना मेरा है" और पत्नी कहती "नही, मेरा है"। इतने मे श्रोत्रियजी वहाँ पहुँचे। बेटे ने पिता को फैसला सुनाने को कहा। हँसते हुए उन्होंने कहा था—"बच्चे न केवल पिता के है और न माता के, वे दादा के पोते है।" इस निर्णय को पति-पत्नी दोनों ने स्वीकार किया था। अब कात्यायनी समझ गई कि प्रारभ से ही उनका यही दृष्टिकोण है।

श्रोत्रियजी ने पूछा—"मान ले कि तू बच्चे को ले जाती है। क्या तू उसे इस काबिल बना सकती है कि वह गर्व से श्रोत्रिय-वश का नाम ले सके? आज की तरह भविष्य मे भी अपने पितरों का श्राद्ध करके उनसे उऋण हो सकता है? तेरे नये जीवन में ये सब विचित्र और उल्टे दिखाई देते है न?"

"इन सब पर मेरा विश्वास नही है।"

"तुझे विश्वास नही है। खैर, छोड़। भविष्य मे यह बालक बड़ा होने पर सरकारी कानून के अनुसार श्रोत्रिय-वश की समस्त सम्पत्ति का अधिकारी बने। जिस वश के विश्वास, मत, सस्कार, धार्मिक जिम्मेदारियाँ आदि को ठुकराया है, उस वश की सपत्ति को स्वीकार करना कहाँ का न्याय है? मैं ये सारी बातें केवल धन की दृष्टि से ही नही कहता—बड़े गहरे अर्थ में कह रहा हूँ। माता-पिता से शरीर के साथ उनके दैहिक, मानसिक एव अन्य सस्कार हमें उपलब्ध होते है। यह कहना कि हमे केवल शरीर चाहिए, सस्कारो से हमारा कोई सबध नही—टेढ़ा है।"

कात्यायनी चुप थी। कोई भी तर्क उसे सूझ न रहा था। श्रोत्रियजी कहते गये—"एक वश के बीज को आगे बढाने के लिए ही एक क्षेत्र को एक और वश वाले दान करते है। उस वश के बीज को अपने मे अंकुरित वृक्ष बनाने के पश्चात् वह क्षेत्र अपनी सार्थकता को प्राप्त करता है। एक बार जो माता बनती है, वह सदा-सदा के लिए माता है। वह पुनः कुमारी के समान पत्नीत्व को कैसे अपना सकती है ? विकास की दौड़ मे अनुभव का एक स्तर से दूसरे स्तर पर लौटना, सृष्टि-नियम के विरुद्ध है। विकास-पथ मे खोये स्तर को पाने की आशा रखना पाप है।"

कात्यायनी का मुख कुम्हला गया। चेहरे पर वेदना की सूक्ष्म लकीरें दृष्टिगोचर हो रही थी। उन्हे देखकर मधुर ध्वनि मे श्रोत्रियजी बोले—"बेटी, मैंने तेरा जी दुखाने के उद्देश्य से यह नही कहा। जो कुछ मन में था, कह दिया। सरकारी कानून के अनुसार तू बच्चे को ले जा सकती है। लेकिन कानून से धर्म नही मिलता। श्रोत्रिय-वश की प्रतिष्ठा को अदालत मे घसीटने का मौका मै नही दूंगा। मैं अन्तिम बात कहना चाहता हूँ, सुनेगी ?"

"कहिए !"

श्रोत्रियजी की आवाज दृढ हुई, किन्तु कठोर नहीं। "अन्तिम निर्णय करने की पूरी आजादी तुझे ही है। बालक को उठाकर तुझे सौंपने का अधिकार मुझे नही। वंश-वृक्ष की एक डाली तोड़कर दान देने का अधिकार दूसरी डाली को नही है। अपने लिए या भीतर रो रही उस वृद्धा के लिए भीख भी मैं नही मांगता। तिल-भर भी प्रलोभन नहीं कि हमारे बुढ़ापे में वह हमारा सहारा बने। बालक ऊपर सो रहा है। अगर तेरी अन्तरात्मा उसे ले जाने को कहती है, तो ले जा। इसकी जिम्मेदारी मै लेता हूँ कि ले जाते समय तेरे पिता या मेरी पत्नी तुझे न रोकें।"

इतना कह श्रोत्रियजी उठे और द्वार खोलकर भीतर चले गये। द्वार पर खड़ी भागीरतम्मा ने आतुरता से पूछा—"क्या किया ?"

"तुम मुंह मत खोलो, चलो !" कहकर पत्नी की बांह पकड़कर रसोई-घर मे ले गये। रसोईघर में भीतर से कुंडी लगा ली। कात्यायनी सब सुन रही थी।

वार्तालाप का इस तरह समाप्त होना कात्यायनी के लिए अप्रत्याशित

ही नहीं, अपितु मानो उसके सिर पर भारी जिम्मेदारी लाद द
गयी थी। नम्रता के किसी स्तर पर उतरकर श्रोत्रियजी से तर्क करने की
तैयारी के साथ आई थी। लेकिन उन्होंने अधिक तर्क को अवसर ही नहीं
दिया। कात्यायनी मानव-हृदय और मातृ-हृदय की पुकार सुनाने के लिए
वहाँ आई थी। उन्होंने उसे दूसरे अर्थ में आँका। अपने मत को स्पष्ट
लेकिन मृदु वचनों द्वारा समझाकर, भावी जिम्मेदारी के समस्त भार को
मेरे सिर पर डालकर वे भीतर चले गये। वे मेरे प्रति क्रोध प्रकट कर
सकते थे। इसके विपरीत, रोती हुई अपनी पत्नी की बाँह पकड़कर कमरे
में ले जाकर भीतर से कुंडी लगा ली है—यह भी इसलिए, जैसा कि
मुझसे कहा है, ताकि बालक को ले जाने में किसी तरह की बाधा न हो।

कात्यायनी ने भीतर रो रही वृद्धा के दृष्टिकोण से इस स्थिति पर
सोचा। जैसा कि उन्होंने कहा है, स्वर्गीय पति के स्थान पर मुझे दूसरा
पति मिल गया, लेकिन माता-पिता को मृत पुत्र को भुलाने के लिए दूसरा
पुत्र नहीं। उस स्थान पर यह पोता है। उसे मैं ले जाऊँ तो उनका क्या
होगा? उनके लिए सहारा कौन रहेगा? ससुर की दृष्टि से भी उसने
सोचा। उनके विश्वास में स्नेह, प्रेम, आत्मीयता, मानव-भावनाएँ आदि
एक विशिष्ट संदर्भ में अपना अर्थ पाते हैं। उनकी दृष्टि में वंश और
भावी पीढ़ियों को त्यागने वाले मातृत्व का कोई मूल्य नहीं। लेकिन उनके
अंतिम वाक्य में कितना फर्क था! "श्रोत्रिय-वंश की प्रतिष्ठा को अदालत
में घसीटने का मौका मैं नहीं दूँगा।" "अपने लिए या भीतर रोने वाली
उस वृद्धा के लिए बच्चे को छोड़ जाने की भीख भी मैं नहीं माँगता।"
तिल-भर भी प्रलोभन नहीं कि हमारे बुढ़ापे में वह हमारा सहारा बने"
और अंत में कहा था, "अगर तेरी अंतरात्मा उसे ले जाने को कहती है
तो ले जा। इसकी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ कि ले जाते समय तेरे पिता या
मेरी पत्नी तुझे न रोकें।" उस पर सारी जिम्मेदारी डालकर उसकी
कठिन परीक्षा ले रहे हैं।

उसका हृदय संतप्त था। बालक की पुकार को भुला देने की भाव-
नाओं ने उसे घेर लिया, उसके मातृत्व ने भावना से संग्राम करना प्रारम्भ
कर दिया। विपरीत भावनाएँ चाहे कितनी भी प्रबल क्यों न हों, मातृ-
हृदय को सौंपना दुःसाध्य था। कात्यायनी मूकवत् बैठी रही थी, उठने

की भी शक्ति नही बची थी। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की बुद्धि न रही। अपनी समस्त शक्ति बटोरकर वह खडी हुई। कमरे के सामने का द्वार खुला था। सामने के आँगन के एक तरफ से ऊपरी मजिल पर जाने वाली सीढियाँ है। धीरे-धीरे उसके पैर उस ओर बढे। नीचे किसी की आवाज नही आ रही थी। निर्जन एव टूटे घर के समान नीरवता छायी थी। इस सतर्कता से कि आवाज न हो, कदम बढ़ाते हुए सीढियाँ चढ़ी। जहाँ वह दो साल से अध्ययन करती थी, वही बड़े व्याघ्र-चर्म पर चीनी सोया था। बच्चा श्रोत्रियजी का नीला शाल ओढ़े हुए था। शाल थोड़ा हटा हुआ था जिससे बच्चे का पेट और छाती का भाग दिखाई दे रहा था। बिना किसी व्याकुलता के, नियमित गति से बच्चे की साँस चल रही थी। कात्यायनी उसके पास बैठ गयी। उसके मुख की ओर एकटक निहारती रही। उसे अपने पहले पति की याद आयी। उन्ही का-सा चेहरा, वैसा ही शरीर का गठन, और सोने की वही भगिमा। वैसी ही सुन्दर नाक, विशाल ललाट, बड़ा चेहरा! दादा का-सा शरीर, पिता से चीनी को मिला था। उसकी अंतरात्मा ने प्रश्न किया, "यह बालक किसका है?" उसकी आत्मा यह मानने के लिए तैयार न थी कि श्रोत्रिय-वश और इस बालक के बीच कोई सबध नही है। श्रोत्रिय-वश का बीज अपने क्षेत्र में अकुरित होकर वृक्ष बन रहा है। वह चाहे कही भी रहे, अपने गुण को प्रकट करेगा ही।

लेकिन उसके निर्माण मे कात्यायनी का रक्त-मास है। उसने अपना पय पान कराया है। क्या बच्चे के प्रति उसकी आशा, विश्वास, इच्छाएँ, ममता आदि की कोई कीमत नही है? हे भगवान्! ऐसी परिस्थिति क्यों पैदा की? अपने गर्भ से जन्म लेने वाली संतान पर माता का अधिकार सिद्ध करने के लिए कैसे-कैसे वाद-विवाद करने पड़ रहे हैं? मातृत्व का स्वयं-सिद्ध सत्य इतना दुर्बल है कि वह वादों की पुष्टि करने मे असमर्थ हो? मेरे मातृत्व के सत्य को ही दुर्बल बना देने वाली कैसी अजीब परिस्थिति में मैं आ पड़ी! उसे महसूस हुआ मानो कोई निर्मम होकर पैने काँटों से उसका हृदय बेध रहा है। पेट और छाती में असह्य वेदना होने लगी। आँखों से तप्त अश्रुधारा फूट पड़ी। वह सिसक-सिसककर रोने लगी। सिसकियाँ सुनकर बच्चे के श्वास-क्रम मे परिवर्तन हुआ।

लिखवाया।"

सारी बातें कात्यायनी की समझ में आ गयीं। उसने एक बार लंबी साँस ली।

"हमें बताये बिना तुमने ऐसा क्यों किया ?" लक्ष्मी ने प्रश्न किया।

"यह तुम्हें खुद मालूम होना चाहिए।"

लक्ष्मी अतर्मुखी हुई। पाँच मिनट बाद बोली, "हमारे करम हमसे ऐसा कराते है।"

कात्यायनी मौन रहना चाहती थी, अतः बोली—"अँधेरा हो गया, तुम घर जाओ।"

"धीरज से काम लो। चिंता करने से कोई लाभ नहीं" लक्ष्मी ने कात्यायनी की पीठ पर हाथ रखकर कहा और वहाँ से चली गयी।

चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था। गाडी का अब तक भी पता न था। टिकट लेना था। टिकटघर के पास गयी तो पता लगा कि एक जगह मालगाड़ी पटरी से उतर गयी है जिसके कारण फिलहाल गाड़ियाँ नहीं चलेंगी। स्टेशन की घड़ी में सवा सात बजने वाले थे। अब मैसूर कैसे पहुँचा जाये ? वह पुनः उसी बेंच पर बैठ गयी। वैसे परिचितों के अनेक घर है, लेकिन किसी के यहाँ रात-भर ठहरने का आश्रय माँगने के लिए उसका मन तैयार न था। वही बैठी रहती है तो कोई-न-कोई पहचान लेगा। स्टेशन पर ही रात बिताई भी जा सकती है, लेकिन लोगों के सोने से पहले तक कहीं हो आना उचित समझकर वहाँ से उठी। कदम कपिला की ओर बढे। नदी किनारे पहुँच, गौरी घाट की सीढी पर बैठ गयी। नदी की गति सामान्य थी। उस अँधेरे मे भी दूर के बिजली के खम्भे का मद प्रकाश दिखाई पड़ रहा था। लेकिन उस प्रकाश में उसे कोई भी वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं दे रही थी। इस समय वह बिलकुल अँधेरा चाहती थी। ऊपर से वर्षा की बूंदें पड़ रही थी। अब तक उसकी साड़ी भीग चुकी थी। साड़ी का एक पल्ला खीचकर सिर ढँक लिया। मन अब भी उस घटना को दुहरा रहा था।

उस दिन दोपहर की सारी घटना, स्मृति में आकर अदृश्य हो गयी, तो उसका मन पाँच साल पीछे की ओर दौड़ने लगा। पाँच साल पहले इसी नदी पर घटी घटना ताजी हो उठी। पाँच वर्ष पूर्व, इसी ज्येष्ठ

में आज के दिन उसका पति नंजुड श्रोत्रिय इसी नदी मे हमेशा के लिए सो गया था। उसने पति को जी-जान से प्यार किया था। पत्नी को अकेली छोडकर जिस दिन वह चल बसा, उस दिन की रुलाई की थाह कौन जान सका है? उसी नदी मे डूब जाने की प्रबल इच्छा जागी थी। श्रोत्रियजी ने शायद उसके मनोभावों को पहचान लिया था। यही कारण है कि उसे अपने पास बैठाकर बालो पर हाथ फेरते हुए सान्त्वना दी थी—"तुझे कम-से-कम इस बच्चे के लिए जीना होगा, बेटी!" आज मेरे बिना भी बच्चा जी सकता है। उसी समय मैं सती हो जाती या नदी में कूद पड़ती तो ये समस्याएँ ही नही उठती। पाँच वर्ष पश्चात् मेरा जीवन विपत्ति में फँसा है और मुझे अपनी ही संतान से अलग होना पड रहा है। लोगों की दृष्टि में भी मैं पतिता हूँ। अब भी क्या बिगड़ा है? नदी मे विलीन हो जाना ही उचित है।

मरने के लिए उसका मन आकुल था, लेकिन कोई अदृश्य शक्ति उसे ऐसा करने से रोक रही थी। वह सोच रही थी, 'मेरे जीने का कोई उद्देश्य ही नही तो कौन-सी शक्ति मुझे रोक रही है? इसी विचार से वह दो बार उठकर पानी के पास पहुँची। पुन दो सीढ़ी ऊपर जा बैठी। वर्षा ऋतु में निर्जन प्रदेश मे नदी अपने पूर्ण आवेग में भयावनी आवाज के साथ बह रही थी।

अचानक कात्यायनी पर प्रकाश पड़ा। उसने मुडकर देखा। ऊपर से किसी ने टार्च की रोशनी फेंकी थी। वह उठ खडी हुई। टार्च लिये व्यक्ति ने नीचे उतरते हुए पूछा—"यहाँ क्यो बैठी है? मैंने कहाँ-कहाँ नही ढूँढा तुझे!" आगतुक राज था। ध्वनि पहचानी, तो वह सिर झुकाकर खडी हो गयी। पास जाकर राज ने कात्यायनी का हाथ पकडा, तो सिर चकराने लगा। उसने राज के सीने पर सिर टेक, उसकी भुजाओं मे अपने-आपको छोड़ दिया। वह भी उसी सीढ़ी पर बैठ गया। उसके कपड़े भी भीग गये थे। उसकी गोद मे सिर रखकर वह लेट गयी। पाँच मिनट बाद चक्कर थमे। राज के गले से लिपटकर सिसक-सिसककर वह बोली—"मुझे ढूँढने आप क्यों आये! मैं तो पापिन हूँ।"

उसके मुख को अपने सीने से चिपकाकर राज ने कहा—"ऐसा न। अगर तुझे कुछ हुआ तो मैं कैसे जी सकूँगा? छह बजे मैं स्टेशन आया

या। वहाँ पता लगा कि गाड़ी पटरी पर से उतर गयी है। मैं जानता था कि यहाँ से कोई बस भी नहीं चलती है। अतः घर जाकर साइकिल पर निकल पड़ा। स्टेशन पर ढूँढ़ा। तू वहाँ नहीं थी। श्रोत्रियजी का पता पूछते हुए उनके घर के दरवाजे तक गया। फिर लगा कि तू वहाँ नहीं होगी। एक होटल के पास साइकिल रखकर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहीं आ पहुँचा। उठ, साइकिल से घर चलेंगे।"

"ऐसी वर्षा में मुझे ढूँढने से कितने थक गये होंगे!"—कहकर राज के सीने में अपना मुँह छिपा लिया, मानो उसी में एकाकार होना चाहती हो। उसकी आँखों से अब भी आँसू बह रहे थे। उन्हें अपने अधरों से पोंछते हुए राज ने कहा—"उठ, साढ़े नौ बज चुके हैं। घर पहुँचते-पहुँचते रात आधी हो जायेगी।"

१६

रत्ने से विवाह हुए आठ वर्ष हो गये थे। अब तक डॉ० राव के ग्रंथ का दूसरा खण्ड भी प्रकाशित हो गया था और तीसरे खण्ड की टाइप की हुई प्रति लंदन भेज दी गयी थी। उन्हें विद्वत् जगत् में काफी यश मिल रहा है। अखिल भारत ऐतिहासिक परिषद् ने उन्हें अध्यक्ष बनाकर उनका सम्मान किया था। इंग्लैंड के एक-दो विश्वविद्यालयों ने भी उन्हें प्राध्यापक के रूप में निमन्त्रित किया था। बाहर से मिल रहे सम्मान को देखकर मैसूर विश्वविद्यालय ने उन्हें प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया था। वे अब प्रोफेसरों के लिए निर्मित बँगले में रहने लगे थे। इसके बावजूद उनके दैनिक जीवन में किसी तरह का परिवर्तन नहीं आया था। सुबह नौ बजे पुस्तकालय जाते तो रात के आठ बजे तक वहीं रहते। टाइप का काम रहता तो रत्ने घर पर ही रहती, अन्यथा वह भी साथ जाती। रात को लौटकर रसोइया जो-कुछ परोसता, खाकर एक घण्टे के लिए घूमने निकल पड़ते। तब भी वे शोध-संबंधी बातचीत करते। उस दिन अध्ययन

के सिलसिले में उपलब्ध नये विचारों के बारे में डॉ० राव बताते। उसकी सभावना-असभावना को लेकर रत्ने प्रश्न करती। डॉ० राव विश्लेषणात्मक वादों से अपने विचारों की पुष्टि करते। कभी-कभी रात को इसी तरह बात करते-करते जिला-कचहरी के मैदान या कोर्ट कपाउड मे होते या किसी पेड़ के पास रात के ग्यारह बजे तक बैठे रहते। लौटने पर उनके विचारो को रत्ने लिख लेती। अब तो रत्ने के कार्यों का भी वही समय है जो डॉ० राव का। वह भी रात के दो बजे तक काम करती और सुबह आठ बजे उठती।

तीसरे खण्ड की टाइप की हुई प्रति प्रकाशक को मिले दो वर्ष हो गये थे, लेकिन वह अब तक मुद्रित नही हुई थी। युद्ध के कारण ससार के सभी देशों मे कागज का अभाव हो गया था। मुद्रणालय युद्ध-प्रयत्नों के कार्यों मे व्यस्त थे। डॉ० राव के प्रकाशकों का अपना मुद्रणालय होते हुए भी उनके सारे काम स्थगित हो गये थे। उन्होंने डॉ० राव को लिखा था—"आपके तीसरे खण्ड की हस्तप्रति मिल गयी है। युद्ध समाप्त होने तक उस सबंध में हम कुछ भी करने में असमर्थ हैं। हमें थोड़ा भी कागज नही मिल रहा है। हमारा अपना मुद्रणालय होते हुए भी हम उसे अपने काम में नही ला पा रहे हैं'। हमारे पास जो ग्रंथ शेष बचे हैं, उन्हे हमने तहखाने मे रख छोड़ा है। आपकी हस्तप्रति भी रख दी गयी है। इस नगर पर बम-वर्षा हो रही है। आपकी हस्तप्रति नष्ट हो जाने की सभावना भी है। आशा है, आपके पास उसकी एक प्रति और होगी। अचानक लदन का कार्यालय बम-वर्षा का शिकार हो भी गया, तो न्यूयार्क, टोरटों और सिडनी के हमारे उपकार्यालय आपके शेष खण्डों को प्रकाशित करेंगे। इस परिस्थिति से निराश न हो, शेष जिल्दों की तैयारी में लगे रहें।"

भारत पर भी युद्ध का प्रभाव पड़ा। कई बार खोज के लिए डॉ० राव को रत्ने के साथ यात्रा करनी पड़ी थी। स्वय जावा, बोर्नियो, सुमात्रा जाना था। ऐसे खतरनाक प्रदेशों मे जाने की अनुमति उन्हें नहीं मिली। भारत के भी कई-एक स्थानो में आना-जाना कठिन था। यूरोप के सभी देश युद्धग्रस्त थे, अतः वहाँ के विद्वानों को डॉ० राव के पत्र मिलते ही न थे। अगर कभी मिल भी जाते, तो वहाँ से उत्तर नही आता था। पेरिस के एक प्रोफेसर ने केवल एक पक्ति का पत्र लिखा था—"अगर

इस युद्ध मे बच गये तो भी मानव-पीढ़ी के इतिहास की बात; अन्यथा इतिहास समाप्त हो जाय तो भी आश्चर्य नही।"

लेकिन डॉ० राव अपने कार्य मे निरन्तर लगे रहे।

रत्ने के विवाह के चार वर्ष बाद उसके पिता का निधन हो गया था। वे इस बात से दु खी हुए थे कि बेटी ने मैसूर के प्रोफेसर से, उनके एक पत्नी होते हुए भी, विवाह किया। लेकिन यह सोचकर चुप रहे कि सब-कुछ हो चुका है, क्या किया जा सकता है? इसके अतिरिक्त बेटी की इच्छा और उसके अनुकूल डॉ० राव के कार्य को देखते हुए, उन्हे वह स्वाभाविक-सा प्रतीत हुआ था—इस प्रकार मन को तसल्ली देते रहे। पिता की मृत्यु का समाचार पाकर, रत्ने सिहल के अपने भाई के घर एक सप्ताह रहकर लौट आई थी। पुनः वहाँ जाने के लिए न उसके पास समय था और न इच्छा ही।

अब रत्ने टूटी-फूटी कन्नड सीख गई थी। रसोइये से बात कर सकती थी। रसोइया रागप्पा माध्व ब्राह्मण था। रसोई बनाना उसका पेशा नही था। उसने इस सबध मे कुछ सीखा भी नही था। प्रारम्भ से ही उसकी बुद्धि मद थी। चार-पाँच घरों मे छोटे-मोटे काम कर चुका था। कम उम्र मे ही अपने सम्बन्धियों को खो चुका था। उसकी शादी हो गयी थी, लेकिन शादी के छह महीने बाद पत्नी भी गुजर गयी। वह डॉ० राव के यहाँ नौकरी करने लगा तो रत्ने ने ही, जो कुछ वह जानती थी, उसे रसोई बनाना सिखाया था। नियमित रूप से रोज एक ही तरह का रसोई बनाकर परोसता था। उससे अच्छा रसोइया मिलना कठिन नही था, फिर भी उसे नही छोड़ा। वह पचास वर्ष का था और उसे और कही नौकरी मिलना कठिन था। इसके अतिरिक्त घर का हर कार्य—दूकान से समान लाने से लेकर दूध-दही वालों का हिसाब चुकाने तक—वही करता था। कभी एक पैसे का भी धोखा नही दिया था। जब दोनों महीना-महीना बाहर रहते, तब भी इत्मीनान से घर की देखभाल करता था। उसके बनाये भोजन की अपेक्षा विश्वास की दृष्टि से वह उनके लिए अत्यंत आवश्यक व्यक्ति था। उनके लिए दोपहर को तीन बजे पुस्तकालय मे ब्रेड और चाय पहुँचाने का काम भी वही करता था।

चौथे खण्ड का कार्य चल रहा था। उसमें दसवीं शताब्दी से लेकर मुगलकाल तक के भारतीय सांस्कृतिक जीवन एवं संघर्ष को चित्रित करना था। अपने शोध-कार्य के लिए दोनों ने राजस्थान जाकर राजमहलों में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री का अध्ययन किया था। पूना में पेशवा-संबंधी सामग्री का अवलोकन किया था। डॉ० राव अब भी लेखनी उठाने में हिचकिचा रहे थे। नवीन परिवेश में विजयनगर को देखना और काफी सामग्री जुटाना आवश्यक था। भारतीय संस्कृति के इस महान् संघर्षपूर्ण काल को प्रस्तुत करना उन्हें भी कठिन लगा था।

फरवरी के अंत तक डॉ० राव का स्वास्थ्य काफी गिर चुका था। गत बारह वर्ष से वे अपने ग्रंथ के लिए निरन्तर परिश्रम करते रहे हैं, एक दिन भी विश्राम नहीं लिया। उत्साह अपरिमित था, लेकिन उत्साह के आघात को सहने की शक्ति शरीर में नहीं थी। सैंतालीस वर्ष की आयु में वे साठ के दिखाई देते थे। रात के भोजन के पश्चात् टहलने निकलते तो पाँच मिनट में थकावट महसूस करते। मोटी पोथी हाथ में लेकर, आरामकुर्सी पर पीठ टेककर बैठे-बैठे पढ़ने लगते, तो पढ़ते-पढ़ते हाथ थक जाते। कभी-कभी रत्ने को नोट लिखाते समय बोलने में भी थकावट प्रतीत होती। फिर भी सप्ताह में पाँच घंटे बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थियों को पढ़ाना पड़ता था। खाने-पीने में भी उनकी रुचि नहीं रही।

रत्ने ने डॉक्टर को बुलवाया। डॉक्टर, डॉ० राव को अस्पताल ले गया। जाँच करने के प[illegible] —"कोई [illegible] है। कार्य के बोझ के कारण ऐसा हु[illegible] तरह [illegible] आराम की जरूरत है। मैं टानिक [illegible] महीने [illegible] बदलने बाहर जाइए। कोई हि[illegible]
टहलिए कि पसीना आने [illegible]
मस्तिष्क [illegible]
जायेगी [illegible]
रह जा[illegible]
थे। रत्ने [illegible]
दोनों नदी [illegible]

कालेज की छुट्टी पड़ने वाली थी। इस वर्ष डॉ० राव परीक्षक नहीं थे। रसोइये रागप्पा को साथ चलने को कहा, लेकिन उसकी अनिच्छा थी। पत्र द्वारा कब्बन भवन मे एक विशाल कमरे का आरक्षण कर लिया था। आजकल राज मैसूर में नहीं, परिवार के साथ बेंगलूर में था। जाते समय डॉ० राव रास्ते मे भाई के घर जाना चाहते थे, लेकिन रत्ने ने उसका विरोध किया। सीधे बेंगलूर से टैक्सी कर नंदी पहाड़ी पहुँचे।

पहाड़ी की हवा डॉ० राव को ही नहीं, रत्ने को भी अनुकूल हुई। दोनों रात मे जल्दी सो जाते। सुबह पाँच बजे उठते। हाथ-मुँह धोकर कॉफी पीते और टहलने निकल पड़ते। कभी-कभी पहाड़ी के सात-आठ चक्कर लगा लेते। कभी वीरभद्र स्वामी देवालय होते हुए नंदीग्राम की ओर कुछ दूर तक उतरने लगते। रास्ते मे किसी मंडप के पास विश्राम कर धीरे-धीरे ऊपर चढते। चढ़ते समय डॉ० राव थक जाते। रत्ने उन्हें हाथ का सहारा देती। आठ बजे तक घर लौटते। स्नान करते। तब तक होटल से दूध-नाश्ता आ जाता। शाम को मोटर के रास्ते पे एक मील तक नीचे उतर जाते। किसी दोपहर को उद्यान में पेड़ों की छाया मे बैठ जाते। पहाड़ी पर आने वाले देशी-विदेशी पर्यटकों को और कुछ उन-जैसे ही जलवायु परिवर्तन के लिए आये लोगों को देख-कर समय बिताते। कभी-कभी दोपहर मे डॉ० राव सो जाते, तो रत्ने अकेली बँगले के बाहर पेड़ों की छाया मे जा बैठती। अब तक तो उसका मन सदा काम मे लगा रहता था। उनके व्यस्त जीवन में पहली बार उसे व्यक्तिगत जीवन के संबंध में सोचने का समय मिला था। पहाड़ी की चोटी पर बैठकर नीचे देखने पर बहुत दूर-दूर तक फैला प्रदेश दिखाई देता था। बीच-बीच मे चाँदी की चादर-से [illegible], तालाब, ऊँची-नीची पहाड़ियों की कतार दिखाई पड़ती थी। उसने रत्ने को दिखाई पड़ता था वैविध्य को समाये, नीरस एक स्वरूप। उस एक स्वरूप में वह कोई सौंदर्य न देख सकी। मानव जीवन की [illegible] नीरवता आकाश से पृथ्वी तक अपना रौब जमाये रहती थी। ग्रीष्म की उमस [illegible] थका देती थी।

एक दिन यों ही बैठी थी कि माता-पिता की याद आ गई। [illegible] की बड़ी इच्छा थी कि बेटी की शादी कर दें। बेटी के [illegible]

की बड़ी इच्छा थी उसे। यह इच्छा पिता में भी कम न थी। अब तो दोनों ही नहीं रहे। पति डॉ० राव के अलावा उसका कोई नहीं रहा। सिंहल में रहने वाले भाई और रत्ने के बीच तो अब पत्र-व्यवहार भी नहीं होता। सिंहल छोड़कर उसका जीवन इस देश में प्रारम्भ हुआ। उसका जीवन पति के साथ सदा विद्वत्ता, खोज और बौद्धिक स्तर पर चलता रहा। अब इस ऊँचाई से नीचे उतरकर चलना कठिन था। डॉ० राव कई बार उससे मजाक करते, दिल खोलकर बड़ी आत्मीयता से बात करते। वह भी उसी साँचे में ढल गयी थी, वैसा ही चाहती भी थी। लेकिन उसे एक ऐसे व्यक्ति की चाह थी जिसका सबध केवल अत करण से हो—और जिस सबध का कोई पहलू न हो।

उसमें यह आकाक्षा अकुरित हो चुकी थी कि इस दाम्पत्य के फलस्वरूप वह एक बच्चे की माँ बन जाय। यह आकाक्षा आज की नहीं, काफी दिनों से थी। बच्चे की कल्पना करके वह कई बार उसी विचार में खो जाती। लेकिन निरन्तर कार्यों में व्यस्त रहने के कारण, कल्पना-जगत् में विचरण करने का मौका ही नहीं मिला था। इस विचार से कि यह असभव कल्पना है, वह गर्दन झटककर अपने कार्य में डूब जाती। उसके दाम्पत्य जीवन के दस वर्ष इसी तरह बीत गये। यह बात नहीं कि उनमें शारीरिक सबध नहीं था, फिर भी उन दोनों ने ऐसी सतर्कता बरती थी कि रत्ने गर्भवती न हो जाय।

अब मानसिक विश्राम के इन दिनों में रत्ने के मन में माँ बनने की आशा अदम्य रूप लेने लगी। रोज शाम को घर लौटते ही उसे प्रतीत होता, मानो बच्चा रो रहा है, उसे उठाकर स्तनपान करा रही है, नीद में भी बच्चे को सीने से लगाये सोई है। वह 'माँ' कहकर पुकार रहा है! उसकी कल्पना अनेक तरह से बच्चे के रूप-सौंदर्य को चित्रित कर लेती। फिर यह विचार भी उठता कि अगर मैं माँ बनूँ तो क्या ग्रथ-निर्माण में बाधा नहीं पड़ेगी?···बच्चे की देखभाल के लिए एक आया रख लेंगे···मैं टाइप करती रहूँगी और आया बच्चे को लिये मेरे पास बैठी रहेगी···बीच में कागज बदलने में जो समय लगेगा, तब बच्चे की ओर मुड़कर उसकी मुस्कराहट को देखकर पुनः कार्य में लग जाऊँगी···दोपहर में रामण्णा को ब्रेड-कॉफी लाने की जरूरत नहीं रहेगी! मैं स्वय घर

जाकर बच्चे को उठाकर, चूमकर डॉक्टर साहब के लिए ब्रेड-कॉफी लेकर लौटूंगी ···। रात को टहलने जाते समय उसे एक ओर कन्धे से लगा लूंगी···कहीं बैठकर बात करने लग गये तो उसे गोद मे सुला लूंगी ··! वह मेरा बच्चा किसकी तरह हो? ··उन्ही की तरह मुन्ना हो, उन्ही का-सा शात स्वभाव मिले, उन्ही की तरह महान विद्वान् हो···हम दोनों भारत का सास्कृतिक इतिहास लिख रहे है तो वह विश्व सस्कृति का इतिहास लिखे और संसार के इतिहासकारों मे अद्वितीय बन जाय ··!

उसे अपनी उम्र की याद हो आती। वह सैंतीस वर्ष की थी। कम उम्र में ही विवाह हो जाता तो अब तक बीस वर्ष की बेटी या बेटे की माँ बन चुकती! बेटी होती तो उसका विवाह हो जाता और वह भी माँ बन जाती! बेटा होता तो किसी उच्च परीक्षा की तैयारी करता! अब भी समय है। माँ बनना ही चाहिए! उसे एक पुरानी बात याद हो आई—सुना है बडी उम्र मे गर्भिणी होने पर पहले प्रसव में माँ को बड़ा कष्ट होता है और कभी-कभी माँ को जान से हाथ धोना पड़ता है! अब मैं सैंतीस वर्ष की हूँ। माँ बनने की उम्र की दूनी आयु! गर्भिणी बनकर प्रसव के समय मर जाऊँ तो? यह चित्र उसकी आँखों में छा गया—असह्य वेदना से वह छटपटा रही है, पास ही नर्स बैठी सान्त्वना दे रही है! दो दिन मौत से सघर्ष के अनुभव के पश्चात् प्रसव के लक्षण दिखाई देते है! मुट्ठी बन्द किये, आँखे मूँदे, असह्य सकट के अनुभव के साथ बच्चा बाहर आता है! श्वास और नाड़ी की गति घटने लगती है! हृदय की धड़कनें रुक जाती हैं! वह मर जाती है! लेकिन बच्चा? कल्पना में ही उसने प्रार्थना की—"भगवान्, मैं मर जाऊँ तो कोई बात नहीं, बच्चे को बचा दो! वह मेरा बच्चा है, मेरे मातृत्व की निशानी है।" बच्चा बच गया तो उसका पालन-पोषण कौन करेगा? इस प्रश्न के उठते ही उसकी कल्पना पखहीन पक्षी की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ती है। मौत और मातृत्व इन दोनों में से उसने दूसरे को पसद किया। मातृत्व विहीन जीवन मौत से भी करुणाजनक है। इस इच्छा को पति के सम्मुख व्यक्त करना पड़ेगा। कहने में शर्म आती थी। वे तो मेरी इच्छा को विलक्षण नहीं कहेंगे। मैं भी तो स्त्री हूँ। स्त्रीत्व की इस मूल प्रवृत्ति को वे अनसुनी नहीं करेंगे!

एक दिन रात को सोते समय उसने पति से पूछा—"ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसे अपनी मृत्यु के बाद छोड़ जाने से मनुष्य को तृप्ति मिलती है?"

डॉ० राव किसी विचार की लहर में थे। उन्होंने पूछा—"मन में यह प्रश्न कैसे उठा ?"

"कारण जो भी हो, उत्तर दीजिए।"

अपने ऐतिहासिक ज्ञान का स्मरण करते हुए उन्होंने कहा—"भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न आकांक्षाएँ होती है। कोई विशाल साम्राज्य कायम करके मरना चाहता है तो कोई विशाल मंदिर का निर्माण कराकर। ससार मे भगवान् बुद्ध-जैसे नवीन सत्य का प्रचार करने वाले भी विरले मिल जाते है और 'मै, मेरी सन्तान' तक ही सीमित रहनेवालों की सख्या भी बड़ी है।"

"इन बहुसख्यकों को क्या आप तुच्छ समझते है ?"

"नही, मैं उन्हे तुच्छ नही समझता। जानती हो क्यो ?"

रत्ने ने कोई उत्तर नही दिया. लेटे-लेटे पति का हाथ अपने हाथ में लेते हुए पूछा—"कहिए, आपके दाम्पत्य की संतान कौन-सी है ? हम दोनों के मरने के बाद कौन-सी वस्तु बची रहेगी ?"

"ऐसा क्यो पूछ रही हो ?"—पत्नी के सकेत को न जान, डॉ० राव ने कहा—"विश्व के इतिहास को विस्तृत रूप से जानने की इच्छा रखनेवाला कोई भी हमारे ग्रंथो को निर्लक्ष्य नही कर सकता। समस्त भावी इतिहासकार हमारे ग्रंथो को छोडकर आगे नही बढ़ सकते। ये ग्रंथ अब तक समस्त विद्वानो द्वारा मान्य हो चुके है। इससे बढ़कर इस जगत् के लिए क्या हमें और कुछ छोड़ जाने की जरूरत है ?"

रत्ने के ओठ न खुले। अब तक प्रकाशित खण्डों से प्राप्त यश, विद्वानों से प्राप्त प्रशसापत्रों से वह परिचित थी। इस बात का उसे पूर्ण विश्वास था कि उनके मरने के कई दशकों, शताब्दियों तक भी उनके ग्रंथ उन्हें अमर रखेंगे। उसे इस बात का भी गर्व हुआ कि एक समग्र संस्कृति को, मानव की कल्पना मे सन्निहित विषयों को प्रस्तुत करने वाले महान् ग्रंथों से बढ़कर कौन-सी संतान होगी। लेकिन लगभग एक सप्ताह में उसमें अदम्य रूप से जाग्रत मातृत्व की आकांक्षा के सम्मुख यह साधना फीकी प्रतीत हुई। लेकिन पति को कैसे बताये ? कुछ सोचकर उसने

पूछा—"नीद आ गई ?"

"नही !"

पास मे 'वेड-स्विच' रखकर पूछा—"कहिए, मैं क्या कहना चाहती हूँ ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

अपने मुख को पति के मुख के ऊपर ले जाकर रत्ने ने कहा—"मेरे चेहरे को गौर से देखिए। कुछ मालूम पड़ा ?"

डॉ० राव ने गौर से पत्नी का चेहरा देखा। लेकिन उनके पल्ले कुछ न पड़ा।

"अब कहिए तो ?"

"तुम मजाक कर रही हो ! मैं कुछ नही समझ सका।"

"आप इतिहास की *गति* के रहस्य को प्रस्तुत कर सकते है, महान् सस्कृति के अन्तःसत्व का पता लगाकर अन्यो को समझा सकते है, लेकिन पत्नी के मन की एक भावना का अदाज नही लगा सकते ?" उसने स्विच दवाकर वत्ती बुझा दी। डॉ० राव भ्रमित हो गये। बोले—"कहो, बात क्या है ?"

"कोई भी स्त्री इसे मुँह खोलकर नही कह सकती।"

डॉ० राव की समझ मे कुछ नही आया। रत्ने ने इससे पहले कभी ऐसी पहेली नही बुझाई थी। उन्हे इस बारे मे सोचने की कभी आवश्यकता नही पडी थी। रत्ने की आवाज मे निहित श्रद्धा से उन्होंने इतना महसूस किया कि वह किसी प्रिय वस्तु के बारे मे कहना चाहती है। अतः मुख को अपने दोनों हाथ से पकड़कर स्नेहपूर्वक कहा—"कहो न !"

उनके सीने पर अपना सिर रखकर, दो मिनट सोचकर अत में कहा—"एक बात है !"

"कहो !"

"हमें भी एक बच्चा हो तो ?"

डॉक्टर राव समझ गये। अपना बायाँ हाथ उसकी पीठ पर फेरते हुए उसी बारे मे सोचने लगे। रत्ने ने पूछा—"चुप क्यों हैं ?"

"नहीं !" प्रेमपूर्वक उन्होंने कहा—"इतने दिनो तक अपनी इस इच्छा को व्यक्त क्यों नही किया ?"

"अब तक अपने कार्य में इतने लीन रहे कि मन की किसी भी इच्छा को व्यक्त करने का समय ही नहीं मिला। विश्राम की घड़ियों में ही तो निजी आकांक्षाएँ प्रकट होती है।"

"तुम्हारी और कोई आकांक्षा नहीं है।"

"कदापि नहीं !"

डॉ० राव ने रत्ने का प्यार से आलिंगन किया। वह उनकी भुजा पर मुख रखकर लेट गयी। उसका मन फूला न समाया, पति मान जो गया था ! उनके दाम्पत्य जीवन में इस तरह की आशा-आकांक्षा पहली बार प्रकट की गयी थी। उसे यह जानने का मौका ही नहीं मिला था कि उसकी आशा-आकांक्षाओं के प्रति पति की आसक्ति, अनुमति है या नहीं ! उसका मन कल्पना के भविष्य की ओर उड़ान भरने लगा—'उन दोनों के बीच एक बच्चा सोया हँस रहा है। डॉ० राव भी अपना चश्मा उतारकर, उसके मुख के पास चुटकी बजाकर हँस रहे हैं। सुबह से पुस्तकालय में जो थकावट होगी, वह भी बच्चे की हँसी में गायब हो जाती।'

बच्चे की बात सुनकर डॉ० राव को पृथ्वी की याद हो आयी। बचपन में वह भी सुन्दर था। कभी-कभी जब वे आरामकुर्सी पर बैठकर पढ़ते, वह अटपटी चाल से आता और उनके पैरों को खींचता। अपनी पढ़ाई में बाधा पहुँचने के कारण वे कभी असन्तुष्ट भी हो जाते थे, लेकिन बच्चे का सुन्दर मुखड़ा देखते ही क्षण-भर में क्रोध रफू-चक्कर हो जाता। पुस्तक को बगल में रखकर बच्चे को उठा लेते। उसके साथ बिताने के लिए उनके पास अधिक समय नहीं था। वे अपनी ग्रंथ-रचना में सदा लीन रहते थे। वह पिता की अपेक्षा चाचा को अधिक चाहता था। अब चौदह वर्ष का होगा। हाँ, चौदह वर्ष का है। आठ वर्ष से उसे देखा ही नहीं। अब देखेगा तो वह पहचान भी नहीं पायेगा। पहचान लेगा तो पास आयेगा क्या ? उन्हें नागलक्ष्मी की याद आ गयी। दूसरे घर में आने के बाद भी एक-दो बार वहाँ गये थे। उन्होंने बात करनी चाही, लेकिन नागलक्ष्मी रुष्ट थी। फिर तो वहाँ जाने का अवकाश ही नहीं मिला। राज सबके साथ बेंगलूर रवाना होने के पूर्व, केवल अपनी पत्नी के साथ पुस्तकालय में आया था। डॉ० राव ने दो दिन के लिए घर आने का आमंत्रण दिया था। लेकिन राज के पास समय न था। सामान लारी से भेज दिया था।

रात की गाड़ी से जाना आवश्यक था। वे दोनो राव के साथ दस मिनट रहे। नागलक्ष्मी के बारे में न डॉ० राव ने पूछा और न राज ने कुछ बताया। 'वह अब कैसी होगी ? एक बार जाकर अवश्य देख आना चाहिए। अब क्रोध उतर गया होगा। मै बात करूँगा, तो वह भी बोलेगी। बेटे को भी देखूंगा,' डॉ० राव सोचने लगे।

"क्या सोच रहे है ?" डॉ० राव की भुजा पर सिर रखकर लेटी हुई रत्ने ने पूछा।

"तुम क्या सोच रही हो ?"

"वही, बच्चे का स्वप्न !"

डॉ० राव प्यार से उससे लिपट गये। अब उनका ध्यान रत्ने की ओर गया। विवाह के इतने वर्षों मे भी उसने अपनी कोई इच्छा व्यक्त नहीं की थी। विवाह के पूर्व ही उन दोनो ने परस्पर अपने उद्देश्य को स्पष्ट कह सुनाया था। जब दोनों साथ रहने लगे तो इस बात की सतर्कता बरती थी कि रत्ने गर्भवती न हो जाय। विवाहित जीवन के आठ वर्षो मे उसने डॉ० राव के साथ ग्रंथ के लिए रात-दिन परिश्रम किया था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका कोई आत्मीय कहलाने वाला नही था। वह भी अपना तन-मन ग्रंथ-निर्माण मे लगा चुकी है। मातृत्व की जो भावना अब तक दबी पड़ी थी, अब अदम्य रूप मे प्रकट हुई थी। यह स्वाभाविक ही था। डॉ० राव की भी इच्छा हुई कि दोनों के मेल से एक संतान हो। वे चाहते थे कि उनके मिलन के सबूत के रूप में अमर बन जानेवाले ग्रंथो के साथ-ही-साथ एक सजीव सबूत भी हो जो उन्हे माता-पिता कहकर पुकारे। रत्ने का मुख अपने सीने से लगाकर उन्होंने कहा—"रत्ने !"

"हाँ !"

"तुम कितनी अच्छी हो !"

वह कुछ न बोली। वह शब्दातीत अवर्णनीय आनंद मे लीन थी।

दूसरे दिन दोनो कुछ देर से उठे। उनमें उल्लास भरा हुआ था। सुबह की कॉफी पीकर टहलते हुए गवि वीरभद्र स्वामी देवालय की ओर से वे नीचे उतरने लगे। अपूर्व आत्मीय बातें करते हुए हाथ पकड़े वे नीचे उतरे थे। प्रातः की सूर्य-किरणें अच्छी लग रही थी। पहाड़ी आधी उतर चुकने

बाद रत्ने ने कहा—"नीचे दो-तीन गाँव दिखाई दे रहे हैं, इतने दिन हो गए, लेकिन उन्हें कभी देखा ही नहीं। चलिए आज देखकर ही लौटेंगे।"

वे दोनों उतरकर तराई पर आ गये। सुल्तान पेठ को देखने के पश्चात् नन्दीग्राम गये। इतने में दोनों को भूख लगने लगी थी। वहाँ के एक होटल में गये। दो-दो इडली खाकर कॉफी पी। तत्पश्चात् भोगनदीश्वर मंदिर देखकर पुन. तराई पर आये। ग्यारह बज चुके थे। धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। बायीं ओर धूप पड रही थी। सौ गज चढ़ते-चढ़ते डॉ० राव थक गये और बैठकर थोडा विश्राम किया। फिर चलने लगे तो रत्ने ने उनका दाहिना हाथ थाम लिया। "पहाड चढते समय कृपया हाथ थाम लें"— हँसकर कहते हुए डॉ० राव पुनः चढने लगे। लेकिन आधी पहाड़ी चढते-चढते थक गये। पुन. विश्राम किया और फिर चढ़ने लगे। लेकिन सौ सीढियाँ चढते ही उन्हें चक्कर आने लगा। "मैं गिर रहा हूँ, सहारा दो"— कहते हुए वे बैठ ही गये। बैठते ही सीढी पर सिर रखकर शरीर शिथिल कर दिया। रत्ने भयभीत हो उठी, उनके पास बैठ गई। उनका सिर अपनी गोद में रखकर आँचल से मुख, गर्दन का पसीना पोंछने लगी। कमीज के बटन खोले। चेहरे पर पड रही धूप को आँचल से रोकने लगी। डॉ० राव बेहोश नहीं हुए थे। लेकिन छाती की धडकन बढ़कर असामान्य हो गयी थी। पाँच मिनट बाद आँखें खोलकर उन्होंने कहा—"घबराओ नहीं, केवल थोडी घबराहट हो गयी है।"

धूप चढ रही थी। रत्ने ने उन्हें वहाँ से उठाकर पास ही एक पेड़ की छाया में बैठाया। पीने के लिए वहाँ एक बूँद पानी भी नहीं मिल रहा था। डॉ० राव ने "दस मिनट रुककर चलेंगे" कहा तो भी वह नहीं मानी। "आप यहीं बैठे रहिए, मैं नीचे जाकर गाँव से डोली ढोनेवालों को ले आती हूँ।" उनके मना करने पर भी चली गई। उस होटल में पहुँची, जहाँ नाश्ता किया था, और अपनी टूटी-फूटी कन्नड में बताया। अंग्रेजी जाननेवाले एक अध्यापक वहाँ कॉफी पी रहे थे। उनकी मदद से कार्य सरल हो गया। पन्द्रह मिनिट में, दो हृष्ट-पुष्ट आदमी डोली लेकर पहुँच गये।

डॉ० राव और रत्ने अपने कमरे में पहुँचे तो साढ़े बारह बज गये थे। स्नान, भोजन के पश्चात् डॉ० राव आराम करने लेट गये। रोज की तरह उन्हें आज नींद नहीं आई। थकावट के कारण बिस्तर पर पड़े करवटें

बदलते रहे। थोडा सिर दर्द भी हो रहा था। शाम होते-होते थोड़ा बुखार भी चढने लगा। घबराई हुई रत्ने उनका शरीर और माथा स्पर्श कर रही थी कि डॉ० राव ने कहा—"घबराओ मत ! यह पहाडी मेरे लिए अलंघ्य है। मैं सैंतालीस वर्ष का हूँ।"

वह मानने वाली नहीं थी। चपरासी को आवाज दी। डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर आये और गोलियाँ देकर चले गये। रात-भर थोड़ा बुखार रहा। सुबह होने वाली थी तो आँख लग गयी। रत्ने भी तब तक जागती रही। उन्हे नींद आने के पश्चात् वह भी बिस्तर पर सिर रखकर सो गयी। दूसरे दिन भी डॉ० राव के सिर मे दर्द था। थकावट के कारण शरीर टूट-सा रहा था। लेकिन बुखार नही था।

उस दिन दोपहर की डाक से उन्हे एक पत्र मिला। मैसूर से पुन-निर्देशित उस पत्र का रग ही बता रहा था कि वह लदन से आया है। रत्ने ने खोलकर पढ़ा। प्रकाशक का पत्र था। लिखा था—"युद्ध को समाप्त हुए दो वर्ष बीतने पर भी हमारे लिए पत्र-व्यवहार पुनः प्रारम्भ करना सभव नही हुआ। हमे कागज वाछित परिमाण में नही मिल रहा था। अब परिस्थिति सुधर गई है। कम्पनी का कार्य पूर्ववत् चल रहा है। भगवान् की कृपा से युद्धकाल मे हमारे तहखाने को किसी तरह की हानि नही पहुँची। पन्द्रह दिनो मे आपके तृतीय खण्ड का मुद्रण कार्य आरम्भ हो जायेगा। नियमित रूप से प्रूफ आपके पास भेज देंगे। विश्वास है कि चतुर्थ खण्ड के कार्य मे काफी प्रगति हुई होगी ! नमस्कार !"

खुश-खबरी थी। दोनो ने हँसते-हँसाते भोजन किया। डॉ० राव को एक गोली देकर और लेटने के लिए कहकर रत्ने बँगले के बाहर पेडों की छाँह मे बैठ गयी। नीरवता से भरा वातावरण व्याप्त था। तालाब, छोटी-छोटी पहाड़ियो की कतारें दूर से दृष्टिगोचर हो रही थी। मध्याह्न की कडी धूप से भरे आकाश मे भी नीरवता थी। रत्ने का मन थोड़े समय के लिए अंतर्मुखी हो उठा। अपनी भावी योजना के बारे में सोचने लगी—तीन सप्ताह मे लंदन से प्रूफ आने लगेंगे। उन्हे जाँचने में सारा समय निकल जायेगा। फिर पूरी विषय-सूची बनानी है। साथ ही, चतुर्थ खण्ड के लिए तैयारी। एक साल मे उसके लिए सामग्री संग्रह कर, ि. प्रारम्भ करना चाहिए। शायद, जैसी कि उनकी योजना थी। ग्रंथ

खण्डो मे समाप्त नही होगा। यूरोपीय-काल हाथ मे लेने से पहले ही पाँच खण्ड हो जायेंगे। इन सबसे मुक्ति पाने मे कम-से-कम आठ वर्ष लग जायेंगे।

रत्ने पति के स्वास्थ्य के बारे मे सोचने लगी। कल जब चक्कर खाकर बीच रास्ते मे लेट गये थे, तो वह बहुत घबरा गई थी। निरतर बौद्धिक कार्य मे लगे रहने वालों की शारीरिक स्थिति के बारे मे वह जानती थी। उसकी शक्ति भी पहले से घट गई है। बचपन से ही हृष्ट-पुष्ट शरीर के कारण वह उस भार को ढोने मे समर्थ थी। लेकिन उसके पति की शारीरिक शक्ति क्षीण हो रही है। क्या आनेवाली परिश्रमपूर्ण जिम्मेदारी निभाने की शक्ति उनके शरीर मे है?

अचानक उसे कल की बात, माँ बनने की आकांक्षा स्मरण हो आयी।—'ऐसी परिस्थिति मे मैं गर्भवती हुई तो अब जिस गति से कार्य चल रहा है, चल नही सकता। प्रसव के पश्चात् पूर्ण विश्राति चाहिए—चाहकर भी कोई कार्य कर नही सकूँगी। बच्चे के एक वर्ष का होने तक उसका विशेष ख्याल रखना चाहिए। आत्मीयता से पालन-पोषण करने वाली नौकरानी नही मिली तो मुश्किल हो जायगा। अगर नौकरानी मिल भी गई, लेकिन वह बच्चे की देखभाल नहीं कर सकी तो हम कैसे चुप रह सकते है?' उसके अत.करण की गहराई से एक आवाज निकली: 'अगर तू माँ बनी तो तेरा सहयोग न मिलने से, इस ग्रथ के पूर्ण होने से पहले ही वे मर जायेंगे।' इस आवाज की सकारण पुष्टि करने मे वह असमर्थ थी। पति की मृत्यु के विचार से उसका हृदय काँप उठा। उसके चेहरे पर दु.ख की छाया फैल गयी। माथा ठनका, दोनों भौहे तन गईं। अपनी इच्छा-शक्ति का उसने स्मरण किया। जिस इच्छा-शक्ति से वह अपनी मातृभूमि, माता-पिता एवं अन्यों को त्यागकर आयी थी और भविष्य मे आनेवाली समस्त निदा-स्तुति की परवाह किये बिना उनके साथ रही थी, उसी शक्ति ने उसे अब भी रास्ता दिखाया। उसने निश्चय किया कि 'जिस उद्देश्य से मैंने उनसे शादी की है, उसे पूर्ण करने मे पहले उन्हें मौत मे बचाये रखना है।' फिर भी उनकी शारीरिक स्थिति ने उसे अधीर कर दिया था। उनके शरीर के मास-पिंड भरे नही थे। छोटे बच्चों का-सा हल्का शरीर, शिथिल जा रही उनकी काया, और दिन-प्रति दिन क्षीण होने वाली उनकी

दृष्टि-ज्योति आँखों के सामने उभर आयी। हाल ही में उन्होंने पुनः चश्मा बदला था। उसने निश्चय किया कि वह माँ नहीं बनेगी। प्रेम की जो भी शक्ति होगी, उसे इस ग्रंथ की रचना मे लगा देना है। लेकिन निश्चय के लक्षण चेहरे पर दिखाई देते-देते आंखो में अश्रुबिंदु छा गये। वह उसी दुःख का अनुभव कर रही थी जो एक माँ को अपनी कोख से जन्मे बच्चे की हत्या स्वयं करते समय हो सकता है। घुटनो के बीच मुँह छिपा, सिसक-सिसककर रो उठी। गत दो दिनों से अपने व्यक्तित्व को एक नये सुन्दर परिवेश मे देख रही थी। उसमे उसके शरीर के अंग-अंग विकास के नवीन रूप में परिपक्व हो, नई कांति पा रहे थे। शिष्टतापूर्ण बौद्धिक जीवन के नीरस पथ के साथ-साथ, एक जीवन्त नदी के बहने की कल्पना का आधार दो दिनों में ही साकार रूप धारण कर वास्तविक सत्य की अपेक्षा अधिक गहराई तक पहुँच गया था। अब उसे मिटाकर पुनः पुराने जीवन-विधान को स्वीकार करने के लिए संकल्प शक्ति तो तैयार हुई, लेकिन उससे उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई उसके अंतःकरण को झकझोर रहा है।

१७

आठ वर्ष की दीर्घ अवधि ने कात्यायनी के जीवन में काफी परिवर्तन कर दिया। पति से उसे पूरा-पूरा प्रेम और विश्वास मिला। नागलक्ष्मी के साथ कभी मनमुटाव नहीं हुआ। इसके बावजूद, वह पहले-सी नहीं है। नंजनगूडु से लौटने के पश्चात् मन को व्यस्त रखने का प्रयत्न करने लगी। राज ने पुनः ऑनर्स के बाद एम० ए० कर लेने की सलाह दी। वह एम० ए० करना चाहती थी, लेकिन उसी कालेज मे नहीं। अपने परिचित सह-पाठियों के साथ पढ़ना एवं अध्यापकों के समक्ष जाना उचित नहीं लगा। उनके सम्मुख जाने में उसे संकोच हो रहा था। फिर भी पढ़ने की लालसा बनी रही। अंत में दोनों ने मिलकर निर्णय किया कि राज उसे ...

'पढ़ायेगा और फिर वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राइवेट परीक्षा देगी। पढने-लिखने मे होशियार थी, अतः उसे ज्यादा कठिनाई नही हुई दो वर्ष मे एम० ए० की उपाधि भी प्राप्त कर ली।

दो वर्ष वाद राजा के साथ वनारस जा रही थी। उस समय व चार माह की गर्भवती थी। पढ़ाई के कारण इस ओर उसका अधिक ध्या नहीं गया। घर के वाहरी काम नौकरानी करती थी और रसोई का काम नागलक्ष्मी। कात्यायनी सदा अध्ययन मे लगी रहती। अन्तिम पेपर देकर पति के साथ वनारस से वेंगलूर लौटने लगी तो मार्ग में बच्चे के वारे मे सोचने लगी। राज भी बच्चे के लिए उत्सुक था। वैसे ही वच्चे उसे बहुत भाते है। पृथ्वी तो अव आठ साल का होकर स्कूल जा रहा है। उससे खेलने मे वच्चो का-सा आनन्द नही मिलता। इसके अलावा उसे इस बात का भी आनन्द था कि उसका अपना वच्चा होने वाला है। वे घर पहुँचे। पत्नी का पेट चूमा और वच्चे के प्रति स्नेह व्यक्त करता हुआ पत्नी का मुख देखने लगा। पति का भाव समझ, वह उससे लिपट गई मानो वच्चे से लिपट रही हो। अव कात्यायनी, डाक्टर की सलाह के अनुसार और नागलक्ष्मी को आराम देने के ख्याल से घर का काम करने लगी। रोज शाम को दोनों लगभग दो मील का चक्कर काटते। राज पत्नी के लिए पौष्टिक आहार और फल लाता।

गर्भ मे पनपते हुए वच्चे से कात्यायनी को चीनी की याद आने लगी। अब वह सात वर्ष का है। दूसरी कक्षा मे पढ रहा होगा। दादा पास विठा-कर सिखाते होंगे। अब तक सस्कृत का अध्ययन हो चुका होगा; कई श्लोक, भजन कठस्थ हो चुके होंगे। उसे एक वार देखना चाहिए। लेकिन कैसे? दीर्घ नि.श्वास लेते हुए कल्पना को दूसरी ओर मोड़ा। मन भावी सतान की ओर गया। मन में कुतूहल जागा कि लड़का होगा या लडकी। उसका मन कहता कि लड़का तो है ही, लड़की हो तो अच्छा रहेगा। लेकिन उसकी प्रज्ञा जागकर कहती: 'प्रथम लड़का तो उस घर के सुपुर्द कर दिया है, इस घर और मेरे लिए एक वालक चाहिए!'

एक दिन यही वात छिड़ी तो उसने पति से पूछा—"आप लड़का चाहते हैं या लड़की?"

"मैं जो चाहूँ, वह देना तेरे हाथ में थोड़े ही है?"

"मजाक छोड़िए, कहिए।"

"लड़की हुई तो पराये घर जायेगी। हमारा नाम चलाने वाला पहला लड़का ही हो।"

"किसी पर विश्वास न रखने वाले अपनी परम्परा की चिता करने लगे ! कैसा परिवर्तन है !" पति को छेड़ा। उसने कहा—"इस परिवर्तन का कारण तू ही है" और पत्नी की आँखों-से-आँखें मिलाकर हँस पड़ा।

कात्यायनी के गर्भ को अब छह महीने हो गये। वैसे ही वह सुन्दर है। पल रहे जीव की चेतना ने उसके सौदर्य पर नयी काति बिखेर दी है। राज पत्नी के सामने बैठ गया। उसे वह दिन याद आया जब हुणसूर मार्ग के झरने के पास बैठा था। स्वप्न मे सुन्दर मुखाकृति एव रूपवती युवती थी। चारों ओर चैतन्यपूर्ण हरियाली-ही-हरियाली थी। पेड सुशोभित थे। कल-कल करता झरना वह रहा था। ऐसी पृष्ठभूमि मे उसने उस युवती को अपलक देखा था। उसका स्वस्थ शरीर काति से चमक रहा था। चलने पर चरण ऐसे लाल-लाल हो जाते है मानो लहू फूट रहा हो। हाथो की अँगुलियाँ इतनी सुन्दर कि कोई मँजा हुआ चित्रकार ही चित्रित कर सकता है। आभूषणो से कोमल शरीर दब न जाय, अतः निराभरण। पीठ पर सर्पिल सुन्दर काली केश-राशि। मुखमुद्रा गभीर। सुकोमल अगों मे प्रस्फुटित रमणी-रूप। अब भी राज उसे एकटक देख रहा है। वैसी ही काति, वैसा ही पूर्ण यौवन। रूप बिखेरते हुए वही अग और वे ही सुन्दर चरण ! इन सबमें एक अपूर्व चमक थी। उसमे वे नये लक्षण दिखाई दे रहे थे जो फलो से लदे सुन्दर वृक्ष मे दृष्टिगोचर होते है।

"इस तरह अपलक क्यों देख रहे है ?"

राज ने उसके मुख को अपने हाथों में थामकर कहा—"प्रकृति का नया रूप पागल बनाये दे रहा है।"

"पुरुष के सामीप्य का परिणाम है, प्रकृति के स्वानुभव के आनन्द का फल है"—कहकर वह हँस पड़ी। जबकि उसे स्मरण था कि जो प्रकृति चिरनूतन, चिरचेतन है, उस पर धर्म की पाबदी लगाना अधर्म है, किन्तु उसने यह नही कहा। उसकी दृष्टि अपने शरीर की ओर मुड़ गई। वह अपने सौदर्य मे इतनी खो गयी कि सम्मुख बैठे पति को भी भूल गई।

कात्यायनी स्वस्थ थी। छठा महीना चल रहा था। एक दिन दोपहर

मे राज कालेज गया हुआ था । ग्रीष्म की छुट्टी के पश्चात् कालेज अभी खुला था। ज्येष्ठ मास की वर्षा की बूँदें गिर रही थी। ऐसे समय में कात्यायनी का मन अव्यक्त, अनजान आकुलता का अनुभव कर रहा था। पूरे वेग से बहती कपिला नदी, उसके किनारे बैठ आत्महत्या का निर्णय, इस बीच राज का वहाँ आकर बचाना आदि घटना-चक्र बिजली-सा मस्तिष्क मे कौंध गया। चीनी की भी याद आयी। अचानक उसके पेट मे दर्द उठा। आध घटे मे दर्द असहनीय हो उठा। वह घबरा गई। सात वर्ष पहले, चीनी के जन्म के समय भी ऐसा ही हुआ था। अन्दर नागलक्ष्मी 'रामनाम' लिखने मे व्यस्त थी। उसे बताया तो वह भयभीत हो गई। उसने कात्यायनी के पेट पर हाथ रखकर देखा। कुछ जान न सकी। पड़ोसिन को बुलाया। उसने तुरन्त अस्पताल पहुँचाने की सलाह दी। राज को खबर भेजी। वह घर की ओर दौड़ा। तुरन्त टैक्सी से नागलक्ष्मी को भी साथ ले, चेलुवाबा अस्पताल पहुँचे। जाँच करने के पश्चात् लेडी डॉक्टर ने आकर राज से कहा—"घबराइए नही, गर्भपात होने के लक्षण है। हमसे जो भी बन पडेगा, हम करेंगे।" राज बाहर बैठ गया और नागलक्ष्मी अदर कात्यायनी के पास थी।

गर्भवती की पीड़ा को देखकर नागलक्ष्मी भी दु खी हो उठी थी। शरीर फैलाये धूप मे पड़े मेंढक की तरह छटपटाती कात्यायनी की भुजा को नागलक्ष्मी बायें हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से उसकी पीठ सहलाने लगी। कभी-कभी कमर के पिछले भाग को जोर से रगड़ती। चीनी के प्रसव मे इतना कष्ट नही हुआ था। थोड़ी देर में रक्तस्राव होने लगा। दो नर्सें उसे 'लेबर वार्ड' में ले गयी। नागलक्ष्मी बाहर रही। एक घटे मे गर्भ-पात होकर सारा खेल समाप्त हो गया। बेहोश कात्यायनी को लेडी डॉक्टर ने दो इन्जेक्शन दिये। वह होश में आई। स्ट्रेचर पर लिटाकर लाये और बिस्तर पर सुला दिया। बाहर आकर नागलक्ष्मी ने राज को सारी बात बताई। डॉक्टर की अनुमति ले राज अदर गया। कात्यायनी का शरीर अर्द्ध चेतनावस्था मे बिस्तर पर पड़ा था। मुख-काति गायब हो गई थी। रक्तस्राव होने से मुख पीला पड़ गया था। अँगुलियाँ शिथिल थी। उन्हें आनन्द का फल नही मिला। फलों से लदे वृक्ष को रोग लगने पर सारे गिर जाते हैं, केवल डालियाँ-ही-डालियाँ दीखती हैं, ऐसी ही हालत

थी आज कात्यायनी की। राज को सान्त्वना देते हुए नागलक्ष्मी ने कहा—"डॉक्टर का कहना है कि जान को कोई खतरा नही है। इसी मे सतोष कर लेना चाहिए। श्रीरामचन्द्रजी ने जान बचाई है। तुम घर जाकर थर्मापलास्क, दो गिलास, शक्कर, चम्मच, एक टावेल ले आओ और मेरे लिए एक चादर और दुपट्टा। इसे घर भेजने तक मैं यही सोऊँगी! तीन-चार दिन यही रहूँगी। अपने और पृथ्वी के लिए खाना होटल से मँगा लेना।"

चार दिन में कात्यायनी धीमी आवाज में बोलने लगी। लेकिन डॉक्टर ने कहा कि पूर्ण स्वस्थ होने मे अब भी पन्द्रह दिन लग जायेंगे। उस दिन से नागलक्ष्मी सुबह घर जाती, और रसोई बनाकर व खाना खाकर बारह बजे तक वापस आ जाती।

इस दुर्घटना के आठ दिन बाद, राज ने इसकी खबर डॉ० राव को दी। "इतने दिनों तक क्यों नही बताया?" नाराज-से होकर उन्होंने पूछा और तुरन्त गाड़ी से अस्पताल की ओर निकल पड़े। राज गाड़ी के पीछे-पीछे साइकिल से आ रहा था। रोगी की खाट के पास दस मिनट खड़े रहे। फिर स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ कर सान्त्वना देने लगे, "जीवन में ऐसा होता ही है, दु:खी मत होओ। मन पर इसका प्रभाव नही पड़ना चाहिए" कहकर बाहर आये। रत्ने लगभग एक घण्टे तक कात्यायनी के पास ही स्टूल पर बैठी बातें करती रही। अस्पताल के बाहर एक पेड के नीचे बैठकर डॉ० राव भाई को सान्त्वना देते रहे। रत्ने बाहर आई। गाड़ी मे बैठते-बैठते डॉ० राव ने राज से कहा—"हमारे साथ चलो। वहाँ से घर चले जाना।" वे सरस्वतीपुर स्थित अपने घर पहुँचे। दो मिनिट मे भीतर से बाहर आकर राज के हाथ में एक चेक रखते हुए कहा—"बहुत दुबली हो गई है। अच्छी तरह देखभाल करना!"

राज ने चेक देखा। एक हजार रुपये का था। पूछा—"इतने रुपये क्यों?"

"प्रसूति की अपेक्षा इसमें अधिक सतर्कता की आवश्यकता होती है। काफी टानिक आदि लेना चाहिए। प्रकाशकों से मुझे रुपये मिलते रहते हैं। सोचने की जरूरत नही" कहकर डॉ० राव ने विदा किया।

कात्यायनी को पुनः गर्भ ठहर गया। इस बार भी तीसरे माह गर्भपात हो गया। इस दूसरे आघात से दम्पति के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। किन्तु एक साल मे कात्यायनी का स्वास्थ्य सुधर गया। उसका शारीरिक सौष्ठव पहले-जैसा न था। लेकिन आकार, सौंदर्य आदि पूर्ववत् थे लेकिन शारीरिक शक्ति घट गई थी। इस बीच राज को असिस्टेंट प्रोफेसर बनाकर बेंगलूर ट्रासफर कर दिया। पदोन्नति से खुशी हुई। साथ ही इस बात का दु ख भी हुआ कि मैसूर के नाटक संघ को छोड़कर जाना पड़ रहा है, क्योंकि यह उसी के द्वारा संस्थापित था। कात्यायनी नये स्थान पर जाने के लिए उत्सुक थी। निरासक्त भाव से नागलक्ष्मी ने परिवर्तन को स्वीकार कर लिया। उसकी दृष्टि में दोनों स्थानों में कोई अन्तर नही था। जहाँ भी जायें, यथाशक्ति घरेलू कार्य करना और शेष समय मे राम-नाम लिखने के अलावा उसे और कोई काम था ही नही। लगभग दो वर्ष से वह 'रामनाम' लिख रही है और इससे उसके मन को एक तरह की सान्त्वना मिल रही है। पति के प्रति जो क्रोध था, वह अब उतर चुका है। अब अगर वे आकर बात करना चाहे तो वह भी इसके लिए तैयार है। घर मे अब भी उसके प्रति राज की श्रद्धा व विश्वास कायम है। कात्यायनी भी उसे ही घर की मालकिन समझकर चलती है। उसके बेटे पृथ्वी को राज और कात्यायनी, दोनों प्यार करते है, और उसके अध्ययन की ओर ध्यान देते है। अब कुछ समय से नागलक्ष्मी के मन मे एक नया विचार उठा है। उसने कई बार सोचा कि "कुछ भी हो, यह मेरा घर नही है। जहाँ भी 'वे' रहेंगे, वही मेरा घर है—भले ही वे रत्ने के साथ रहें। जो खाना यहाँ पकाती हूँ, वही वहाँ उन दोनों के लिए पकाया करूँगी।" लेकिन किसी से जिक्र नही किया। बेंगलूर जाने के दिन निकट आ गये और वह सोचती रह गई कि वे देखने के लिए अवश्य आयेगे। चारों, रात की रेल से मैसूर से रवाना हुए। बेंगलूर आने के पश्चात् भी 'रामनाम' चलता रहा। गत चार वर्ष मे वह बीस लाख नाम लिख चुकी है। पचास नोटबुकें भर गई हैं। राज अब भी नोटबुक, निब, स्याही पउडर लाकर देता है। हर नोटबुक के अंतिम पन्ने पर लिखती—

सर्वकल्याणदातारं, सर्वपद्घनमारुतम्।
अपारकरुणामूर्ति, आजनेय नमाम्यहं ॥

आपदामपहर्तारं, दातारं सर्वसम्पदां ।
लोकाभिरामं श्रीरामं, भूयो भूयो नमाम्यहं ॥

फिर हल्दी-कुंकुम से पूजा कर, हल्दी लगे धागे से उसे बाँधकर भगवान के फोटो के पास ऐसी जगह रखती जाती कि अन्य कोई छू न सके। "पचास पुस्तकें समाप्त हो गई है तो कुल कितने नाम हुए ?" वह कात्यायनी से पूछती ।

"बीस लाख !"

"एक करोड़ लिखने में अब और कितने दिन लगेंगे ?"

"चार वर्ष में बीस लाख लिखे गये। इसी तरह लिखती रहीं तो सोलह वर्ष में एक करोड़ हो जायेंगे।"

"कुछ भी हो, एक करोड़ राम-नाम लिखकर ही मुझे मरना चाहिए। हे भगवान्! श्रीराम ! मुझे सोलह वर्ष की आयु और दो" कहकर उसने उस दिन भगवान् से प्रार्थना की ।

एक दिन कात्यायनी ने पूछा—"इसी तरह बेकार लिखती रहीं तो क्या मिलेगा ?"

"श्रीराम अगले जन्म मे तो अच्छा करेंगे !"

कात्यायनी रामकथा के बारे मे सोचने लगी। उनको राम की वीरता, त्याग आदि गुण रुचते थे, किन्तु अंत में उन्होंने लोकापवाद के डर से अपनी प्रिय पत्नी को त्यागने का जो कार्य किया, वह नहीं भाया। उसने नागलक्ष्मी से कहा—"आप कुछ भी कहे, सीता-जैसी पत्नी को लोकापवाद के डर से वन भेजकर राम ने महान् कार्य नहीं किया ।

"छि-छि:, ऐसा नही कहते। जाने दो। श्री रामचन्द्र के कार्य को गलत कहने वाले हम कौन होते है? वे आखिर भगवान् हैं। वे क्या, यह सब नही जानते ?"

दिन-भर नागलक्ष्मी को पति की याद आती रही। सीतादेवी की तरह वह भी परित्यक्ता है, लेकिन उसका पति एक और महिला से विवाह कर दूर हो गया है। श्रीराम ने ऐसा नहीं किया था। इससे राम के प्रति नागलक्ष्मी की भक्ति और बढ़ गई।

पृथ्वी अब बारह वर्ष का लड़का है। वह मल्लेश्वर स्थित हाईस्कूल में जा रहा है। पढ़ाई में होशियार था। कई बार यह सोचकर नागलक्ष्मी अपने-

आप पर चिढ़ जाती कि 'कम-से-कम बेटे को देखने की इच्छा तो उनमें होनी चाहिए !'

राज के बेंगलूर आने के पश्चात् उसी कालेज में एक अंग्रेजी अध्यापक का स्थान खाली हुआ। "बेकार घर में बैठने के बदले तुम नौकरी करोगी ?" राज ने कात्यायनी से पूछा। पहले वह झिझकी। लेकिन उसी कालेज में पति के असिस्टेंट प्रोफेसर होने के कारण उसने स्वीकार कर लिया। राज ने प्रयत्न शुरू किया। बड़े भाई को पत्र लिखा कि हो सके तो कात्यायनी को उस स्थान पर नियुक्त कराने का प्रयास करें। अब डॉ० राव प्रोफेसर बन गये थे। विश्वविद्यालय के उच्च अधिकारी उनकी बातों को महत्त्व देने लगे थे। कात्यायनी की नियुक्ति हो गई। नया जीवन पाकर उसने अतीत की कई घटनाओं को भुला देने का प्रयत्न किया। वह रोज पति के साथ कालेज जाती। शाम को उनके साथ लौटती। बेंगलूर में भी राज ने एक नाटक संस्था प्रारंभ की। यहाँ भी संस्था प्रसिद्ध हुई और कालेज में राज प्रसिद्ध हो गया। घर के कामकाज की सारी जिम्मेदारी नागलक्ष्मी पर पड़ने लगी। एक दिन कात्यायनी ने कहा—"दीदी, अब हम दोनों कमाते हैं, आपको बहुत काम करना पड़ता है। एक रसोइया रख लें।" लेकिन नागलक्ष्मी नहीं मानी। "तुम्हारी शादी से पहले क्या मैं अकेली नहीं पकाती थी ? यह कौन-सा कठिन काम है ? रसोइये का बनाया खाना मैं न खा सकूँगी" उसने कहा।

कात्यायनी को कालेज में पढ़ाते चार वर्ष बीत गये। लेक्चर देने की तो उसे आदत-सी हो गई। कालेज में समय आसानी से गुजर जाता था। घर में रहते समय दूसरे दिन पढ़ाने के लिए तैयारी करना, नागलक्ष्मी की थोड़ी मदद करना, पृथ्वी के अध्ययन के प्रति ध्यान देना, आदि में समय कट जाता था। शाम को पति के साथ तरकारी, फल-फूल खरीदने बाजार हो आती।

लेकिन धीरे-धीरे उसे जीवन नीरस लगने लगा। न जाने क्यों वह अपने को अकेली महसूस करती। बार-बार उसे चीनी की याद आती और उसे देखने की इच्छा होती। उसमें यह जानने का कुतूहल होता कि क्या उसे मेरी याद आती होगी ? क्या कभी माँ को देखने की इच्छा व्यक्त की होगी ? वह सोचती, अब वह तेरह वर्ष का है। काफी ऊँचा हो गया

होगा ! आठवें साल में ही यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया गया था। अब तक वेदोपनिषद् का अधिकांश भाग उसे कंठस्थ हो गया होगा ! संस्कृत का अध्ययन भी ठीक तरह से चलता होगा ! मैं भी पढ़ती तो अब तक गीता-उपनिषदों को कंठस्थ कर सकती थी। लेकिन उस ओर आकर्षण नहीं था। चीनी की बुद्धि परिपक्व होने के पूर्व ही उसके दादा ने उसे पढ़ाया है। शायद वह हाईस्कूल में जाने लगा होगा ! रोज कम-से-कम एक बार उसे चीनी की याद आती। अपने अकेलेपन को, पुत्र के कल्पित चित्र के साथ लीन हो, कुछ समय के लिए अपने-आपको भुला बैठती।

पुनः उसमें माँ बनने के चिह्न दिखाई पड़ने लगे। राज खुश हो उठा। विवाहित जीवन के दो साल बाद वह पिता बनने वाला था, किन्तु आशा निराशा में बदल गई थी। दूसरी बार भी असफलता। अब पत्नी पुनः माँ बनने वाली है। आनन्द विभोर हो पत्नी का हाथ पकड़कर बोला—"चलो, लेडी डॉक्टर के पास चलें। इस बार हर सप्ताह जांच करानी चाहिए और काफी सतर्कता बरतनी चाहिए।"

लेडी डॉक्टर ने कात्यायनी की जांच की, कैल्शियम लेने की सलाह दी। कुछ गोलियों और टानिकों के नाम लिख दिये। अधिक-से-अधिक दूध, फल लेने की सलाह दी। साथ ही महीने में एक बार रक्त-परीक्षा और मूत्र-परीक्षा तथा सप्ताह में एक बार जांच के लिए आने को कहा। कात्यायनी इन सलाहों के अनुसार चलने लगी। चार माह का गर्भ हो गया था। शारीरिक निर्बलता एवं आलस्य छोड़ दें तो वह स्वस्थ थी। अगले दो महीनों में उसका शरीर और चमक उठा। लाल-लाल आमों से लदे आम्र-वृक्ष की तरह लक्षण थे। आश्विन की लहलहाती फसल कार्तिक में जिस तरह फलों से लदकर भारी हो जाती है, उसी तरह कात्यायनी भारी कदमों से चलती थी। चलती तो तलवों से रक्त फूट पड़ने का अंदेशा होता ! जीव-विकास का चैतन्य उभर आया था। राज ने एक बार गौर से देखा तो याद आया कि पहली बार भी वह ऐसी ही थी। उसे आईने के सामने खड़ा करके पूछा—"देखा ?"

कात्यायनी ने अपने-आपको देखा। उमड़े आनन्द में एक भय था। वह अपने उस विकसित हो रहे रूप को निरासक्त भाव से स्वयं देख न सकी। अतः पति से पूछा—"मुझे देखने पर आपको कैसा लगता है ?"

"लगता है पुरुष के सामीप्य के फलस्वरूप प्रकृति अपनी सीमा के निकट पहुँच रही है।"

"छिः, ऐसा मत कहिए" पति के मुंह पर हाथ रखकर उसने कहा—"पिछली बार जो कुछ भी हुआ, उसके पश्चात् इस प्रकृति-पुरुष की कल्पना भी मुझे डरा देती है।" ऐसा कहते समय उसकी आवाज कांप रही थी, आँखो मे कातरता दिखाई पडती थी।

इस बार बच्चा कैसा रहेगा—इस प्रश्न का उन्हे अधिक कुतूहल नही था। दोनो यही प्रार्थना करते कि सकुशल प्रसव हो और बच्चा-जच्चा घर लौटें। कात्यायनी ने 'मेटरनिटी लीव' के लिए अर्जी दी थी। एक दिन नागलक्ष्मी ने कहा—"लोगों की दृष्टि एक-सी नही होती। आज से बाहर जाते समय पुरानी साड़ी ही पहनना। अच्छी साड़ी पहनोगी तो नजर लग जायेगी।" कात्यायनी ने ऐसा ही किया। इसमे राज का भी विश्वास था।

अभी छह महीने हुए थे। एक दिन राज कक्षा मे पढ़ा रहा था कि कालेज के चपरासी ने उसे एक चिट्ठी दी। वह कात्यायनी की थी। "स्टाफ रूम मे बैंठी हूँ। पेट मे बड़ा दर्द है। भय लग रहा है। तुरंत आइए।" राज वैसे ही कक्षा छोडकर आया। पत्नी का चेहरा देखकर वह भयभीत हो उठा। उसने एक विद्यार्थी को बुलाया। उसकी कार मे कात्यायनी को बैठा-कर सीधा 'वाणी-विलास' अस्पताल पहुँचा। पहुँचने से पहले ही कात्या-यनी दर्दनाक पीडा का अनुभव कर रही थी। लगता था थोडा-थोड़ा रक्त-स्राव भी हो रहा है। डॉक्टर के जाँच करने के पूर्व ही राज और कात्यायनी समझ गये थे कि इस बार भी गर्भपात होगा। वह वार्ड मे भरती कर ली गयी। राज वही रहा। कार वाला विद्यार्थी घर जाकर नागलक्ष्मी को बुला लाया। नागलक्ष्मी के आने के पहले ही कात्यायनी को लेबर-वार्ड मे ले गये थे। भाभी को देखते ही राज की आँखे भर आयी। पहले से ही वह भावुक है। बच्चे उसे प्रिय है। दो बार उसकी आशा धूल मे मिल चुकी है। तीसरी बार भी वही होने जा रहा है। राज ने स्वय से पूछा—हे भगवान्, यह किस कर्म का फल है?

दो घंटे पश्चात् कात्यायनी को स्ट्रेचर पर उठाकर लाये और पलग पर लिटा दिया। नर्स ने कल सुबह तक किसी को भी उसके पास जाने की

खिन्न होकर डॉक्टर ने कहा—"अब आप लोगों को ही निश्चय करना होगा। हम नहीं कह सकते कि क्या करना चाहिए। हमने अपनी सूझ के अनुसार सलाह दी है।"

भारी मन से राज घर लौटा। वह जानता था कि विश्वविद्यालय कात्यायनी को छह महीने की छुट्टी नहीं देगा। फिर भी अस्पताल से प्रमाणपत्र लेकर, पत्नी की ओर से स्वयं अर्जी लिखकर मैसूर के लिए निकल पड़ा। नागलक्ष्मी ने इतना ही कहा—"काम पूरा करके लौटना। एक दिन देर हो तो भी चिन्ता मत करना। मैं अस्पताल में हूँ। पड़ोसी पृथ्वी के साथ सोयेंगे।" मैसूर में उतरते ही वह सीधा पुस्तकालय गया। डॉ० राव लिखने में लीन थे। बातें जानकर उन्हें भी दुःख हुआ। बोले—"पहले उपकुलपति से मिलकर अर्जी दे दो। तत्पश्चात् मैं उनसे मिलूँगा।" राज ने वैसा ही किया। रत्ने राज को घर ले गई। थोड़ी देर बाद स्वयं उपकुलपति से मिलकर डॉ० राव भी सीधे घर पहुँचकर बोले—"छुट्टी देने के लिए राजी हो गये हैं, लेकिन उस अवधि का वेतन नहीं मिलेगा। यह भी कहा कि सर्विस बीच में खंडित नहीं मानी जायेगी।" भोजन के बाद राज को "तुम शटल से ही लौटो, तुम्हारा वहाँ रहना आवश्यक है" कहकर हजार रुपये का एक चेक उसके हाथ में रख दिया। "फिर ये रुपये किसलिए ?" कहकर राज ने लौटाना चाहा तो वे समझाने लगे "कात्यायनी को छह महीने का वेतन नहीं मिलेगा। इस बार सतर्क होकर इलाज कराना होगा। इसे अपने पास रख लो। मेरे पास पैसे हैं। बीच में आवश्यकता पड़े तो अवश्य लिख देना। चिन्ता मत करो।" राज चला गया।

अस्पताल से घर आये एक महीना हो जाने पर भी कात्यायनी बिस्तर में पड़ी-पड़ी दिन गिन रही थी। उसे रोज दवा, टानिक, फलों का रस देना पड़ता था। एक लेडी डॉक्टर तीन दिन में एक बार घर आकर उसे देख जाती थी। अब वह पहले की कात्यायनी नहीं थी। चेहरा अपना लावण्य खो चुका था, रस-निचुड़े आम के समान बन गया था। उसकी सुन्दर अँगुलियाँ अब सूखी लकड़ी-सी दीखती थीं। अँगूठी अँगुली से खिसकी . ि थी। आँखों का प्रकाश मंद हुआ जा रहा था। चेहरे पर निराशा

ताडव कर रही थी। सिर के बाल झड़कर मुट्ठी-भर रह गये थे। किसी ने कभी सोचा भी नही था कि सुघड़ सुन्दर शरीर इस तरह विस्तर में शव-सा पड़ा रहेगा। राज किसी कार्यक्रम मे भाग नही लेता—नाटक में भी नहीं। कालेज से लौटकर पत्नी के पास ही बैठ जाता। राज घर में नही होता तो नागलक्ष्मी कात्यायनी के पास बैठ जाती। कभी कोई बात छेड़ देती। आजकल हर शनिवार को नागलक्ष्मी श्रीराम की पूजा करके कन्नड रामायण की कथा पढ़ती। किसी शनिवार को, कात्यायनी की इच्छानुसार उसकी खाट के पास ही एक पाटे पर बैठकर रामकथा पढती। कात्यायनी उसे ध्यान से सुनती। कुछ देर वह भी भक्ति-प्रवाह मे बह जाती थी।

अकेली लेटी होती या रात मे नीद न आती तो कात्यायनी का मन गहरे विचार में डूब जाता। तीनों बार ऐसा होने के कारण उसका मन विवेचन करने लगता। इस बार उन्होंने मानव-प्रयत्न के लिए संभव समस्त सतर्कता बरती थी। तब लेडी डॉक्टर हर सप्ताह जाँच करती थी। चीनी के प्रसव के समय इस तरह की कोई वैद्यकीय सुविधा नही थी। पाँचवे महीने मे भागीरतम्मा ने कोई एक काढ़ा पिला दिया था। घर मे खाना मिलता था और थोड़ा-सा दूध-घी देती थी। टानिक की बात ही नही। फिर भी चीनी का प्रसव सुचारु रूप से हुआ था। ये तीन ऐसे क्यों हुए? अस्पताल मे लेडी डॉक्टर ने राज से जो-कुछ कहा था, वह उसने दो दिन पहले ही पत्नी को बताया था। भविष्य में मैं कभी गर्भवती हुई, ऐसा होने की सभावना ही अधिक है, तो मेरे प्राण नही बचेंगे। इन सब का मतलब क्या है? कारण क्या है? अपने मन को सूझ रहे कारणो के सामजस्य मे परखने के पश्चात् उसका मन पाप-पुण्य की समीक्षा करने लगता। चीनी को लेने के लिए जब वह नजनगूडु गई थी तब श्रोत्रियजी की कही हुई बात अब भी उसे स्पष्टत: याद है—"एक वश के बीज को आगे बढ़ाने के लिए ही एक क्षेत्र को और एक वश के लोग दान करते है। उस वश के बीज को अपने मे अकुरित कर वृक्ष बनाने के पश्चात् वह क्षेत्र अपनी सार्थकता को प्राप्त करता है।" श्रोत्रिय वश के बीज को अपनी गोद में अकुरित कर उस वश-वृक्ष के और एक छोर को अकुरित कर दिया था। क्या मेरे स्त्रीत्व की सार्थकता यही

पूर्णतः समाप्त हो गई है ? क्या एक और नये वंश की माँ बनने की शक्ति मुझ में नही है ?

लेकिन नये वश की माँ बनने के उद्देश्य से उसने राज से शादी नहीं की थी। राज ने भी उसे अपने वश की माँ बनाना नही चाहा था। वे दोनों परस्पर उत्कट प्यार करते थे। प्रेम इतना प्रबल था कि एक के बिना दूसरे का जीना असंभव-सा हो गया था। कात्यायनी पागल-सी हो जाती थी। राज तो आधा दीवाना हो चुका था। प्रकृति-पुरुष की तरह जीवन की पुकार सुनकर ही परस्पर एक हुए थे। लेकिन अपने जीवन का भविष्य चाहना उसके लिए सहज था। राज में पिता बनने की तीव्र इच्छा थी। वह भी माँ बनने के लिए लालायित थी। और बनने वाली भी थी। लेकिन तीनों बार आघात ! इसका कारण क्या है ? क्या यह उदर नये वश की माँ बनने की शक्ति को खो चुका है ? वह 'वश की माँ' की कल्पना को नही मानती थी। 'नये बच्चे की माँ' की दृष्टि से सोच रही थी। लेकिन श्रोत्रियजी का वाक्य 'वश की पृष्ठभूमि को छोडकर मातृत्व-पितृत्व कुछ भी नही' उसे स्मरण हो आता। तुरन्त उनकी और एक बात स्मरण हो आती जो शूल-सी चुभती थी—'विकास-पथ मे एक बार प्राप्त स्तर का ही पुनः अनुभव करना पाप है'। कन्या ने पत्नी बनकर अपने प्रथम पति के साथ आनंदानुभव किया था। बाद में वह माँ भी बनी। तत्पश्चात् पुनः कन्या की तरह प्यार करके प्यार चाहकर और किसी की पत्नी बनी। एक बार जो माँ बनती है, क्या वह सदा के लिए माँ बन जाती है ? क्या वह पत्नी नही है ? इसका उसे कोई उत्तर नही मिलता। 'हे भगवन् ! वास्तविक पाप ने हमें बाँध रखा है या पाप की कल्पना ने ?'—वह दु:ख से निःश्वास छोडती।

एक दिन उसने नागलक्ष्मी से पूछा—"दीदी, पाप माने क्या है ? बतायेंगी ?"

"मैं क्या जानूँ ! तू पढी-लिखी है, तू ही बता।"

"मैं नही जानती, इसीलिए तो आपसे पूछती हूँ। जो कुछ भी आप जानती है, बताइए।"

अपनी पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए कुछ सोचे बिना ही नागलक्ष्मी ने कहा—"किसी का दिल दुखाना पाप

है। जो अपना नही है, उसकी अपेक्षा करना पाप है। है न ?"

"तो इन दोनों के अतिरिक्त और कोई पाप नही है ?"

"यह सब मैं क्या जानूं ?" कहकर नागलक्ष्मी चुप हो गयी।

कात्यायनी सोचती थी—"मैंने अब तक किसका दिल दुखाया है ?" उसे वृद्ध श्रोत्रियजी और भागीरतम्मा की याद आ जाती। उन्होंने इस आयु मे छोड़ जाने वाली बहू का स्मरण कर आह भरी होगी ? लेकिन श्रोत्रियजी ने ही तो उससे कहा था—"अपने या भीतर रो रही उस वृद्धा के लिए, बच्चे को छोड जाने की भीख मैं नही माँगता। तिल-भर भी यह इच्छा नही है कि हमारे बुढ़ापे मे वह हमारा सहारा बने।" बच्चे के प्रति इतनी निरासक्ति दिखानेवाले मुझे क्या चाहेंगे ? फिर भी उनकी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य था ! नागलक्ष्मी का दूसरा उत्तर भी उसे चुभ रहा था कि जो अपना नही है, उसकी अपेक्षा करना पाप है। 'क्या मैं पुनः संतान नहीं प्राप्त कर सकती ? हे भगवान ! समझ में न आनेवाली किस गाँठ मे तूने मेरा जीवन बाँध रखा है ? किस सार्थकता के लिए इन सबका अस्तित्व है ?' मन-ही-मन वह अपने-आपसे पूछती।

दो महीने में वह घर मे चलने-फिरने लगी। दिन मे वह नही सोती। शाम को घर से एक फर्लांग तक टहल आती। पृथ्वी इस साल हाईस्कूल की अंतिम परीक्षा देने वाला है। बैठे-बैठे ऊब जाती तो उसे पढ़ाने लग जाती। इसी तरह और एक महीना बीत गया। उसकी तंदुरुस्ती देह-स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ। एक महीने के बाद उसे कालेज जाना पड़ेगा। उसका शरीर पुनः पहले-सा रूप ले रहा था। टहलते समय उस कमजोरी मे भी शरीर का सौंदर्य निखर उठता था। स्वास्थ्य-कान्ति गायब हो चुकने पर भी उसकी सुकुमार त्वचा का रंग उसे एक विशिष्ट [illegible] रहा था। पहले चलते समय चरणों में जो रक्त प्रस्फुटित-सा प्रतीत होता था, वह स्थिति अब नहीं थी। फिर भी कोमल [illegible] एक नया आकर्षण था।

एक दिन एकान्त में [illegible] ने पूछा— "[illegible] हो रही है न ?" पूछते समय उसकी आवाज [illegible] ने गले में हाथ डालकर कहा— "[illegible] हँसि !"

"[illegible] बात नहीं है।"

"मैं जानती हूँ। आप झूठ मत बोलिए।" और उसकी आँखों-में-आँखें डालकर कहने लगी—"मुझसे विवाह करके आपका यह हाल हुआ।" थोड़ी देर तक खामोशी रही। फिर उसी ने पूछा—"डॉक्टर ने जो कुछ कहा था, क्या सच है ?"

"क्या ?"

"आपको आपरेशन करा लेने की सलाह ?"

"हाँ ! क्यों ?"

"आपके बदले मैं करा लूँ तो कैसा रहेगा ?"

"दोनों में कोई बड़ा अंतर नहीं" कहते समय उसकी आवाज बदल चुकी थी।

दूसरे दिन वह स्वयं पति के साथ अस्पताल गई। उसके विचार सुनकर लेडी डॉक्टर ने कहा—"मेरे विचार में आपके पति को करा लेना ज्यादा उचित होगा। आप अभी पूर्ण स्वस्थ नहीं हुई हैं। आपरेशन लायक रक्त-पूर्ति करने में आपको दो-तीन साल लगेंगे।"

बाहर आकर डॉक्टर के विचार पति को बताये तो वह कुछ नहीं बोला। वह इसलिए खिन्न नहीं था कि आपरेशन किये बिना पत्नी के साथ पुन. शरीर सम्बन्ध रखना खतरनाक है, बल्कि उसे यह चिंता सता रही थी कि तीन बार के अनाहूत के बाद भी उन्हें आजीवन नि.संतान रहना पड़ेगा। दस वर्ष पहले अगर कोई दम्पति नि.संतान होने का दुखड़ा रोता तो वह हँस पड़ता था। उसे वह उनकी अति भावुकता मानता था। तब भी बच्चों के प्रति उसका प्यार था। पृथ्वी को खिलाकर वह खुश होता था। वह सोचता था—"इस खुशी के लिए अपने ही बच्चे क्यों हों, दूसरे के बच्चे क्यों न हों ?" अब वह अपने-आपसे प्रश्न करता—'मेरी पत्नी अपने बच्चों को जन्म नहीं दे सकती, इस विचार से मेरा मन मुरझा क्यों गया है ?' उसे कोई उत्तर नहीं मिलता। वह अपने-आपको रोकने का प्रयत्न करता, लेकिन उसे मानो लकवा मार गया था। कभी-कभी वह पत्नी से संभोग करना चाहता, लेकिन उसके परिणाम से डरकर दूर हट जाता।

राज के मन की अशांति को कात्यायनी अच्छी तरह से जानती है। .किन वह पूर्णतः लाचार है। एक दिन पति से बोली—"डॉक्टर की

बात को ही हमेशा नहीं माना जा सकता। आप घबराइए मत।" "जान-बूझकर मैं तेरी बलि नहीं चढ़ा सकता" कहकर राज ने अस्वीकृति व्यक्त की। कात्यायनी डर रही थी कहीं ऐसा न हो कि हमारी कोई संतान न होने की चिंता में वे दूसरी शादी कर लें! अपने-आप यह सोचकर निराश हो जाती कि 'मातृत्व के आधार के बिना केवल पत्नीत्व का अधिकार कितने दिन तक स्थापित किया जा सकता है? अचानक उन्होंने ऐसा किया तो मेरा क्या होगा?' इसी विचार से एक दिन वह रो पड़ी।

राज रोज बाहर पृथ्वी के साथ सोता था। लड़का परीक्षा के कारण रात के ग्यारह बजे तक पढ़कर सोने के पश्चात् भी स्वप्न में बीजगणित का सूत्र रटता। एक दिन राज ने उसके गाल पर हाथ फेरकर कहा—"चुपचाप सो जा बेटे!" लड़का चुप हो गया। उसकी निद्रा भंग नहीं हुई। राज अपने बिस्तर से खिसककर पृथ्वी के पास पहुँचा और उसे अपने दाहिने हाथ से गले लगा लिया। लड़का गहरी नींद सोता रहा। सारी रात राज उसी तरह सोया। रात-भर सोचता रहा। उसने सोचा—"अब मैं संतान का हूँ। भाई का पुत्र होते हुए भी यह बचपन से ही मुझे बहुत चाहता है। अब हमें संतान होने की कोई संभावना भी नहीं है। क्या अब ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया जा सकता? आधी उम्र बीतने में अब अधिक समय नहीं है। अब संतान की यह कल्पना और कितने दिन रहेगी? संतान की संभावना ही नहीं है तो इस कृत्रिम चिकित्सा के पश्चात् बनने वाले शारीरिक संबंध में क्या होगा? चिकित्सा की जरूरत नहीं। मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। और इसी तरह इसके साथ सोया करूँगा।" यह निर्णय उसने कात्यायनी को [illegible] इसे सुनकर वह चुप रही।

[illegible] दिन से ही राज का निर्णय [illegible]

[illegible]

[illegible]

आये थे। उसके अस्तित्व की मूल उद्देश्य-शक्ति नष्ट होते समय, और किसी तरह की बौद्धिक सान्त्वना उसकी मानसिक वेदना को दूर करने में समर्थ नहीं हुई।

राज के अस्पताल से लौटने के पश्चात् वे दोनों परस्पर लिपटकर मूकवत् बैठे रहे। कात्यायनी की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। उसे सान्त्वना देने की शक्ति राज में नहीं थी। वह चिन्ता में ऐसा डूबा कि आँसू बहाने की शक्ति भी जाती रही।

१८

गत आठ वर्षों के जीवन में श्रोत्रियजी का मन पहले की अपेक्षा अधिक निवृत्त होता जा रहा था। सत्तर वर्ष की इस उम्र में उन्हें सांसारिक जीवन के प्रति कोई आस्था नहीं रही। पुत्र का विवाह करते ही सारी जिम्मेदारी उसे सौंपने लगे थे। तभी से उनमें निवृत्त-भाव काम कर रहा था। पुत्र की मृत्यु के पश्चात् फिर सांसारिक जीवन की जिम्मेदारी सँभालने लगे। दो वर्ष बाद बहू को घर के कार्यों से परिचय कराया था और सोच रहे थे कि कुछ वर्ष बाद बड़े-बड़े व्यवहारों को भी वही देखा करेगी। उनकी यह योजना असफल हो गयी। उन्हें पुनः समस्त जिम्मेदारियाँ ढोनी पड़ी। वे जानते थे कि जब तक पोता बड़ा नहीं होता, उसका विवाह नहीं होता, उसमें जिम्मेदारियाँ [illegible] क्षमता नहीं आ जाती, तब तक वे निवृत्त नहीं हो सकेंगे। ले[illegible] मानो हर वस्तु से अछूता-सा रह[illegible] वस्तु के प्र[illegible] विरक्ति, निर्मम भाव जाग रह[illegible] से [illegible] की भावना भी मन में अ[illegible] वर्ष [illegible] गृहस्थ धर्म पूर्ण हो [illegible] उसे त्यागकर भगवान् [illegible] [illegible]ि थी। [illegible]

काधिक पढ़ने लगे। सन्यासोपनिषद्, वैखानस सूत्र, धर्मसिंधु, जीव-
क्ति विवेक आदि ग्रंथों में बताये परिव्राजक-जीवन के ध्येय-उद्देश्य,
नन-क्रम, धर्म-सूक्ष्मता का मनन करते रहते है।

वे जानते थे कि इस परिस्थिति मे घर त्यागकर सन्यास स्वीकार करना
र्म है। वे इस बात से अपरिचित नही थे कि अपने परिवार के आश्रितों
एक स्तर पर लाकर एवं उनकी अनुमति लेकर तथा पत्नी के जीवित
हने पर उसकी भी अनुमति पाकर ही सन्यास स्वीकार करने का अधि-
र है। घराने की जिम्मेदारी लेने वाला पोता केवल तेरह वर्ष का
। उसका विवाह होने, जिम्मेदारी सँभालने योग्य बनने में कम-से-कम
ाठ साल लगेंगे। साठ वर्ष की पत्नी भी इस परिस्थिति में उन्हें अनुमति
देगी—यह सोचना भी निरर्थक होगा। इसलिए वे चुप रहते। श्रोत्रिय
ी सन्यास के लिए व्याकुल नही थे। उनकी धारणा थी कि अन्य इच्छाओं
की तरह सन्यास की इच्छा भी अगर पागल-जैसा बनाकर चित्त का सतुलन
खो दे तो वह भी बुरा है। सन्यास एक तरह से निर्विकार, निर्लिप्त मनः-
स्थिति है। उसे प्राप्त करने की आकाक्षा मे ही अगर मन मे विकार जाग्रत
हुआ, तो संन्यास-जीवन के लिए वह भी एक तरह की अयोग्यता है—ऐसा
समझकर, वे अपनी इच्छा को नियंत्रण मे रखने का प्रयत्न करते।

जिस वर्ष बहू घर छोड़कर गयी थी, उसी साल श्रोत्रियजी ने पौत्र
को सरकारी प्राथमिक स्कूल मे भरती करवा दिया था। उसी वर्ष उसका
मुंडन-सस्कार हुआ। भागीरतम्मा पोते का मुडन-कार्य बड़ी धूमधाम से
करना चाहती थीं, लेकिन बहू के व्यवहार से उनका उल्लास, उत्साह घट
गया था। शास्त्र-विधान छोड़ना उचित न समझ, एक दिन उस कार्य को
पूर्ण किया था। आठवें वर्ष में उसका यज्ञोपवीत सस्कार किया गया।
भागीरतम्मा ने यह कार्य उत्साहपूर्वक सम्पन्न किया। पत्नी की इच्छा में
श्रोत्रियजी बाधक नही बने। लेकिन उन्हें इस धूमधाम मे तिल-भर भी
आसक्ति नहीं थी। वे यही चाहते थे कि बालक को गायत्री जप, त्रिकाल
सध्या और वेदाध्ययन पर क्रमशः अधिकार प्राप्त हो जाये। उन्होंने ही
शुभ मुहूर्त में पौत्र को अपनी गोद में बैठाया और उसके [illegible]
रखकर कानों में गायत्री मन्त्रोपदेश दिया था। भागीरतम्मा ने ही [illegible]
चांदी की थाली मे भिक्षान्न दिया था। माथे पर [illegible]

में 'मौजी' बाँधकर, पीतवर्ण की धोती पहनकर चीनी ने दादा के वंश-गोत्र-सूत्र कहकर, श्रीनिवास श्रोत्रिय कहकर अपने अभिधान के साथ अग्नि-संस्कार का मंत्र 'प्रवर' सुनाया—"काश्यपगोत्रोत्पन्नः काश्यपा-वत्सार नैद्रवप्रवर त्रयान्वित आश्वलायन सूत्र समन्वितः ऋक् शाखाध्यायी श्री श्रीनिवास श्रोत्रियोऽहं अभिवादये···।" फिर भिक्षा देने वाली स्त्रियों को नमस्कार किया। उस समय श्रोत्रियजी ने मन-ही-मन वंश के प्रति गर्व का अनुभव किया। अपने गोत्र, सूत्र, शाखा और श्रोत्रिय-वंश एवं पूर्वजों के नाम स्मरण करने के फलस्वरूप दादा का नाम, पोते के लिए रखने की पद्धति को याद करके उनका मन गर्व से भर जाता था।

अगले दिन से उससे संध्या, हवन कराना प्रारम्भ कराया। वह संस्कृत मंत्रों का शुद्ध उच्चारण करता। रोज शाम को उसे थोड़ा-थोड़ा वेदमंत्रों को कंठस्थ कराने के अतिरिक्त उनको अर्थ भी समझाते थे। इस आयु में भी श्रोत्रियजी का एक भी दाँत नहीं गिरा था। वेदमंत्र अब भी उनके मुख से स्पष्ट, स्वच्छ और अर्थपूर्ण होकर निकलते थे। चीनी होशियार लड़का है। शाला में भी अच्छा पढ़ता था।

भागीरतम्मा की तन्दुरुस्ती अब अच्छी नहीं रहती। देह-शक्ति घट गयी थी। बहू के चले जाने पर एक तरह से उन्हें अपना मानसिक आधार ही खोया-सा लगा। अब नीचे के आँगन में ही वे सो जातीं। बगल में चीनी, और चीनी के पास लक्ष्मी सोती। उनके सिर की दिशा में खाट पर श्रोत्रियजी सोते। भागीरतम्मा बहू को याद करती। इस आयु में घर में रहकर उसे घर की सारी जिम्मेदारी निभानी चाहिए थी। अंग्रेजी सीख रहे बेटे चीनी को पढ़ाना चाहिए था। घर के हिसाब-किताब पर निगाह रखनी चाहिए थी। उनका मन कभी-कभी खिन्न हो जाता। सोचती कि इन सारी जिम्मेदारियों को, हम सबको छोड़कर जाने वाली को भगवान् कभी सद्‌गति देगा? पास लेटी लक्ष्मी से वे यही कहतीं। लेकिन वहीं लेटे श्रोत्रियजी पूछते, "क्या बच्चे को नींद आ गई?"

"हूँ, क्यों?"

"जो कुछ हुआ सो हुआ। तुम्हें कितनी बार कहा कि उस बारे में कभी कुछ मत बोलो! भगवान द्वारा दी जाने वाली सद्‌गति-दुर्गति के बारे में हम क्यों सोचें? तुम लोग बार-बार इसी तरह बात करती रहोगी

तो जानती हो लड़के के मन में माता के प्रति कैसी भावना पनपेगी ? इससे कोई लाभ नही । उस बात को नही छेड़ना चाहिए ।"

भागीरतम्मा चुप हो जाती । लक्ष्मी को शीनप्पा की बात बहुत अच्छी लगती । भागीरतम्मा की बात यद्यपि उचित लगती फिर भी कभी-कभी मन असह्य व्याकुलता का अनुभव करता था । लक्ष्मी अकेली होती तो उसी बात को पुनः छेड़ देती । लक्ष्मी उनकी मनोदशा, व्याकुलता को समझती थी । उनकी बात का खडन न कर, लेकिन अपनी ओर से कुछ न कहकर, वह चुपचाप 'हूँ' करती रहती । इस विषय को लेकर आधा घंटा तक बात कर पाती तो उनके मन को तृप्ति-सी मिलती । तत्पश्चात पाँच-छह दिन वह विषय ही नही निकलता ।

यज्ञोपवीत के पांच वर्षों में चीनी ने माध्यमिक शाला की शिक्षा पूर्ण कर ली थी । वह होशियार विद्यार्थियों में माना जाता था । रोज ग्यारह बजे शाला जाने से पहले वह स्व. नदी से पीने के लिए दो घडे पानी ला देता । दादी की तन्दुरुस्ती अच्छी नही थी । लेकिन आयु की तुलना में दादा अब भी काफी शक्तिवान थे । सत्तर वर्ष की आयु थी, फिर भी पढ़ने के लिए उन्हें चश्मे की जरूरत नही पडती थी । बेधड़क अब भी खूब चलते-फिरते थे । दाँत एक भी नही गिरा था ।

चीनी तेरह वर्ष का होते हुए भी दादी के पास सोता था । अपनी शाला और दादा के साथ सस्कृत अध्ययन के अतिरिक्त उसका सारा समय दादी के साथ बीत जाता । उसका स्नेह, निकटता उन्ही तक सीमित थी । दादी गाँव-भर की कुतूहलपूर्ण सारी कहानियाँ पोते को सुनाती । वह पूछता—"श्रीपादराव के घर की वासंती अब भी जब कभी आती है तो मेरे लिए बिस्कुट क्यो लेकर आती है दादी ?" वास्तविकता को जानते हुए भी वे कहती—"पहले से ही हम लोगों के प्रति एक तरह का स्नेह है ।" "क्या यह सच है दादी कि चक्रपाणिराव के पूजाघर मे चाँदी के रुपये गड़े है ? सच दादी ?" "कहते है परशुराम मदिर के पास जमीन में सात बड़े-बड़े बरतन मे सोने के सिक्के है और सात फनवाला नाग उनसे लिपटकर उनकी रक्षा कर रहा है ? है न दादी ?" "गत सोमवार को मैं हेज्जिगे के पापय्य के घर गया था न ? वहाँ मुझे खाने के लिए

लड्डू-जितना माखन और गुड़ दिया। क्या उस घर के लोग रोज उतना माखन खाते है ?" आदि प्रश्न करता और दादी उचित उत्तर देकर उसकी उत्सुकता शांत करने के साथ-साथ अपनी ओर से भी कौतुक-भरी घटना सुनाती। अपने पिता को मृत्यु की बात चीनी जानता था। क्योंकि वह हर साल उनका श्राद्ध करता था। दादा भी अपने माता-पिता का श्राद्ध करते थे। चीनी केवल पिता का श्राद्ध करता था। "माँ कहाँ है ?" एक दिन उसने दादी से पूछा भी। उन्होंने उत्तर मे कहा था—"वह अपने पिता के घर गई है बेटा।" "किसलिए ?" चीनी का दूसरा प्रश्न था। "कौन जाने ? खैर, उस बारे मे मत पूछो बेटा।" आवाज मे नाराजगी थी। *यद्यपि उसे ठीक तरह याद है कि जब वह बहुत छोटा था तब* घर में एक महिला थी जिसे वह माँ कहकर पुकारा करता था, तथापि उसने उसके प्रति अधिक कुतूहल नही दिखाया था। लेकिन एक दिन शाला मे अन्य विद्यार्थियों के साथ झगड़ा हुआ तो एक ने 'तेरी माँ किसी और आदमी के साथ भाग गयी है' कहकर गाली दी थी। घर लौटते ही चीनी ने दादी से पूछा था—"अग्रहार का नावी है न, उसने कहा कि मेरी माँ किसी और आदमी के साथ भाग गयी है। क्या यह सच है दादी ?" कुपित होकर उन्होंने कहा—"किसी ने कह दिया तो तू भी वही पूछता है ? ऐसे नही कहना चाहिए।" उस दिन से उसने इस बारे मे किसी से नही पूछा और सोचा दादी ने डाँटा है तो उस सबध मे सोचना भी अनुचित है।

चीनी की माध्यमिक शाला की परीक्षा हो चुकी थी। अध्यापक ने ही कहा था कि वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होगा। छुट्टियो के बाद वह हाईस्कूल मे जायेगा। हाईस्कूल का विद्यार्थी बनने की कल्पना से ही वह झूम उठता था—इस बात की खुशी और गर्व भी था। उसी समय दादी बीमार पड़ी। इन दिनों वे महीने-दो महीने में एक बार बीमार पड़ जाती थी। फिर एक-दो दिनों मे ठीक भी हो जाती। उस समय दादा ही खाना पकाते। इस बार भागीरतम्मा पड़ी तो दो दिन घर का काढ़ा पिलाने पर भी कोई लाभ नही हुआ। तीसरे दिन वैद्य को बुलाने गये तो पता लगा कि वे गाँव से बाहर गये हुए हैं और एक महीने के बाद ही लौटेंगे। दादी को बुखार चढ़ रहा था। पूरे शरीर मे दर्द हो रहा था।

रे दिन भी श्रोत्रियजी ने घर की ही दवा पिलाई। वे पूरे होश में

थी। पहले श्रोत्रियजी सन्निपात समझते रहे। लेकिन अब बुखार के रूप को नही पहचान पा रहे थे। चौथे दिन भागीरतम्मा दिये जाने वाले दूध को भी उलटी करने लगी। "वैद्य तो है नही, सरकारी डॉक्टर को बुला लाता हूँ" कहकर श्रोत्रियजी निकल ही रहे थे कि भागीरतम्मा "इतनी उम्र हो गई, अब अन्य जाति के व्यक्ति द्वारा छुए पानी को मैं नही पिऊँगी" कहकर हठ करने लगी। पूरे दिन उन्होंने पति को घर से बाहर नही जाने दिया।

लेकिन उस रात वह बेहोश हो गई। श्रोत्रियजी घबरा गये। लक्ष्मी दौडकर सरकारी डॉक्टर को बुला लाई। "आपने बड़ी देर कर दी"—कहकर डॉक्टर ने एक इन्जेक्शन दिया और दवा लाने के लिए किसी को साथ भेजने के लिए कहा। चीनी डॉक्टर के साथ जाकर दवा ले आया। लेकिन भागीरतम्मा ने मुँह इस तरह बद कर लिया था कि दवा पिलाना असभव-सा हो गया। बेहोशी मे भी अस्पताल की दवा का विरोध करते देखकर श्रोत्रियजी ही चुप हो गये थे। तीन दिन और बीत गये। एक रात तो घर के तीनों सदस्य जागते रहे। "तू सो जा बेटे"—श्रोत्रियजी और लक्ष्मी के समझाने पर भी चीनी नही माना। उसका चेहरा उतर गया था। लक्ष्मी के मुख पर चिन्ता छाई हुई थी। श्रोत्रियजी मानो अपने जीवन की भावी स्थिति के लिए मानसिक तैयारी कर रहे थे। लगभग पचास वर्षों के पारिवारिक जीवन का स्मरण उनके मानस-पटल पर उभर आया था। विवाह के पश्चात् कई साल तक सतान के लिए तड़पना, बाद मे सतान होना, फिर स्वेच्छापूर्वक निभाया गया ब्रह्मचर्य जीवन, बहू के चले जाने के बाद पत्नी द्वारा आत्मीयता से पोते का पालन-पोषण, आदि एक-एक कर उनके स्मृति-पटल मे घूमने लगे। पत्नी के स्वभाव के सबंध मे उनका मन सोच रहा था। भागीरतम्मा अच्छे स्वभाव वाली है। उसने कभी किसी का बुरा नही चाहा। जहाँ तक हो सका, दूसरों की मदद करती थी। लेकिन क्रोध पर पूर्ण विजय नही पा सकी थी। श्रोत्रियजी जानते थे कि सबका वैसा स्वभाव संभव नही है। अतिम दिन बीमार पड़ने तक भी भागीरतम्मा ने श्रद्धा-भाव से पति-सेवा की थी। पति के धार्मिक जीवन मे हर तरह का सहयोग दिया था। श्रोत्रियजी सोचते—'गृहस्थ जीवन मे यही तो पत्नी का कर्त्तव्य है!'

लगभग मध्य रात्रि को भागीरतम्मा बेहोशी में अस्पष्ट कुछ बोल रही थी—'भविष्य में बालक का क्या होगा···', 'अब वह होती तो···', 'चीनी की शादी अगर हुई होती···!' मध्य रात्रि में पूर्ण बेहोश दादी को इस तरह बडबड़ाते देख चीनी डर रहा था। लेकिन वे बातें पूरी तरह उसकी समझ में नहीं आ रही थीं। लक्ष्मी ने एक बार श्रोत्रियजी का चेहरा देखा। उन्होंने भी मूक बैठी लक्ष्मी का मुख देखा। वे दोनों समझ गये कि रोगी की अत प्रज्ञा कह रही है कि वह देह छोड़ रही है।

दूसरे दिन भी डॉक्टर ने आकर इन्जेक्शन दिया। तब रोगी की साँस विलक्षण ढग से चल रही थी। "अब कैसी है?" श्रोत्रियजी का कातरता-भरा प्रश्न था। "मैं अपनी ओर से भरसक कोशिश कर रहा हूँ" डॉक्टर ने आश्वासन दिया।

डॉक्टर का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। दूसरे दिन सुबह लगभग पाँच बजे भागीरतम्मा के प्राण-पखेरू उड़ गये। मरने से पहले ही साँस की गति से श्रोत्रियजी ने स्थिति भाँप ली थी। पास-पड़ोसियों को इत्तला नहीं दी थी। रात चीनी सोया था। श्रोत्रियजी उठे, अदर से गगाजल लाकर आधा चम्मच जबर्दस्ती पिलाया। गगाजल प्रविष्ट हुआ। आध घण्टे बाद साँस रुक गई। शरीर-यत्र पूर्णतः रुक गया था। श्रोत्रियजी ने नाक के पास से अपनी अँगुली हटाई तो लक्ष्मी जोर-जोर से रोने लगी। लगभग पैंतालीस वर्ष से उसे भागीरतम्मा आश्रय-अन्न देती आयी थी। सहेली की भाँति सुख-दुख कह सुनाती थी। एक बार उसी ने चाहा कि लक्ष्मी श्रोत्रियजी से सबध जोड़े। श्रोत्रियजी ने लक्ष्मी के नाम दो बीघा जमीन लिख दी तो भागीरतम्मा ने सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी थी। अब वह अपनी इहलीला समाप्त कर चुकी है। श्रोत्रियजी के परिवार में लक्ष्मी जिस जिम्मेदारी को निभा रही है, अब पहले की अपेक्षा बढ़ गई है। लक्ष्मी सिसक-सिसककर रो रही थी। यह देखकर श्रोत्रियजी ने कहा—"यह क्या कर रही है लक्ष्मी? इतने दिन तूने भगवान् का चरणामृत लिया, गो-पूजा की है। तू यह भूल गई कि मनुष्य को एक-न-एक दिन जाना ही पड़ता है!" लेकिन वाक्य पूरा होने से पहले ही उनका गला भर आया। रुलाई भरी ध्वनि मे ही वे बोले—"दु ख किसी को नहीं छोड़ता। फिर भी सहना ही पड़ेगा।" वे कह ही रहे थे कि पास सोया चीनी अचानक जाग उठा। दादा का

चेहरा देखते ही वह सारी बात समझ गया। 'दादी' जोर से चिल्ला उठा और पास ही आँखें मूँदे, चिर-निद्रा में सोयी दादी की छाती पर सिर रखकर रोने लगा। दादी नहीं बोली। लक्ष्मी ने उसे अंक में भर लिया।

पास-पड़ोस के लोगों को श्रोत्रियजी ने घटना बतायी, तो उन लोगों ने कहा—"आप बड़े है, आप जो कुछ कर रहे है उसे अनुचित कहने का साहस हम नही कर सकते। लेकिन क्या हम सब मर गये थे? हमें खबर क्यों नहीं दी? कल रात ही हमे बुलाना चाहिए था।" देखते-देखते पड़ोसियों से सारा आँगन भर गया। दस मिनिट मे घर के बाहर अग्नि जल रही थी। कुछ लकड़ी जुटाने गये तो कुछ अर्थी तैयार कर रहे थे। सारे गाँव में समाचार फैल गया। भागीरतम्मा के अंतिम दर्शन के लिए स्त्रियाँ-बच्चे आते गये। लेकिन शव को सुबह आठ बजे ही ले गये। दादी के मुँह मे चावल डाल रहा था कि चीनी को चक्कर आ गया और वह गिर पड़ा। यह दृश्य देखकर उपस्थित स्त्री-पुरुषों के आँसू झरने लगे। लक्ष्मी ने चीनी को आकर उठा लिया।

सातवें दिन, काफी दान-धर्म के साथ भागीरतम्मा की उत्तरक्रिया समाप्त की।

श्रोत्रियजी के घर के कामकाज में अब परिवर्तन हो गया। यद्यपि वे नियमित समय से उठते, किन्तु वृद्ध श्रोत्रियजी पहले के समान अधिक समय भगवत्-पूजा नही करते। छह बजे पूजा समाप्त कर रसोईघर में प्रविष्ट होते। मुँह अँधेरे ही चीनी उठता और उसके स्नान, सध्या पूर्ण होने तक उसे पीने को गरम दूध देते। जब से हाईस्कूल जाने लगा है, वह सुबह काफी समय अध्ययन करता है। साढ़े नौ बजे तक उसके लिए रसोई तैयार होती है। उसके स्कूल जाने के बाद लक्ष्मी को परोसकर श्रोत्रियजी भी भोजन कर लेते। बरतन धोना लक्ष्मी का काम था। गाय-बछड़ों की देखभाल एवं अन्य कार्यों के लिए एक नौकर रख लिया गया। शाम को नियमित रूप से चीनी का वेदाभ्यास चलता। दादा के कहने पर भी चीनी रविवार को खेलने नही जाता—वह दादा के कार्यों मे हाथ बँटाता।

कभी-कभी चीनी को दादी की याद आ जाती। कुछ दिन तक तो इसी भ्रम मे कि दादी रसोईघर में है, स्कूल से आकर सीधा वहाँ चला जाता था। वहाँ किसी को न पाकर निराश लौटता। कभी-कभी रसोईघर

मे ही वैठकर दो मिनिट रो लेता और मन को सांत्वना देने का प्रयास करता । एक रात को स्वप्न में 'दादी' कहकर रोने लगा । उस दिन से चीनी का विस्तर अपने पास न लगवाकर लक्ष्मी के पास ही बिछाने के लिए श्रोत्रियजी ने कहा । धीरे-धीरे चीनी लक्ष्मी के बहुत निकट आ गया। फिर भी दादी की याद उसे रोज सताती रही । उसके मुख पर पहले जो मुस्कराहट थी, वह कभी नही लौटी । चेहरे पर एक तरह का मुरझाहट-भरा गांभीर्य दिखाई पड़ा । रात को उसके सो जाने के बाद श्रोत्रियजी लक्ष्मी से बात करते । बातो का विषय सामान्यत भागीरतम्मा को लेकर होता । फिर बात चीनी और उसके भविष्य की ओर मुड़ती । लेकिन लगता था कि उन्हें त्यागकर गयी बहू के बारे में कुछ न बोलने की मानो दोनों ने कसम खा ली हो । "चीनी चौदह वर्ष का है । चार-पाँच वर्ष में उसकी शादी कर देंगे । तब सब ठीक हो जायेगा"—लक्ष्मी कहती ।

"इस जमाने मे इतनी जल्दी विवाह करना क्या उचित है ?" श्रोत्रिय जी ने प्रश्न किया । "क्यो नही ? जब तुम्हारी शादी हुई थी तो तुम कितने वर्ष के थे ? जमाना अवश्य बदल गया है, चीनी तो हमारी बात मानता है" लक्ष्मी समझाने लगी । "यही ठीक है" कहकर श्रोत्रियजी ने स्वीकृति दे दी ।

१९

कात्यायनी इस बात का काफी प्रयत्न करती रही कि उसका मन क्षुब्ध न हो, नियन्त्रण मे रहे । एक मिनट भी वह अकारण अकेली न रहती । रोज शाम को पति के साथ घूमने जाती । वे पहले की अपेक्षा अब अधिक सिनेमा देखने लगे । घर के कार्यों मे भी उसने अधिक रुचि लेनी शुरू की । नागलक्ष्मी से पूछ-पूछकर खाने की चीजें बनाती । हर शनिवार को नाग-लक्ष्मी की रामपूजा मे भाग लेती । भूलने का हर प्रयत्न करने पर भी [illegible] लेने से पूर्व ही जाते रहे तीन बच्चों का स्मरण हो आता । जब वह

सोचती कि भविष्य मे माँ बनने की संभावना बिल्कुल मिट गई है, तो उसका चित्त और भी दु:खी हो उठता। जब कभी ऐसा होता, उसे चीनी की याद आती। इस वर्ष वह किस कक्षा मे पढ रहा होगा ? अब काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया होगा ! क्या वह माँ के बारे मे सोचता होगा ? माँ के सबध मे उसके प्रश्न करने पर अगर दादी कहे कि "तेरी माँ कुलटा थी, किसी के साथ भाग गई" तो आश्चर्य नही। अगर अचानक मैं सामने पड जाऊँ, तो क्या वह मुझे पहचान लेगा ? जब अतिम बार उसने मुझे देखा था, तब पाँच वर्ष का था। जब दादा-दादी के लाड-प्यार का अभाव नहीं, तब मुझे क्यों पहचानने लगा ? अचानक मुझे पहचान भी ले तो किस तरह व्यवहार करेगा ? अगर माँ होने के नाते मुझसे प्रेम, श्रद्धा-भाव से व्यवहार करने लगा तो ? उसे लगा, कोई त्रिशूल से वेध रहा हो। इसे भूलने का वह असफल प्रयास करती रही।

इन दिनों वह भी पृथ्वी को अधिकाधिक प्यार करने लगी है। पृथ्वी अब कालेज के प्रथम वर्ष में कला विषय लेकर पढ रहा है। पति के साथ घूमने जाती तो कात्यायनी उसके लिए कपडे खरीद लाती। खेलने के लिए 'बैट-बॉल' ले आती। इस बात का ध्यान रखती कि वह रोज अच्छे कपड़े पहनकर कालेज जाये। उसे पढ़ाती। पृथ्वी काका के प्रति स्नेह रखता, किन्तु उसके प्रति एक तरह का सकोच, भय मिश्रित श्रद्धा-भाव भी था। कभी-कभी कात्यायनी ही उसे तेल मलकर स्नान कराती। पृथ्वी सकोच-वश शरीर को सिकोडकर स्नानगृह मे बैठ जाता था। पीठ मलते समय फुट-भर दूर खिसकता देख, कात्यायनी उसे पास खीचकर मलती।

आपरेशन के पश्चात् राज का समस्त स्नेह पृथ्वी पर केन्द्रित हो गया। घर-खर्च के लिए पैसे जिस बक्स में रखे जाते थे, उसकी चाबी भी उसे सौंप दी थी। उसके साथ ही खाने बैठता। पहले 'पृथ्वी' कहता था अब 'बेटे' कहकर सबोधित करता। पति की भावना को कात्यायनी समझती थी। इससे उसे कोई खिन्नता नही होती थी, इसके विपरीत, वह भी उसी भाव मे अपने-आपको घुला देना चाहती थी। उसे इस बात का दु:ख था कि पति की प्रकृति-सहज इच्छा पूर्ण न हो सकी।

यद्यपि अब पहले की अपेक्षा वह कालेज अधिक जाती, रोज अधिक टहलती, फिर भी कात्यायनी का शरीर पहले-जैसा न था। शरीर के रग

में भी परिवर्तन आ चुका था। उसका लाल गौर वर्ण, अब दूध-सा सफेद पड़ गया था। न सौंदर्य रहा; न उल्लास ही। राज के विवश करने पर ही वह डाक्टर द्वारा बताये टानिक नियमित रूप से लेती थी। डाक्टर हमेशा सलाह देता था कि एक-दो महीने के लिए हवा-पानी बदल सके तो उचित रहेगा। इस बार ग्रीष्म की छुट्टियों में कहीं जाने का निश्चय किया था। नंदी पहाड़ी जाने का विचार आया। यह सोचकर कि दो महीने वहाँ रहने से ऊब जायेंगे, विचार त्याग दिया। केम्मण्णगुडी भी इसी विचार से छोड़ दिया। राज का एक विद्यार्थी उटकमंड में था। वह कह गया था कि आप लोग आयें तो दो महीने के लिए कमरे की व्यवस्था कर दूँगा। घर पहुँचते ही उसने पत्र भी लिखा था कि "किराया देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी; एक संबंधी एक साल के लिए विदेश गये हुए हैं। चाबी मेरे पास है। रसोई आदि के लिए बरतनों की भी आवश्यकता नहीं है। दूध-दही की व्यवस्था भी हो जायेगी। आने की तारीख लिखें। रेलवे स्टेशन पर आप लोगों को लेने आऊँगा।"

"तुम लोग हो आओ। मैं यहीं रहूँगी" नागलक्ष्मी ने कहा। वे नहीं मानें। राज ने विवश करते हुए कहा—"दो महीने तक तुम अकेली क्यों रहोगी? पृथ्वी को भी ले चलेंगे। दो-चार स्थान देखने पर बालक थोड़ा खुल जायेगा। तुम भी चलो। नीलगिरि देख आयेंगे।" नागलक्ष्मी और कात्यायनी ने दो महीने के लिए भोजन के आवश्यक मसाले, सामान आदि तैयार किया। रवाना होने का दिन बताकर राज ने अपने विद्यार्थी को पत्र लिखा। सब के कपड़े एक ट्रंक में रखकर दो बिस्तर बाँधे। रात की गाड़ी से निकलने से पहले घर की रखवाली की जिम्मेदारी पड़ोसी को सौंपी। उसी शाम को कालेज का चपरासी आया। राज घर पर नहीं था। कात्यायनी के हाथ में तार का एक लिफाफा देते हुए कहा—"कल आया था। 'राजाराव' के बदले केवल 'राज' लिखा है। किसी की समझ में नहीं आया। अब अकाउण्टेंट ने कहा कि राजाराव घर पर होंगे, दे आओ।" लिफाफा खुला था। कात्यायनी ने पढ़ा। पता स्पष्ट नहीं था। उसमें लिखा था—"आपके भाई और भाभी की स्थिति गंभीर है—देखभाल करने वाला कोई नहीं—तुरन्त चले आयें—रागप्पा।" चपरासी चला गया। कात्या-
ने डॉ० राव और रत्ने की बीमारी के बारे में सोच ही रही थी कि राज

लौटा। वह जानता था कि रागप्पा डॉ० राव का रसोइया है।

"नीलगिरि के बदले सब मैसूर चलें"—राज ने सलाह दी। कात्यायनी मान गई। नागलक्ष्मी ने कहा—"तुम लोग हो आओ।"

"लिखा है दोनों की स्थिति गंभीर है। वह भी कल का तार है। न जाने अब तक क्या हुआ होगा? ऐसी परिस्थिति मे ऐसा कहना तुम्हें शोभा नही देता नागु! उनके मरने के पश्चात् चाहने पर भी तुम्हें उनकी सेवा करने का अवसर थोड़े ही मिलेगा?" राज ने समझाया। नागलक्ष्मी का हृदय पिघला। आँसू पोछते हुए कहने लगी—"चलो, मै भी चलती हूँ।"

"रात की गाडी सुबह पहुँचेगी। थोड़ा अधिक खर्च तो होगा, लेकिन कोई बात नही, टैक्सी मँगाइए। रात के नौ बजे तक पहुँच जायेंगे" कात्यायनी ने सलाह दी। राज को भी बात जँच गई।

उटकमड के लिए बाँधे गए ट्रंक-बिस्तर टैक्सी मे रख, सब लोग मैसूर के लिए रवाना हुए। टैक्सी तेज गति से दौड़ रही थी और पिछली सीट पर बैठी नागलक्ष्मी का मन एक विचित्र भाव-भँवर में गोते खा रहा था। उसके पति का दूसरा विवाह एक विदुषी युवती से हुए दस वर्ष हो गए है। उस विवाह के पश्चात् भी डॉ० राव का उससे मिलने के लिए आना, उनका बात करने का प्रयत्न करना, उसका बात न कर मुँह फेर लेना, अंत मे उनका रुक जाना,—यह सब नागलक्ष्मी के मस्तिष्क में घूमने लगा। पहले तो वह सोच रही थी कि उसकी कोई गलती न होते हुए भी उन्होने दूसरा विवाह क्यों कर लिया। डॉ० राव ग्रथ प्रकाशित होते ही उनकी प्रति राज को भेज देते थे। मोटे पुट्ठे की काली जिल्द पर स्वर्णाक्षरो मे पुस्तक और लेखक का नाम लिखे तीन खण्डो को राज ने एक साथ रखा था। घर पर आए मित्रों को दिखाते हुए वह गर्व से कहता था कि 'ये है मेरे बड़े भैया!' यह सुनकर नागलक्ष्मी अपने पति के प्रति अभिमान महसूस करती थी। इन ग्रथों के निर्माण में नयी पत्नी से भैया को मिले सहयोग के बारे में राज समय मिलने पर, भाभी को बताता। नागलक्ष्मी अनसुनी कर देती थी—कोई महत्त्व नही देती थी। 'श्रीराम नाम' लिखने मे ही वह समस्त झंझटो से मुक्ति पाने का फल देखती थी। वह यह भी सोचती: 'कुछ दिनों के बाद वे बुलाने आयेंगे, तो जाकर उन्ही के

रखो। वड़े डॉक्टर ने इंजेक्शन दिया है, कल तक होश आ जायेगा।" नागलक्ष्मी के अपने-आपको सँभाल लेने के बाद नर्स ने पूछा—"आपसे इनका क्या सबंध है बहन ?"

"मेरे पति हैं।"

"महिला वार्ड में जो महिला है, वे पत्नी नही हैं क्या ?"

"हाँ।"

"आप शायद इनके छोटे भाई के साथ रहती हैं। अभी जो आये थे, वे आपके देवर है न ? कहाँ, बेंगलूर मे रहते है ? इन दोनो को यहाँ जिस प्रोफेसर ने दाखिल कराया था, वे शाम को आये थे। डॉक्टर से कह रहे थे कि छोटा भाई बेंगलूर मे रहता है, उसे तार दिया है। न जाने अब तक क्यों नही आये ?"

नर्स नागलक्ष्मी से धीरे-धीरे बोलती जा रही थी। पृथ्वी चुपचाप खड़ा था।

राज और कात्यायनी के पहुँचने के कुछ ही समय पहले रत्ने को होश आया था। लेकिन किसी को पहचानने मे वह असमर्थ थी। डॉक्टर ने पहले ही बता दिया था कि रोगी से बात न करें। रत्ने की हालत चिन्ताजनक है। अब सुधरने के लक्षण दिखाई दे रहे है। बुखार के कारण उसकी आँखो की कांति घट गई है। डॉक्टर ने बताया —"शहर-भर में 'फ्लू' फैला हुआ है। ये दोनों उसके शिकार है। सुनते है उनके पारिवारिक डॉक्टर ने ठीक कर दिया था। इस रोग के लिए काफी आराम की आवश्यकता पड़ती है। डॉक्टर की सलाह न मानी। दोनों पढ़ाई-लिखाई में लग गए। तीन दिन के बाद अचानक पुन बुखार चढ गया। सुबह उनके डॉक्टर के आने तक, दोनों अर्ध-बेहोश हो गए थे। वे प्रोफेसर इन्हें यहाँ न लाते, तो न जाने क्या होता ! अब डर नही है। आपके भाई को भी होश आ जाय तो धीरज बँधेगा।"

एक दुपट्टा और एक चादर कात्यायनी को दी और उसे वहीं सोने को कहकर राज पुरुष वार्ड में आया। एक दुपट्टा और एक चादर नागलक्ष्मी को देकर यही सोने को कहा। रात के भोजन का समय बीत चुका था। रागप्पा ने घर से खाना बना लाने के लिए पूछा था। 'कुछ नहीं चाहिए'—कहकर राज पृथ्वी को लेकर रागप्पा के साथ घर को

ओर चल पड़ा।

दूसरे दिन सुबह डॉ० राव होश में आये। लेकिन पहचानने और बात करने योग्य होने में और तीन दिन लगे। डॉक्टर ने उनसे अधिक न बोलने की चेतावनी दी थी। नागलक्ष्मी और कात्यायनी स्नान और दोपहर के भोजन के लिए घर आती थी। उनका रात का खाना रागप्पा अस्पताल में ले आता था। पृथ्वी अस्पताल और घर के चक्कर काटता। राज दोनों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगा रहा।

होश आने के एक दिन बाद डॉ० राव लोगों को पहचानने लगे, लेकिन बोलने की शक्ति नही थी। लेटे-लेटे ही देखा, नागलक्ष्मी फर्श पर बैठी दिखाई दी। उन्हे तुरन्त विश्वास न हुआ। फिर भी अदाज लगाना कठिन नहीं हुआ कि बेहोशी की अवधि में यह सब हुआ होगा। नागलक्ष्मी भी जान गई थी कि पति उसे देख रहे है। कमरे मे और कोई न था। नर्स भी आवश्यकता पडने पर बुलाने को कहकर, पास के कमरे की दूसरी नर्स से बात करने चली जाती थी। नागलक्ष्मी को नही सूझा कि क्या बोले। सोचा, उठकर उनके पास जाऊँ, लेकिन सिर झुकाए वही बैठी रही। कुछ बोलने के लिए डॉ० राव के ओठ हिले, लेकिन कमजोरी के कारण बोल न सके। लज्जा, क्रोध, करुणा, प्रेम और सूक्ष्म प्रतिकारों से मिश्रित सकीर्ण भाव नागलक्ष्मी के मन में उठ रहे थे। एक भाव उसे एक ओर खीचता तो दूसरा उतनी ही शक्ति से उसे दूसरी ओर खीचता। इसी खीचतान के बीच वह निष्क्रिय-सी बनी रही। आधा घटा निरन्तर सिर झुकाए बैठने के पश्चात् इन भावों को त्याग, उसकी आन्तरिक शक्ति ने सिर ऊपर उठाया। लेकिन अब तक डॉ० राव आँखे मूंदकर सो चुके थे।

नागलक्ष्मी उठकर पति के पास खड़ी हो गयी। अपना हाथ धीरे से उनकी भुजा पर रखा और झुककर पाँच मिनिट तक उनके चेहरे को अपलक निहारती रही। उन्हे नीद आ गई थी। बीच में एक बार लगा कि उनकी श्वास की गति मे सूक्ष्म परिवर्तन से वे जाग जायेंगे। तुरन्त हाथ हटाया और पहले जहाँ बैठी थी वही सिर झुकाये बैठ गयी। उस पूरे दिन और दूसरे दिन वह तिरछी नजर से उनके चेहरे को देखती रही।

रही। उनकी आँखें खुलने पर सिर झुका लेती थी।

दूसरे दिन वह सोई थी। कमरे में मन्द प्रकाश था। ड्यूटी वाली नर्स बरामदे के बाहर एक बड़ी कुर्सी पर सोई थी। ठीक तरह से नींद न आने के कारण बार-बार उठ बैठती थी। एक बार उसने सिर उठाकर देखा, तो डॉ० राव अपलक उसे देख रहे थे। पुनः सिर झुका लिया। उसने सुना कि पति क्षीण स्वर में 'ना · गु' पुकार रहे हैं। वह समझ न सकी कि यह उसके मन का भ्रम है या सत्य। फिर भी मन आनंदित हो उठा। लज्जा व क्रोधवश सिर झुकाए रखा। पाँच मिनट में पुनः क्षीण ध्वनि सुनाई पड़ी—'ना···गु'! उसे घेरे हुए समस्त सकीर्ण भाव अब द्रवित हो गये। अनजाने ही उठकर पलंग के पास खड़ी हो गई। डॉ० राव ने धीरे से अपना हाथ हिलाया। दाहिने हाथ से नागलक्ष्मी ने उनका हाथ पकड़ा। डॉ० राव के नेत्र सजल हो उठे। नागलक्ष्मी रुलाई रोक न सकी। सिसक-सिसककर रो पड़ी। सांत्वना देने की शक्ति पति की जबान में नहीं थी। अपने दुःख को दबाकर, दो मिनट अपने सीने से उनके मुख को ढँक दिया। फिर उनका हाथ थामे पलंग पर बैठ गयी। दोनों मौन! पति में तो बोलने की शक्ति नहीं थी। पत्नी अपने जीवन में दस वर्ष के पश्चात् शब्दातीत, भाव में उलझकर बोलने की शक्ति खो चुकी थी। सुबह तीन बजे उन्हें दवा देने के लिए नर्स के आने तक वह ऐसे ही बैठी रही। लेकिन डॉ० राव सो चुके थे।

चार दिन में डॉ० राव अच्छी तरह बात कर सकने की स्थिति में आ गये थे, लेकिन डॉक्टर ने मना कर दिया था। नागलक्ष्मी को इसकी सूचना दे दी गई थी। अब नागलक्ष्मी ही उनकी शुश्रूषा करती थी। नर्स द्वारा लाई गई दवा, वह अपने हाथों से पिलाती। पसीने के कपड़े बदलती और फिर धुले कपड़े पहनाती। बरतन का पेशाब स्वयं फेंकती और बरतन धोकर रखती। मौसंबी, सन्तरे के रस में ग्लूकोज मिलाकर पिलाती। जब और कोई न होता, तो उनका हाथ पकड़ पलंग के एक किनारे बैठ जाती। डॉ० राव स्वयं बोलना चाहते तो उनके मुँह पर हाथ रखकर कहती—"डॉक्टर ने मना किया है। फिर कुछ न हो जाए!" जब उनकी जाँच के लिए [illegible] आते तो वे रत्ने की स्थिति बताकर कहते—"वे आपसे पहले ठीक [illegible]। आप किंचित् भी चिन्ता न करें।" इस पर डॉ० राव प्रसन्न

हो उठते।

एक दिन नागलक्ष्मी का हाथ पकड़कर भावपूर्ण आवाज मे डॉ० राव ने कहा—"इस बार तुम आ गई न।"

"न आती तो और क्या करती ? आपसे मेरा झगडा थोड़े ही है ? हमारी किस्मत कि ऐसे अनर्थ हुए। फिर भी हमारा सबध थोडे ही झूठा हो सकता है !" कहते-कहते उसकी आवाज भारी हो उठी।

पाँच मिनट चुप रहने के बाद पुनः पूछा—"राज की पत्नी भी अच्छी लडकी है। वे पृथ्वी और तुम्हारी अच्छी तरह से देखभाल करते है न ?"

"हूँ।"

उस दिन इतनी ही बात हुई। दो दिन के बाद पृथ्वी कमरे मे आया तो उसके माता-पिता बात करने मे लगे हुए थे। भीतर आया और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। "यहाँ आओ बेटे," डॉ० राव ने बुलाया। पास आया तो उसका हाथ पकड़कर पूछा—"अब किस कक्षा मे हो ?"

"जूनियर इन्टर कर चुका हूँ।"

"अब बडा हो गया है। मुझे अच्छी तरह से पहचानता है न ?"

"हूँ।"

पाँच मिनट रहकर वह वहाँ से चला गया।

और एक दिन नागलक्ष्मी का हाथ पकड़कर उन्होंने कहा—"नागु, मुझसे विवाह करके तुम्हे जीवन-भर कष्ट झेलना पडा।"

"बिल्कुल नही।"

"मैं समझ सकता हूँ।"

"तो फिर आपने मुझे क्यों त्याग दिया ?" डॉ० राव के पास कोई उत्तर न था। नागलक्ष्मी बोलती गई—"मुझे वहाँ किसी तरह का कष्ट व कमी नही है। राज मुझे पहले से अधिक स्नेह, विश्वास, सहानुभूति से देखता है। कात्यायनी भी छोटी बहन की तरह व्यवहार करती है। फिर भी आपके साथ रहने मे जो सुख है, वह कहाँ ! वह आनन्द कहाँ जो आपकी सेवा करने मे मिलता है !"

डॉ० राव चुपचाप लेटे थे। नागलक्ष्मी की बात जारी रही—"आपने उससे विवाह कर लिया। वह भी एक योग है। मैं नही चाहती कि वह आपके साथ न रहे। लेकिन मैं आपकी तन्दुरस्ती की ओर [illegible]

ध्यान देना चाहती हूँ, वह और किसे आता है ? आपकी आँखें पहले की अपेक्षा अधिक मोटी हो गई है। शरीर में बूँद-भर रक्त नहीं मिलेगा, मुट्ठी-भर मास नही मिलेगा। छाती की हड्डियाँ निकल आई हैं। रागप्पा भले ही श्रद्धा-भाव से खाना पकाए, उसे खाना पकाना नही आता। पन्द्रह दिन से हम भी वह खाना खा रहे है न ! पेट-भर भोजन करेंगे तो आपकी तन्दुरुस्ती सुधर जायेगी। मैं होती तो एक बार तेल मलकर स्नान कराती।"

डॉ० राव को वे दिन याद आने लगे जब वे नागलक्ष्मी के साथ रहते थे और वह उनके स्वास्थ्य के प्रति सदा सजग रहती थी। जबर्दस्ती पकड़-कर हर सप्ताह तेल मलती फिर स्नान कराती। रात के भोजन के पश्चात् वे आरामकुर्सी पर बैठते तो फर्श पर बैठकर उनके दोनो पैरों के तलवो मे अडी का तेल मलती थी। हर रोज नई-नई साग-सब्जी, पापड़ बनाती, आग्रह करके पेट-भर खिलाती। तब उनकी सेहत इतनी खराब नही थी।

"मै अब भी एक बात कहना चाहती हूँ। सुनेंगे ?"

"कहो।"

"अब भी मैं आपके साथ रहना चाहती हूँ। उसे भी रखिए। आप दोनों के सम्बन्ध बनाये रखने मे मुझे कोई एतराज नही होगा। राज से सुना है कि वह भी आपकी आवश्यक सहायता करती है। रागप्पा चाहे तो बाहर का काम करता रहेगा। मैं आप दोनों का खाना तैयार करूँगी। सप्ताह मे एक बार आपको नहलाऊँगी। आपको स्वीकार है ?" कहते-कहते आँसू छलक आये। उसे लग रहा था कि वह अपने व्यक्तित्व की एक नई स्थिति का स्वय प्रस्ताव रख रही है। अपने मे अब तक बचे अमूल्य अभिमान की बलि देकर यह प्रस्ताव उसकी अन्तरात्मा को विचलित कर रहा था।

नागलक्ष्मी की बातो से डॉ० राव का मन पसीज उठा। पत्नी को इतने दिनो तक भुलाने के लिए अपने-आपको कोसने लगे। बचपन के वे दिन याद आने लगे जब वे अनाथ हो, मामा के घर रहते थे। नागलक्ष्मी के साथ, जो केवल तेरह वर्ष की थी, मैसूर आकर कितने विश्वास से घर बसाया था। हँस-हँसकर घर का कामकाज करती थी। घर-खर्च ही नही, बल्कि मेरे अल्प वेतन में से ग्रंथ खरीदने के लिए पैसे भी बचा लेती थी।

पति को कितने जतन से, बच्चे की तरह देखा करती थी। गत दस वर्षों में कभी-कभी लगता था कि जीवन में कोई अमूल्य वस्तु गँवा बैठा हूँ। अब वही वस्तु खोजती हुई स्वय उनके पास आई है। भावविभोर होकर उन्होने कहा—"अवश्य, ऐसा ही करो। मेरी भूले भुला दो। तुम और पृथ्वी दोनों यहीं रहो।"

पति के हाथों को विभोर भाव से दबाकर वह बोली—"पृथ्वी को वहीं रहने दो। उसे ले आयेगे तो राज और कात्यायनी का दिल टूट जायेगा। इस बारे मे बाद में बताऊँगी।"

दूसरे दिन रत्ले को होश आया। कात्यायनी सामने एक कुर्सी पर बैठी थी। रत्ले तुरन्त पहचान न सकी। उसने एक अजीब भाव से कात्यायनी को देखा। कात्यायनी ने पूछा—"क्या आप मुझे पहचानती है?" उसने धीरे से कहा—"याद तो है कि कही देखा है!"

"मैं कात्यायनी हूँ!"

"हूँ!" पहचानकर रत्ले के चेहरे पर मुस्कराहट दौडी। "अब समझ गयी। पाँच वर्ष पहले आपको बेंगलूर जाते हुए देखा था। कब आईं?"

उतने मे उसे थकावट महसूस हुई और आँख मूँदे सो गयी। एक घण्टे के बाद आँख खुली तो पूछा—"वे कहाँ है? कैसे है?"

"बेंगलूर से हम सब आये है। आपके देवर और दीदी भी। दीदी उनके पास है।"

"अच्छा!" रत्ले ने पुन. आँखें मूँद ली।

तीसरे दिन वह अच्छी तरह बोलने योग्य हो गयी। सुबह नौ बजे कात्यायनी को स्नान के लिए घर भेजने के निमित्त राज वहाँ आया। रत्ले बोली—"आप लोग आ गये। ऐसे समय मे आप लोगो के अलावा हमे और किसका सहारा है? आपको पता कैसे लगा?"

"रागप्पा ने तार भेजा था।"

उस दिन राज कात्यायनी के बारह बजे लौटने तक रत्ले के पास ही बैठा बाते करता रहा। रत्ले बोली—"इस बार लगता है, आप दुबले हो गये है! कात्यायनी का दुबला होना समझ मे आता है। शायद मानसिक चिता ने आपके स्वास्थ्य पर काफी प्रभाव डाला है!

"वैसी कोई बात नहीं है"—वह ऐसे प्रश्नों से बचना चाहता था।

दोपहर को कात्यायनी आयी तो राज घर गया। उसके जाने के पश्चात् रत्ने ने दो घण्टे की नीद ली। कात्यायनी ने आधा गिलास ग्लूकोज युक्त मौसंबी का रस दिया। पीकर वह बोली, "तकिये को जरा-सा ऊँचाकर देगी? कुछ देर सो लूं।" कात्यायनी ने रत्ने का सिर अपने हाथ से थोड़ा उठाया और एक छोटा तकिया उसकी भुजा के नीचे रख दिया। वह करवट बदलकर आराम महसूस करने लगी। रत्ने बोली, "आप बहुत सेवा कर रही है। समझ मे नही आता कि इस सौजन्य के लिए क्या कहूँ?"

"मै किसी पराये की सेवा तो कर नही रही! सौजन्य की बात ही कहाँ है? जेठ की पत्नी बड़ी बहन होती है—उनकी सेवा करना तो मेरा कर्त्तव्य है।"

यह सुन रत्ने हर्षित हो उठी। इस बात से तृप्ति भी हुई कि इस देश में भी उसे सम्बन्धी की तरह आत्मीयता से देखने वाले हैं। इस तृप्ति का अनुभव कर दो मिनट पश्चात् रत्ने बोली—"जब आपके साथ दुर्घटना घटी तो राज छुट्टी मजूर कराने के लिए इनके पास आये थे। उस समय मुझे वहाँ जाकर आपकी सेवा करनी चाहिए थी। लेकिन उस समय चौथे खण्ड के टाइपिंग कार्य मे बहुत व्यस्त थी। प्रकाशको ने खण्ड के प्रकाशन की तारीख घोषित कर दी थी। इसके अलावा सोचा कि मेरा वहाँ जाना उचित भी नही होगा।" कात्यायनी चुपचाप बैठी थी। रत्ने कहती गई—"राज ने सारी बातें बता दी हैं। ऐसा नही होना चाहिए था। वे कह रहे थे, प्रारभ से ही हर तरह की सतर्कता बरती थी। ऐसी कई एक घटनाएँ घटती है, जिन पर हमारा बस नही चलता। आप इसे अधिक मन मे न ले। आप इतनी दुबली हो गई हैं कि एकाएक पहचानना कठिन हो गया है।"

पृथ्वी कमरे मे प्रविष्ट हुआ। उसके हाथ मे मौसंबी से भरा एक थैला और दो इन्जेक्शन ट्यूब थे। कात्यायनी को देते हुए उसने कहा—"चाची, डॉक्टर के बताये इन्जेक्शन मिल गये हैं। गोलियाँ कही नही मिली। एक दूकानदार ने बताया कि कल तक आ जायेंगी। डॉक्टर के आने पर बता देना।"

इतना कह वह जा ही रहा था कि रत्ने ने उसे "बॉय, कम हियर",

बुलाया। वह वही खड़ा हो गया। "यही है आप सब लोगों का बेटा पृथ्वी ?" वैसे पृथ्वी यहाँ कई बार आया, लेकिन अपनी दूसरी माँ को जाग्रतावस्था मे नही देखा था। निद्रावस्था मे कई बार देखा था। अपना काम करके वह वहाँ से निकल जाता था। अब वही बुला रही है। पृथ्वी को संकोच हुआ। खड़ा दीवार की ओर देखता रहा। "कम नियर मी", रत्ने ने कहा। वह नही हिला। कात्यायनी कुर्सी से उठकर उसके पास जाकर कन्नड मे बोली—"पास जा, सकोच क्यों कर रहा है ?" कुछ हद तक रत्ने यह समझ गयी लेकिन वह कन्नड मे बात नही कर पाती थी। पृथ्वी उसके पलग के पास जाकर दीवारों को निहारता खड़ा हो गया। रत्ने ने उसे गौर से देखा। मुख-मुद्रा माँ की, और शारीरिक गठन, आँखें व नाक पिता की-सी। लड़का स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट था। कीमती शर्ट, ऊनी पैंट पहने था। इतने कीमती कपड़े शायद राज भी नही पहनता था। पैरों मे लाल रंग के जूते चमक रहे थे। बायें हाथ मे घड़ी थी। रत्ने ने अदाज लगा लिया कि लड़के का पालन-पोषण उचित ढग से हो रहा है। अंग्रेजी मे उसने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"पृथ्वी।"

"पृथ्वी ! बहुत सुन्दर नाम है। यह शब्द भारत के इतिहास मे जब कभी आता है, मुझे भाता है। पूर्ण नाम क्या है—पृथ्वीराज, पृथ्वीकुमार या पृथ्वीपति ?"

"पृथ्वीराज !"

"अच्छा है ! बता सकते हो यह नाम किसने रखा ?"

"मेरे चाचा ने !"

कात्यायनी बीच मे ही बोल उठी—"कहते हैं इसके चाचा ने इसलिए यह नाम चुना था कि रगमच के एक प्रसिद्ध अभिनेता का यह नाम है। और पिता ने इसलिए स्वीकार किया कि यह भारत के इतिहास में अमर एक वीर का नाम है।"

"दोनों का प्रिय नाम है"—कहकर [illegible] पर बैठा लिया। पृथ्वी को बैठने मे संकोच हो रहा था। "किसमें [illegible] हो ?"

"अब इंटरमीडिएट का [illegible] है।"

आगे क्या बोले, यह न समझकर रत्ने भी चुप हो गई। लेकिन वह अपने बायें हाथ को पृथ्वी के दाहिने हाथ की हथेली पर रखकर लेटी थी। मन न जाने किस भाव-लहरी में लीन था। नदी पहाड़ी उसे याद आई। पास ही कुर्सी पर बैठी कात्यायनी या हथेली पर उसका हाथ लिए पलंग पर बैठा पृथ्वी उसे समझ न सके। वह चुपचाप ऐसे सो गयी मानो किसी भाव-लोक में विचरण कर रही हो। पृथ्वी कुछ देर वैसे ही बैठा रहा। सकोचवश वहाँ के वातावरण में उसका दम घुटने-सा लगा। धीरे से उठकर अपना हाथ हटाया। अनभिज्ञ-सी वह लेटी रही। धीरे-धीरे पग बढ़ाये और कमरे से निकल गया। आधे घटे तक रत्ने यों ही लेटी रही।

दो दिन बाद रत्ने ने कात्यायनी से पूछा—"जब आप बीमार पड़ी थीं न, तब राज आये थे। अपने भैया से कह रहे थे कि पुन. गर्भवती होने से आपके जीवन को खतरा है। क्या यह सच है?"

"हाँ!"

कुछ क्षण मौन। रत्ने शायद समझ गई थी कि कात्यायनी दुबली क्यों हो गई है। उसे अपनी स्थिति भी याद हो आई। वह माँ बन सकती थी लेकिन एक महान् ध्येय-साधना के निमित्त त्याग करना पड़ा। दूसरी ओर कात्यायनी चाहकर भी दैहिक असामर्थ्य के कारण माँ नही बन सकती। वह यह भी समझ गई कि अब राज पहले-जैसा हृष्ट-पुष्ट क्यों नही है। उसने कहा—"माँ बनने की अदम्य इच्छा हर स्त्री की सहज-मूल प्रवृत्ति है। जब उसमें सफलता नहीं मिलती तो विचारों को किसी और कार्य में प्रवृत्त कर तृप्ति प्राप्त की जा सकती है। आप दोनों ग्रंथ-रचना में मन लगाइए।"

"ग्रथ-रचना सब नही कर सकते। आप लोगों में जो अध्ययन की प्रवृत्ति है, वह हम दोनों में से किसी में नही है। हमारा मनोधर्म ही भिन्न है। परिणामस्वरूप जीवन-क्रम भी भिन्न है और वह अनिवार्य भी है।"

इतने दिन बीतने पर भी किसी ने नागलक्ष्मी के बारे में बात नहीं की। रत्ने स्वय इस बारे में बोलना नही चाहती थी। यह सोचकर कि उसके मन को ठेस पहुँचेगी—कात्यायनी कुछ न बोली। जैसे-जैसे रत्ने में ने की शक्ति आती गई, वैसे-वैसे वह नये ग्रथ की योजना, ग्रथ का ध्येय, लेखन में प्रगति आदि विषयों के बारे में सुनाती गई। केवल

एक बार अपने माता-पिता, भाई के बारे में बात की थी। कात्यायनी के दूसरे विवाहित जीवन की पूर्ण अवस्था के बारे में भूलकर भी उसने कभी प्रश्न नहीं किया। कात्यायनी का एक बेटा है, रत्ने जानती है, लेकिन कभी बात नहीं उठाई। परस्पर अंतःकरण को चुभने वाली बातों से वे दोनों बचती रहीं।

डॉ० राव और रत्ने को अस्पताल से छुट्टी मिल चुकी थी। डॉ० राव अब भी अशक्त थे। रत्ने काफी तन्दुरुस्त हो चुकी थी। उनके अस्पताल में रहते हुए चतुर्थ खण्ड की प्रतियाँ आ गई थी। वे एक प्रति लेकर आराम-कुर्सी पर पीठ टिकाये बैठ गये और एक-एक पृष्ठ पलटने लगे। ग्रंथ देखने में न उनका ध्यान था और न कोई निश्चित उद्देश्य ही। कुछ किये बिना चुपचाप बैठने की आदत नहीं थी, इसलिए वे पृष्ठ पलट रहे थे। अपने ग्रंथ का तृतीय खण्ड स्वर्गीय मैसूर महाराज की स्मृति में अर्पित किया था। यह चतुर्थ खण्ड नंजनगूडु के श्रीनिवास श्रोत्रिय को अर्पित था। पंचम खण्ड की रूपरेखा उनके मन में स्फुट रूप में थी। लेकिन उसके लिए अभी काफी सामग्री एकत्र करना आवश्यक था।

बेंगलूर से आये सभी लोग यहीं थे। रसोइया रागप्पा अब बाहर के कार्य करता। नागलक्ष्मी की बनायी रसोई सबको भाती थी। कई वर्ष के बाद डॉ० राव को पुनः सुस्वाद भोजन मिलने लगा था। सब एक साथ भोजन करने बैठा करते थे। रत्ने भी उनके साथ बैठती। नागलक्ष्मी सबको परोसती। अब तक नागलक्ष्मी और रत्ने में परस्पर बातें नहीं हुई। नागलक्ष्मी रसोईघर से बाहर ही नहीं निकलती और रत्ने कभी रसोईघर में नहीं जाती। वह सदा सामने वाले विशाल अध्ययन-कक्ष में रहती। राज और कात्यायनी वहीं जाकर कुछ देर बातें करते। बाकी समय अपने टाइप किये नोट, टिप्पणी देखने में बिता देती। कभी-कभी डॉ० राव भी कमरे में आकर बैठ जाते, और दोनों पंचम खण्ड से संबंधित विषयों की चर्चा करने लगते। अस्पताल से घर लौटने के पश्चात् डॉ० राव और नागलक्ष्मी एकांत में बात नहीं करते थे। वे रसोईघर में आते तो बात करने को नागलक्ष्मी तैयार थी। लेकिन जैसे-जैसे उनकी सेहत सुधरती गई वैसे उनका ध्यान अपने खण्ड की ओर प्रवृत्त होने लगा। इससे

सभी दर्शनीय स्थल—वृंदावन, नंदी पहाड़ी, ललित महल, श्रीरंगपट्टण आदि देखने को उत्सुक था। इसीलिए उसके काका ने उसकी जेब भर दी थी।

राज ने सोचा, शायद इस बार नागलक्ष्मी और रत्ने का परस्पर परिचय हो जाने के कारण डॉ० राव नागलक्ष्मी को यही छोड़ जाने के लिए कहेंगे, तो भाभी से दूर रहना मुश्किल लगेगा। नागलक्ष्मी की उपस्थिति से उसे एक तरह का मनोबल मिलता था। जब से उसने होश सँभाला है, बीच के विदेश निवास के दो वर्ष छोड़कर, भाभी से कभी अलग नहीं रहा। राज को इस बात की शका थी कि अगर भैया ने भाभी से मैसूर में ही रहने का प्रस्ताव किया तो वह उसे स्वीकार कर लेगी। फिर भी वह चाहता था कि नागलक्ष्मी अपने पति के साथ रहे। पृथ्वी को छोडकर रहना राज के लिए असम्भव था। एक दिन उसने अपने ये विचार कात्यायनी को बताये तो वह बोली—"मेरी दृष्टि में उनका इस तरह कहना, और कहने पर दीदी का स्वीकार कर लेना कठिन है।"

अस्पताल में रहते समय नागलक्ष्मी ने जो कुछ कहा था, डॉक्टर को याद था। उन्हें घर लौटे एक महीना हो गया था। राज ने कहा कि तीन-चार दिन में वे सब बेंगलूर लौटना चाहते है। एक शाम डॉ० राव रत्ने के साथ टहलने निकले। इस तरह बाहर निकले करीब दो महीने हो गये थे। राज और कात्यायनी के बारे मे बातचीत करते हुए दोनो कालेज के पीछे के मैदान मे आ गये। छुट्टी होने के कारण वहाँ कोई न था। वे एक पेड़ के नीचे बैठ गये। डॉ० राव ने कहा—"एक मुख्य विषय पर बात करनी है।"

"वह क्या ?"—भय-मिश्रित उत्सुकता से रत्ने ने पूछा।

"इस बार नागलक्ष्मी को यही रख लें।"

रत्ने कुछ न बोली। गंभीर हो, सिर झुकाये बैठी रही। उसके चेहरे और मन के भावों को परखने की कोशिश करते हुए डॉ० राव ने कहा—"इस बार बीमारी में उसने मेरी काफी सेवा की। वह कहीं भी रहे, तुम्हारे प्रति किसी तरह दुराव नहीं रखेगी। रागप्पा के बदले वही हम दोनों की [illegible]ोई बनाया करेगी। अपनी देखभाल की जिम्मेदारी भी उसी पर डाल-

"सह-जीवन के बिना क्या सिर्फ साहित्य-निर्माण में तुम लगी रह सकती हो ?"

"रह सकती हूँ" उसने तुरन्त कह तो दिया, लेकिन आवाज कांप रही थी। अपने कंपित हाथों से उसने उनका दाहिना हाथ पकड़ लिया। उसकी आँखें डबडबा आईं।

"तुम्हें यह हठ क्यों है ?"

"हठ नही। शुरू से पले मनोभाव का प्रभाव है। द्विपत्नीत्व को मैं स्वीकार नहीं करती। फिर भी हम एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए मिले थे। उस उद्देश्य के पूर्ण होने में ही मेरी तृप्ति है। वह मेरे जीवन का सौभाग्य है। इतने दिनों के अपने सहजीवन में अध्ययन-जीवन के अतिरिक्त भावना-जीवन में भी हम एक रहे हैं। इतना होते हुए भी मैं उनके जीवन में बाधक नहीं बनना चाहती। आप दो घर बसाइए। वहाँ भी रहिए और यहाँ भी। मैं मना नहीं करूँगी।"

रत्ने के स्वभाव से डॉ० राव परिचित थे। उसकी इच्छा-शक्ति प्रबल थी। वे जानते थे कि उसके निर्णय को बदलना असंभव है। "चलो, उठो"—कहकर वे उठ खड़े हुए। घर लौटने तक अँधेरा हो गया। मैदान में पर्याप्त प्रकाश नहीं था। रत्ने उनका हाथ पकड़े चल रही थी। रास्ते में उसने पूछा—"क्या निर्णय किया है आपने ?"

"सोच रहा हूँ !"

रात-भर डॉ० राव इसी बारे में सोचते रहे। दो परिवारों की व्यवस्था उन्हें पसन्द न थी। नागलक्ष्मी के लिए अलग घर बसाने पर भी अपने लेखन-कार्य के लिए उन्हें रात के समय रत्ने के साथ ही रहना पड़ेगा। उनका सारा दिन पुस्तकालय में बीतता था। केवल दो बार नागलक्ष्मी के घर जाना और वहाँ उसका एकाकी जीवन बिताना उन्हें उचित न लगा। यह कैसी परिस्थिति है, वे अपने-आप सोचते रहे। रत्ने के मनोभाव से वे असंतुष्ट थे, लेकिन उसके संस्कार और विद्या के प्रभाव से पूर्णतः परिचित थे। 'किस द्वन्द्व में मेरा जीवन उलझ गया है ?' इसी असंतोष की एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ी।

सब के साथ राज के बेंगलूर रवाना होने में केवल तीन दिन शेष थे। नागलक्ष्मी बड़ी आशा किए बैठी थी कि आज या कल पति उसके

बारे में निर्णय करेंगे। वह यह सोच रही थी कि इतने दिन राज, कात्यायनी और पृथ्वी के साथ बिताये, अब उनके बिना कैसे रह सकती है ? ये दोनों तो पढ़ाई मे व्यस्त रहेंगे। यहाँ भी 'श्रीरामनाम' लिखकर और उनकी सेवा में समय बिताया करूँगी—उसने अपने मन को समझाया। रवाना होने का दिन आया। लेकिन इस बारे मे कोई बात ही नहीं हुई। वह स्वयं पति के पास जाकर पूछना चाहती थी, लेकिन उसके अभिमान ने रोक लिया। आखिर उसने राज को अन्दर बुलाकर पूछा—"तुम्हारे भैया ने कुछ कहा ?"

"किस बारे में ?"

"कुछ नहीं", कहकर नागलक्ष्मी चुप रह गई। राज के पुन. पूछने पर भी वह न बोली। रवाना होने से पहली रात को वह सो न सकी। बार-बार आँसू निकल पड़ते थे। मन को समझाने की कोशिश करती रही कि गत ग्यारह वर्ष से इसी तरह जीवित रही तो अब क्यों रोऊँ ? परन्तु भरसक प्रयत्न करने पर भी दुःख असह्य हो उठा। रात-भर न सोने के कारण सुबह जल्दी उठी। नाश्ता तैयार किया। कात्यायनी से सबको देने के लिए कहा। सुबह की गाड़ी से उन्हें जाना है। टैक्सी घर के सामने खड़ी है। राज ने सामान रखवाया। राज, कात्यायनी और पृथ्वी टैक्सी के पास गये। पृथ्वी लौटकर माँ को पुकारने लगा। नागलक्ष्मी अदर से भारी कदमों बाहर आई। डॉ० राव बँगले के बगीचे के फाटक के पास खड़े थे। उसने पति के चरण स्पर्श किये और बिना कुछ कहे ही टैक्सी में बैठ गई। डॉ० राव और रत्ने रेलवे स्टेशन तक छोड़ने नहीं आये। टैक्सी चलने लगी तो डॉ० राव मुँह फेरकर आँसू पोंछ रहे थे। घर आँखों से ओझल होने तक नागलक्ष्मी सिसकती रही। पास बैठी कात्यायनी उसका हाथ पकड़कर कहने लगी —"दीदी, धीरज धरिए। हम जिस कार्य के लिए यहाँ आये थे वह सफल हुआ।"

"उन्होंने जो बात कही थी, उसे वे भूल ही गये" कात्यायनी की भुजा पर अपना मुख टेककर वह बोली।

"कौन-सी बात ?" पीछे की सीट से राज ने प्रश्न किया।

"मैंने कल पूछा नहीं था ? रेल मे सब कहूँगी"—कहकर अपने मन को धीरज दिलाने लगी।

२०

उनचास की उम्र मे अपनी महत्वाकाक्षा-रूपी ग्रंथ के चार खण्ड पूर्ण देख-कर डॉ० राव को तृप्ति मिली। एक और हो जाय तो एक तरह से उनकी योजना पूरी हो जाती है। इस विषय मे संगृहीत सामग्री से तीन-चार और छोटे ग्रंथ तैयार किये जा सकते थे। चौथे खण्ड के लिए सगृहीत सामग्री दो जिल्दो के लिए पर्याप्त थी। प्रकाशकों के आग्रहानुसार उन्होने उसके कई भागो को छोडकर चौथे खण्ड को बड़ा बना दिया था। उन्होंने शेष सामग्री एक अलग पुस्तक के रूप मे प्रकाशित करने के विचार से प्रकाशको के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। नौ सौ पृष्ठो के इस खण्ड को उन्होने श्रोत्रियजी को समर्पित किया था। यद्यपि श्रीनिवास श्रोत्रिय से मिले उन्हे लगभग दस वर्ष बीत गये थे, किन्तु उनके उपकार एव प्राप्त ज्ञान-निधि को डॉ० राव भूले नही थे। स्मरण मे ग्रथ को समर्पित करने से बढकर और कोई उचित उपाय नही सूझा। अब खण्ड हाथ मे आया तो अन्य खण्डो के साथ श्रोत्रियजी के पास स्वय जाकर कृतज्ञता प्रदर्शित करने का निर्णय किया। इसके अतिरिक्त उनके तीसरे खण्ड की समालोचना करते हुए एक जर्मन विद्वान् ने लेखक द्वारा धर्मशास्त्र के बारे मे लिखी गयी कई बातों की ऐतिहासिक सत्यता पर प्रश्न उठाये थे।

डॉ० राव को इस बात की थोड़ी आशका थी कि श्रोत्रियजी की बहू से मेरे भाई का विवाह हो जाने के कारण शायद उनका मन मेरे प्रति म्लान हो गया हो! यद्यपि उन्हें लगा कि जहाँ तक श्रोत्रियजी का स्वभाव, मनोधर्म है, वे ऐसे नही है। फिर भी, यह विचार आता था कि ऐसी बातो से किसी व्यक्ति की प्रतिक्रिया क्या होगी, यह कैसे कहा जा सकता है! डॉ० राव को राज और कात्यायनी के विवाह की खबर तक नही थी। विवाह के समय वे रत्ने के साथ कलकत्ता गये हुए थे। लौटने पर ही उन्हे पता लगा था जब नव दम्पति ने उनके पैर छुए। उन्होने अपने-आपसे प्रश्न किया था कि यदि पहले से जानता तो क्या मैं उसमे बाधा डालता? हाँ, उससे वृद्ध श्रोत्रियजी के परिवार पर होने-

वाले परिणाम के बारे में राज को अवश्य बताता। उसके बाद यह सोच-कर कि लोगों की अपनी-अपनी इच्छा—वे चुप हो गये थे।

रत्ने ने सलाह दी कि नजनगूडु जाने के पहले उन्हें एक पत्र लिखा जाय और उनका उत्तर पाने के बाद ही योजना बनायी जाय। श्रोत्रियजी को देखने की उसकी भी इच्छा थी। रत्ने के साथ तीन-चार दिन के लिए नजनगूडु आने की इच्छा व्यक्त करते हुए पत्र लिखा गया और तीसरे ही दिन उत्तर आ गया। अपने स्वभाव-सहज सौजन्य से उनके आगमन का स्वागत करते हुए श्रोत्रियजी ने लिखा था—"मेरा भी बुढ़ापा आ गया है। ऐसे समय आप-जैसे विद्वान् के साथ चार घड़ी बिताने से बढ़कर मेरा और क्या सौभाग्य हो सकता है! अवश्य आने की कृपा करें।"

उस पत्र को देखकर ही डॉ० राव का हृदय भाव-विभोर हो उठा। भारत की संस्कृति का वर्णन करने वाले उनके मन में श्रोत्रियजी का चित्र उस संस्कृति का प्रतीक-सा लगा। एक दिन शाम को चारों खण्ड और होलडाल लिये रत्ने के साथ वे नजनगूडु की ओर निकल पड़े।

नजनगूडु रेलवे स्टेशन पर उतरकर एक कुली को होलडाल और पुस्तकों का थैला थमाया। श्रोत्रियजी के घर पहुँचे तो द्वार बंद था। दो बार खटखटाया तो एक पन्द्रह साल के लड़के ने आकर द्वार खोला। यह समझने में डॉ० राव को समय न लगा कि यह श्रोत्रियजी का पोता है—राज की पत्नी की प्रथम सन्तान। उन्हें दीवानखाने में बैठाकर लड़का भीतर गया। दो मिनट बाद श्रोत्रियजी आये। सौजन्यपूर्वक दोनों को नमस्कार किया। अब उनके सिर के बाल झड़ गये थे। चेहरे की काली दाढ़ी सफेद हो गयी थी। पहले की तरह ही वे लाल किनार की धोती पहने थे और शरीर पर एक शाल ओढ़े हुए थे। दाँत अभी तक बने थे। लेकिन ललाट पर पहले की अपेक्षा अधिक झुर्रियाँ पड़ गयी थीं और चेहरे पर चिंता की रेखाएँ दीख रही थीं। चलते समय वे तनिक झुकते थे। डॉ० राव और रत्ने दोनों ने उठकर उन्हें नमस्कार किया। तत्पश्चात् श्रोत्रियजी ने 'चीनी' को आवाज दी। उससे बिस्तर और थैला ऊपर रखने के लिए कहा। अतिथियों के हाथ-पैर धो लेने के पश्चात् स्वयं श्रोत्रियजी ने उन्हें पीने के लिए दूध दिया।

मजले पर तीनों बैठे। डॉ० राव ने थैले से चारों खण्ड श्रोत्रियजी के सामने रखकर कहा—"यह है आपके आशीर्वाद का फल। एक खण्ड और शेष है।" श्रोत्रियजी खण्डों को देखने लगे। उसका नाम, ग्रथकार का नाम, प्रकाशन आदि पढने-समझने लायक अंग्रेजी उन्हें आती थी। हर खण्ड के प्रथम पृष्ठ पर डॉ० राव ने कन्नड में लिखा था—

"पूज्य श्रीनिवासजी श्रोत्रिय को
श्रद्धापूर्वक,
—सदाशिवराव"

चौथे खण्ड का दूसरा पन्ना उलटा तो श्रोत्रियजी को आश्चर्य हुआ। अंग्रेजी में लिखे गये तीन-चार शब्द समझ मे नही आये, फिर भी बड़े अक्षरो मे छपे 'यह खण्ड नजनगूडु के श्रीनिवासजी श्रोत्रिय को श्रद्धापूर्वक अर्पित है' वाक्य को समझ गये। उस पन्ने की ओर अँगुली से इशारा करते हुए कहा—"आपको यह नही करना चाहिए था।"

"ऐसी बात नहीं। आपने इस ग्रथ-रचना के लिए आर्थिक सहायता दी थी। आपके ज्ञान से मैंने लाभ उठाया है। इसके अतिरिक्त आपके आशीर्वाद से मेरी सकल्प-शक्ति को प्रेरणा मिली, कार्य को आगे बढ़ाया है। इस खण्ड को आपके अलावा और किसको समर्पित करता !"

"इसे किसी को भी क्यों समर्पित करना चाहिए ?" उन्होंने शात स्वर मे कहा—"ऐसे ग्रथों को लिखने के लिए भगवान् से आपको प्रेरणा मिली। उपयुक्त साधन उपलब्ध करा देने के लिए उसी भगवान् ने कुछ लोगों को प्रेरित किया। यह मेरा सौभाग्य है कि उन लोगों मे मैं भी एक निकला। मैंने सुना है कि बड़े महाराज ने, अपने जीवन-काल मे, इसमें मदद दी थी। आपकी इस ज्ञान-पूजा में एक-एक फूल देना हमारा भी कर्तव्य है न ? अपने कर्तव्य की दृष्टि मे जो कार्य करते है, उसके लिए धन्यवाद, समर्पण की क्या आवश्यकता ?"

डॉ० राव कुछ नही बोले। चुपचाप बैठे रहे। श्रोत्रियजी दस मिनट तक खण्ड के पन्ने उलटते रहे। चित्रों को देखते रहे। रत्ने की ओर मुड़कर पूछा—"हमारी बातचीत आपकी समझ में आती है न ?"

डॉ० राव समझ गये कि रत्ने के बारे में श्रोत्रियजी जानते हैं। उन्होंने कहा—"पूर्णतः नहीं। बातों के ढग से भाव ग्रहण कर लेती है। घर

के नौकरों से आवश्यक आठ-दस वाक्य बोल लेती है।" पाँच मिनट तक कुशल-समाचार होने के पश्चात् श्रोत्रियजी "थोड़ा आराम कीजिए, अभी आता हूँ" कहकर नीचे उतरे। वह उनकी पूजा का समय समझकर डॉ० राव अपने बीच हुआ वार्तालाप रत्ने को अंग्रेजी में सुनाने लगे। तत्पश्चात् श्रोत्रियजी के ग्रंथालय में जो मुद्रित एवं हस्तलिखित ग्रंथ थे, उन्हें वे दोनों देखने लगे।

रात के लगभग आठ बजे श्रोत्रियजी ऊपर आये और भोजन के लिए बुलाया। जहाँ बैठकर डॉ० राव ने इससे पहले भी भोजन किया था, उसी स्थान पर केले के तीन पत्ते बिछा दिये गये थे। श्रोत्रियजी के "तुम भी खा लो बेटा" कहने पर चीनी भी उनके पास बैठ गया। "और आप?" डॉ० राव ने पूछा। "मैं परोसूँगा" श्रोत्रियजी ने कहा। डॉ० राव को पता न था। "और वे…?" सोचे बिना ही फिर प्रश्न किया। "वह बाद में बताऊँगा।" इस उत्तर से डॉ० राव सारी बात समझ गये। लगभग पन्द्रह वर्ष पहले एक दिन भोजन करते समय प्रश्न किया था, "[illegible] श्रोत्रिय कहाँ है?" उत्तर में उन्होंने ऐसा ही कहा था। भोजन करते समय ऐसी अशुभ बात न कहने के विचार से ही ऐसा किया था। अब भी वैसा ही व्यवहार। लेकिन सत्तर पार कर चुके श्रोत्रियजी को इस तरह रसोई बनाकर भोजन कराते देखकर डॉ० राव को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कुछ नहीं बोले। अपनी पत्नी के रहते समय जिस तरह अतिथियों को आग्रहपूर्वक भोजन कराते थे, उसी तरह आज भी बातचीत करते हुए भोजन कराया। भोजन सादा और स्वादिष्ट था।

डॉ० राव को बड़ा दुःख हुआ। और कोई पत्नी को खो बैठता तो शायद सान्त्वना की बात कहते। लेकिन यह सोचकर कि सामने बैठे हुए इस वृद्ध को सान्त्वना देने की क्षमता, आयु, ज्ञान या मन की परिपक्वता किसी भी दृष्टि से किसमें है, वे चुप रहे। फिर भी उन्होंने पूछा—"आप अन्यथा न समझें तो एक बात कहना चाहता हूँ।"

"कहिए, इसमें क्या है।"

"हम तीन-चार दिन यहाँ रहने वाले हैं। आप हमें पकाकर खिलायें, यह मुझसे देखा नहीं जाता। वास्तव में चाहिए यह कि हम यह कार्य करें। लेकिन इसका (रत्ने का) जन्म-धर्म भिन्न है। कल से यह हम दोनों के लिए एक कमरे में अलग पकाया करेगी। एक सिगड़ी, दो बरतन, थोड़ा-सा चावल एक कमरे में रखवा दीजिए। बस !"

"आप दोनों के लिए मैं अलग थोड़े ही बनाता हूँ ? हम तीनों के लिए जिस बरतन में पकता है, उसी में थोड़ा-सा चावल अधिक डाल देता हूँ। जिसमें दाल बनाता हूँ, उसी में थोड़ी अधिक दाल और पानी डाल देता हूँ। बस, रसोई की दौड़-धूप समाप्त ! उससे इस बूढ़े को कष्ट कैसे हो सकता है ? आप न हिचकिचाये।"

इधर-उधर की बातें होने के बाद विद्वत्तापूर्ण चर्चा शुरू हो गई। उस रात बारह बजे तक वे सब चर्चा करते रहे। तत्पश्चात् श्रोत्रियजी उन्हें मजले पर लिवा ले गये। वहाँ उन दोनों के लिए बिस्तर बिछा दिया गया था। "अब सो जाइए, कल बात करेंगे"—कहकर वे नीचे उतर आये।

डॉ० राव पत्नी के साथ वहाँ चार दिन रहे। रत्ने के मन में श्रोत्रियजी के प्रति आदर-भाव जाग उठा था। बुढ़ापे की महत्ता उसने देखी थी। स्वयं उसके पिता ने अपने बुढ़ापे में आयु की परिपक्वता का अनुभव किया था। इंग्लैंड में भी कई प्राध्यापक ऐसे थे। लेकिन उसने अनुभव किया कि श्रोत्रियजी का व्यक्तित्व असाधारण है। उसने भारतीय पुराण, साहित्य आदि विषयों से संबंधित अनेक ग्रंथों का अध्ययन किया था। भीष्म, वशिष्ठ, धर्मराज, राम आदि पात्रों की स्पष्ट कल्पना उसे थी। वह ठीक-ठीक यह बताने में समर्थ थी कि किसी विचित्र परिस्थिति में वे पात्र किस

तरह व्यवहार करेंगे। अब श्रोत्रियजी को देखकर उसे वे पात्र याद आ गये। वह जानती थी कि उनकी बहू मेरे देवर से विवाह करके इस परिवार से बाहर गयी है। श्रोत्रियजी भी जानते है कि डॉ० राव के कारण ही कात्यायनी का राज से परिचय हुआ। लेकिन उन्हे राज के बड़े भाई के प्रति तनिक भी क्रोध नही है। सत्तर पार करने पर भी उनके चेहरे की चमक, कांति कायम है। हर आचार-विचार में सज्जनता, संस्कृति झलकती है। वे रोज रात के तीन बजे उठकर स्नान करने नदी पर जाते है और भगवान् की पूजा मे लग जाते है। उससे निवृत्त होकर सात बजे मेहमानो को कॉफी देते है। कॉफी केवल मेहमानो के लिए ही बनती है—घर वाले तो पीते ही नही। दस बजे भोजन। भोजन के पश्चात् दोपहर के तीन बजे तक उनके साथ वार्ता। आधा घण्टे बाद पुनः कॉफी और उपाहार। लेकिन तीन बजे वे स्वयं कुछ नही लेते। शाम के साढ़े छह बजे तक विचार-विनिमय। फिर रात को भोजन बनाने के लिए नीचे उतरते। भोजन के पश्चात् बारह बजे तक चर्चा मे लीन। क्षण-भर के लिए भी उनके चेहरे पर विषाद या आलस्य का चिह्न नही दीखता।

चर्चा करते समय उनके मुख से संस्कृत श्लोक धारा-प्रवाह निःसृत होते। कुछ शब्दों पर जोर देकर उच्चारण करते और कुछ शब्दों की संधि तोड़कर। कहने के ढंग से ही रत्ने श्लोको का अर्थ समझ जाती। यह गंभीर चर्चा डॉ० राव के साथ वे कन्नड मे ही करते, लेकिन बीच-बीच में आने वाले संस्कृत श्लोकों और उनकी शैली मे प्रयुक्त संस्कृत शब्दो से वह उनके वार्तालाप को लगभग पूरा समझ जाती। जहाँ कही भी शंका उठती श्रोत्रियजी कमरे मे रखे ग्रंथों को पढकर सुनाते। धर्म शास्त्र, पुराण, तत्वशास्त्र, साहित्य आदि ग्रंथों से उनका कमरा भरा पड़ा था। कई बार तो अनायास देर तक संस्कृत में ही बोलते रहते। उनका ज्ञान देखकर रत्ने को आश्चर्य हुआ। चर्चा समाप्त होने के पश्चात् श्रोत्रियजी रसोईघर मे जाते, तब डॉ० राव चर्चा का साराश रत्ने को अंग्रेजी में सुनाते। वह उसे शीघ्रलिपि मे लिख लेती। तीसरे खण्ड मे आये धर्मशास्त्र-संबंधी विषय के बारे मे जर्मन विद्वान् ने जो प्रश्न उठाये थे, उसकी जो टीका की थी, उसे डॉ० राव ने कन्नड मे समझाया तो श्रोत्रियजी ने स्पष्ट किया और अपने ग्रंथ-भंडार के ग्रंथों से उनके मूल को पढ़ सुनाया।

सारी बातें डॉ० राव ने विस्तारपूर्वक नोट कर ली। उन्होंने निश्चय किया कि उनके ग्रथ को लेकर जो टीका की गयी, उसके उत्तर में एक ग्रंथ प्रकाशित कर देना चाहिए।

जिस दिन से डॉ० राव वहाँ आये थे, उसी दिन से उनके मन मे एक विचार कौध रहा था। उन्हे लग रहा था कि बुढ़ापे के कारण ही श्रोत्रियजी की पत्नी का स्वर्गवास हुआ। अगर वह होती तो इस उम्र मे उन्हे इतना कष्ट न होता वैसे श्रोत्रियजी किसी भी कार्य को कष्ट नही समझते। यह उनके मन की दृढ़ता का द्योतक था। लेकिन इस उम्र मे वह इसी परिवार मे रहती तो उन्हे तसल्ली होती, आराम मिलता। उनके पोते का आधार बनती। डॉ० राव ने चीनी को गौर से देखा। लगभग पन्द्रह वर्ष का बालक अपने दादा की तरह ही ऊँचा-पूरा, विशाल चेहरा, कातिपूर्ण आँखें। लेकिन उसी उम्र मे असहज गाभीर्य आ चुका है। श्रोत्रियजी को अपने पोते के साथ हँस-हँसकर बोलते हुए डॉ० राव ने देखा था। लेकिन घर की परिस्थिति एव दादा के जीवन ने उसमे गाभीर्य ला दिया है। उसकी माँ घर मे होती तो न जाने क्या परिस्थिति होती!

डॉ० राव सोच रहे थे—राज को इस घर का परिचय न था। कात्यायनी का हमारे घर आना और राज के साथ सबध जुड़ना, मेरे परिचय के कारण ही हुआ। और उसका अत ऐसा हुआ। मुझे इसके प्रारभ और विकास का पता ही न लगा। मै अपनी साधना मे लगा रहा। इसके अतिरिक्त मेरा जीवन-पथ ही बदल गया, अपने घर से ही निकल पड़ा। उनके विवाह के समय भी मैं नगर में नही था। नगर मे होता तो उन्हें एक बार समझाता। कुछ भी हो, इस बारे मे मुझे श्रोत्रियजी से क्षमा माँग लेनी चाहिए।

मैसूर लौटने के पहले दिन, रात के भोजन के पश्चात् रत्ने को ऊपर मजले पर ही रहने की सूचना देकर डॉ० राव उतरकर श्रोत्रियजी के पास आकर बोले—"चर्चा के लिए आज कोई विषय नही है। अगर आप थके न हो तो हम नदी तक टहल आयें।"

"कोई थकावट नही," कहकर शाल ओढ़कर निकल पड़े। रत्ने को साथ न पाकर श्रोत्रियजी ने पूछा—"आपकी पत्नी नही चलेंगी?"

"नहीं, वह कोई ग्रथ पढ़ने मे लीन है"—डॉ० राव ने उत्तर दिया।

मंदिर के सामने से होते हुए दोनों मणिकर्णिका घाट की सीढ़ियों पर पहुँचे।

ज्येष्ठ-आषाढ़ महीनों की बाढ़ के पश्चात् नदी शात वह रही थी। शुक्ल-पक्ष की अष्टमी या नवमी का दिन रहा होगा। आधा चांद चमक रहा था। इस चाँदनी मे नदी के दोनों किनारे गंभीर हो पानी की गति का अवलोकन कर रहे थे। डॉ० राव श्रोत्रियजी के साथ पानी के निकट वाली एक सीढ़ी पर बैठ गये। कुछ देर तक दोनो पानी को देखते रहे। डॉ० राव ने बोलने के लिए मुँह खोला। लेकिन समझ नही पाये कि बात प्रारंभ कैसे की जाय। श्रोत्रियजी पूछ बैठे—"कहिए, क्या बात है?"

"आपकी दृष्टि मे विषय शायद महत्त्व नही रखता होगा! किसी एक पुराने विषय के बारे में बात करने की इच्छा हुई है।"

"कहिए!"

"मेरे छोटे भाई का विवाह, उसके बाद की घटनाएँ—मैं कुछ नही जानता था। जानता तो शायद कुछ करता! इस समय बहू को आपके साथ रहना चाहिए था। वैसे तो स्वभाव से मेरा भाई अच्छा है। इस परिवार के बारे मे वह नही जानता था। उनकी ओर से मै आपसे क्षमा-याचना करता हूँ।"

"यह क्या कह रहे है? क्षमा-याचना किसलिए, किससे क्या हानि हुई है?"

"आपकी दृष्टि में हर बात, हर वस्तु अच्छी है। लेकिन इस समय आपकी बहू आपके साथ होती तो अच्छा होता!"

"सब हमारी इच्छा, सुविधा के अनुसार हो तो इसे दुनिया कौन कहेगा?" श्रोत्रियजी ने शात स्वर मे कहा—"अब भी मेरी पत्नी जीवित रहती तो अच्छा होता! पुत्र जिंदा रहता तो और भी अच्छा होता! मेरे माता-पिता जीवित होते तो कितना अच्छा होता। लेकिन लोग उतने ही दिन हमारे साथ रहते है, जितने दिन रहना लिखा है। उसके समाप्त होते ही वे दूर हो जाते हैं। इस बात को सदा स्वीकार कर लेना चाहिए—दुखी नही होना चाहिए।"

"अपनी बहू के प्रति आपके मन मे कभी घृणा, तिरस्कार

ों जागे ?" एक बार मंद मुस्कराकर पुनः शांत स्वर में बोले—
का मुझसे जो संबंध था, उसके नदी में डूब जाने पर समाप्त हु
सी तरह बीमारी के बहाने पत्नी भी दूर चली गयी । उन
णा, तिरस्कार क्यों दिखाऊँ ? उन दोनों का मरकर मुझसे दू
र बहू का जीते-जी दूर होना—इन दोनों में, मेरी दृष्टि में, को
ही । मेरे साथ का जो संबंध था, वह समाप्त हो गया । वह चल
समें उसका क्या दोष ?"
ान की दृष्टि से कम-से-कम···" डॉ० राव कहने जा रहे थे।
पका कहना सच है । हमारा बच्चे की दृष्टि से सोचने पर कभी
लित होना स्वाभाविक है । आप क्या सोच रहे है कि अपने गर्भ
को छोड़ जाते समय उसे दु.ख नहीं हुआ था ? उसे भी अगर
था । लेकिन उस दु.ख से भी बड़ी एक प्रकृति-सहज शक्ति ने
ी ओर खींचा । प्रकृति को ही तो माया कहते हैं । प्रकृति-सहज
से ही हम संसार में जी रहे हैं । यहाँ रहकर प्रकृति-गुणों से
ा, सामान्य कार्य है ! वह अगर इनसे प्रभावित हुई तो आश्चर्य
ही । इसके लिए हम उसके प्रति क्यों घृणा दिखायें ?"
तत्वज्ञान की दृष्टि से डॉ० राव अनभिज्ञ नहीं थे लेकिन अपने
ाम में भी इसी दृष्टि से विचार करने वाले इस वृद्ध के प्रति
में और भी श्रद्धा बढ़ी । "आप अपनी बहू के बारे में कभी नहीं
डॉ० राव ने पूछा ।
वन में जिन्हें खो दिया है, उन्हें स्मरण करने से क्या लाभ ? मृत
त्नी के संबंध में सदा सोचते रहने पर मनोबल का ह्रास होता
ुआ कार्य क्या कम है ? पौत्र का पालन-पोषण करना और पढ़ाना
ैं बहत्तर वर्ष का हुआ । पौत्र को एक स्तर तक पहुँचा कर
जीवन से मुक्ति पाने का प्रयत्न करना चाहिए । कभी-कभी
ः हो जाने पर मन स्मरण-गति में अवश्य बह जाता है । जहाँ
क, मैं बीते दिनों को याद नहीं करता ।"
कहकर वे चुप हो गये । डॉ० राव का मन न जाने क्यों अपने
विगत घटनाओं को लेकर सोचने लगा—"श्रोत्रियजी ने अपने

जीवन में कभी द्वन्द्वपूर्ण कार्य नहीं किया। इसीलिए उनकी दृष्टि सदा भविष्य के लक्ष्य की ओर रहना संभव है। लेकिन मेरे जीवन में बचा हुआ एक द्वन्द्व मुझे बार-बार उसका स्मरण दिलाकर, उसमें लीन करके विदीर्ण कर देता है। इससे छुटकारा कैसे मिलेगा ?"

इस विश्वास से कि अपनी समस्या से छुटकारा पाने का उपाय श्रोत्रियजी से मिलेगा, डॉ० राव ने बात प्रारंभ की—"मेरा दूसरा विवाह, परिस्थिति, कारण आदि आप जानते है ?"

"जानता हूँ !"

"इसके बिना मैं अपने कार्य को पूर्ण न कर पाता। ग्रंथ पूर्ण करने के लिए उसका मेरे साथ रहना अनिवार्य था। लेकिन पहली पत्नी निरपराध है। क्या आप सोचते है कि ऐसी परिस्थिति मे मेरा वैसा कदम उठाना अनुचित था ?"

"आपके कार्य को मैं कैसे अनुचित ठहरा सकता हूँ ?"

"मैं जानता हूँ कि दूसरों के बारे में निर्णय देना आपकी प्रवृत्ति नहीं है। मैने इस दृष्टि से नही पूछा। मेरी स्थिति मे आप होते तो क्या करते ?"

"आपकी स्थिति मे मैं होता तो क्या करता, यह कहना असगत बात होगी। कभी एक दिन आपने ही अपनी कक्षा में कहा था— मेरे पुत्र ने घर आकर मुझे बताया था—एक भिक्षु सम्राट से कहता है कि मै तुम-जैसा चक्रवर्ती होता तो रक्तपात नही कराता। और सम्राट ने उत्तर दिया कि अगर मै भिक्षुक होता तो युद्ध की बात ही मेरे दिमाग में न आती।" वे एक मिनट चुप रहे। फिर कुछ सोचकर उन्होंने कहा— "आप कहते है कि ग्रथ-निर्माण के लिए यह विवाह किया। ग्रथ बुद्धिशक्ति की साधना है। बुद्धि-तत्त्व भी प्रकृति का एक पहलू है। बुद्धि साधना में उलझकर, उस साधना के लिए ही किया हुआ विवाह भी प्रकृति का एक आकर्षण है। कुछ लोग केवल शारीरिक आकर्षण के कारण दूसरा विवाह कर लेते है। यद्यपि उसकी अपेक्षा यह अधिक आकर्षण है, किन्तु मूलतः भिन्न नही है। वास्तविक ज्ञान-सिद्धि बुद्धि से श्रेष्ठ है। इसमें किसी की मदद की आवश्यकता नही। बस आत्मा की पुकार दृढ रहनी चाहिए।"

डॉ० राव ने बीच मे ही प्रश्न किया—"मानव-जीवन जिस जीवन

के लिए तपस्या करता है, उसमे बाधक बनने वाले विवाह का महत्त्व ही क्या है ? उस जीवनोद्देश्य की सिद्धि के लिए किये गये विवाह को प्रकृति प्रेरित कैसे कहा जा सकता है।"

"आपकी बात एक दृष्टि से ठीक है। परिवर्तनशील सामाजिक दायरे मे विवाह का ध्येय ही बदलता जा रहा है। उसे उचित या अनुचित कहना अपकृत है। जाने-अनजाने किये गये हमारे विवाह को उससे सबधित अन्य एक व्यक्ति की कोई गलती न होने पर उसे गौण कैसे मान सकते हैं ?" अपने वैवाहिक जीवन को स्मरण कर श्रोत्रियजी आगे बोले—"कई बार मुझे भी वैसा प्रतीत होता था। मैं सदा सस्कृत ग्रथो का अध्ययन करता था। अपने मे ही वेदात, तर्क, मीमासा का मनन-चिन्तन करता रहता था। मेरी पत्नी सस्कृत की 'अ-आ-इ-ई' भी नही जानती थी। कन्नड मे चार पक्तियो का पत्र लिखना भी उसे नही आता था। फिर भी श्रद्धा-भक्ति से पति-सेवा करती थी। वश-वृद्धि के लिए एक बेटे को जन्म दिया। देव-पूजा के लिए वांछित पुष्प-चदन तैयार कर देती थी। बुद्धि-शक्ति के स्तर पर उसमे और मुझ मे आकाश-पाताल का अन्तर था। लेकिन वह अवश्य योग्य धर्मपत्नी बनी रही।"

डॉ० राव चुपचाप बैठे थे। उस प्रदेश में पूर्ण नीरवता छाई हुई थी। श्रोत्रियजी को लगा कि उनकी बात से शायद डॉ० राव को दु:ख पहुँचा है। फिर भी श्रोत्रियजी ने कहा—"जिस तरह यह कहना असगत है कि अगर आपकी स्थिति मे मैं होता तो वैसा ही करता, उसी तरह यह कहना भी असगत है कि वैसा नही करता। यह सब अपनी-अपनी जीवन-दृष्टि पर निर्भर है। किसी अनिश्चित मार्ग पर चलने से जीवन मे अनिवार्यत: द्वन्द्व उत्पन्न होता है। आपने जो साधना की है, वह साधारण नही है। उसे पूर्ण करना शेष है। आपके द्वितीय विवाह को आवश्यकता को मैं पूर्णत: समझ सकता हूँ। लेकिन प्रथम पत्नी को दूर क्यों रखा ?"

"द्विपत्नी-रिवाज के प्रति द्वितीय पत्नी मे तिरस्कार-भावना है। एक ही घर में एक पति की दो पत्नियों का रहना उसे पसन्द नहीं।"

"यह भी आधुनिकता का एक पहलू है। वह पूरी तरह गलत नहीं है। किसी ध्येय को पूर्ण करने के लिए ही एक पत्नी के रहते हुए भी

उसने आपके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया था। उसी ध्येय को प्रधानता देकर उस द्विपत्नी-पद्धति के प्रति अपना जो तिरस्कार है, वह उसे घटा सकती थी। व्यक्ति या समाज के जीवन में हर पद्धति का अपना एक विशेष उपयोग रहता है। लेकिन विशेष सदर्भों में उस पद्धति को प्रधानता नही देनी चाहिए। जीवन के मूल ध्येय को समझ लेने के पश्चात् अन्य ध्येयों को उसके अनुरूप बना लेना कठिन प्रतीत *नही होता।*"

डॉ० राव का मन विचार में डूबा हुआ था। वे कुछ न बोले। कुछ समय दोनों मौन बैठे रहे। श्रोत्रियजी ने जब कहा—"सोने का समय हो गया है, अब चले ?" तो डॉ० राव उठ खड़े हुए। लगभग ग्यारह बजे लौटे तो दीवानखाने में बैठी रत्ने चीनी से बात कर रही थी। उनके आते ही चीनी अंदर चला गया। रत्ने ने डॉ० राव से कहा—"लड़का बड़ा बुद्धिमान है।"

दूसरे दिन सुबह की रेल से लौटने से पहले डॉ० राव श्रोत्रियजी के चरण छूने गये। श्रोत्रियजी ने सकोचवश चरणों को पीछे खीचकर कहा—"आपको ऐसा नही करना चाहिए। यह सब भगवान् के लिए है।" रत्ने ने झुककर नमस्कार कहा। "बार-बार आते रहिए। मैं वृद्ध हूँ, कही आ-जा नही सकता" कहते हुए हाथ जोड़ नमस्कार कर अतिथियों को विदा किया।

डॉ० राव को रत्ने के साथ नजनगूडु से मैसूर घर पहुँचने तक सवा दस बज गये थे। आँगन में कुर्सी पर बैठकर राज बूट पहन रहा था। उसे देखकर डॉ० राव ने पूछा—"यह क्या ? कब आये ?"

"तीन दिन हुए। कात्यायनी भी आई है। हम दोनों का यहीं तबादला हो गया है।"

"कब से ?" पूछते हुए डॉक्टर राव कुर्सी पर बैठ गये। रत्ने कुली *द्वारा लाये गये होलडाल और थैलों को भीतर लिवा ले गयी।*

"परसों सोमवार को तबादले की सूचना में बताया गया कि चार दिनों में हमें यहाँ पहुँच जाना चाहिए। अपने आने की सूचना आपको पत्र द्वारा दी थी। हमारे आने के बाद उस पत्र को घर में पाया। उससे

ही आप जा चुके थे। पता लगा कि नंजनगूडु गये हैं।"

"हाँ।"

"वे सब कुशल है ?" प्रश्न करते समय राज का मुख म्लान था, लेकिन डॉ० राव ने नहीं देखा।

"श्रोत्रियजी की पत्नी का स्वर्गवास हुए दो वर्ष हो गये।"

इतने में बातें करती हुई रत्ने और कात्यायनी वहाँ आई। कात्यायनी कालेज जाने के लिए तैयार हो गयी थी। हाथ में दो पुस्तकें और एक नोटबुक थी। डॉ० राव को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने के पश्चात् राज के साथ वह कालेज चल दी। साढ़े दस बजे उन दोनों को 'पीरियड' लेना था।

नागलक्ष्मी और पृथ्वी, दोनो बेंगलूर मे थे। मैसूर मे घर मिलने के बाद वे आयेंगे। मैसूर आने मे नागलक्ष्मी को कोई उत्साह नहीं था। कात्यायनी को भी यहाँ आना पसन्द न था, लेकिन तबादले के विरुद्ध कुछ किया नही जा सकता था।

दोनो साथ मे काम करते हों तो भी दोनों का एक साथ एक ही जगह तबादला करना चाहिए, ऐसा कोई नियम नही था। डॉक्टर साहब का भाई होने के कारण ही ऐसी व्यवस्था की होगी ! इस बार राज महाराजा कालेज मे आया था। कात्यायनी को पास के ही एक फर्स्ट ग्रेड कालेज में भेजा था।

यह जानकर कि रत्ने और डॉ० राव नंजनगूडु गये हुए है, रत्ने से वहाँ के बारे में पूछने का कात्यायनी को कुतूहल था। राज भी वहाँ के बारे में जानने का कुतूहल रखता है—इधर कुछ समय से। लेकिन कात्यायनी में केवल कुतूहल न था, अपने पहले वाले घर एव अपने गर्भ से जनमे पुत्र के बारे में जानने की उत्कट इच्छा थी। अपने तीसरे गर्भस्राव के पश्चात् उसका मन चीनी को देखने के लिए छटपटा रहा था। मन-ही-मन वह कल्पना करती कि अब बड़ा होकर वह कैसा दीखता होगा ! वह माँ को याद करता होगा क्या ? दादा-दादी के साथ कैसे रहता है आदि कुतूहल अनेक रूपों में प्रस्तुत होते। अपने सास-ससुर के बारे में भी जानने की इच्छा थी उसमें। कई बार वह सोचती—वे अब काफी वृद्ध हुए होंगे ! मैं वहीं होती तो उन्हें सुविधा रहती। मैं घर-बार की जिम्मेदारी

सँभालती तो ससुर निश्चित हो, अपने संध्या, देवार्चना में समय बिता सकते थे।

उस दिन दोपहर के तीन बजे वह कालेज से लौटी। राज कहीं मकान ढूंढ़ने गया था। रत्ने से कह गया था कि लौटने मे रात होगी। डॉ० राव पुस्तकालय गये हुए थे। रत्ने यह सोचकर घर मे ही रही कि कात्यायनी को बुरा लगेगा। वह नजनगूडु मे डॉ० राव द्वारा लिखाये गये विचारों को टाइप करती रही। कात्यायनी के घर लौटकर, नाश्ते के पश्चात् दोनों ने परस्पर कुशल-समाचार पूछा। तत्पश्चात् कात्यायनी ने पूछा—"नजनगूडु गये थे न ? कहिए, वहाँ सब कैसे है ?"

"अच्छे हैं।"

"केवल उतने से काम नही चलेगा। आप भी जानती है कि वहाँ की बातें जानने के लिए मैं क्यों आतुर हूँ। आप कन्नड तो नही जानती। लेकिन आप जो-कुछ भी जानती है, सविस्तार बताने की कृपा करें।"

"मुझे लगा कि वे बड़े ही अच्छे है। उस वृद्ध ने तो मेरे मन पर काफी प्रभाव डाला है।"

"दूसरे लोग कैसे है ? मेरा बेटा, सास, लक्ष्मी ?"

"सास को गुजरे दो साल हो गये।"

यह अनपेक्षित बात सुनकर कात्यायनी को अत्यधिक दु ख ही नही हुआ, बल्कि उसे लगा कि उसकी उपप्रज्ञा मे उपस्थित रहकर मन को सान्त्वना देते रहने वाला एक स्तम्भ ही टूट गया है। "अब फिर उस घर का क्या हाल है ? लड़के की देखभाल कौन करता है ?"

"सब वृद्ध ही देख लेते है। सुबह तीन बजे उठकर स्नान करने जाते है। छह बजे पूजा समाप्त होती है। लड़का इस बार एस० एस० एल० सी० की परीक्षा देने वाला है। सुबह उठकर स्नान, सन्ध्या से निवृत्त हो अध्ययन करता है। दस बजे दादा रसोई बनाकर परोसते है। शाम को पौत्र के स्कूल से लौटने पर वेदपाठ करते है। रात्रि की रसोई का काम भी वृद्ध ही करते है।"

"वह कैसा है ? माँ की याद करता है ? क्या दादी के स्वर्गवास से काफी असर पड़ा है?"

"कल रात को डॉ०.साहब.वृद्ध के साथ बाहर गये थे। तब मैं

के साथ दो घण्टे से भी अधिक समय तक बातें करती रही थी। मेरी अंग्रेजी को पूर्णतः समझ लेने पर भी अंग्रेजी में आसानी से उत्तर नहीं दे पाता था। लेकिन संस्कृत में सुगमता से वार्तालाप कर सकता है। मैं अंग्रेजी में ही बोलती रही। वह संस्कृत में उत्तर देता गया। अभी-अभी वेदपाठ पूर्ण हुआ है। भगवद्गीता कण्ठस्थ है। रामायण-महाभारत स्वयं पढ़कर समझने की क्षमता रखता है। लगता है बड़ा बुद्धिशाली लड़का है—बिल्कुल दादा का प्रतिरूप। उन जैसा ही ऊँचा शरीर, विशाल छाती और भुजाएँ, चौड़ा चेहरा, कांतियुक्त आँखें। दोनों कानों में चमकती बालियाँ।"

"क्या उसे माँ की याद आती है, इस बारे में आपने कुछ पूछा?"—अपनी समस्त आसक्ति को बटोरकर उसने प्रश्न किया। रत्ने तुरन्त उत्तर न दे सकी। वह सकपकाकर सोचती रही। पुनः कात्यायनी ने कहा—"आप निःसंकोच उत्तर दें। मेरी कसम है, आप जो कुछ जानती है, सच-सच बता दीजिए।"

"मैंने ही पूछा कि तुम्हारी माँ कहाँ है, कभी उसे देखने की याद है? उसके चेहरे से पता चला कि यह प्रश्न उसे जँचा नहीं। मैं समझती हूँ कि वह माँ के बारे में जानता है। मैं यह नहीं जानती कि उसे इस बात का पता है या नहीं कि मैं उसकी माँ की रिश्तेदार हूँ। बात बदलकर मैंने उसकी दादी के बारे में प्रश्न पूछे। लगता है, दादी से बड़ा लगाव था। उसकी बात में यद्यपि संयम था—ऐसा उसकी आवाज और मुखमुद्रा से मैं समझती हूँ—दादी के बारे में विस्तारपूर्वक बताया। उनकी मृत्यु का कारण, बीमारी की अवधि, उत्तरक्रिया का स्थान आदि। दादा के प्रति उसमें अपार स्नेह-श्रद्धा है।"

"उम्र के योग्य उत्साह दिखाता है या सदा विचारमग्न रहता है!"

"मुझे लगता है कि दादी के रहते समय उसमें उत्साह था। अब उनके घर में लक्ष्मी है न, उससे बड़ा लगाव है। रात को उसके पास ही अपना बिस्तर बिछाता है। लक्ष्मी भी उसे बहुत प्यार करती है। उसके चेहरे पर उम्र से अधिक गांभीर्य दिखाई देता है। यह मैं स्पष्टतया नहीं बता सकती कि वह गांभीर्य अपने अध्ययन में उपलब्ध प्रगति का परिचायक है या घर की परिस्थिति का परिणाम।"

श्रोत्रियजी के संबंध में बताते हुए रत्ने बोली—"वैसे मनुष्य की मुझे कल्पना ही थी। रामायण, महाभारत-जैसे महाग्रंथों में मैंने पढ़ा था। उस कल्पना के अनुरूप एक सजीव मूर्ति को इस युग में यहाँ से पन्द्रह मील दूर के गाँव में देखने का मौका मिला। उनका ज्ञान अगाध है। मानसिक संतुलन विचित्र है। चेहरे पर स्थितप्रज्ञ का भाव द्रष्टव्य है। वह परिपक्वता केवल उम्र की नही। अन्त.करण से जागा विश्वास उनकी आँखों में चमकता है। फिर भी मुझे लगता है कि उस कोमल व्यक्तित्व के एक कोने में अव्यक्त कठोर भाव भी है। मुझे प्रतीत होता है कि सकल्प-शक्ति और कर्त्तव्य-ज्ञान उनके जीवन के मार्गदर्शक है।"

रत्ने की बात समाप्त होने पर भी कात्यायनी मौन बैठी रही। उसके चेहरे पर गहरा विचार दृष्टिगोचर हो रहा था। एक अस्पष्ट वेदना भी उसमें मिली थी। उस सहज भाव से परिचित रत्ने ने कहा—"मैंने जो कुछ अनुभव किया, वही बताया। इसके अलावा मुझे ठीक तरह कन्नड नही आती। हो सकता है कि समझने में मेरी भूल हुई हो। इस बात को लेकर आप अधिक चिंता न करें। जीवन में यह सब होता ही रहता है।"

कात्यायनी चुपचाप बैठी रही। रात के भोजन के लिए रामप्पा क्या बना रहा है, यह देखने के लिए रत्ने भीतर गयी। कात्यायनी के मन मे चीनी और श्रोत्रियजी के चेहरे घूम रहे थे। उनके चेहरे के स्मरण के आधार पर उसका मन चीनी के चेहरे की कल्पना कर रहा था। रत्ने के बताये विवरण से वह कल्पना-चित्र और भी स्पष्ट होने लगा। दादी के प्रति उसका गहरा प्यार है। उसने उनके मरण का विवरण सुनाया, लेकिन माँ के बारे मे पूछा तो उसे अच्छा नही लगा। मेरे बारे मे जानता ही नही? रत्ने कहती है 'मै समझती हूँ उसे मालूम है।'—अगर यह सच है तो मेरे बारे मे उसकी कैसी तुच्छ भावना होगी! उसने सोचा, घर वालों ने बालक को बता दिया होगा कि 'तेरी माँ कुलटा थी, किसी के साथ भाग गयी है।' उसे पूर्ण विश्वास था कि श्रोत्रियजी ऐसी बात कभी नही कहेंगे। मरने से पहले सास ने वैसा कहा होगा। वे क्रोधी स्वभाव की थी। उन्होंने कहा हो तो भी कोई आश्चर्य नही। लड़का सूक्ष्म बुद्धि रखता है। किसी ने न बताया हो तो भी स्वयं समझता है। उसके मन मे मेरे प्रति घृणा जागना

स्वाभाविक भी है।"

हे भगवान् ! मेरे यहाँ चले आने से पहले ही मैं मर जाती तो बेटे के मन मे घृणा जागने का प्रसग ही क्यों आता ? जितनी श्रद्धा से अपने पिता और दादी की याद करता है, उतनी ही या शायद उससे भी अधिक श्रद्धा से मुझे भी स्मरण करता ! अपने ही बेटे से तिरस्कृत माँ के जीवन से बढकर क्षुद्र इस दुनिया मे कोई नही हो सकता। ये सब विचार मेरे मन मे पहले क्यों नही आये ?—यही सारी बातें सोच रही थी। इस द्वितीय विवाह के पश्चात् उसे भी साथ ले आती तो ऐसी नौबत ही नही आती। वह मुझे प्यार करता ! मेरे प्रति श्रद्धा दिखाता ! 'इन्हें' भी आदर देता। उसे वहाँ छोड़ा, यही मेरी बडी गलती है। ससुरजी ने ही कहा था न कि 'उसे ले जाना ही तेरा निर्णय है तो मैं कभी नही रोकूँगा, चुपचाप ले जा ! मजले घर गई, लेकिन मैं बच्चे को छोडकर लौट पड़ी ! किस शक्ति ने वैसा करने के लिए मुझे प्रेरित किया था ? किस भावना के वश होकर मैंने ऐसा किया था ? उस समय मेरी अन्तरात्मा ने मुझे एक नये पथ पर चलाया। वही अन्तरात्मा एक और भँवर मे फँस गयी है। हे भगवान् !" इस द्वद्व का मूल क्या है ?—वह इसी तरह सोचती रही, लेकिन कोई उत्तर न मिला।

२१

पन्द्रह-बीस दिनों मे राज को मकान मिल गया। राज और कात्यायनी वहाँ रहने चले गये। एक सप्ताह बाद राज बेंगलूर गया, घर का सारा सामान लारी से रवाना कर दिया और पृथ्वी तथा नागलक्ष्मी को अपने साथ लेता आया। लक्ष्मीपुर का यह नया मकान बड़ा था और उसके चारों ओर बगीचा भी था।

उनके नये घर में जाने के पश्चात् डॉ० राव और रत्ने कुछ ऊब से गये। सुबह स्नान के बाद भोजन करते समय उनके साथ राज और

कात्यायनी भी बैठते थे। रात के भोजन के पश्चात् कुछ समय तक सब बातचीत करते। रागप्पा को निर्देश दे-देकर कात्यायनी नये-नये खाद्य पदार्थ बनवाती। अब डॉ० राव का घर पुनः पहले की भाँति हो गया। उनका अध्ययन, नोट तैयार करना, पुस्तकालय जाना आदि कार्य पूर्ववत् चलते रहे। पाँचवें खण्ड के लिए सामग्री का संग्रह किया जा रहा था। आजकल डॉ० राव का मन ग्रंथ-निर्माण के बीच अपने जीवन की विभक्त परिस्थिति के बारे में सोचता रहता था।

उन्हें श्रोत्रियजी की बात बार-बार याद आती। बुद्धि प्रकृति का एक स्वरूप मात्र है। बुद्धि की साधना मे उलझना, इस साधना के लिए किया गया दूसरा विवाह भी, एक तरह से प्रकृति की ओर,आकर्षण है। कुछ लोग केवल शारीरिक आकर्षण के कारण दूसरा विवाह कर लेते है। उसकी अपेक्षा यह विवाह अधिक आकर्षक होते हुए भी मूलतः भिन्न नहीं है। वे उस प्रसग के बारे मे सोचने लगे, जिसमें उन्होने रत्ले से विवाह किया था। रत्ले के बिना उनके ग्रथ इतने शीघ्र पूर्ण न हो पाते। उसकी तरह सहयोग देने वाला यदि और कोई सहयोगी मिलता तो? लेकिन वैसा कोई नही मिला था। इस तादात्म्य भाव से कि यह भी मेरा ही कार्य है, अपना जीवन उसी को अर्पित करने वाला और कौन था? फिर भी डॉ० राव को याद आ रहा था और अब भी उनका अनुभव था कि अपनी साधना के बारे में रत्ले प्रशसा करती तो उनका मन आनन्द से भर जाता है। ससार के विद्वानो से प्राप्त पत्र भी उनमे स्फूर्ति भरते थे। रत्ले कहती कि यह हमारा ग्रंथ है, तो डॉ० राव का हृदय हर्षोल्लास से नाच उठता था। रात के भोजन के पश्चात् टहलते-टहलते विषय-चर्चा करते जाते तो स्फूर्तिवश रत्ले उनका हाथ अपने हाथों में थाम लेती। घर लौटने पर डॉ० राव की कही बातो को नोट करने में लगी रहती तो कई बार उनका मन कहता—मेरे जीवन में यही वास्तविक पत्नी है। मन-ही-मन प्रश्न करते : स्त्री के बदले यदि कोई पुरुष मेरी सहायता करने के लिए आगे आता तो क्या मैं ऐसी भावनाओं का अनुभव करता? क्या रत्ले के सहयोग के साथ-साथ इन भावनाओ से भी मैं बद्ध नही हुआ हूँ?

दूसरी ओर उनका मन श्रोत्रियजी के वैवाहिक जीवन के बारे में भी सोचता : वे सदा संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन करते है। वेदांत, तर्क, मीमांसा,

धर्मशास्त्र आदि विषयों का गहरा चिन्तन-मनन किया है। उनको सभी शास्त्र-विषयक भी नहीं पढ़ी थी। फिर भी उन्हें मेरे समान विशेष ग्रन्थों की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई; क्योंकि मेरे समान उन्हें इस रचना में हाथ डालना नहीं था। यदि पत्नी मेरे स्थान पर होती तो? तुलना व्यर्थ लगता है फिर भी रोगन ने ही इस कार्य को निभाया! रोग देकर एक टाइपिस्ट नियुक्त कर लो! अब काम न ... करो। जिस पथ पर मैं चला, उस पर वे कभी न चलीं!

डॉ० राव का मन नागरत्नी को बार-बार याद करता था। वह अब मैसूर में हो उनके घर से आधे मील की दूरी पर रहती है। उनके साथ रहने, श्रद्धा-भाव से सेवा करने के लिए वह कितना आतुर है! अब तक उनके प्रति किये गये उनके अत्याचार की ओर ध्यान न देकर, उन्होंने स्वयं साथ रहने का प्रस्ताव किया था। वह पति तथा अपनी सौत के लिए स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी, उनमें हमारे स्वास्थ्य की देख-भाल करने की चाह रही थी। उसमें निहित गृहणीत्व डॉ० राव को याद आ रहा था। पति को अच्छी तरह खिलाये बिना वह नहीं मानती थी। उनके मना करने पर भी हर सप्ताह तेल मलती और स्नान कराती थी। कम पढ़ी-लिखी थी, किन्तु शक्तिपूर्ण व्यक्तित्व था। परिवार के सभी उसकी बात मानते थे। उसने कभी किसी पर अपना अधिकार जताने की चेष्टा नहीं की। उससे प्रभावित होकर हरएक ने उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की। केवल स्नेह, विश्वास, सेवा से उसने यह शक्ति पाई है। हर व्यक्ति के साथ व्यवहार करते समय सदा उसका मातृत्व काम करता था। इसी ने उसके व्यक्तित्व में शक्ति भरी है।

क्या इसी तरह अन्त तक उसे दूर रखना पड़ेगा? डॉ० राव का मन पत्नी के लिए सदा दुःखी रहता। जब वे बीमार पड़े थे, तब उनसे यहीं रहने के लिए कहा था। वह इस प्रस्ताव से खिल उठी थी। जब तक अस्पताल में रहा, उससे आत्मीयता से बोलता रहा। पति की सेवा में हर क्षण अपने अंतःकरण को निछावर करती रही। घर आने के पश्चात् उनका मन फिर विद्या-जगत् की ओर मुड़ गया। उसके साथ वे अधिक नहीं बोलते थे। शायद रत्ने की उपस्थिति एवं उससे संबंधित सुप्त प्रश्न उसका एक कारण था—ऐसा वे अब भी सोच रहे है। तीनों के साथ

रहने के लिए रत्ने तैयार नही थी। राज के बेंगलूर रवाना होने से पहले, नागु ने डॉ० राव के चरण छुए तो उन्होंने उसे निहारा था। असंतोष उसके चेहरे पर झलक रहा था। निराशा से उसकी आँखे भरी थी, चेहरा मुरझा गया था। फिर भी चरण छूकर वह चली गई। वह उनके लिए भी हृदय-विदारक घटना थी।

डॉ० राव का मन बार-बार सोचता—इस द्वंद्व से मुक्ति पाने का उपाय क्या है? इन दो शक्तियों मे से मैं किसे त्यागूं, किसे अपनाऊँ? अध्ययन और ग्रंथ-निर्माण मेरे जीवन की साँस है। उसी तरह नागु की याद मेरे अंत करण को जलाने वाली अग्नि है। इस साँस से वह अग्नि और भी अधिक प्रज्वलित हो जाती है। मै इससे कैसे बच सकता हूँ? ग्रंथ निर्माण, रत्ने—सबको छोड़कर क्या नागु के पास चला जाऊँ? रत्ने के लिए, जैसा कि वह कहती है, एक अलग घर बसाऊँ, या इस बँगले में रत्ने को छोड मैं नागु के साथ रहूँ? लेकिन ग्रंथ पूर्ण करने के लिए मेरा रत्ने के साथ रहना आवश्यक है। ग्रंथ-निर्माण ही छोड़ दिया जाय तो?— ये विचार आते ही डॉ० राव को श्रोत्रियजी की एक बात याद आती— "अनिश्चित मार्ग पर चलने से जीवन में अनिवार्यतः द्वंद्व उत्पन्न होता है। लेकिन जिस मार्ग पर बढ चुके है उससे लौटने का प्रयत्न करने से द्वंद्व दूना हो उठता है।" डॉ० राव का मन कह रहा था, श्रोत्रियजी की बात सच है। वे जानते थे कि ग्रंथ-रचना त्यागने या उसकी गति धीमी कर देने से मुझे शाति नही मिल सकेगी। अपनी देह-शक्ति का अनुभव होने पर उनका मन ग्रंथ को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने के लिए छटपटाता था। उनके अत.करण से आवाज उठ रही थी कि मैं अधिक दिन जीवित नहीं रह सकूँगा। वे मरने से पहले पाँचवें खण्ड को किसी तरह पूर्ण करने का सकल्प कर चुके थे।

हर रोज उनकी मानसिक व्यथा बढती जाती थी। शारीरिक शक्ति घटने लगी थी।

डॉ० राव को कोई बीमारी नही थी। लेकिन शारीरिक-शक्ति और अध्ययन-क्षमता का ह्रास होता जा रहा था। खाने-पीने के प्रति भी रुचि घटती गई। दोपहर का भोजन पच नही पाता था, अतः भोजन में सिर्फ

पाव-भर दूध लेने लगे। पढ़ने बैठते तो कई बार विषय समझ में न आता। नागलक्ष्मी की याद आती तो मन मूक हो जाता। कभी-कभी रत्ने, नागलक्ष्मी—दोनों उनके मानस-पटल पर अवतरित हो, उनके चित्त को विचलित कर देती।

उनके गिरे हुए स्वास्थ्य की ओर रत्ने का ध्यान गया। उन्हें डॉक्टर के पास ले गई। डॉक्टर ने जाँच कर कहा—"कोई रोग नहीं है। लगता है हृदय-क्रिया में अन्तर आ गया है। लेकिन इससे कोई खतरा नहीं है। कई स्वस्थ लोगों को ऐसा होता है। हवा-पानी बदल दीजिए। आराम कीजिए। मैं टानिक और गोलियाँ लिख देता हूँ, उन्हें लेते रहें।"

हवा बदलने के लिए डॉ॰ राव तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा—"जल्द-से-जल्द ग्रंथ पूर्ण कर लेना चाहिए, हवा परिवर्तन या विश्राति में समय नहीं बिताना चाहिए।" उनकी अन्तरात्मा कह रही थी कि वे थोड़े ही दिनों के मेहमान हैं। पंचम खण्ड शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने का उनका संकल्प दृढ़ होता जा रहा था, लेकिन शारीरिक शक्ति जवाब दे रही थी। उनकी यह स्थिति देखकर रत्ने भयभीत थी। "डॉक्टर के आदेशानुसार क्यों नहीं चलते? यह कैसा अजीब हठ है?"—वह बड़-बड़ाई। उनके कारण उसने भी दो दिन दोपहर का भोजन त्याग दिया। उनका सदा निराशापूर्ण चेहरा देखकर, वह उनकी सुप्त चिंता का कारण खोजने लगी। एक दिन, रात के भोजन के बाद दोनों टहलने निकले। टहलते-टहलते उसी स्थान पर पहुँच गये, जहाँ उन्होंने रत्ने से नागलक्ष्मी को साथ रखने का प्रस्ताव किया था। वे वहाँ अनजाने ही पहुँच गये थे। बैठते ही रत्ने को वह दिन स्मरण हो आया जब डॉ॰ राव ने नागलक्ष्मी के बारे में बात छेड़ी थी। उसने सोचा, शायद यही विचार उन्हें सता रहा है। इस स्थान के स्मरण से डॉ॰ राव का मन नागलक्ष्मी के बारे में सोचने लगा। रत्ने ने पूछा—"अवश्य ही कोई विचार आपको सता रहा है। आप मुझे क्यों नहीं बताते?"

"कैसा विचार? कुछ नहीं है।"

"मैं जानती हूँ, कहिए?"

सिर उठाकर डॉ॰ राव ने रत्ने का चेहरा देखा। दूर से पड़ रहे मंद-मंद प्रकाश में भी उसके चेहरे पर गम्भीरता दिखाई दी। उन्होंने कहा—

"तुम जानती हो तो मुझसे क्यों पूछ रही हो? समस्या तुम्हें मालूम है। निवारण भी तुम पर निर्भर है। मेरे हाथ में कुछ नहीं है।"

रत्ने चुप रही। मन मूक रहा। कोई भी विचार प्रतिक्रिया उत्पन्न नही कर रहा था। डॉ० राव बोले—"मेरी बीमारी में उसने काफी सेवा की। उस सेवा के पीछे केवल कर्त्तव्य-दृष्टि काम नही कर रही थी, बल्कि वह अपने समस्त संस्कारयुक्त श्रद्धा-भाव से एक हिन्दू पत्नी द्वारा की जानेवाली पूजा थी। उसे निर्लक्ष्य करके पछता रहा हूँ। उसने कहा था, 'जो हुआ, सो हुआ। अब भी सेवा करने का मौका दीजिए।' वह हम दोनों के लिए रसोई बनाने को तैयार थी। पत्नी होने के नाते वह एक सीढ़ी और ऊपर चढ गई है। मेरी धारणा है कि वह हम दोनों के लिए माँ के स्तर तक पहुँच गई है। मैंने जब तुमसे उसे अपने पास रखने के लिए पूछा तो तुम नही मानी।"

इतना कहकर डॉ० राव चुप हो गये। रत्ने कुछ नही बोली—मौन बैठी रही। उनके बीच जो नीरवता छायी थी, उसे भग करते हुए डॉ० राव ने कहा—"नजनगूडु से लौटने के पहले दिन, रात्रि के भोजन के पश्चात् मैं श्रोत्रियजी के साथ बाहर गया था न? नदी-किनारे बैठ, हम लोगों ने यही बात की थी। अपने मन का दुखड़ा उन्हे सुनाया था। उन्होंने कहा था कि द्विपत्नी-पद्धति के प्रति जो तिरस्कार है, वह आधुनिकता का एक पहलू है और पूर्णतः गलत नहीं है। किन्तु प्रथम पत्नी के रहते वह विवाह के लिए तैयार हुई, तो किसी महान् ध्येय से ही ऐसा किया है। उसी ध्येय-साधना को सपूर्ण प्रमुखता देकर वह द्विपत्नी-पद्धति के प्रति अपने मन की तिरस्कार भावना कम कर सकती है। समाज के जीवन में व्यक्ति की हर पद्धति का एक विशिष्ट उपयोग रहता है, लेकिन अनिवार्य संदर्भों में उसी पद्धति को महत्त्व नहीं देना चाहिए। जीवन का मूल ध्येय स्पष्ट हो जाने पर, अन्य बातों को उसके अनुरूप ढाल लेना कठिन नहीं होता।"

डॉ० राव ने पुनः पूछा—"अब कहो, जीवन का मूल ध्येय पूर्णतः स्पष्ट हुआ या नही?"

रत्ने कुछ नही बोली। दोनों पुनः मौन बैठे रहे। आधे घण्टे के बाद उठते हुए डॉ० राव ने कहा—"चलो, चलेंगे।" अंधकार था। रत्ने उन-

हाथ थामे चलने लगी। रात को नित्य की भाँति डॉ० राव अध्ययन-कक्ष मे पहुँचे। रत्ने को टाइप करना था, इसलिए वह एक कमरे में टाइप-राइटर के सामने बैठ गई। लेकिन उसका मन काम मे नही लग रहा था। आधा पृष्ठ टाइप करने मे उसने आठ गलतियाँ की। 'की-बोर्ड' से उँगलियाँ हटाकर वह चुपचाप बैठ गई। पति की बातें बार-बार याद आने लगी। वह अपने-आपसे पूछ रही थी—मेरे जीवन का मूल ध्येय स्पष्ट हुआ या नही? अब दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जा रही पति की काया की ओर उसका ध्यान गया। उसने भी यह महसूस किया कि पाँचवें खण्ड का कार्य अपेक्षाकृत धीरे हो रहा है। नागलक्ष्मी के गुण-स्वभाव के बारे मे उसका मन सोचने लगा। उसकी नजर मे नागलक्ष्मी बुरी नही है। एक महीने से अधिक जब वह यहाँ रही, तभी उसके जीवन-क्रम को बारीकी से परखा था। उसके चेहरे पर विषाद छाया रहा। धर्मपत्नी होते हुए भी वह सदा नौकरानी की तरह रसोईघर मे काम करती रही। इसमें मेरा क्या दोष? "मेरी धारणा है कि वह हम दोनो की माँ के स्तर पर पहुँच गई है"—उसे डॉ० राव की बात स्मरण हो आई। रत्ने को लगा कि स्त्री-जीवन के विकास मे नागलक्ष्मी सचमुच मुझसे अगली सीढ़ी पार कर गई है। साथ ही उसे पृथ्वी की भी याद आ गई।

रत्ने के मन मे वैचारिक सघर्ष चल रहा था। विचारो से सम्बन्धित भावो की गति उससे भी तीव्र थी। नई मजिल के पास पहुँच, हर्ष और अव्यक्त मनोव्यथा के साथ, एक सप्ताह बाद उसने अपने पति से कहा—"आप जाकर उन्हें भी ले आइए। तीनों साथ रहेगे।"

इस प्रस्ताव पर डॉ० राव को तुरन्त विश्वास न हुआ। उन्होने गौर से रत्ने का चेहरा देखा। उसकी आँखों से झलक रहे शात-गम्भीर भाव को देखकर उन्हे विश्वास हो गया।

एक बार जाग्रत आशा असफल होने पर नागलक्ष्मी का मन प्रक्षुब्ध हो उठा था। यदि अस्पताल मे ही डॉ० राव उसे नकारात्मक उत्तर देते, तो उसकी आशा-रूपी लता अकुरित ही न होती। अस्पताल मे वे आत्मीयता से बोलते रहे। उससे पहले नागलक्ष्मी के मन मे एक स्वाभिमान था। ...नि की सेवा, उनकी देखभाल के लिए तड़प रहे मन ... शांति के लिए

े उनके साथ रहने का प्रस्ताव किया था। अपने विवाह के बारह वर्ष
मौत के साथ रहना उसे भी पसन्द नहीं था, लेकिन पति-सेवा के
मित्त वह वैसा करने के लिए तैयार थी। अस्पताल से लौटने के पश्चात्
न ने उस बात का जिक्र भी नहीं किया, जिससे उसकी निराशा दुनी
गई। उसे पूर्ण विश्वास था कि बैंगलूर रवाना होने से पूर्व वे इस बारे
अवश्य बात करेंगे। सोचा था, कम-से-कम राज से कहेंगे, 'नागु को यहीं
ड़ जाओ'। ऐसा नहीं हुआ तो अश्रुपूरित नयनों से बँगले से निकल आना
ा।

बँगलूर लौटने के कुछ दिन बाद तक उसे जीवन व्यर्थ प्रतीत होने
ा था। उसे यह चिन्ता सता रही थी कि क्या यह जीवन इतना तुच्छ
? कुछ दिनों तक अपने खानपान में भी कोई नियम नहीं रखा। मैसूर
घटी इस घटना से राज और कात्यायनी को भी बुरा लगा। राज ने
हसूस किया कि रत्ने की चालाकी के कारण भाई ऐसा कर रहे हैं।
किन वह कुछ करने में असमर्थ था। अब भाभी के प्रति पहले की अपेक्षा
अधिक ध्यान देने लगा। जेठानी की मन:स्थिति को जानकर कात्यायनी
का मन द्रवित हो उठा। खाने-पीने के प्रति उसकी उदासीनता देख
कात्यायनी ने एक दिन कहा—"दीदी, 'रामनाम' लेखन की कापियाँ
कितनी समाप्त कर दीं ?"

"मैंने गिनी नहीं।"

"मैसूर से लौटने के पश्चात् आपने शायद कुछ नहीं लिखा है?"

"भगवान् का नाम लिखने से क्या होता है? छोड़ दिया" उसमें
निराशा आ गई थी।

"अपने-अपने पूर्वार्जित कर्म के लिए भगवान् से क्यों नाराज होती
है दीदी? आपको यह बताने की क्या आवश्यकता है? न जाने किस जन्म
के धर्म-कर्म का फल इस जन्म में भोग रहे हैं। इस जन्म में भगवद्-नाम
की ओर दुर्लक्ष्य करके अगले जन्म में कैसे भला होगा? आप 'रामनाम'
लिखकर भक्तिपूर्वक पूजा करें तो आपके देवर के लिए भी अच्छा रहेगा।
आर भविष्य में गृह-कार्य में कम और लिखने में अधिक समय व्यतीत
कीजिए। पृथ्वी के कालेज से लौट आने पर स्याही तैयार कर दूंगी।
कापियाँ कितनी बची हैं?"

नागलक्ष्मी को इतने दिन भगवान् का नाम न लिखना उचित न लगा। अपनी इस गलती के लिए श्रीराम से क्षमा-प्रार्थना की। दूसरे दिन से ही रामनाम लिखना प्रारंभ कर दिया। सुबह का भोजन तैयार करती। दोपहर को नाश्ता बनाती। "आप श्रीरामनाम लिखिए" कहकर रात का रसोई कात्यायनी बनाती। कुछ दिनों में ही नागलक्ष्मी का मन नियंत्रित हो गया। उसका मन उसे समझा रहा था, भले ही कोई मुझे छोड़ दे, राम कभी नही छोडेगा। उसने प्रार्थना की : मैं चालीस पार कर चुकी हूँ। अब मुझे क्या होना है ? राज, कात्यायनी और पृथ्वी सुखी रहें और मैसूर मे 'वे' भी स्वस्थ रहें। मैसूर की घटना को भुला देने का प्रयत्न करती। अपने पति के प्रति अनजाने ही उसके मन मे एक कठोर भाव पल रहा था।

राज-कात्यायनी का मैसूर तबादला होने पर, नागलक्ष्मी वहाँ जाने के लिए उत्सुक नही थी। कात्यायनी मे भी उत्साह न था। राज के लिए दोनों जगहो मे कोई फर्क न था। पृथ्वी को बेंगलूर भाता था। लेकिन कोई उपाय न था। सब मैसूर आ गये। पृथ्वी मैसूर मे कालेज जाने लगा। मैसूर आने के चार दिन बाद ही नागलक्ष्मी का मन विचलित हो उठा। अस्पताल और बँगला उसके सतुलन को विचलित कर देते। लेकिन मनःस्थिति सतुलित कर वह लेखन-कार्य मे लग गई। अब तक पैंतालीस लाख से भी अधिक 'रामनाम' लिख चुकी थी। एक सौ दस नोटबुकें भर गई थी। जल्दी-से-जल्दी, मरने से पहले, एक करोड़ नाम लिखने के दृढ़ सकल्प से वह उसमे अधिक समय देने लगी। शनिवार की पूजा पहले की अपेक्षा अधिक व्यवस्थापूर्वक चलने लगी।

एक दिन दोपहर का एक बजे का समय था। घर के बरामदे मे बैठकर लिखने मे वह लीन थी। घर मे और कोई न था। सब कालेज गये हुए थे। लगा कि किसी ने फाटक खोला है। उसने गर्दन उठाकर देखा। उसे अपनी आँखो पर विश्वास नही हुआ। डॉ० राव चले आ रहे थे। अप्रत्याशित यह बात समझने से पहले ही वे घर मे प्रविष्ट हो चुके थे। नागलक्ष्मी की समझ मे कुछ नही आया। तुरन्त लिखना रोक दिया। सारी चीजे वही छोड़कर भीतर चली गई। डॉ० राव प्रागण मे आकर कुर्सी पर बैठ गये। नागलक्ष्मी का मन पूर्व-घटनाओ को स्मरण कर

दुःखी था। लगभग दस मिनिट बैठने के बाद डॉ० राव ने आवाज दी—"नागु !" वह नही बोली। पुनः आवाज दी। भीतर से उत्तर न पाकर उन्होने पुन. पूछा—"क्या मेरी आवाज सुनाई नही देती ? तुम्हें ले जाने के लिए आया हूँ।"

अब भी वह नही बोली। डॉ० राव ने यही पुनः दुहराया। वह भीतर से बोली—"मैं यहाँ अपनी इस हालत में सुखी हूँ। मुझे ले जाने की जरूरत नही।"

"नागु, तुम ऐसा नाराजगी में कह रही हो। तुम्हारे बेंगलूर चले जाने के बाद से मैं बड़ा दु खी हूँ—पछता रहा हूँ। अब रत्ने भी मान गई है।"

"किसी के मानने से मुझे वहाँ नही जाना है। मैं कही भी नही जाना चाहती" उसकी ध्वनि मे कंपन अनजाने ही बढ गया था।

"ऐसा मत कहो, नागु। सोच-समझकर बोलो। मै आ गया हूँ···।" बीच मे ही उनकी बात काटकर बोली—"कोई भी आये। मै सोच-समझकर ही बोल रही हूँ।"

डॉ० राव पाँच मिनट बैठे रहे। नागलक्ष्मी बाहर नही आई। अत मे खडे होकर उन्होने कहा—"अच्छा नागु, मैं जाता हूँ। तुम सोचो। राज से भी कहता हूँ। चाहो तो रत्ने को ही भेज दूं।"

"राज सब जानता है। राज ही क्यो, किसी के भी कहने पर नहीं जाऊँगी। उससे कहने पर आपकी बात की कीमत कम होगी। मुझे बुलाने के लिए आपकी पत्नी को आने की आवश्यकता नही। किसी के भी घर की चाकरी करूँगी तो दो जून का खाना मिल जायेगा। मेरी भी कोई इज्जत है। आप लौट जाइए।"

वे एक मिनिट खड़े रहे फिर धीरे-धीरे बाहर आ गये। कम्पाउण्ड का फाटक बद करने की आवाज जब नागलक्ष्मी के कानों में पड़ी, तो वह सिसक-सिसककर रो पड़ी।

आध घण्टे बाद कात्यायनी आई। उसने पूछा—"दीदी, लगता है आप रो रही थी ?" नागलक्ष्मी ने इस बारे में कुछ नही बताया। 'रो क्या लाभ', धीरज बँधाकर, कात्यायनी चुप हो गई।

डॉ० राव सीधे पुस्तकालय गये। रत्ने ने पूछा—". उन्होंने ?"

"स्पष्ट कह दिया कि नही आऊँगी । इस उत्तर की मैंने कभी अपेक्षा नहीं की थी ।"

"मैं जाऊँ क्या ?"

"नही, कोई लाभ नही !"

लगभग एक सप्ताह तक डॉ० राव का मन भयानक तूफान-सा उद्वेलित रहा । अब तक वे यही समझ रहे थे कि नागलक्ष्मी पर अपने पतित्व का अधिकार है, लेकिन अब वह भाव छिन्न-भिन्न हो चुका है। किसी अमूल्य वस्तु को खोने-सा उन्हें प्रतीत होने लगा । उनके मन को यह भाव घेरता जा रहा था कि विवाह से पहले वे जिस तरह अनाथालय का विद्यार्थी थे उसी तरह आज भी अनाथ हैं । ऐसी असहायता, दुर्बलता का अनुभव इसके पहले कभी नही किया था । उनका मन कह रहा था, उनके जीवन मे अब तक किये कार्य, प्राप्त यश एवं ज्ञान, असफल हो गये हैं।

डॉ० राव ने अधिक दिनों तक इन भावों को मन पर हावी नही होने दिया । पाँचवा खण्ड उन्हें याद आ रहा था । उनका अत.करण बार-बार पुकार उठता कि वे अब अधिक दिन जीने वाले नहीं है । खण्ड पूर्ण करने के सकल्प को याद कर, साहसपूर्वक एक दिन रत्ने से बोले—"अब मुझे पहले की अपेक्षा अधिक तीव्रता से कार्य करके इस खण्ड को पूर्ण करना है। अब तुम्हारी जिम्मेदारी पहले से अधिक है ।"

रत्ने कार्य में जुट गई।

जो शक्ति जीवन के दो भाग करके निरंतर द्वंद्वों में उलझाती जा रही थी कात्यायनी उसके प्रति चिन्तित थी । वह केवल निरपेक्ष तात्विक विचारों का द्वंद्व नही था, वह तो उसके हृदय, भावना एव मन.स्थिति को चीर उसके जीवन को ही छिन्न-भिन्न किये डाल रहा था। नजनगूडु छोड़ने का निर्णय जो उस समय उचित लग रहा था, वही अब उसे कभी-कभी अनुचित,

गलत लगने लगा। लेकिन उसके लिए राज के त्याग के बारे में सोचती तो तसल्ली मिलती कि किसी अयोग्य व्यक्ति को समर्पित होकर नहीं भागी हूँ! नंजनगूडु के श्रोत्रियजी के परिवार के बारे में जिस दिन रत्ने से सुना था, उसी दिन से मन अशांत हो उठा है—एक भयानक तूफान उठा है। एक ओर अपने पुत्र चीनी की याद कर उसे देखने के लिए तिलमिलाहट होती, दूसरी ओर श्रोत्रियजी का चित्र आँखों के सामने आ जाता। पत्नी को खोकर भी, इस ढलती उम्र में पोते के लिए कैसा कर्त्तव्यनिष्ठ जीवन बिता रहे हैं! रत्ने की बात उसे याद आ रही थी—'संकल्प-शक्ति और कर्त्तव्य-ज्ञान उनके जीवन के पथ-प्रदर्शक हैं।' वह जानती थी कि उनकी संकल्प-शक्ति अगाध है। जीवन के प्रति उनका विश्वास ही इतना गहरा था। हम अपने आपको अनन्य भाव से धर्म को सौंप दें, तो वह धर्म ही हमारा हाथ पकड़कर चलाता है—इस विश्वास से उन्होंने जीवन बिताया है। यह अनन्य भाव उनमें कर्त्तव्य-ज्ञान के रूप में प्रकट होता है। उनके जीवन में दो प्रवृत्तियों, दो दृष्टियों, दो ध्येयों को कोई स्थान नहीं है। अपनी जीवन-दृष्टि के योग्य कर्त्तव्यों में लीन हो, चंचल प्रवृत्तियों को प्रबल प्रयत्नों से वश में कर, वे जीवन-शक्ति की रक्षा कर लेते हैं। यही उनकी मन शांति का रहस्य है।—इसी तरह वह सोच रही थी।

अपने जीवन में ऐसी स्थिति आई थी तब उसने माना था—'प्रकृति चिर-चेतन, चिर-नूतन है, उसे धर्म में बाँधना अधर्म है।' प्रकृति की क्षुद्र मूल-शक्ति ने उसकी बुद्धि फेर दी थी। वह नहीं जानती थी कि बुद्धि भी प्रकृति का ही अंश है। अब वह सोचने लगी है कि धर्म बुद्धि से श्रेष्ठ है, अपनी प्रवृत्तियाँ उस पर निछावर कर देनी चाहिए। 'एक वंश की अभिवृद्धि के लिए दूसरे वंश के क्षेत्र को दान कर, उस वंश के बीज को अपने में धारण कर वृक्ष-रूप ग्रहण करने के पश्चात् वह क्षेत्र अपने सार्थक्य को पाता है।' *श्रोत्रियजी की यह बात उसे याद आ रही थी।* नये वंश को अर्पित होकर श्रोत्रियजी के परिवार के प्रति जो कर्त्तव्य उसे करना चाहिए था, उसने वह नहीं किया—यह भाव उसे तड़पा रहा था। वह सोच रही थी: मरते समय सास और इस बुढ़ापे में ससुर की सेवा करके बेटे का पालन-पोषण करती तो मेरे जीवन में यह द्वन्द्व न उठता।

गर्मी की छुट्टियों के पश्चात् कालेज खुला। विद्यार्थियों का प्रवेश

पूरा न होने के कारण पढ़ाई प्रारंभ नही हुई थी। ज्येष्ठ मास की मूसलाधार वर्षा प्रारंभ हो गई थी। कात्यायनी छाता लेकर कालेज जाती। राज की अनुपस्थिति मे जो नाटक संघ बंद हो गया था, उसका अब राज ने पुनरुद्धार किया है। नाटक के रिहर्सल के लिए राज साइकिल से जाया करता था। वर्षा की बूंदें गिरने पर कात्यायनी को नजनगूडु का स्मरण हो आता। इसी समय कपिला भर आती है। सोलह वर्ष पहले इसी ऋतु मे एक दिन उसका पहला पति नंजुड श्रोत्रिय इस नदी मे डूब गया था। ऐसा न होता तो उसके जीवन मे यह द्वन्द्व ही न उठता—वह इस विचार मे बह जाती थी। पहले पति के स्मरण के साथ उसे चीनी की याद सताने लगती। साथ मे श्रोत्रियजी का भी स्मरण हो आता। एक दिन नजनगूडु जाकर चीनी को देखने और श्रोत्रियजी के चरण-स्पर्श करने को मन हुआ, जिससे मन को शांति मिले। लेकिन वहाँ जाने मे उसे डर भी लगा : मैं जाऊँ तो क्या वे कठोर वचन नही बोलेंगे? क्या पश्चात्तापवश उनके चरण छूने पर वे सहानुभूति से मुझे आशीर्वाद देंगे? क्या चीनी को देख सकूँगी? कुछ दिनों के अन्तर से वहाँ जाती रहती तो मन को सान्त्वना मिलती रहती। इन्ही विचारों मे उसने तीन-चार दिन बिता दिये। लेकिन जाने का साहस न कर सकी। कालेज मे नियमित रूप से पढाई प्रारंभ होने वाली थी। इस विचार से कि अब पढ़ाई की तैयारी करने और पढ़ाने से दिल बहल जायेगा, मन की व्याकुलता घटेगी। पहले दिन का कोर्स तैयार करके वह कालेज गई। वहाँ पता लगा कि कालेज के एक भूतपूर्व प्राध्यापक की मृत्यु हो गई है, अत. उन्हे श्रद्धांजलि देने के लिए आज कालेज बंद रहेगा। विद्यार्थी अपने-अपने घर लौटने लगे थे। प्राध्यापकों के कक्ष मे कोई न था। बाहर पानी बरस रहा था। कात्यायनी वही बैठ गई। उसका अत.करण आज नजनगूडु जाना चाहता था। उसका चित्त इतना व्यग्र हो उठा कि वह महसूस करने लगी कि अगर आज नजनगूडु नही गई तो अवश्य पागल हो जायेगी। बिना अधिक सोचे उठी। अपनी किताबें एवं नोटबुक अलमारी मे रखी और बाहर निकल पड़ी। पानी अब भी बरस रहा था। वह छाता खोल सीधे चामराजपुर स्टेशन की ओर चल पड़ी। नजनगूडु लौटने वाली बड़ी-सी छात्र-सेना भी वहाँ उपस्थित थी। आध घण्टे बाद ट्रेन आई। कात्यायनी

महिलाओं के डिब्बे में जा बैठी।

ट्रेन यात्रा मे उसे अपना विद्यार्थी-जीवन याद आने लगा। दो वर्ष तक वह इसी गाड़ी से आती-जाती थी। इसी मौसम में उसका मन दूसरे के प्रति आसक्त हुआ था। दक्षिण मैसूर स्टेशन पार करने के बाद चामुंडी पहाड़ी पर उसकी दृष्टि पडी। वह दिन स्मरण हो आया जब वह अकेली इसके शिखर पर पहुँची थी। सोचने लगी : उस दिन पहाड़ी की चोटी पर बैठकर जो संकल्प किया था, यदि उसी के अनुसार चलती होती तो आज यह नौवत न आती। पहाड़ी के साथ-साथ श्रोत्रियजी का चित्र भी आँखों में समाने लगा। स्टेशनों को पार करती जा रही ट्रेन कपिला नदी के पुल से गुजर रही थी। खिड़की से पूरी नदी उसने देखी। उसी गभीरता से नदी वह रही थी। दोनों किनारे के वृक्ष खड़े थे। दूर से दिखाई दे रहे मदिर, स्नान-घाट अपनी उम्र की दुहाई दे रहे थे। चार मिनट मे नंजनगूड़ पहुँची। ट्रेन से उतरी तो कात्यायनी का हृदय काँपने लगा। विद्यार्थी और दूसरे यात्री स्टेशन से चले गये थे, किन्तु वह वही खड़ी रही। स्टेशन से बाहर जाने की हिम्मत ही नही हो रही थी। लगभग पद्रह मिनट तक इसी अनिर्णय में गोते खाती रही कि टिकट कलेक्टर ने आकर टिकट माँगा। टिकट देकर बाहर आई। आगे बढते हुए वह डर रही थी कि रास्ते मे कोई परिचित न मिल जाय। वर्षा के कारण रास्ते मे कोई नही था। सीधे जाकर घर के सामने खड़ी हो गई, जो कभी उसका था।

द्वार बद था, किन्तु ताला नही लगा था। उसे याद आया कि वर्षा के दिनों में घर का द्वार पहले भी बंद रखा जाता था। सीढ़ियों पर पड़ी छाप से लग रहा था कि कोई अभी-अभी बूट पहने बाहर से भीतर गया है। इच्छा हुई कि द्वार खोलकर भीतर जाय। लेकिन अन्तस् से निकल रहे अधैर्य के धुएँ ने उसे घेर लिया। सारा शरीर काँपने लगा। वह देख रही थी कि उसके हाथ-पैर जोर-जोर से काँप रहे है। वर्षा और ठिठुरा देनेवाली ठड में भी उसका सारा शरीर एकबारगी पसीने से तर हो गया। उसमें अव्यक्त भय समा गया था। सोचने का प्रयत्न कि ऐसा क्यों? लेकिन बुद्धि निष्क्रिय हो चुकी थी। दरवाजे पर के लिए हाथ उठाना चाहा, लेकिन असफल रही। इतने

किसी के बोलने की आवाज सुनाई दी। सोचा, कोई न कोई बाहर आयेगा तो द्वार खोलेगा और मुझे देखेगा। भय से वह स्तंभित हो गयी और अनजाने ही लौट पड़ी। कदम रास्ते पर पड़ रहे थे। वर्षा में छाता खोलना भी भूल गयी थी। वह वापस लौट रही थी। स्टेशन पहुँचने पर ही उसे होश आया।

प्लेटफार्म पर एक मालगाड़ी खड़ी थी। सामने से आ रहे एक कुली से पूछा—"मैसूर की गाडी कितने बजे आयेगी?" उत्तर मिला—"इस मालगाड़ी मे एक पैसेंजर-कैरिज लगा है, बैठ जाइये।"

टिकट लिया, मालगाड़ी के पीछे लगी उस 'बोगी' में बैठ गयी। कुछ ग्रामीणों के अलावा अधिक यात्री नही थे। गाडी वहाँ से चली। नदी के पुल को पार करने तक कात्यायनी का शरीर कांपता रहा।

दूसरे दिन भी वर्षा हो रही थी। पिछले दिन कात्यायनी को रात-भर नींद न आने के कारण आज वह खोयी-खोयी-सी रही। उसे साढ़े दस बजे जूनियर इंटरमीडिएट कक्षा में पहला पाठ लेना था। कक्षा में उसके प्रविष्ट होते ही विद्यार्थी खड़े हो गये। उन्हें भी कालेज की पढ़ाई का यह प्रथम अनुभव था। कुर्सी पर बैठकर कात्यायनी उपस्थिति लेने लगी। लगभग एक सौ बीस विद्यार्थियों के नाम पुकारकर अन्यों के नाम की ओर न देख, उपस्थिति का चिह्न लगा दिया। कक्षा की खिड़की से चामुंडी पहाड़ी दीख रही थी। कल की तरह ही आज भी उसकी चोटी बादलों से आवृत है। फिर भी वह गंभीरता लिए अटल खड़ी थी। उसमें फले हरे वृक्ष, बादलों के कुहरे से काले प्रतीत हो रहे थे। रंग पहाड़ी को गंभीर रूप प्रदान कर रहा था। उपस्थिति रजिस्टर मेज पर रख, पहाड़ी को देखती रही। पढ़ाने की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। पाँच मिनट चुपचाप बैठे रहने के बाद विद्यार्थी अब धीरे-धीरे फुसफुसाने लगे। दो मिनट बाद उनकी आवाज तेज होने लगी। उसने अपनी दृष्टि पहाड़ी से हटा, खड़े होकर कहा—"पेटेंस साइलेंस प्लीज।"

विद्यार्थी चुप हो गये। इस वर्ष जो काव्य पढ़ाना था, वह पढ़ाना प्रारंभ करने ही वाली थी कि द्वार से एक विद्यार्थी ने पूछा—"मे आई कम इन?"

"कम इन" कहकर द्वार की ओर घूमकर देखा। उसका चेहरा गम्भीर था। आँखें उसी लड़के पर अटकी रहीं। विशाल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, लंबी नाक, ऊँचा शरीर, सँवरे बाल, भाल पर अक्षत का टीका। कमीज पैंट के अन्दर और पैरों में जूते थे। हाथ में भीगा छाता। उसके ढंग से पता लगता था कि वह उन कपड़ों को पहनने का अभ्यस्त नहीं है। श्रोत्रियजी-सा ही गठा शरीर, ऊँचाई और मुखमुद्रा। मेरे पहले पति भी लगभग ऐसे ही थे—कात्यायनी ने सोचा।

लड़का दीवार के पास से चलकर पीछे वाली एक खाली बेंच पर बैठ गया। कात्यायनी की आँखें उसे ही देख रही थीं। इतने में विद्यार्थियों ने पुन. फुसफुसाना शुरू किया। पुस्तक खोलकर उसने पढ़ाना प्रारम्भ किया। वह दो वाक्य भी बोल न पाई थी कि उसी लड़के के पास के विद्यार्थी ने उससे कुछ कहा। उसने खड़े होकर कहा—"मैडम, मेरी उपस्थिति ?"

कात्यायनी का ध्यान पुनः उसकी ओर गया। उसे देखते हुए मेज पर रखा उपस्थिति रजिस्टर उठाकर पूछा—"युअर नेम प्लीज ?"

"एन० श्रीनिवास श्रोत्रिय।"

वही चेहरा ! बचपन में भी उसकी मुखमुद्रा ऐसी ही थी ! वह पास आ ही गया। लेकिन अध्यापिका को वहाँ खड़े पाकर, सिर झुकाकर बायें हाथ की पुस्तकों को हाईस्कूल के विद्यार्थियों की तरह छाती से सटाकर दरवाजे से बाहर निकल गया। उसने कात्यायनी से बात नही की। कात्यायनी को बड़ी निराशा और असह्य वेदना हुई।

धीरे-धीरे चलकर वह प्राध्यापकों के कमरे मे बैठ गयी। एक कागज लेकर लिखा· 'दोपहर का पाठ मै नही ले सकूँगी।' उसे चपरासी को देकर नोटिस बोर्ड पर लगाने का आदेश दिया और घर चल दी। इस बात का उसे असह्य दु.ख हो रहा था कि चीनी ने अपनी माँ को नही पहचाना। लेकिन शाम तक वह अपने मन को समझाने मे समर्थ हो गयी। मैं जान गयी कि वह कौन है। लेकिन वह कैसे जान सकता है कि मैं कौन हूँ ? यद्यपि रत्ने ने कहा था कि वह माँ के बारे में जानता है, फिर भी उसे क्या मालूम कि मैं ही उसकी माँ हूँ ? आज कालेज का प्रथम दिन और पहली पढाई थी। मेरा नाम उसे शायद ही मालूम हो ! नाम जानने पर अपने-आप मुझे पहचानेगा—आदि सोचकर मन को सान्त्वना दी और रात बितायी। दूसरे दिन उसे वह कक्षा नही लेनी थी। उसके अगले दिन फिर साढ़े दस बजे कक्षा लेनी थी।

अगले दिन उपस्थिति रजिस्टर लिये कक्षा में प्रवेश करने से पहले ही सब विद्यार्थी आ चुके थे। कुर्सी के समीप जाते ही उसने अतिम बेंच की ओर नजर दौड़ाई। चीनी आ चुका था। उसी बेंच पर बैठा था। उसने भी कात्यायनी की ओर देखा। क्या वह मुझे पहचानता है ? उसमें यह आशा जागी कि आज पढ़ाई पूरी होने के पश्चात् वह आकर मुझ से बोलेगा। उपस्थिति लेते समय बिना भूले चीनी का नाम पुकारा। उसके खड़े हो-कर 'प्रेजेन्ट मैडम' कहते समय उसका मुख देखने लगी। पुस्तक खोली, पढ़ाई शुरू की। बीच-बीच मे चीनी को ध्यान से देखती जाती। लेकिन उसका ध्यान पुस्तक की ओर ही था। पेन से नये शब्दो के अर्थ लिख रहा था। कात्यायनी किसी तरह पढ़ा रही थी। विद्यार्थी भी नि.शब्द हो सुन रहे थे। घंटी बजी। कात्यायनी पुस्तक बद कर, उत्सुकतापूर्वक कक्षा के द्वार के बाहर आकर खड़ी हो गयी। एक और पीरियड होने के कारण कोई विद्यार्थी बाहर नही निकला। चीनी भी नही निकला। इस आशा

से पाँच मिनट तक वही प्रतीक्षा करती रही कि चीनी उससे मिलने आयेगा। पढ़ाने के लिए दूसरे अध्यापक को दूर से आते देख, वह वहाँ से चल दी।

शका हुई कि क्या वह उसे पहचानता है? उन्हे पढ़ाने वाले अध्यापक-अध्यापिकाओं के नाम विद्यार्थी पहले ही दिन जान लेते हैं। वह मेरा नाम जानता होगा। अपनी माँ का नाम, और अब वह क्या कर रही है, इस विषय मे क्या वह कुछ भी नही जानता?—कात्यायनी के मन मे अनेक प्रश्न उठ रहे थे। यदि केवल दादा के साथ ही रहता तो इस बारे मे शायद कुछ न भी जानता, लेकिन मरने से पहले दादी ने पूरी कहानी कह डाली होगी। लक्ष्मी ने भी इस बारे में कुछ तो अवश्य कहा होगा—उसने तर्क किया। यह प्रश्न भी उठा कि क्या वह मुझे, मेरी पहचान को अस्वीकार कर रहा है? तब उसे लगा मानो कोई त्रिशूल से उसकी कोख बेंध रहा हो। मन यह सान्त्वना देकर कि उसने इतने दिन बिताये, अब विषय को पूर्ण जाने बिना दुःख करना उचित नही। उस दिन उसे दोपहर के तीन बजे वहीं कक्षा लेनी थी। कक्षा मे जाकर उसने पढाना शुरू किया। घंटी के बाद बाहर आकर खडी हो गयी। रोज की तरह सब विद्यार्थियों के निकलने के बाद वह आ रहा था। यह जानते हुए भी कि अध्यापिका वहाँ खड़ी है, वह बिना देखे जाने लगा! कात्यायनी ने उसे आवाज दी—"श्रीनिवास!"

वह रुक गया। अन्य विद्यार्थी आगे बढ़ गये। उसका साथी दस गज दूर जाकर खड़ा हो गया था। कात्यायनी ने उसे देखकर कहा—"तुम जाओ, वह बाद में आयेगा।" वह चीनी की ओर देखता हुआ चला गया।

श्रीनिवास श्रोत्रिय सिर झुकाये खड़ा था। यह देखकर कात्यायनी ने पूछा—"कहाँ के रहने वाले हो?"

"नंजनगूड, मैडम!"

"तुम्हें रोज आना-जाना पड़ता है न?"

"जी हाँ!"

"रेल से?"

"जी हाँ!"

वही चेहरा ! बचपन में भी उसकी मुखमुद्रा ऐसी ही थी ! वह पास आ ही गया। लेकिन अध्यापिका को वहाँ खड़े पाकर, सिर झुकाकर बायें हाथ की पुस्तकों को हाईस्कूल के विद्यार्थियों की तरह छाती से सटाकर दरवाजे से बाहर निकल गया। उसने कात्यायनी से बात नहीं की। कात्यायनी को बड़ी निराशा और असह्य वेदना हुई।

धीरे-धीरे चलकर वह प्राध्यापकों के कमरे में बैठ गयी। एक कागज लेकर लिखा 'दोपहर का पाठ मैं नहीं ले सकूँगी।' उसे चपरासी को देकर नोटिस बोर्ड पर लगाने का आदेश दिया और घर चल दी। इस बात का उसे असह्य दु:ख हो रहा था कि चीनी ने अपनी माँ को नहीं पहचाना। लेकिन शाम तक वह अपने मन को समझाने में समर्थ हो गयी। मैं जान गयी कि वह कौन है। लेकिन वह कैसे जान सकता है कि मैं कौन हूँ? यद्यपि रत्ने ने कहा था कि वह माँ के बारे में जानता है, फिर भी उसे क्या मालूम कि मैं ही उसकी माँ हूँ? आज कालेज का प्रथम दिन और पहली पढ़ाई थी। मेरा नाम उसे शायद ही मालूम हो ! नाम जानने पर अपने-आप मुझे पहचानेगा—आदि सोचकर मन को सान्त्वना दी और रात बितायी। दूसरे दिन उसे वह कक्षा नहीं लेनी थी। उसके अगले दिन फिर साढ़े दस बजे कक्षा लेनी थी।

अगले दिन उपस्थिति रजिस्टर लिये कक्षा में प्रवेश करने से पहले ही सब विद्यार्थी आ चुके थे। कुर्सी के समीप जाते ही उसने अंतिम बेंच की ओर नजर दौड़ाई। चीनी आ चुका था। उसी बेंच पर बैठा था। उसने भी कात्यायनी की ओर देखा। क्या वह मुझे पहचानता है? उसमें यह आशा जागी कि आज पढ़ाई पूरी होने के पश्चात् वह आकर मुझ से बोलेगा। उपस्थिति लेते समय बिना भूले चीनी का नाम पुकारा। उसके खड़े होकर 'प्रेजेन्ट मैडम' कहते समय उसका मुख देखने लगी। पुस्तक खोली, पढ़ाई शुरू की। बीच-बीच में चीनी को ध्यान से देखती जाती। लेकिन उसका ध्यान पुस्तक की ओर ही था। पेन से नये शब्दों के अर्थ लिख रहा था। कात्यायनी किसी तरह पढ़ा रही थी। विद्यार्थी भी निःशब्द हो सुन रहे थे। घंटी बजी। कात्यायनी पुस्तक बंद कर, उत्सुकतापूर्वक कक्षा के द्वार के बाहर आकर खड़ी हो गयी। एक और पीरियड होने के कारण कोई विद्यार्थी बाहर नहीं निकला। चीनी भी नहीं निकला। इस आशा

से पाँच मिनट तक वही प्रतीक्षा करती रही कि चीनी उससे मिलने आयेगा। पढाने के लिए दूसरे अध्यापक को दूर से आते देख, वह वहाँ से चल दी।

शका हुई कि क्या वह उसे पहचानता है ? उन्हे पढ़ाने वाले अध्यापक-अध्यापिकाओ के नाम विद्यार्थी पहले ही दिन जान लेते है। वह मेरा नाम जानता होगा ! अपनी माँ का नाम, और अव वह क्या कर रही है, इस विषय मे क्या वह कुछ भी नही जानता ?—कात्यायनी के मन मे अनेक प्रश्न उठ रहे थे। यदि केवल दादा के साथ ही रहता तो इस बारे में शायद कुछ न भी जानता, लेकिन मरने से पहले दादी ने पूरी कहानी कह डाली होगी। लक्ष्मी ने भी इस बारे में कुछ तो अवश्य कहा होगा—उसने तर्क किया। यह प्रश्न भी उठा कि क्या वह मुझे, मेरी पहचान को अस्वीकार कर रहा है ? तब उसे लगा मानो कोई त्रिशूल से उसकी कोख बेध रहा हो। मन यह सान्त्वना देकर कि उसने इतने दिन विताये, अब विषय को पूर्ण जाने बिना दु.ख करना उचित नहीं। उस दिन उसे दोपहर के तीन बजे वही कक्षा लेनी थी। कक्षा मे जाकर उसने पढ़ाना शुरू किया। घटी के बाद बाहर आकर खड़ी हो गयी। रोज की तरह सब विद्यार्थियों के निकलने के बाद वह आ रहा था। यह जानते हुए भी कि अध्यापिका वहाँ खडी है, वह बिना देखे जाने लगा ! कात्यायनी ने उसे आवाज दी—"श्रीनिवास !"

वह रुक गया। अन्य विद्यार्थी आगे बढ़ गये। उसका साथी दस गज दूर जाकर खड़ा हो गया था। कात्यायनी ने उसे देखकर कहा—"तुम जाओ, वह बाद मे आयेगा।" वह चीनी की ओर देखता हुआ चला गया।

श्रीनिवास श्रोत्रिय सिर झुकाये खड़ा था। यह देखकर कात्यायनी ने पूछा—"कहाँ के रहने वाले हो ?"

"नजनगूड, मैडम !"

"तुम्हें रोज आना-जाना पड़ता है न ?"

"जी हाँ !"

"रेल से ?"

"जी हाँ !"

महसूस किया। पृथ्वी दूकान से सिरदर्द की गोलियाँ लाया। आज राज की आँख जल्दी लग गयी। कात्यायनी करवटे बदलती रही। उसे लगा मानो चीनी उसे धिक्कार रहा है, घूर-घूरकर देख रहा है। आधी रात को उसकी आँख लगी। उसने एक स्वप्न देखा—"नही मैंडम, मुझे देर हो रही है" कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसके चले जाने का चित्र कात्यायनी की आँखो के सामने बार-बार आ रहा है। वह जाग उठी। सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। शरीर भारी-सा प्रतीत होने लगा। इन विचारों से बचने का कोई उपाय नही सूझ रहा था। उसी पलग पर सोये राज की ओर करवट लेकर उसका आलिगन किया। उसे लगा कि एक तरह का सरक्षण मिला। कसकर आलिगन कर उसे अपने पास खीच लिया। राज जाग उठा। उसके ललाट पर हाथ रखा। "अरे तुम्हें तो बुखार है, पसीने से सारा शरीर तर हो गया है!"—वह उठ बैठा। कात्यायनी को रोना आ गया। पति की गोद में सिर रखकर वह सिसक पड़ी। राज कुछ समझ न पाया। बार-बार पूछने पर भी कात्यायनी ने कारण नही बताया।

कात्यायनी एक सप्ताह बुखार से छटपटाती रही। बीमारी से मुक्त होकर कालेज जाने लगी। कुर्सी पर बैठे-बैठे ही धीमी आवाज मे पढ़ाती। श्रीनिवास श्रोत्रिय कालेज आता था। उसी बेंच पर बैठता था। उसने अपने मन को काबू मे रखने का पूरा प्रयास किया, किन्तु असमर्थ रही। वह बार-बार उसे देखती। चीनी तो सिर झुकाये पुस्तक की ओर नजर रखता। बीच-बीच मे नये शब्दों के अर्थ लिख लेता। 'वह मुझे नही पहचानता' यही सोचकर कात्यायनी अपने मन को समझाती रही। उसने निश्चय किया कि एक दिन पुन: चीनी को बुलाकर अपना परिचय दूँ।

एक दिन साढ़े दस बजे चीनी का पीरियड था। स्टाफ रूम में दस पैंतीस पर कात्यायनी ने चपरासी को बुलाकर कहा—"जूनियर इटर साइन्स, 'डी' सैक्सन में एन० श्रीनिवास श्रोत्रिय नाम का एक विद्यार्थी है, उससे कहो कि मैंने बुलाया है। साथ ही विद्यार्थियों से कहो कि मैं आज कक्षा नहीं लूंगी।"

पाँच मिनट में चपरासी लौट आया। उसके पीछे

था। उसकी बाई कलाई मे घड़ी और हाथ में किताबें तथा दाहिने हाथ मे छाता था। उसके आने पर कात्यायनी खड़े होकर बोली—"आज गाड़ी के लिए देर नही होगी, चलो हमारे घर बेटा ! मेरे निमत्रण को तुम्हें ठुकराना नही चाहिए।"

कोई जवाब दिये बिना लडका मेज की ओर देखता रहा। उसे बोलने का मौका न देकर कात्यायनी उसका हाथ पकड़कर बोली—"चलो, घर चलें।" उसने अनुसरण किया। उस दिन वर्षा नही हो रही थी। कात्यायनी आगे-आगे चल रही थी और पीछे-पीछे चीनी। कालेज कैंपस से निकलकर रामस्वामी चौक से आगे बढ़े तो उसकी ओर देखकर बोली—"साथ-साथ चलो। सकोच से मेरे पीछे-पीछे क्यो चलते हो !" और खुद चीनी के साथ चलने लगी। उस दिन जूतों के बदले चप्पलें पहन रखी थी। जूते के काटने से घाव दिखाई दे रहा था। रास्ते मे उसे सूझा नही कि क्या बोलना चाहिए। चीनी तो कर्त्तव्यनिष्ठ विद्यार्थी-सा साथ चल रहा था।

घर में नागलक्ष्मी अकेली थी और रसोईघर मे रामनाम लिखने में मग्न थी। राज और पृथ्वी कालेज गये हुए थे। नागलक्ष्मी ने कभी-कभी राज या कात्यायनी के विद्यार्थियो को घर आते देखा था, इसलिए बिना सिर उठाये वह रामनाम लिखने मे लगी रही। भीतर से एक प्लेट मे दही-भात, एक गिलास पानी और एक गिलास दूध लेकर कात्यायनी आई। उन्हें मेज पर रख, चीनी को पास बुलाया। चप्पलो को बाहर दरवाजे के पास छोडकर वह कमरे में कात्यायनी की बतायी कुर्सी पर बैठ गया। उसका मुख सकोच व सभ्रांतिवश लाल हो उठा था। परिस्थितिवश अनभिज्ञ भाव से दृष्टि झुकाये रहने पर भी लगता था कि वह कुछ सोच रहा है।

"यह लो खाओ" कहकर कमरे का द्वार बद कर, कात्यायनी उसके सामने वाली कुर्सी पर बैठ गयी।

"नही मैडम, मेरा भोजन हो चुका है।"

"यह भोजन नही है। थोड़ा-सा खा लो। गुरु की दी हुई चीज को अस्वीकार नही करना चाहिए।"

प्लेट को स्पर्श किये बिना वह बोला—"यह मेरे लिए अधिक है।"

"जितना खा सकते हो, उतना ही खाओ।"

उसने प्लेट उठाई और चम्मच एक तरफ रख हाथ से खाने लगा।

कात्यायनी ने पूछा—"घर नजनगूडु मे बताया था न ?"

"जी हाँ।"

"तुम्हारे पिताजी का नाम क्या है ?"

"नजुड श्रोत्रिय।"

"माता-पिता है ?"

"जी नही।"

"दोनों नहीं है ?"

"नही।" वह सिर झुकाये ही उत्तर दे रहा था। वास्तव में दही-भात उसे नही चाहिए था। यह समझ कात्यायनी बोली—"ज्यादा हो तो प्लेट छोड दो और उसी में हाथ धो लो।" प्लेट नीचे जमीन पर रख, पानी का लोटा उठाया और खिडकी के सीकचों के बाहर हाथ बढ़ाकर धोया। आकर फिर कुर्सी पर बैठ गया। कात्यायनी पूछने लगी—"तुम्हारी देखभाल कौन करता है ?"

"मेरे दादा।"

"क्या नाम है उनका ?"

"श्रीनिवास श्रोत्रिय।"

"तुम्हारी देखभाल में तुम्हारे अकेले दादा को कष्ट होता होगा।" चीनी ने इसका कोई उत्तर नही दिया। पुन: बात करने का कोई उपाय न सूझा। पाँच मिनट तक कुछ सोचने के बाद कात्यायनी ने कहा—"हमारे एक सबंधी नजनगुडू से अच्छे परिचित हैं। उन्होंने बताया था कि तुम छोटे बच्चे थे तभी तुम्हारे पिता नदी में डूबकर स्वर्गवासी हो गये और तुम्हारी माँ जिंदा है।"

चीनी कुछ न बोला। नजर नीचे जमीन में गड़ाये रहा। "है न ?" कात्यायनी ने पूछा। "मैं नही जानता" उसका उत्तर था। फिर पाँच मिनट तक दोनों मौन बैठे रहे। पुन: पूछा—"तुम्हें अपनी माँ को देखने का स्मरण है ?"

"नही।"

"मैंने सुना है कि वह जीवित है। तुम्हारे घर में उसके बारे में कोई

कुछ नही कहता ?"

"नहीं।"

फिर मौन। "तुम्हे माँ को देखने की इच्छा नहीं होती ?"

वह कुछ न बोला। निश्चल पाषाण मूर्ति की भांति सिर झुकाये देखता रहा। उसने फिर पूछा—"अपनी माँ को देखने की इच्छा नही होती ? बेटे उत्तर दो।"

फिर भी वह न बोला। कात्यायनी ने फिर वही प्रश्न दुहराया तो उसने धीरे से कंपित स्वर मे कहा—"नहीं।"

कात्यायनी के हृदय पर मानो पहाड़ टूट पडा। इस उत्तर से उसकी सारी आशाएँ चकनाचूर हो गयी। क्षण-भर भ्रमित रही। सिर चकराने लगा। आँखें मूँदे कुर्सी से पीठ टिका ली। पाँच मिनट निर्जीव-सी बैठी रही। चीनी को देखा। वह जमीन की ओर ही ताक रहा था। आँख, नाक, मुख, ऊँचा शरीर—सबमे अपने दादा से साम्य रखता है। नीचे का कुछ मोटा-सा अधर, निश्चल दृष्टि दादा की सकल्प-शक्ति का स्मरण दिला रही थी। कात्यायनी की इतनी बातो का नकारात्मक उत्तर देकर वह यह सकेत कर चुका है कि उसे इस बारे मे रुचि नही है। कात्यायनी का अन्त.करण तो कह रहा था कि चीनी उसे पहचानता है। फिर भी उसने एक प्रश्न और पूछा—"तुम्हारी माँ यही है। वह मेरी अच्छी सहेली है। तुम्हे देखने के लिए छटपटा रही है। बुलाऊँ उसे ?"

वह नही बोला। "उत्तर दो बेटे"—उसने पुनः कहा। अब भी वह मौन रहा।

"तुम बोलते क्यों नही ? ठहरो, मैं उन्हे बुला लाती हूँ।"

"नही, मैंडम !"

कात्यायनी को पुनः एक बार मूर्च्छा-सी आ गयी। आँखों को आधा मूँदकर उसने कुर्सी की टेक ली। "मुझे देर हो रही है, मैंडम," कहकर चीनी खड़ा हो गया। कात्यायनी ने धीरे से आँखे खोलकर देखा। द्वार खोलकर सिर झुकाये वह चला गया। कात्यायनी उसे देखती ही रह गयी। उस अर्ध-मूर्च्छावस्था मे उसका हाथ पकड़कर रोकने की शक्ति उसमें नही थी। 'ठहरो, मत जाओ'—कहने की शक्ति जबान मे नही थी। द्वार के बाहर चप्पल पहनकर चलने की आवाज आई। कात्यायनी ने खिड़की

की ओर देखा। मार्ग मे भी वह सिर झुकाये ऐसे चला जा रहा था मानो सिर, भीतर से, शरीर की अपेक्षा अधिक भारी हो। कपिला के प्रवाह से भी तीव्र रुलाई उमड आई। मन-ही-मन उसने कहा—चीनी, तू मेरा बेटा है, मेरे गर्भ से जन्मा है। मुझे इस तरह मत मार। और कुर्सी छोडकर जमीन पर लेट गयी। जोर-जोर की रुलाई की आवाज कही नागलक्ष्मी न सुन ले, उसने आँचल मुंह मे भर लिया। लेकिन ऐसे महा-ज्वार के सम्मुख यह छोटा बांध कहाँ टिक सकता था ?

जमीन पर लेटी-लेटी वह सोच रही थी—कैसा क्रूर तिरस्कार! अपनी माँ के ही सम्मुख बैठकर, किसी को भी पिघला देने वाली बात उसी से सुन रहा था किन्तु फिर भी निर्ममता से, निरासक्त भाव से हर प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देता था। कोई और होता तो इतनी बात करते-करते कम-से-कम एक बार आँसू बहा देता। 'माँ' कहकर पास आ जाता। वह तो पाषाण मूर्तिवत् बैठा रहा। अन्त में 'मुझे देर हो रही है, मैडम, कहकर ऐसे चला गया मानो कुछ जानता ही नही। यह क्या उसके स्वभाव में निहित कठोर हृदय है या अपने दादा से इस उम्र में ही सीखी चित्त की सम-स्थिति है? उसे श्रोत्रियजी की याद आई। दूसरों के हृदय फट जानेवाली परिस्थिति मे भी वे शांत रहते थे। चीनी के चेहरे पर वह शांति नही थी। किन्तु हृदयविदारक विषय को सहने की संकल्प-शक्ति एवं कठोरता उसमे थी।

शाम के पाँच बजे राज घर लौटा। कात्यायनी अब भी जमीन पर लेटी सोच रही थी। उसका चेहरा देखकर राज ने पूछा—"अरे! लेट क्यों गईं? लगता है बहुत रोई हो?"

"कुछ भी नहीं" वह उठ बैठी।

"मुझसे नही कहोगी? बात क्या है?"

"कुछ नही, पहले की घटना है।"

राज को वे दिन याद आये जब तीन बार गर्भपात के कारण पत्नी बीमार हो गयी थी। इससे उसे दुःख हुआ। "उसे याद करके क्या मिलने वाला है?" पति ने सान्त्वना दी। उस रात कात्यायनी को बुखार आ गया था। उसके पास बैठकर राज ने देखभाल की थी। इजेक्शन दिल था। नागलक्ष्मी धीरज बंधा रही थी। तीसरे दिन उसका बुखार

गया। चौथे दिन ताँगे में बैठकर कालेज तो गयी, लेकिन पढ़ा न सकी। और दो-तीन दिन के बाद नियमित रूप से पढ़ाई प्रारम्भ की। चीनी की कक्षा में जाते समय उसे महान् पराजय का अनुभव होता था। चीनी की ओर न देखने का निश्चय कर वह कक्षा में गयी थी। उसकी इच्छा को तिरोहित कर मन का वेग बह रहा था। निर्बाध रूप से आँखें अंतिम बेंच की ओर चली गयी। वह वहाँ नहीं था। उसने सारी कक्षा में नजर घुमायी। चीनी का पता न था। उपस्थिति लेते समय जान-बूझकर उसका नाम पुकारा। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला। वह घबरा गयी। दिल जोर से धड़कने लगा। दो सप्ताह इसी तरह बीत गये। वह कक्षा में नहीं आ रहा था। एक दिन कालेज के कार्यालय में पूछताछ की। रजिस्टर देखकर सबंधित क्लर्क ने बताया कि एन० श्रीनिवास श्रोत्रिय ने ट्रांसफर सर्टिफिकेट ले लिया है। चार दिन हो गये। उसने इस सत्र की फीस भर दी है।

कात्यायनी समझ गयी कि यह मेरे प्रति उसका तिरस्कार है। उसने सोचा—यहाँ से वह किस कालेज में गया होगा? पता लगाना कठिन नहीं है। लेकिन उस लोहे को ढूँढने से क्या फायदा, जो झुकता नहीं! यह सोचकर उसने अपने मनोभाव को स्पष्ट तो कर लिया, उसे ढूँढने का विचार तो त्याग दिया, लेकिन उसके ऐसे बरताव को सहने की शक्ति कात्यायनी में नहीं थी।

चीनी अपनी माँ के बारे में न जानता हो, ऐसी बात नहीं थी। जब वह माध्यमिक शाला में पढ़ रहा था, तभी उसके कुछ सहपाठी उसे चिढ़ाते थे। उन सहपाठियों ने घर में अपने माता-पिता के मुँह से सुना था। दादी के जीवनकाल में चीनी ने उससे एक प्रश्न किया था, तब मुख्यांश बताया था—"इस बारे में नहीं बोलना चाहिए, बेटे! तेरे दादाजी को यह नहीं भाता। हर व्यक्ति का पाप-पुण्य अपने-अपने साथ रहता है।" लोगों द्वारा यह बात भी दादी के कानों में पड़ी थी कि कात्यायनी बेंगलूर के कालेज में अध्यापिका है। यह बात चीनी भी जान गया था। वह माँ के नये पति का नाम भी जानता था। दादी की मृत्यु के पश्चात् इस बात की कभी चर्चा नहीं हुई। दादा इस विषय में कभी कुछ नहीं बोले। यह

जानकर कि दादा को यह नही रुचता, उसने नही पूछा। लक्ष्मी भी श्रोत्रिय जी की राय के कारण मौन रहती थी । इस विषय मे तीनो में कभी बात नही हुई, मानो उससे उनका कोई संबंध न हो। पौत्र की धार्मिक शिक्षा दादा के मार्ग-दर्शन मे चल रही थी । वे वेद-उपनिषद् पढाते, उनका अर्थ बताते । वे धर्म-कर्म, कर्त्तव्य, मानव-जीवन का उद्देश्य आदि विषयो पर भी भाषण देते। सारे विषय उसकी समझ मे पूरी तरह नही आते थे, तो भी दादा के जीवन के प्रति उसमे भययुक्त भक्ति निहित थी । इस उम्र मे भी उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा, पास-पडोसी से उन्हे प्राप्त पूज्य-भाव मिश्रित गौरव, स्वय भोजन बनाने की कुशलता आदि विषयों मे बालक काफी प्रभावित हुआ था । सप्ताह में एक बार तेल मलकर लक्ष्मी उसे स्नान कराती थी। स्नान के पश्चात् उसके ललाट पर काला टीका लगाकर कहती—"मुन्ने, पहले यज्ञेश्वर को नमस्कार करो, फिर दादा के पैर छूओ।" यदि वह पूछता, "तुम्हे ?" तो वह कहती—"शीनप्पा को नमस्कार करना ही मानो समस्त देवताओ को नमस्कार करना है । मुझे कभी नमस्कार न करना।" वह दादा के व्यक्तित्व से पूर्णत. प्रभावित हो चुका था।

जिस दिन कालेज मे पढ़ाई शुरू होने वाली थी, उससे पहले दिन ही मैसूर आया था । इस बात का पता लगने पर कि उस दिन छुट्टी है, वह साथियों के साथ नजनगूडु लौट गया था। उसका हाईस्कूल का सहपाठी वकील वेंकटराव का पुत्र चक्रपाणि, अब भी उसका सहपाठी था । वे दोनों एक ही 'डिविजन' मे थे । दूसरे दिन चक्रपाणि सुबह की रेल से कालेज आया था और चीनी के दस बजे की गाडी से आने के कारण पीछे की बेंच पर उसने जगह रखी थी। कात्यायनी के पीरियड के समय पहुँचने पर चीनी सीधा चक्रपाणि के पास जाकर बैठ गया था । उसके पश्चात् मैडम की कक्षा देखकर उसे विस्मय हुआ था। महिला-अध्यापको के अध्यापन का ढंग जानने के कुतूहल में कुछ देर अध्यापिका को देखता रहा। फिर पढाई की ओर ध्यान देने लगा था । पीरियड के पश्चात् विद्यार्थियों को प्रयोगशाला में जाना था। वे वहाँ गये लेकिन उस दिन वहाँ किसी ने पीरियड नही लिया । विद्यार्थियों के बाहर आने के पश्चात् चक्रपाणि ने चीनी से पूछा—"अंग्रेजी की मैडम का नाम जानते हो ?"

"नही तो ? क्या नाम है ?"

"मिसेस कात्यायनी राजाराव।"

"अर्थात् उनका विवाह हो गया है ?"

"हाँ, कहते है इनके पति महाराज कालेज में असिस्टेंट प्रोफेसर है।"

चीनी तुरन्त जान गया था कि वह कौन है। फिर भी उसने चक्रपाणि से पूछा—"ये पहले से यहीं पढाती है ?"

"नहीं सुनते है कि पहले बेंगलूर सेंट्रल कालेज मे पति-पत्नी पढ़ाते थे। पिछले साल यहाँ तबादला हुआ है। इनके पति राजाराव नाटक बहुत सुन्दर पढाते है। मै आज सुबह अपनी मामी के घर गया था। मेरी मामी की बेटी महाराज कालेज में बी० ए० में पढ रही है, उसी ने सब बताया है।"

"सब का क्या मतलब है ?"

"उनका विधवा-विवाह है" कहकर तुरत जैसे जीभ काटकर चक्रपाणि ने बात बद कर दी। चीनी का मुख इतने से ही खिन्न हो चुका था। चक्रपाणि को अध्यापिका का पूर्ण परिचय था। उसने अपने मित्र का दिल दुखाने के लिए यह बात नही कही थी। मित्र से संबधित एक मुख्य बात कहने की आतुरता से बात शुरू की थी।

चीनी अपनी माँ, जो अब उसकी अध्यापिका भी थी, के प्रति अनजाने ही एक-दो दिनो मे आकर्षित हो चुका था। कक्षा मे पढाई के समय, उनकी आँख बचाकर उन्हे देखने का प्रयत्न करता। पहली बार के अनपेक्षित बुलावे से वह भ्रमित हो गया था। तुरंत बहाना बनाकर छुटकारा पा लिया था। महाराज कालेज, जो पास ही था, जाकर उसके पति को देखने का कुतूहल हुआ। एक दिन वहाँ पहुँचकर एक विद्यार्थी से पूछा—"अंग्रेजी के प्रोफेसर राजाराव क्या आज क्लास लेनेवाले है ?"

"सीनियर बी० ए० हॉल में अब उनका पीरियड है।"

"हॉल कहाँ है ?"

"मैं वही जा रहा हूँ।"

चीनी भी उसके साथ हो गया। वह हॉल में जा बैठा। राजाराव ने प्रवेश किया। चीनी उसे देख रहा था। राजाराव बर्नार्ड शॉ कृत 'सेंट जॉन' नाटक पढ़ा रहा था। चीनी उसे पूर्ण समझ नही पाया था, लेकिन अध्यापक की अभिनयपूर्वक बोलने की कला और अंग्रेजी का सुतलित उच्चारण

प्रवाह उसे आकर्षक लगे। नयी अध्यापिका को अपनी माँ समझकर उसका मन निर्विकार न था। लेकिन राजाराव के प्रति किसी तरह का निकट भाव नहीं जागा। इसके विपरीत, अनजाने में ही, एक तरह का तिरस्कार भाव जाग रहा था। बीच में ही उसे अपने पिता का स्मरण हुआ। उसने कभी पिता को नहीं देखा था। घर में उनका कोई फोटो भी नहीं था। चीनी का मन बेचैन होने लगा था। पढ़ाई चल रही थी। उठकर तुरंत बाहर आने की इच्छा हुई, लेकिन पीरियड पूर्ण होने तक इस भय से बैठा रहा कि न जाने वे क्या कहेंगे !

चीनी का मन अनजाने ही विचित्र भावनाओं में उलझ गया था। अपनी माँ से मिलकर बात करने की इच्छा एवं आतुरता मन में जाग रही थी। उसका मन प्रश्न कर रहा था . वे नये पति के साथ क्यों गईं ? उसे दादी ने बताया था कि वे इसी राजाराव की छात्रा थी। राजाराव नाटक भी प्रस्तुत करते हैं। उसे सारी बातें याद आईं। वह सोचने लगा—'उत्तम ढंग से नाटक प्रस्तुत करने वाले राजाराव और इनमें परस्पर प्रेम जागा होगा ! उन्होंने इनके साथ···मेरी माँ ने ऐसा क्यों किया ? एक बार उसने सोचा, जाकर पूछा जाय कि उन्होंने ऐसा क्यों किया ? अगर उन्होंने पूछा कि यह पूछनेवाले तुम कौन होते हो ?'—इस विचार से अपने कुतूहल को दबा लिया। 'अगर वे घर त्यागकर इनसे शादी न कर लेती तो इस उम्र में दादाजी की मदद कर सकती थी। फिर भी उनकी चिन्ता किये बिना ही वे निकल गयी ! लेकिन मुझ बालक को कैसे छोड़ गयी'—आदि प्रश्न उसे सता रहे थे। उसे खाना नहीं रुचा, नींद नहीं आई। इसी तरह दो-तीन दिन बीत गये। एक बार सोचा कि इस बारे में दादाजी से ही क्यों न पूछा जाय ? लेकिन वे इस बारे में कुछ सुनना नहीं चाहेंगे ! इसके अतिरिक्त उन्हें भी दुःख पहुँचेगा। उस विचार को भी त्याग दिया। निश्चय किया कि जिस तरह दादाजी समस्याओं को निगलकर शांत चित्त रहते हैं, उसी तरह मुझे भी रहना चाहिए। हर रोज संध्या करते समय वह १०८ गायत्री मंत्र अधिक जपने लगा।

दादा द्वारा बार-बार कही हुई वह बात कि 'मनुष्य अपने-अपने कर्म-धर्म के अनुसार चलता है—दूसरों के व्यवहार के बारे में हमें नहीं सोचना चाहिए'—उसे याद आई। अपनी माँ के चालचलन के बारे में सोचना ...

"मिसेस कात्यायनी राजाराव।"

"अर्थात् उनका विवाह हो गया है ?"

"हाँ, कहते है इनके पति महाराज कालेज में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं।"

चीनी तुरन्त जान गया था कि वह कौन है। फिर भी उसने चक्रपाणि से पूछा—"ये पहले से यही पढाती है ?"

"नही सुनते है कि पहले बेंगलूर सेंट्रल कालेज मे पति-पत्नी पढ़ाते थे। पिछले साल यहाँ तबादला हुआ है। इनके पति राजाराव नाटक बहुत सुन्दर पढाते है। मै आज सुवह अपनी मामी के घर गया था। मेरी मामी की बेटी महाराज कालेज मे बी० ए० मे पढ रही है, उसी ने सब बताया है।"

"सब का क्या मतलब है ?"

"उनका विधवा-विवाह है" कहकर तुरत जैसे जीभ काटकर चक्रपाणि ने बात बद कर दी। चीनी का मुख इतने से ही खिन्न हो चुका था। चक्रपाणि को अध्यापिका का पूर्ण परिचय था। उसने अपने मित्र का दिल दुखाने के लिए यह बात नही कही थी। मित्र से सबधित एक मुख्य बात कहने की आतुरता से बात शुरू की थी।

चीनी अपनी माँ, जो अब उसकी अध्यापिका भी थी, के प्रति अनजाने ही एक-दो दिनो मे आकर्षित हो चुका था। कक्षा में पढ़ाई के समय, उनकी आँख बचाकर उन्हे देखने का प्रयत्न करता। पहली बार के अनपेक्षित बुलावे से वह भ्रमित हो गया था। तुरंत बहाना बनाकर छुटकारा पा लिया था। महाराज कालेज, जो पास ही था, जाकर उसके पति को देखने का कुतूहल हुआ। एक दिन वहाँ पहुँचकर एक विद्यार्थी से पूछा—"अंग्रेजी के प्रोफेसर राजाराव क्या आज क्लास लेनेवाले है ?"

"सीनियर बी० ए० हॉल में अब उनका पीरियड है।"

"हॉल कहाँ है ?"

"मैं वही जा रहा हूँ।"

चीनी भी उसके साथ हो गया। वह हॉल में जा बैठा। राजाराव ने प्रवेश किया। चीनी उसे देख रहा था। राजाराव बर्नार्ड शॉ कृत 'सेंट जॉन' नाटक पढ़ा रहा था। चीनी उसे पूर्ण समझ नही पाया था, लेकिन अध्यापक की अभिनयपूर्वक बोलने की कला और अंग्रेजी का सुललित उच्चारण

प्रवाह उसे आकर्षक लगे। नयी अध्यापिका को अपनी माँ समझकर उसका मन निर्विकार न था। लेकिन राजाराव के प्रति किसी तरह का निकट भाव नही जागा। इसके विपरीत, अनजाने मे ही, एक तरह का तिरस्कार भाव जाग रहा था। बीच मे ही उसे अपने पिता का स्मरण हुआ। उसने कभी पिता को नही देखा था। घर में उनका कोई फोटो भी नही था। चीनी का मन बेचैन होने लगा था। पढाई चल रही थी। उठकर तुरंत बाहर आने की इच्छा हुई, लेकिन पीरियड पूर्ण होने तक इस भय से बैठा रहा कि न जाने वे क्या कहेंगे !

चीनी का मन अनजाने ही विचित्र भावनाओं में उलझ गया था। अपनी माँ से मिलकर बात करने की इच्छा एव आतुरता मन मे जाग रही थी। उसका मन प्रश्न कर रहा था . वे नये पति के साथ क्यों गई ? उसे दादी ने बताया था कि वे इसी राजाराव की छात्रा थी। राजाराव नाटक भी प्रस्तुत करते है। उसे सारी बाते याद आई। वह सोचने लगा—'उत्तम ढग से नाटक प्रस्तुत करने वाले राजाराव और इनमें परस्पर प्रेम जागा होगा ! उन्होने इनके साथ···मेरी माँ ने ऐसा क्यों किया ? एक बार उसने सोचा, जाकर पूछा जाय कि उन्होंने ऐसा क्यो किया ? अगर उन्होंने पूछा कि यह पूछनेवाले तुम कौन होते हो ?'—इस विचार से अपने कुतूहल को दबा लिया। 'अगर वे घर त्यागकर इनसे शादी न कर लेती तो इस उम्र में दादाजी की मदद कर सकती थी। फिर भी उनकी चिन्ता किये बिना ही वे निकल गयी ! लेकिन मुझ बालक को कैसे छोड़ गयी'—आदि प्रश्न उसे सता रहे थे। उसे खाना नही रुचा, नीद नही आई। इसी तरह दो-तीन दिन बीत गये। एक बार सोचा कि इस बारे मे दादाजी से ही क्यो न पूछा जाय ? लेकिन वे इस बारे में कुछ सुनना नहीं चाहेगे ! इसके अतिरिक्त उन्हे भी दु.ख पहुँचेगा। उस विचार को भी त्याग दिया। निश्चय किया कि जिस तरह दादाजी समस्याओं को निगलकर शात चित्त रहते है, उसी तरह मुझे भी रहना चाहिए। हर रोज सध्या करते समय वह १०८ गायत्री मंत्र अधिक जपने लगा।

दादा द्वारा बार-बार कही हुई वह बात कि 'मनुष्य अपने-अपने कर्म-धर्म के अनुसार चलता है—दूसरों के व्यवहार के बारे में हमें नहीं सोचना चाहिए'—उसे याद आई। अपनी माँ के चालचलन के बारे [illegible]

देने का प्रयत्न किया। चीनी मे अद्भुत संकल्प-शक्ति थी। हर विषय में वह वह दादा का पोता था। दादा के व्यवहारों को निभाने मे वह सफल भी हुआ। वह सोच रहा था—'भविष्य में एक-न-एक दिन मुझे बुलाकर वह कहेगी कि मैं ही तेरी माँ हूँ, तब मै क्या करूँगा? हाँ, मैं आपका वेटा हूँ, कहकर उसे स्वीकार कर लूं?'—यह विचार भी आता था। वैसा करने पर हम दोनो का सबध वढता है। हो सकता है कि उनके प्रति मेरे मन में विश्वास बढ़ जाय। मै उन्ही के साथ रहना चाहूँ, तब दादाजी की स्थिति क्या होगी? माँ की तरह मैं भी उन्हे त्याग दूं? ये विचार उसे तिरस्कार से जलाने लगे। 'दोनो जगह मै बेटा बनकर रहूँ?' चीनी शास्त्रों का काफी ज्ञान पा चुका था। अपने वश, उस वश से सबधित धर्म-कर्म आदि की उसे पूरी प्रतीति थी। रोज सध्या कर, मत्र पढ़ कर नमस्कार करते समय उनका अर्थ मन में मुहर-सी लगा जाता था। अपने वश के महत्व के गौरव की रक्षा करना ही नही, अपितु ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि उसकी वृद्धि होकर वह अधिक प्रकाशवान हो। उसे दादा की ये बातें याद आ रही थी। वह पुराणो मे पढ चुका था कि किस तरह चद्रवशी, सूर्यवशी राजाओ ने अपनी वश की प्रतिष्ठा की रक्षा की! काश्यप गोत्र मे जन्म लेकर, श्रोत्रिय वश का वेटा, मै, अन्य कुटुम्ब के लोगों के साथ वेटे के रूप मे कैसे व्यवहार करूँ? बुजुर्गों के साथ, चाहे वे कोई भी हों, पुत्र-भाव से व्यवहार करने की प्रवृत्ति उसके सस्कार मे घुल-मिल गयी थी। लेकिन उसका मन सोच रहा था—'अपने वश को त्यागकर और दूसरे वश की माँ के साथ सबध जोडकर उनके घर आना-जाना कैसी विडम्बना है—विपर्यास है?'

वह सोच रहा था—'यदि किसी दिन मुझे बुलाकर वे अपना परिचय दें तो क्या करना चाहिए?' माँ को कर्कश उत्तर देकर वह उसका जी दुखाना नही चाहता था। यह उसके दादा का उपदेश था। उसने निर्णय कर लिया था कि इस नये सबध से दूर रहना चाहिए—मानो उसके बारे मे वह कुछ जानता ही नही। इसी निर्णय के अनुसार उसने कात्यायनी से व्यवहार किया, लेकिन उस घर से बाहर निकलने के पश्चात् वह रो पड़ा था। एक पेड़ के पास खडे होकर सिसक-सिसककर रोया था। रूमाल में आँसू पोछते हुए सीधा कालेज के पिछवाड़े स्थित खेल के मैदान मे पेड़ के

शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। उसका शरीर, जो पहले पुष्ट था, अंदर-ही-अदर कीड़े खाये पत्ते की तरह हो रहा था। राज ने उसे डॉक्टर को दिखाया। डॉक्टर ने टानिक लिखकर दिया और फल और अण्डे लेने की सलाह दी—आये मरीजों को वैसे ही लौटाना, डॉक्टरों की प्रवृत्ति के विरुद्ध होता है! न चाहने पर भी, राज के विवश करने पर वह रोज अण्डे खा रही थी। फल घर मे आते। पहले की अपेक्षा अधिक दूध लेने लगी। लेकिन उसका शारीरिक स्वास्थ्य तो विपरीत दिशा में ही प्रगति कर रहा था। अब वह पति से भी अधिक नही बोलती। कालेज के पश्चात् घर लौटकर कमरे में अकेली बैठ जाती। मन शून्य रहता। सामने की दीवार या खिडकी के उस पार के वृक्षों को एकटक देखती रहती। यह सोचकर नि.श्वास छोड़ती कि अपनी कोख से निकला पौंद से तिरस्कृत वृक्ष कितना ही हरा-भरा हो, तो भी उससे क्या लाभ?—कभी सोचती नजनगूड़ु चली जाऊँ। तब उसका शरीर शिथिल हो जाता, काँप उठता। अधिक विचलित हो उठती। स्वप्न मे बड़बड़ाने लगती। कभी-कभी स्वप्न में स्पष्ट विचार भी निकल जाते थे। पास ही राज सोता था। वह पूछ बैठता—"इस तरह स्वप्न मे क्या बडबड़ा रही हो?" तो चुपचाप सो जाती। एक दिन स्वप्न मे अग्रेजी मे पूछ रही थी—"धर्म-कर्म का निर्णय करने वाला मूल तत्त्व कौन-सा है?" राज को नींद नहीं आ रही थी। उसने भी अग्रेजी मे ही उत्तर दिया, "समस्त जीवों का सुख ही धर्म का मूल तत्त्व है।"

स्वप्न में ही वह बोली—"सुख-मात्र को धर्म नही कहा जा सकता।" वह किस प्रकार का सुख है? इंद्रिय सुख है? मानसिक सुख है? धार्मिक जीवन की तृप्ति से मिलने वाला सुख है? इनके विश्लेषण के बिना कहा जाने वाला सुख-तत्त्व धर्म का मूल नही हो सकता।"

राज फिर बोलना चाहता था लेकिन कात्यायनी का बड़बड़ाना बंद हो गया था। दूसरे दिन उठी तो राज के मुख से यह बात सुनकर उसे विश्वास नहीं हुआ। इस तरह कई दिन बीत गये। राज ने मनोवैज्ञानिक के पास चलने की बात कही तो वह "मेरे मन को किसी और को देखने की आवश्यकता नही, 'अपने-आपको पहचानो, वह सर्वोत्तम सूत्र है'"—कहकर राज को चुप करा दिया।

एक दिन आधी रात को अचानक राज की नीद खुल गयी। देखा

तो वगल में कात्यायनी नही थी ! वह उठ वैठा । कमरे का द्वार खुला था । वह वाहर आया । वाहर का दरवाजा भी खुला था । सडक पर देखा तो एक फर्लांग की दूरी पर चामुंडीपुर की ओर धीरे-धीरे कदम वढाती हुई स्त्री की आकृति दिखाई पडी । पहचानकर राज उस ओर दौड़ा । उसके पास पहुँचकर पूछा—"कहाँ जा रही हो ?" कात्यायनी की आँखें खुली थी । लेकिन मुखमुद्रा सुपुप्त थी । लगता था सामने खड़े व्यक्ति को वह पहचान नही सकी । स्वप्न में वोलने वाले की तरह वह वोली—"चामुंडी पहाडी पर ।"

"क्यो जा रही हो ?"

"क्यों ? ऊँचाई पर पहुँचे विना जीवन ही क्या है ? सारे स्वप्न में तो मैं उतरती ही रही । अव जागी हूँ । चढने जा रही हूँ ।"

"मेरे साथ आओ । सुवह दोनों जायेंगे ।"

"आप कितने विवेकी है ?" कहकर उसकी भुजा थपथपायी । राज उसका हाथ पकड़े घर ले आया । वाहर का दरवाजा वद कर, उसे शयन-कक्ष मे ले गया । पलग पर लिटाकर, कमरे के दरवाजे को अच्छी तरह से वद कर दिया । क्षण-भर में उसकी आँखें मुँद गयीं । पाँच मिनट तक भ्रमित-सा वैठे रहने के पश्चात् कात्यायनी को हिलाकर पूछा—"नींद आ गई ?"

"नही, सदा जगी रहती हूँ ।" लेकिन उसकी साँस की गति और मुख से स्पष्ट लगता था कि नीद आ गयी है ।

"जानती हो अव किससे वोल रही हो ?" राज का प्रश्न था ।

"हाँ ।"

"मै कौन हूँ ?"

"पुरुष !"

"तुम कौन हो ?"

"प्रकृति !"

राज की छाती काँप उठी । उसके ललाट पर पसीना आ [illegible] समझ रहा था कि पत्नी की सुप्त प्रज्ञा में कौन-सी [illegible] इस वात को और स्पष्ट समझने के उद्देश्य से उसने [illegible] चिर-नूतन है न ?"

"प्रकृति न चिर-नूतन है और न चिर-चेतन ही। धर्म-पथ को ठुकराना जीवन नही है।"

लगभग दस मिनट विचारमग्न रहने के बाद राज ने पूछा—"प्रकृति, तुम्हे मुझसे क्या लाभ है ?"

कात्यायनी नही बोली। इतने मे उसे गहरी नीद आ चुकी थी। वह राज के झकझोरने पर भी नही जागी। राज को रात-भर नीद नही आई। बिस्तर से उठा और खिडकी के पास आरामकुर्सी पर बैठकर सोचने लगा। वह उस स्थिति की बात सोच रहा था जब मनुष्य बधन-मुक्त होकर जीते थे। धर्म से, आचार परपराओ मे, मानव के स्वतत्र, पूर्ण सुखमय जीवन मे आनेवाली बाधाओ के बारे मे सोच रहा था। उसी दृष्टि से उसने अपने एक आदर्श समाज की कल्पना की थी—अपनी दृष्टि मे उसका चित्र खीचा था। राज स्वभावत सज्जन है। उसने कभी किसी के प्रति बुरा नही सोचा। यथाशक्ति दूसरो की मदद करने मे उसका विश्वास था। उसकी जीवन-दृष्टि कुछ भिन्न थी। उसी दृष्टि से कात्यायनी को उकसाकर उससे विवाह कर लिया था। अब यह जीवन किस ओर जा रहा है ?—इस निराशापूर्ण प्रश्न का उत्तर खोजने मे ही सारी रात बीत गयी। सुबह पाँच बजे कात्यायनी जागी तो राज के पास आकर पूछा—"ये आँखें लाल क्यो है ? रात सोये नही क्या ? यहाँ क्यों बैठे हैं ?"

"तुम्हे कुछ भी याद नही ?"

वह कुछ समझ न सकी—"आप क्या कह रहे है ? कौन-सी बात ?"

उसे पास बैठाकर आदि से अत तक सारी बात कह सुनायी। कात्यायनी की आँखो मे आँसू भर आये। 'यहाँ आइए' कहकर पति का हाथ पकड़ पलग के पास गयी। तत्पश्चात् उसे अपनी गोद मे लिटाकर बोली—"मेरे कारण आपको कितना दुख होता है ? मैं कुछ नहीं जानती। अब आप मेरी गोद मे सो जाइए। मैं थपकियाँ देती हूँ।"

जलती हुई आँखों को उसने मूँद लिया। पति की पीठ पर थपकी देते समय कात्यायनी की आँखे भर आई और अश्रुकण उसके गाल पर ढुलक पड़े।

"तुम क्यों रो रही हो ?"—आँखें मूँदे-मूँदे ही उसने पूछा।

"अनजाने मे आपका जी दुखाया । प्रायश्चित्त के रूप मे रो रही हूँ। आप मत बोलिए, सो जाइए"—कहकर पति को अपने सीने से लगा लिया ।

दिन-प्रतिदिन कात्यायनी के बिगड़ते स्वास्थ्य से राज विह्वल था । वह समझ नही पा रहा था कि पत्नी का इलाज किस तरह करे । उसकी मनःस्थिति ज्यों-ज्यो अधिक प्रक्षुब्ध होती जाती थी, त्यों-त्यो वह पति से अधिकाधिक प्रेम की अपेक्षा करती थी । राज उससे न बोलकर किसी कार्य मे लगा रहता तो सोचती कि शायद मेरे प्रति उनका प्यार कम होता जा रहा है। वह किसी कारणवश रूठ जाता तो भयभीत होती कि कही वे भी मुझे छोड न दें । एक दिन पलग पर बैठे पति के चरणों को स्पर्श कर उसने पूछा—"आप अगर मुझे इस तरह दूर रखेंगे तो मेरा क्या होगा ? क्या मेरे प्रति आपकी सहानुभूति भी नही है ?"

"मैंने ऐसा क्या किया है ? व्यर्थ ही तुम भयभीत हो रही हो ।" फिर उसने पत्नी को सान्त्वना दी—"तुम्हारे प्रति मुझे कोई शिकायत नही है । मै हरदम प्रयत्न करता हूँ कि तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर जाय । लेकिन वह गिरता जा रहा है । क्या कम-से-कम मेरे लिए धीरज धारण नही कर सकती ?"

"उसके लिए मै कितना प्रयत्न कर रही हूँ, यह आप समझ नही सकते । मेरे कारण आपको कितना दु:ख होता है ? आप बहुत ही अच्छे है । मै आपको अपेक्षित सुख न दे सकी" कहकर आलिगन करते-करते उसके आँसू बह चले ।

पत्नी के मनोरोग को वह जानता था । उसके गर्भ से जन्म लेने वाले बच्चों मे से एक भी बच जाता तो उसके मन को शाति मिलती । राज जानता था कि कात्यायनी समझती है कि उन तीन बच्चों की मौत, उसके पाप-कर्मफल के कारण ही हुई है । एक दिन उसने स्वप्न मे भी बड़बडाया था कि 'एक वश के बीज को धारण करने के बाद दूसरे वश को धारण करना पाप है । उस पाप के फलस्वरूप ही तीनों बच्चे जन्म लेने के पहले ही स्वर्ग सिधार गये ।' राज पूर्णतः समझ गया कि पाप-पुण्य के मथन में वह जर्जरित होती जा रही है । जैसे-जैसे वह पत्नी को असहाय—

समझता गया, वैसे-वैसे उसे अधिक प्यार करने लगा। जहाँ तक हो सकता उसके साथ समय बिताता था।

राज एक दिन रात के आठ बजे भाई के बँगले पर गया। डॉ० राव की शारीरिक स्थिति भी बिगड़ गयी थी। वे बरामदे में एक आरामकुर्सी पर बैठे थे। रत्ने भीतर थी। किसी ग्रंथ का अवलोकन कर रही थी। दोनों की कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् राज ने कात्यायनी की मन.स्थिति का जिक्र किया। उसे भी नंजनगूडु के श्रोत्रियजी के बारे में जानने का कुतूहल था। यह सोचकर उसने कात्यायनी से इस सबध में नही पूछा था कि प्रश्न से उसकी मन स्थिति और बिगड़ सकती थी। अतः राज ने पहली बार भाई से पूछा। डॉ० राव ने सारी बातें बतायी—"एक वर्ष पहले हम दोनों वहाँ गये थे, उस समय हमने भी महसूस किया था कि इस परिस्थिति में वह उनके पास रहती तो उचित होता।"

राज गभीरता मे डूब गया। कुछ समय बाद उसने पूछा—"अब भी कात्यायनी जाकर उनसे क्षमा माग ले तो उन्हें तसल्ली मिलने के साथ-साथ इसका मन भी नियंत्रित हो जायेगा क्या ?"

"इस संबध मे मैंने उनसे बात की थी। वे इन सबको मानो भूल ही गये है। ऐसे लोगों के बारे में वे सोचते ही नही, जिनसे उनका सबध टूट गया है। किसी भी बात मे उनकी आसक्ति नही है—अनासक्ति ही मानो उनका जीवन है। अगर उनसे मिलकर क्षमा माँगने से उसे मानसिक शाति मिलती है, तो वैसा करने दो। वह भी उचित ही है।"

इस विषय में राज ने कात्यायनी के साथ बात छेड़ी तो वह भयभीत हो उठी। उसकी अपनी भीतरी शक्ति ने उसे कँपा दिया। कातर होकर उसने पूछा—"इस सबध में आपने अपने भैया से क्यों बात की? मैं कदापि वहाँ नही जा सकती। उनके सम्मुख बेहोश होकर गिरने की अपेक्षा यही मरना उचित समझती हूँ।"

राज निरुपाय हो गया। "नागु की तरह तुम भी रामपूजा क्यों नही करती? कम-से-कम प्रारभ तो करो। मन को शाति मिलेगी" उसने कहा।

"उसकी भी कोशिश मे हूँ। मुझ-जैसी से श्रीराम प्रसन्न नही हो सकते। मैं विश्वास खो चुकी हूँ।"

राज की विह्वलता दिन-प्रतिदिन बढती रही। कुछ दिन बाद वह भी अन्तर्मुखी हो गया। कालेज मे नाटक के बहाने रोज सुबह साइकिल द्वारा किसी भी मार्ग से नगर के बाहर चला जाता और वृक्ष के नीचे बैठ जाता। पहले की भाँति साइकिल चलाने की शक्ति अब उसमे नही थी। दिसम्बर शुरू हो चुका था। जाड़े की छुट्टियाँ प्रारंभ हो गयी थी। एक दिन वह एकाएक हुणुसूर के रास्ते पर निकल पड़ा। उसे उस रास्ते की जैसे कोई जानकारी नही थी। लगभग सात-आठ मील जाने के बाद वह झरना दिखाई पड़ा, जहाँ वह पहले कात्यायनी के साथ आया था। साइकिल से उतर वह झरने के किनारे-किनारे चलने लगा। उस हरियाले प्रदेश में आया जहाँ वे दोनो बैठा करते थे। राज को आश्चर्य हुआ कि गाँव के लोग वहाँ के पेड-पौधो को काट चुके है। उसी प्रदेश में बहते, *चैतन्यपूर्ण झरने पर एक बाँध बना दिया गया है।* *उसका पानी खेतों की* ओर मोड दिया गया है। प्रकृति ने अपनी आजादी खोकर मानव-योजना के सम्मुख सिर झुका लिया है। उस बाँध पर चढकर राज ने देखा। सग्रहीत पानी, निश्चल आईने के समान दिखाई दे रहा था। पानी की ओर झुककर उसने अपने चेहरे को देखा। वह घबरा गया। वह वृद्ध-सा दिखाई दे रहा था। चेहरा सूख गया था। सिर के पके हुए सफेद बाल पानी मे भी दिखाई पड़े। ललाट पर झुर्रियाँ पड रही थीं। उसे याद आया, *'मै इकतालीस वर्ष का हो गया।'*

२३

पाँचवें खण्ड के कार्य में रत्ने और डॉ० राव दोनों निरतर लगे रहे। इस खण्ड मे भारत में अंग्रेजों के आगमन से लेकर आज तक इस देश में प्रचलित सांस्कृतिक परिवर्तनों का विवरण देना था। इसके उपयुक्त सामग्री काफी थी। विश्व के इस भाग पर आग्ल साम्राज्य की स्थापना और इस देश के सास्कृतिक जीवन में व्याप्त असतोष का कारण दिखाना

था। खण्ड के अंतिम दो अध्यायों में "क्या भारत की प्राचीन संस्कृति अब भी जीवित रहकर आगे विकसित हो सकती है?" इस प्रश्न की चर्चा करके ग्रंथ समाप्त करने की योजना थी। रत्ने यथाशक्ति इस बात पर ध्यान दे रही थी कि डॉ० राव को अधिक परिश्रम न करना पड़े। विषय-निरूपण की मूल दृष्टि एवं अपने दृष्टिकोण का विवरण डॉ० राव दे रहे थे। इस दृष्टिकोण की पुष्टि एवं खंडन करने वाले अन्य ग्रंथों को रत्ने स्वयं ढूंढकर पढ़ती और उनके महत्त्वपूर्ण अध्यायों, पृष्ठों की ओर डॉ० राव का ध्यान दिलाती। उनके स्वास्थ्य के प्रति सतर्क रहती और हर रोज रात को टहलने ले जाती। रात को जल्दी सो जाने का आग्रह करती, ताकि वे देर तक न पढ़ें।

एक दिन रात के लगभग ग्यारह बजे का समय था। डॉ० राव अपने कमरे में कुर्सी पर बैठे मेज पर रखे हुए कागजों की टिप्पणियों पर निशान लगा रहे थे। उनके पीछे रखी हुई आरामकुर्सी पर रत्ने कोई पुस्तक पढ़ रही थी। उसके हाथ में एक पेंसिल थी। टिप्पणी लिखते हुए डॉ० राव की आँखों के सामने अचानक अँधेरा छा गया। पलकों को दो-तीन बार झपकाया, लेकिन हाथ की लेखनी भी दिखाई नहीं पड़ी। धीरे से बायें हाथ से अपने चश्मे को नाक से हटाकर मेज पर रखते-रखते अर्द्ध मूर्च्छावस्था में अँधेरा छा गया। हिलने-डुलने की शक्ति न रही। लेकिन अपनी स्थिति बतलाने का होश था। अतः क्षीण स्वर में रत्ने को पुकारा। रत्ने ने गर्दन उठाकर देखा। डॉ० राव को बायीं ओर अचानक असह्य दर्द होने लगा। उन्हें साँस लेना भी कठिन प्रतीत हो रहा था—मानो किसी ने उसे रोक रखा हो। आँखें मूँदकर, दर्द सहने के लिए ओंठ काट-कर उन्होंने अपने बायें हाथ को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया, लेकिन व्यर्थ। वे अपने दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर छाती पर रख ही रहे थे कि रत्ने दौड़ी आई और उनके सिर को अपने सीने में टिका लिया। एक मिनट तक डॉ० राव के मुख पर यम-जातना खेलती रही। यह यातना धीरे-धीरे घटने लगी। उन्होंने रत्ने की बाँह पर अपना सिर रख दिया।

रत्ने भयभीत हो गयी। यह समझने में उसे दो मिनट लग गये कि यह दिल का दौरा है। इस कठिन परिस्थिति में भी अधीर न हो, उसने उनकी नाक के पास हाथ रखकर देखा। साँस धीरे-धीरे चल रही थी।

एक तरह का शून्य उसे घेरे हुए था। मन को अनिष्ट का अस्पष्ट-सा चित्र दूर से दिखाई दे रहा था। उसे स्मरण हो आया कि विद्या, कला, संशोधन आदि मे अपने समस्त जीवन को अर्पित करने वालों का अंतकाल सामान्यत. इसी तरह का होता है।

इतने मे बाहर से कार की आवाज सुनाई दी। वह कमरे से बाहर निकल ही रही थी कि प्रोफेसर डॉक्टर के साथ भीतर आ गये। बिस्तर पर बैठकर टार्च के प्रकाश मे उनकी जांच की, लेकिन इस बात का ध्यान रखा कि उनके चेहरे पर प्रकाश न पड़े। जांच के पश्चात् बाहर आकर डॉक्टर ने कहा—"अभी दो टिकिया देता हूँ। उन्हें पीसकर दीजिए। कल आकर पूर्ण जांच करूँगा। एक सप्ताह के पश्चात् अस्पताल ले जाकर 'एक्स-रे' लेकर देखेंगे। इस बीच वे मांगें तो दूध, फलों का रस दीजिए। खतरा नही है। चिन्ता न करें। कल सुबह मेरे आने मे देर हो जाय तो कमरे की खिड़की मे परदा लगा दीजिए। अधिक हवा नही लगनी चाहिए।"

टिकियाँ देकर डॉक्टर चलने लगे तो रत्ने भी बाहर आई। प्रोफेसर ने उससे पूछा—"इन्हे घर छोड़ आते समय क्या आपके देवर राजाराव को साथ लेता आऊँ?"

"हाँ! इनकी पत्नी को भी साथ लेते आइए।"

एक मिनिट सोचकर प्रोफेसर ने कहा—"मुझे लगता है उनका आना उचित न होगा। यहाँ इनको भावोद्रेक नही होना चाहिए।" और डॉक्टर की ओर मुड़कर पूछा—"मैने कहा न, इनकी प्रथम पत्नी और इस देवी के बीच गलतफहमी है। उन्हे बुलाना क्या उचित होगा?"

"हर्गिज न बुलायें"—डॉक्टर ने कहा।

डॉक्टर के जाने के बाद, टिकिया पीस कर रत्ने ने डॉ० राव को दी। डॉ० राव को पूरा होश था। रत्ने के यह पूछने पर कि दूध पियेंगे या फलों का रस, उन्होने नकारात्मक सिर हिला दिया। उनके पलंग के पास की कुर्सी पर रत्ने बैठ गयी। डॉक्टर के आश्वासन से उसे थोड़ी-सी तसल्ली मिली थी, किन्तु उसके मन मे व्याप्त शून्य न घटा। मन कह रहा था, भले ही अब हालत सुधर जाये, लेकिन पूर्ववत् वे अध्ययन-कार्य नही कर सकेंगे। .जानती थी कि जिस व्यक्ति को एक बार हृदरोग होता है, वह दुबारा

हो जाय तो उसका बचना दुस्साध्य है। शून्य मन भविष्य के बारे में सोच न सका। बाहर रागण्णा दीवार से पीठ टिकाये बैठा था। वह दिङ्मूढ़ हो चुका था।

इतने में पड़ोसी प्रोफ़ेसर की पत्नी, उनकी दो पुत्रियाँ, ज्येष्ठ पुत्र, सब वहाँ आ गये। दो दिन की मुलाकात के अतिरिक्त रत्ने का इनसे अधिक परिचय न था। रत्ने सदा कार्य मे व्यस्त रहती थी, अत. वे अधिक नही बोलते थे। जोर से न बोलकर, द्वार पर मौन खड़े रहे। रागण्णा ने भीतर आकर रत्ने को उनके आने की सूचना दी। रत्ने बाहर आई। प्रोफ़ेसर की पत्नी अंग्रेजी अच्छी तरह जानती थी। वह एम० ए० थी। उनकी दोनों लडकियाँ कालेज मे पढ रही थीं। बेटा अन्तिम वैद्यकीय परीक्षा की तैयारी कर रहा था। "कैसे है ?" प्रोफ़ेसर की पत्नी ने पूछा।

"डॉक्टर ने कहा है कि 'अटैक' बीत गया है और प्राणों के लिए खतरा नहीं है। आपके पति का भी यही ख्याल है।"

"कोई चिंता न करें। एक बार 'हार्ट अटैक' होने के पश्चात् पूर्ववत् कार्य करते हुए बहुत साल तक जीनेवालों की कमी नही है। उनके लिए अपने जीवन-विधान को डॉक्टर की सलाह के अनुसार स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है। इन्हें अधिक कार्य करने के कारण ही ऐसा हुआ होगा।" प्रोफ़ेसर का पुत्र यह कह ही रहा था कि बंगले के सामने कार रुकी। प्रोफ़ेसर के साथ कार से उतरते हुए राज का चेहरा उद्विग्न दिखाई दे रहा था। पास आते ही उसने रत्ने से पूछा—"कैसे है ?" "गोली दी है" रत्ने ने कहा। अपनी चप्पलें वही छोड़ प्रोफ़ेसर भीतर आये। राज तो नगे पैर ही आया था। उसने उनका अनुसरण किया। इतने मे डॉ० राव को नींद-सी आ गयी थी। बाहर आकर प्रोफ़ेसर ने कहा—"थोड़ी नींद आ रही है। आप लोग उन्हें न उठाये। किसी तरह की आवाज भी न होने पाये।" और अपनी पत्नी की ओर देखकर कहा—"फल के रस की आवश्यकता पड़ सकती है। घर में फल हों तो ले आओ।" रत्ने ने कहा—"घर मे फल हैं।" लेकिन उन्होंने कहा—"हमारे पास भी जो हों, ले आने दीजिए। मौसबी का रस दीजिए। रात का भोजन कर चुके है। उन्हें कुछ भी खाने के लिए विवश न करें। हमारे पास ग्लूकोज है। दो चम्मच वह भी डाल दीजिए।"

फल और ग्लुकोज दे, रत्ने को पुन. सान्त्वना देकर प्रोफेसर के घर के लोग चले गये। "कोई चिंता न करें। राजाराव यहीं रहेंगे। कल सुबह आऊँगा" कहकर प्रोफेसर भी चले गये। डॉ० राव भीतर सो रहे थे। रागप्पा को वहीं रहने का आदेश दे, रत्ने को रसोईघर में ले जाकर राज ने धीरे से पूछा—"भैया को क्या हुआ है ? विस्तार से बताइए !"

सारे विषय को विस्तारपूर्वक बताने के बाद रत्ने ने पूछा—"घर में क्या कहकर आये है ? नागलक्ष्मी को मालूम है क्या ?"

"नहीं ! मुझ अकेले को बाहर बुलाकर प्रोफेसर ने सारी बात बतायी और घर मे किसी को न बताने की सलाह दी। मैं घर कह आया हूँ कि मङ्या तक जाकर सुबह लौटूँगा।"

"कल नागलक्ष्मी को बता दें क्या ?"

"उसके आने से इनकी शुश्रूषा मे सुविधा रहेगी।"

"नहीं, शायद आप इसकी पृष्ठभूमि नही जानते।" कहकर रत्ने ने उस दिन की बात बतायी जब डॉ० राव, नागलक्ष्मी को लेने गये थे।

राज ने पूछा—"आपने या भैया ने मुझे क्यो नही बताया ?"

"बताने से कोई लाभ नही था। उसका मन अब बहुत कठोर हो गया है, यह मानकर वे चुप रह गये थे।"

"तब उसे न बताया जाय। कल से कुछ दिनो के लिए कात्यायनी को यहाँ भेज दूँगा। नागु से कुछ बहाना किया जा सकता है। मैं भी, जहाँ तक हो सके, अधिक समय यही रहने का प्रयत्न करूँगा। रात को घर जाऊँगा।"

वे दोनों उस कमरे में आये जहाँ डॉ० राव सोये हुए थे। पलग के दोनों ओर आरामकुर्सी रखकर दोनों बैठ गये। कहने पर भी रागप्पा नहीं सोया।

अगले दिन उनकी जाँच के पश्चात् डॉक्टर ने कहा—"फिलहाल जाँच के लिए इन्हें अस्पताल ले जाने की आवश्यकता नही है। एक सप्ताह बीतने दीजिए। फिर कुछ दिन अस्पताल मे रहने दीजिए। अस्पताल से लौटने के पश्चात् लगभग दो महीने तक इसी तरह कमरे मे लेटे रहना पड़ेगा। इस बात का ध्यान रहे कि भावोद्रेक की कोई घटना न हो। संगीत, तबला, मृदग किसी की ध्वनि उन्हें सुनाई न दे। कोई

उन्हें बारम्बार देखने न आये। पूरी विश्रांति चाहिए। मेरी सलाह के अनुसार शुश्रूषा चलती रही तो आप उन्हें तीन महीने मे चलता-फिरता पायेंगी। मैं दो दिन मे एक बार आकर इन्हें देख जाऊँगा।" राज ने डॉक्टर से विशेष आदर के साथ बात की और कार में बैठाकर आया।

उसी दिन सुबह दस बजे राज घर पहुँचा तो सबसे पहले कात्यायनी को कमरे मे बुलाकर सारी बातें बतायी। कात्यायनी को बड़ा दुःख हुआ। राज ने सलाह दी कि कुछ दिन उनकी शुश्रूषा करने से वह अपनी भी चिंता भूल सकती है। नागलक्ष्मी के पास जाकर उसने पूछा—"नागु, रत्ने सख्त बीमार है, क्या कुछ दिनों के लिए कात्यायनी को वहाँ भेज दे?" नागलक्ष्मी ने 'हूँ' कहकर स्वीकृति दे दी। उस दिन से दो घंटे के लिए पास मे ही स्थित कालेज जाने के अतिरिक्त कात्यायनी सदा रत्ने के साथ ही रही। अपनी कमजोरी के कारण वह स्वयं उनकी सेवा करने मे असमर्थ थी, लेकिन उसकी उपस्थिति रत्ने को धीरज बँधा रही थी।

एक सप्ताह के पश्चात् डॉ० राव को अस्पताल में भर्ती करा दिया। रत्ने भी वहीं रहती। कात्यायनी घर लौट आई।

डॉक्टर की सलाह के अनुसार डॉ० राव लगभग एक महीना अस्पताल मे रहे। फिर दो महीने घर मे नियमित दवा-शुश्रूषा के बाद डॉक्टर ने बाहर जाने की अनुमति दे दी। उन दिनों मे विश्वविद्यालय ने उन्हें बीमारी की छुट्टी दे दी थी। वे रोज दो बार टहलने जाते। सुबह वे अकेले हाथ में एक छडी लिये कुक्कर हल्लि के तालाब के पिछवाड़े से टहलते हुए लौटते। डॉक्टर ने स्पष्ट कहा था कि ऊबड़-खाबड रास्ते से न जाया करें। दोपहर को वे पुस्तकालय नही जाते। कालेज जाकर एम० ए० कक्षा को पढ़ाकर घर लौट आते। रत्ने पुस्तकालय जाती। दो महीने बीतने पर पुन. सूक्ष्म परीक्षण के पश्चात् डाक्टर ने कहा—"आपके हृदय की स्थिति नाजुक है। ग्रंथ-रचना, लिखाई-पढ़ाई आदि सभी कार्य पूर्णतः बंद कर देने चाहिए। कालेज जाकर बैठे-बैठे, ज्यादा-से-ज्यादा एक घंटे पढ़ा सकते हैं। महीने मे एक बार यहाँ आकर मुझ से जाँच करवाकर आगे भी दवा लेनी पड़ेगी। ऐसे स्थानों पर न जायें जहाँ बस, मोटर आदि का आवागमन अधिक हो। कभी भूलकर भी न दौड़ें। ऐसा हो तो आप

फल और ग्लूकोज दे, रत्ने को पुन. सान्त्वना देकर प्रोफेसर के घर के लोग चले गये। "कोई चिंता न करें। राजाराप यहीं रहेंगे। कल सुवह आऊँगा" कहकर प्रोफेसर भी चले गये। डॉ० राव भीतर सो रहे थे। रागप्पा को वहीं रहने का आदेश दे, रत्ने को रसोईघर में ले जाकर राज ने धीरे से पूछा—"भैया को क्या हुआ है ? विस्तार से बताइए !"

सारे विषय को विस्तारपूर्वक बताने के बाद रत्ने ने पूछा—"घर में क्या कहकर आये हैं ? नागलक्ष्मी को मालूम है क्या ?"

"नहीं ! मुझ अकेले को बाहर बुलाकर प्रोफेसर ने सारी बात बतायी और घर में किसी को न बताने की सलाह दी। मैं घर कह आया हूँ कि मइया तक जाकर सुबह लौटूंगा।"

"कल नागलक्ष्मी को बता दें क्या ?"

"उसके आने से इनकी शुश्रूषा में सुविधा रहेगी।"

"नहीं, शायद आप इसकी पृष्ठभूमि नहीं जानते।" कहकर रत्ने ने उस दिन की बात बतायी जब डॉ० राव, नागलक्ष्मी को लेने गये थे।

राज ने पूछा—"आपने या भैया ने मुझे क्यों नहीं बताया ?"

"बताने से कोई लाभ नहीं था। उसका मन अब बहुत कठोर हो गया है, यह मानकर वे चुप रह गये थे।"

"तब उसे न बताया जाय। कल से कुछ दिनों के लिए कात्यायनी को यहाँ भेज दूंगा। नागु से कुछ बहाना किया जा सकता है। मैं भी, जहाँ तक हो सके, अधिक समय यहीं रहने का प्रयत्न करूँगा। रात को घर जाऊँगा।"

वे दोनों उस कमरे में आये जहाँ डॉ० राव सोये हुए थे। पलंग के दोनों ओर आरामकुर्सी रखकर दोनों बैठ गये। कहने पर भी रागप्पा नहीं सोया।

अगले दिन उनकी जाँच के पश्चात् डॉक्टर ने कहा—"फिलहाल जाँच के लिए इन्हें अस्पताल ले जाने की आवश्यकता नहीं है। एक सप्ताह बीतने दीजिए। फिर कुछ दिन अस्पताल में रहने दीजिए। अस्पताल से लौटने के पश्चात् लगभग दो महीने तक इसी तरह कमरे में लेटे रहना पड़ेगा। इस बात का ध्यान रहे कि भावोद्रेक की कोई घटना न हो। संगीत, तबला, मृदंग किसी की ध्वनि उन्हें सुनाई न दे। कोई

उन्हे बारम्बार देखने न आये। पूरी विश्रांति चाहिए। मेरी सलाह के अनुसार शुश्रूषा चलती रही तो आप उन्हें तीन महीने मे चलता-फिरता पायेंगी। मैं दो दिन मे एक बार आकर इन्हें देख जाऊँगा।" राज ने डॉक्टर से विशेष आदर के साथ बात की और कार मे बैठाकर आया।

उसी दिन सुबह दस बजे राज घर पहुँचा तो सबसे पहले कात्यायनी को कमरे मे बुलाकर सारी बातें बतायी। कात्यायनी को बड़ा दु.ख हुआ। राज ने सलाह दी कि कुछ दिन उनकी शुश्रूषा करने से वह अपनी भी चिंता भूल सकती है। नागलक्ष्मी के पास जाकर उसने पूछा—"नागु, रत्ने सख्त बीमार है, क्या कुछ दिनों के लिए कात्यायनी को वहाँ भेज दें?" नागलक्ष्मी ने 'हूँ' कहकर स्वीकृति दे दी। उस दिन से दो घंटे के लिए पास में ही स्थित कालेज जाने के अतिरिक्त कात्यायनी सदा रत्ने के साथ ही रही। अपनी कमजोरी के कारण वह स्वयं उनकी सेवा करने में असमर्थ थी, लेकिन उसकी उपस्थिति रत्ने को धीरज बँधा रही थी।

एक सप्ताह के पश्चात् डॉ० राव को अस्पताल में भर्ती करा दिया। रत्ने भी वहीं रहती। कात्यायनी घर लौट आई।

डॉक्टर की सलाह के अनुसार डॉ० राव लगभग एक महीना अस्पताल में रहे। फिर दो महीने घर मे नियमित दवा-शुश्रूषा के बाद डॉक्टर ने बाहर जाने की अनुमति दे दी। उन दिनों मे विश्वविद्यालय ने उन्हें बीमारी की छुट्टी दे दी थी। वे रोज दो बार टहलने जाते। सुबह वे अकेले हाथ में एक छड़ी लिये कुक्कर हल्लि के तालाब के पिछवाड़े से टहलते हुए लौटते। डॉक्टर ने स्पष्ट कहा था कि ऊबड़-खाबड़ रास्ते से न जाया करें। दोपहर को वे पुस्तकालय नही जाते। कालेज जाकर एम० ए० कक्षा को पढ़ाकर घर लौट आते। रत्ने पुस्तकालय जाती। दो महीने बीतने पर पुनः सूक्ष्म परीक्षण के पश्चात् डाक्टर ने कहा—"आपके हृदय की स्थिति नाजुक है। ग्रंथ-रचना, लिखाई-पढ़ाई आदि सभी कार्य पूर्णत. बंद कर देने चाहिए। कालेज जाकर बैठे-बैठे, ज्यादा-से-ज्यादा एक घंटे पढ़ा सकते है। महीने मे एक बार यहाँ आकर मुझ से जाँच करवाकर आगे भी दवा लेनी पड़ेगी। ऐसे स्थानो पर न जायें जहाँ बस, मोटर आदि का आवागमन अधिक हो। कभी भूलकर भी न दौड़ें। ऐसा हो तो आप

अभी दस वर्ष जी सकते है। इन सलाहों का उल्लंघन करने पर कब क्या होगा, यह मैं नही कह सकता !"

डॉक्टर की चेतावनी ने रत्ने को कँपा दिया। उसने नियम बना लिया कि डॉ० राव एक पक्ति भी न पढ़ें। पाँचवे खण्ड की रूपरेखा उसे ज्ञात थी। उस खण्ड के लिए वह स्वयं सामग्री सग्रह करने में लगी रही। उसने निश्चय कर लिया कि 'स्वय समस्त कार्य करके अतिम प्रति तैयार करना, एक बार उन्हें पढ-सुनाकर उनके विमर्श के आधार पर उसे सुधारना, उनके न लिखने के बदले उनके निर्देशन मे स्वय लिखना चाहिए।' उसकी इस स्नेहपूर्ण आज्ञा को डॉ० राव ने स्वीकार कर लिया। रत्ने को अब अपने भविष्य की चिन्ता हो रही थी। स्वदेश मे माता-पिता की मृत्यु को कई साल बीत गये थे। भाई के साथ जो पत्र-व्यवहार होता था वह भी बद था। इसका कारण उनके बीच मनमु ाव नही, अपितु अपने पति के ग्रथ-निर्माण मे व्यस्तता था। अन्य लेखन-कार्य नियमित रूप से चालू रखना रत्ने के लिए मुश्किल था। उसने जीवन मे कभी यह नही सोचा था कि 'पति के मरने पर अपनी स्थिति क्या होगी?' जीविकोपार्जन के लिए पति पर निर्भर रहना, उसकी दृष्टि मे मूर्खता थी। अब भी डॉ० राव के न रहने पर वह खाने और कपडे-लत्तो के लिए चिन्तित नही है। लेकिन उनके पश्चात्, इस जीवन मे क्या रहा? बच्चे? किसे अपना समझकर जिये? उसकी आँखो के सामने अर्थहीन एव क्रूर भविष्य दीख पड़ने लगा। अपने पति को किसी तरह बचा लेने के लिए कमर कसकर, सतर्कता से उनके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने लगी।

डॉ० राव कुछ दिन डॉक्टर की सलाह के अनुसार ही चलते रहे। लेकिन कुछ दिनो मे वे ऊब-से गये। शरीर को एक ही जगह स्थिर रखना उनके वश की बात थी, लेकिन अपने मन को निष्क्रिय स्थिति मे रखना, उनके लिए असाध्य था। श्रोत्रियजी की कही बात याद आ रही थी—'बुद्धि प्रकृति का ही एक स्वरूप है।' डॉ० राव सोच रहे थे—'अगर *क्रियाशीलता प्रकृति का मूल गुण है तो फिर बुद्धि निष्क्रिय कैसे रह सकती* है? वृत्तिरहित स्थिति को बुद्धि प्राप्त कर ले तो मनुष्य को मुक्ति मिल जायेगी।' उनका मन कई बार मुक्ति के बारे मे सोचता रहता। भारतीय दर्शन के अनुसार मुक्ति क्या है, इस समस्या से भी परिचित थे।

इस प्रश्न पर अब वे व्यक्तिगत आस्था से सोच रहे थे। मुक्ति की बौद्धिक-क्रिया से कुछ भी प्राप्त नहीं करना है। जब वह स्वयं आत्मा का मूल गुण अर्थात् ज्ञान है, फिर बुद्धि की कसरत से उसे क्या मतलब? इस अर्थ में मुक्ति मिलेगी? उसके लिए की जाने वाली साधना, अष्टांगयोग आदि उनके मन में आने लगे। यह सोचकर वे चुप रह जाते कि—'मेरा मार्ग ही भिन्न है। इस आयु में, इस स्थिति में, वह मार्ग मेरे लिए कठिन अवश्य है।' कभी-कभी दर्पण में अपना मुख देखकर वे सोचते—'मैं तिरपन वर्ष का हो गया। सिर के बाल गिर गये हैं, लगभग गंजा हो गया हूँ। केवल दस-बीस बाल रह गये हैं। जिस मार्ग पर अब तक चलता रहा हूँ, उसी पर आगे बढ़ूँ तो कम-से-कम वह कार्य तो पूर्ण होगा। यदि उसे पूर्ण होने से पहले ही त्याग दूँ और दूसरे मार्ग को अपना लूँ तो दोनों में से एक भी उपलब्ध न होगा। मेरे इस जीवन में एक ही उद्देश्य शेष रहा है, और वह है ग्रंथ पूर्ण करना।'

रत्ने द्वारा संगृहीत सामग्री को, उसकी सलाह पर ध्यान न देकर डॉ० राव देख रहे थे। पहली बार हृदरोग का शिकार बनने से पूर्व ग्रन्थ के लिए संगृहीत समस्त सामग्री का उन्होंने मनन किया था। उनके मन में यह शंका उठी थी कि 'क्या इस ग्रन्थ को मेरे बदले रत्ने पूर्ण कर सकता है?' रत्ने की बुद्धिशक्ति एवं लिखने पर उनके अधिकार के बारे में उन्हें कोई शंका नहीं थी। लेकिन उन्हें यह याद आ रहा था कि ग्रन्थ उसके लेखक की अंतःशक्ति का रूप होता है। उन्होंने मन में ही निर्णय कर लिया कि 'जिस हाथ ने प्रथम चार खण्डों को लिखा, उसी से पाँचवाँ खण्ड भी लिखना चाहिए। रत्ने लिखेगा तो [illegible], वह इस ग्रन्थ में प्रथम चार ग्रन्थों की अन्तर्दृष्टि को [illegible] नहीं कर सकेगा। इसे मुझे ही लिखना चाहिए।' इस निर्णय से जब हृदय के रोग के [illegible] डॉक्टर के पास गये, उन्होंने लिखने का उल्लेख किया। जब [illegible] डॉक्टर को अपने रोगी के लिखने का परिश्रम [illegible] अपने रोगी के प्रति [illegible]। डॉ० राव के [illegible] कहा—"डॉक्टर! [illegible] मैं [illegible] कब क्या होगा, [illegible] नहीं [illegible] कोई कार्य न करें तो [illegible] और भी [illegible]'

छह सौ से भी अधिक पृष्ठों का होगा न ?"

"हाँ !"

"लिखने के मूड मे आने के पश्चात् आप इस नियम का पालन शायद नही कर सकेंगे कि दिन मे इतने ही पृष्ठ लिखें !"

"कठिन है। सामान्यत किसी लेख को प्रारम्भ करने के पश्चात् एक सप्ताह मे वह विषय मुझे अपने वश मे कर लेता है। उसके बाद मैं स्वतत्र नही रहता। वह अपने ही ओघ एव गति मे लेखनी को बहा ले जाता है। उसके समाप्त होने तक मन तनिक भी नहीं थकता। लेकिन बौद्धिक क्रिया के बहाव का साथ देने मे असमर्थ होकर कई बार शरीर थक जाता है। फिर भी लेखन कार्य समाप्त होने तक मुझे किसी तरह की शारीरिक थकावट मालूम ही नही होती।"

प्रशसा की दृष्टि से डॉक्टर ने सिर हिलाकर पूछा—"मुझे क्या करने को कहते है ?"

"लेखन कार्य प्रारम्भ किये विना मैं जी नही सकता। बौद्धिक निष्क्रियतापूर्ण इस अस्तित्व का कोई मूल्य ही नही है। ससार का विद्वानगण यह सुनना नही चाहेगा कि 'सदाशिवराव नामक एक ग्रन्थ-कर्त्ता हृदय-रोगी बनकर, मौत से डरकर कई वर्ष जीता रहा।' विद्वानगण बडे चाव से प्रतीक्षा करता हुआ पूछ रहा है, 'चार खण्ड लिखने वाले का पाँचवाँ खण्ड भी आया कि नही ?' उसे लिखे विना मेरे जीवन का रत्ती-भर भी मूल्य नही। उसे पूर्ण करके मरूँ तो मेरे जीवन का लक्ष्य भी पूर्ण हो जाता है। मै लेखन कार्य प्रारम्भ करूँगा। लगभग चार महीने मे प्रथम प्रति तैयार हो जाये तो बस ! तत्पश्चात् मै मर जाऊँ तो भी मेरी पत्नी उसका परिष्कार कर सकती है। एक बार प्रारम्भ करने के पश्चात् पूर्ण होने तक क्या आप मुझे जीवित रख सकेंगे ?"

इन बातो को बोलने वाली उनकी जिह्वा ही नही, उनका सारा व्यक्तित्व अपनी समस्त आशा-आकाक्षाओ से प्रस्फुटित हो रहा था। डॉक्टर गभीरतापूर्वक सोच रहे थे। उनके ओठो पर एक बार एक मद मुस्कान दौड़ गई। उसे डॉ० राव ने नही देखा। वैद्यकीय शोध मे निरतर जीवन खपाने वाले वैज्ञानिको के जीवन से डॉक्टर का परिचय था। उन्होंने सोचा—"ज्ञान-वृद्धि की साधना मे इस तरह कोई भी न मरे तो मानव की

प्रतिपादन करने की श्रद्धा आदि देखकर प्रशंसा में उन्होंने सिर हिला दिया। ये उनके जाने हुए विषय हैं। लेकिन अन्य चार खण्डों मे निहित अतः-सत्व इस लेखन मे नही था। रत्ने ने भी इस बात को स्वीकार किया।

डॉ० राव का जीवन यथावत् चल रहा था। वे टहलने जाते। यथेष्ट फल खाते। लेकिन ध्येय-साधना के अभाव में उनको जीवन असह्य लगने लगा। जिस व्यक्ति ने सदा क्रियाशील जीवन बिताया, उसे लगने लगा कि निष्क्रियता की अपेक्षा मरण ही श्रेयस्कर है। इस दुख ने एक-दो सप्ताह मे ही चेहरे और स्वास्थ्य पर असर दिखा दिया। इसे रत्ने ने भी समझा था। एक दिन डॉ० राव ने उससे कहा—"रत्ने, तुमने मेरे इस निष्क्रिय शरीर को चाहकर मुझसे विवाह नही किया था। जिस उद्देश्य से तुमने मेरा हाथ पकड़ा है, उसे पूर्ण करने दो। जिस तरह सामान्य स्त्री सोचती है कि पति के मरने पर मेरा क्या होगा, वैसे तुम मत सोचो। तुम उन स्त्रियों मे अपना नाम मत लिखाओ।"

रत्ने का मुख गंभीर हो गया। उसकी आँखें चमक उठीं। पूरी रात वह सोचती रही। सुबह होते-होते वह एक निष्कर्ष पर पहुँच गयी थी। अब सुबह डॉ० राव जल्दी उठ, स्नान करके टहलने जाते थे। उस दिन उनके लौटते समय, रत्ने ने छह महीनों से निष्क्रिय पड़ी उनकी लेखनी को धोया और स्याही भरकर रख दिया। उनकी मेज पर लिखने के लिए आवश्यक कागज, सामग्री तैयार रखी। लौटने के पश्चात्, स्नान, उपाहार आदि से निपटने के बाद रत्ने उनका हाथ पकड़कर लिखने के कमरे में लिवा ले गयी और बोली—"इतने दिन मेरी बुद्धि पर अज्ञान का परदा पड़ा था। आप लिखिए। लेकिन अधिक श्रम न करें। सीमित रूप से लेखनी चलाइए। सभाव्य स्थानों में मुझ से लिखवाइए। मैं शीघ्रलिपि मे लिख लूंगी। मैं हमेशा इसी कमरे मे आपके पीछे ही एक कुर्सी पर बैठ-कर कार्य करती रहूँगी।"

डॉ० राव ने रत्ने का चेहरा देखा। उसकी आँखों में स्नेह और चमक थी।

२४

चीनी जब से कालेज जाने लगा है, तब से उसका संस्कृत, वेद, उपनिषद् आदि का अध्ययन पूर्ववत् नही चल रहा है। सुबह नौ बजे घर से निकलता है तो लौटते समय शाम के साढे छह बजते है। लौटकर हाथ-मुंह धोकर सध्या करने के बाद रात को भोजन करता। फिर श्रोत्रियजी लगभग दो घण्टे सस्वर वेद मन्त्र कण्ठस्थ कराते। छुट्टियों के दिनों मे तो दोपहर मे भी अध्ययन चलता था। चीनी को पहले से अधिक घी-दूध दिया जाने लगा। वह स्वय रसोई में हाथ बँटाने आता तो श्रोत्रियजी मना करते हुए कहते, "तुम पढ लो, बेटे।" प्रथम वर्ष में जूनियर इन्टरमीडियेट में उत्तीर्ण होकर सीनियर कक्षा मे पहुँच गया था। कार्य नियमित रूप से चल रहे थे।

आश्विन के बाद कार्तिक बहुल चतुर्दशी को श्रोत्रियजी के पिता का श्राद्ध था। आज वे बहुत अधिक थक जाते थे। कारण, एक तो उपवास और दूमरा काम अधिक। इसलिए रसोई बनाने के लिए वे कुप्पय्या को बुलवाया करते थे। वह एक दिन पहले आ जाता था। रसोईघर साफ करता। शुद्धाचरण से पानी भरता। मिर्च आदि का मसाला तैयार करता। श्राद्ध-कर्म कराने स्वय सुब्बय्य शास्त्री आते थे। श्रोत्रियजी अपने माता-पिता का श्राद्ध बड़ी श्रद्धा एव भक्तिपूर्वक करते थे। देव-कार्य और पितृ-कार्य इन दोनो मे उन्हे समान भक्ति थी। उनका पूर्ण विश्वास था कि वश के पूर्वज पितरो के तृप्त हुए बिना किसी भी वश का उद्धार नहीं हो सकता। पूर्वपक्ति को बुलाना हो तो भी कर्मठ पक्तिपावन ब्राह्मणों को ही बुलाते थे। ऐसे ब्राह्मण रोज सध्या और गायत्री का जप करके सात्विक जीवन बिताने वाले होते है! वे भर-पेट भोजन करके श्राद्ध के कार्य को सन्तोषजनक रूप से कराने की शारीरिक क्षमता रखने वाले होते है। एक भी दांत न गिरा हो, ऐसी आयु होनी चाहिए। वेदमन्त्रों के शुद्ध उच्चारण की शक्ति तो आवश्यक है। वे अपने यहां हर श्राद्ध में काफी दान देते। हर वर्ष ब्राह्मणों को तांबे की गगाजली, पचपात्र एक जोड़ी धोती एवं चांदी के दो-दो रुपये श्रद्धा से देकर साष्टाग नमस्कार करते थे।

की पहली रात, वे उपवास शुरू करते और दूसरे दिन सुबह ग

आठ गायत्री जपने तक एक बूँद जल भी ग्रहण नही करते थे।

कल श्राद्ध है। कुप्पय्या ने सब तैयारियाँ कर दी थी। श्रोत्रियजी ने एक अलग कमरे मे चूल्हा जलाया और उस दिन की रसोई बना ली। पहली पक्ति के ब्राह्मणो को भी बुला चुके थे। दोपहर को लगभग तीन बजे ऊपरी मजले पर अपने अध्ययन-कक्ष मे श्रोत्रियजी कोई पुस्तक ढूँढ़ रहे थे। श्राद्ध से सबधित एक प्रश्न उनके मन मे उठा था। शायद 'गोभिल स्मृति' मे इसका उत्तर दिया गया है! उत्तर मे कहे गये श्लोक लाख प्रयत्न करने पर भी स्मरण नही आ रहे थे। इस ग्रंथ की मुद्रित प्रति उनके पास नही थी। स्मरण हुआ कि छुट्टे कागजो की बनाई किसी वही में उन्होंने लिख रखा है। हस्तलिखित ग्रथो से भरे सदूक मे ढूँढने लगे। उसमें हस्तलिखित पत्र, पुराने पत्र, मुद्रित अर्धजीर्ण पुस्तकें भरी थी। एक घण्टे तक ढूँढने पर भी वाछित वही नही मिली। सदूक बद करने ही वाले थे कि उनकी दृष्टि अचानक एक कागज पर गई। कागज की जीर्ण स्थिति और मोटे अक्षर उन्हे अपरिचित से लगे थे। उनकी दृष्टि 'नमस्कार' शब्द पर पडी। यह सोचकर कि पहले किसी ने उनके नाम लिखा होगा, उसे देखा। पढते-पढते आश्चर्य ही नही हुआ, मन विचित्र समस्या में उलझ गया। लिखा था :

"श्री॥ नजुड को किट्टप्पा का नमस्कार! उभय कुशलोपरि।" पद्रह वर्ष बाद तुम्हें पत्र लिखने की इच्छा हुई। अत्यन्त दु.ख के साथ यह पत्र लिखना पड रहा है। तुम अपने ही छोटे भाई को धोखा देने वाले नीच हो। कई लोगो को तुमने धोखा दिया है। छोटे भाई से द्वेष के कारण धोखे से हड़पी गयी जायदाद कही छोटे भाई को न मिल जाय, इससे तुम दोनों को ऐसा कार्य नही करना चाहिए था। हरि-कथावाचक श्यामदास की कथा हम सब जान गये है। परम पावन श्रोत्रिय-वश की पिछली सात पीढ़ियों के पितरो को तुम्हारी धृष्टता के कारण नरक जाना पड रहा है। यदि तुम्हारी जायदाद कुत्ते-सियार खा जाते, तो भी मैं या मेरे बच्चे उसकी इच्छा नही करते। तुम्हारे पाप-पुण्य भगवान् देखेगा! तुम्हें शाप देकर पितर रौरव नरक जायें। नमस्कार। किट्टप्पा, एडतोरे मुकाम।"

बचपन मे श्रोत्रियजी ने किट्टप्पा का नाम सुना था। वे श्रोत्रियजी के पिता के छोटे भाई थे। कभी-कभी घर मे होने वाली बातचीत से वे यह

जान गये थे कि भाई-भाई मे बडा द्वेष था। लेकिन मेरी माँ के पितरों से परम पावन श्रोत्रिय-वश के पितरो को नरक प्राप्त होने-जैसा कौन-सा कार्य हुआ है? वह कौन-सा पाप-कर्म है जो उनके छोटे भाई को मिलने वाली जायदाद को हड़पने के लिए किया गया था? ये श्यामदास जी कौन है? कल श्राद्ध होने के कारण श्रोत्रियजी का मन दिन-भर देव, पितरों के बारे मे ही सोचता रहा। पितरो के नरक जाने की बात बताने वाले इस पत्र से उन्हे बड़ा क्लेश हुआ। इस बात को जान लेने की इच्छा हुई। लेकिन कौन बतायेगा? अब स्वय उन्हे तिहत्तर वर्ष हो गये। तिथि रहित लिखा गया पत्र न जाने कितना पुराना है? उस समय की बातों को अब कौन जानता होगा? एकाएक उन्हें लक्ष्मी की याद आई। वह भी इसी घर में जन्मी है। स्त्रियाँ पड़ोसी स्त्रियों से ऐसी बातें जान जाती है, जिनका पुरुषों को पता नही होता। यह सोचकर वे नीचे उतरे कि लक्ष्मी अगर इस बारे मे कुछ बता सकी, तभी कुछ होगा। लक्ष्मी बीच घर में बैठी तरकारी साफ कर रही थी। उसके पास जाकर श्रोत्रियजी ने पूछा—"तुमने श्यामदास नामक व्यक्ति का नाम सुना है?"

लक्ष्मी कुछ समझ न सकी। उसकी मुखमुद्रा को देखकर श्रोत्रियजी ने कहा—"हो सकता है कि मेरे जन्म के पहले की बात हो! हमारे घर से सबधित विषय है।"

"हाँ, सुना है" कहने के बाद क्षण-भर यह सोचकर कि कही गलती हो गयी है, वह तुरत चुप हो गयी।

उनके हाथ मे जो कागज था, उसे पढकर उन्होंने पूछा—"पितरों के नरक जाने-जैसा कौन-सा काम था? हरि-कथावाचक श्यामदास की क्या कथा है? कहो।"

"मैं कुछ नहीं जानती, शीनप्पा। इतना सुना है कि वे हरिकथा कहने के लिए इस गाँव में आया करते थे, बस!"

श्रोत्रियजी फिर ऊपर गये। किसी के प्रति शका करना उनका स्वभाव नही था। लेकिन आज उनका कुतूहल सदेह की चरम सीमा को पार कर रहा था। 'हाँ, सुना है' कहकर तुरत लक्ष्मी का बात रोक देना, उन्हे स्मरण हो आया। पुनः नीचे आये। लक्ष्मी के सम्मुख खड़े हो, अपने हाथ को आगे बढ़ाकर कहा—"लक्ष्मी, तुम मेरा हाथ पकड़ लो।"

कुछ न समझते हुए वह बोली—"क्यों ?"

"मैं जैसा कहता हूँ, वैसा ही करो।" उन्होंने लक्ष्मी का दाहिना हाथ पकड़कर कहा—"मेरा हाथ पकड़कर बोल रही हो। झूठ बोलोगी तो तुम्हें नरक मिलेगा। सच-सच कहो ! क्या इस कागज के बारे में तुम कुछ नहीं जानती ?"

लक्ष्मी ने सिर झुका लिया। श्रोत्रियजी के प्रश्न दुहराने पर वेदना-मिश्रित ध्वनि में उसने कहा—"मुझे क्यों इस संकट से घसीट रहे हो, शीनप्पा ?" लेकिन श्रोत्रियजी ने नहीं छोड़ा। निरुपाय हो, अन्त में स्वीकार किया—"रात को चीनी के सो जाने के बाद बताऊँगी।"

रात के भोजन के पश्चात्, चीनी सो गया। अब श्रोत्रियजी ने पुनः पूछा। "यहाँ नहीं, ऊपर चलो।"—स्वयं उन्हें ऊपर अध्ययन-कक्ष में ले गयी और द्वार बंद करके पूछा—"यह सुनकर क्या करोगे ? व्यर्थ ही हठ क्यों कर रहे हो ?"

"हठ नहीं, न जाने इतना कुतूहल क्यों है ? बुरे-से-बुरा विषय हो, तो भी सुनाओ। उसे विस्मृत करने की क्षमता मुझ में है। मुझ पर तुम्हारा जो विश्वास है, तुम्हें आज उसकी कसम है। तुम इस बारे में जो कुछ जानती हो, सविस्तार बताओ।"

"अच्छा, बैठो। तुमसे बढ़कर कौन-सी चीज है ?" वह चादर पर बैठ गयी। सामने बिछे हुए व्याघ्र-चर्म पर श्रोत्रियजी विराजमान हुए। किसी भी परिस्थिति में शांत रहने वाला उनका मन अब उत्कंठित हो रहा था। उन घटनाओं का स्मरण करते समय लक्ष्मी की आँखें मानो विगत जीवन की ओर देख रही थीं।

दुष्ट प्रवृत्ति के नंजुड शास्त्री, छोटी आयु में ही, अपने पिता के स्वर्गवास के समय घर के मुखिया थे। अट्ठाईस वर्ष की आयु में उस परिवार का सारा अधिकार उनके हाथ में आ गया था। तब उनका छोटा भाई किट्टप्पा श्रोत्रिय चौबीस वर्ष का था। बड़ा भाई दुष्ट प्रवृत्ति का था तो छोटा भाई उदार। बड़ा भाई हर कार्य को लाभ की दृष्टि से देखता था, और छोटा भाई भावुक था। बड़े की अपेक्षा छोटे के मन में भगवान्, धर्म आदि के प्रति अधिक विश्वास था। बड़ा भाई कुरूप था। किट्टप्पा

श्रोत्रिय हृष्ट-पुष्ट थे। उनकी पत्नी में अपने पति के वे सारे सद्गुण निहित थे। नजुड श्रोत्रिय की पत्नी तो मानो उसी के लिए थी। जब भाई-भाई ही परस्पर विरुद्ध थे, तो इन स्त्रियों मे कैसे पटती? विवाह के एक वर्ष पश्चात्, किट्टप्पा की पत्नी गर्भवती हुई और एक पुत्र को जन्म दिया। चौवीस वर्ष की उम्र मे भी नजुड की पत्नी अच्चम्मा गर्भवती नही हुई। एक दिन दोनो स्त्रियों मे झगडा हो गया। 'मनुष्य के पाप-पुण्य के आधार पर भगवान् उसे सतान देता है'—कहकर किट्टप्पा की पत्नी ने उसे नीचा दिखाया।

अपने पिता के श्राद्ध के दिन भाई-भाई मे झगडा होता था। छोटा भाई अगर कहता कि दक्षिणा के रूप मे ब्राह्मणों को चाँदी का रुपया देना चाहिए, तो नजुड भौहें तानते हुए कहता—"स्वयं कमाओ तब देना, अपने जीते-जी पावली से अधिक नही दूंगा।" 'तू' 'तेरा बाप' जैसी गाली-गलौज भाइयों में कई बार हो चुकी थी। एक बार यह झगड़ा जबान तक सीमित न रहा। हाथापाई की नौवत आ गयी। किट्टप्पा ने वड़े भाई को दो-चार चपते जड दी। अच्चम्मा भी झगड़े में शामिल हो गयी। अकेले को दो का सामना करते देख, किट्टप्पा की पत्नी भी शामिल हो गयी। इस झगडे के एक महीने बाद तक किट्टप्पा गुर्राता रहा, किन्तु नंजुड दूसरे ही दिन मुस्कराकर छोटे भाई से बोलने लगा। "अपने ही पास रखो अपनी हँसी, तुम वेशर्म हो"—कहकर छोटे भाई ने उसे चिढ़ा दिया।

इस घटना के एक वर्ष पश्चात् भाई-भाई मे इतना झगड़ा हुआ कि दोनो ने बँटवारा करने का निश्चय कर लिया। बँटवारा कराने के लिए चार पचो के साथ किट्टप्पा के ससुर आये। नंजुंड श्रोत्रिय के ससुर भी आये। पचों के सम्मुख घर-बार का विवरण देते समय नंजुड श्रोत्रिय ने जमीन पर लिये हुए बीस हजार रुपये का ऋण बताया। अपने ससुर के भाई के नाम का कर्ज-पत्र भी था। 'यह कर्ज झूठा है'—कहकर किट्टप्पा चिल्लाया। वह कोर्ट मे भी गया। लेकिन उसी के हस्ताक्षर के पत्रों को नजुड श्रोत्रिय ने अदालत मे प्रस्तुत किया। छोटे भाई को पत्रों का विवरण न समझाकर उसने पहले ही उसके हस्ताक्षर ले लिये थे। सव हिसाव कर, किट्टप्पा ने, फिर अपने हिस्से में आई दो एकड़ जमीन वेच दी; वाल-बच्चों के

गाँव छोड़ दिया। एडतोरे के पास एक गाँव के मंदिर मे अर्चक के रूप मे उसका जीवन चलता रहा। लेकिन बड़े भाई के प्रति जो क्रोध था, कम नही हुआ। नंजुड श्रोत्रिय रात मे तीन बार खेती-बाड़ी और उसमे सिंचाई देखने जाता था। यह उसकी आदत थी। एक दिन रात मे घर के पिछ-वाड़े गुंडल नदी के तट के पास वह एक पेड़ के नीचे बैठा था। किसी ने पीठ में जोर का मुक्का मारा। श्रोत्रिय के मुख से 'हाय' निकलने के पहले ही दूसरे व्यक्ति ने उसके मुँह मे कपड़ा ठूँस दिया। जिसने पहले मारा था, उसने नंजुड की धोती फाड़कर, उसके हाथ-पैरों को बाँध दिया। नंजुड के विवस्त्र शरीर पर आक्रमणकारियो ने पेड़ की डालियाँ तोड़कर खूब मारा। बाद मे उसे वही छोड़ दिया। दूसरा कोई अँधेरे मे यह कहकर भाग गया कि "तुमने मेरे साथ जो धोखा किया, उसका फल चखो।" नंजुड जान गया कि किट्टप्पा है। लेकिन वह कुछ बोल न सका, क्योंकि मुंह बँधा था।

अच्चम्मा घर मे सो रही थी। सुबह उठी तो सोचा कि पति खेत की ओर गये है, वह अपने काम में लग गयी। सुबह पानी देखने के लिए गयी हुई एक महिला ने हाथ-पैर बँधे, विवस्त्र नंजुड श्रोत्रिय को देखा और अच्चम्मा को आकर बताया। पास-पड़ोस के लोगों ने जाकर बंधित 'दुर्योधन' को मुक्त किया और जब पता लगा कि उसे बाँधने वाला कोई गंधर्व नही, यह उसके भाई किट्टप्पा की करतूत है, तो वे सब मन-ही-मन हँसे। पन्द्रह दिन तक नंजुड श्रोत्रिय ने शरीर पर पत्तो का लेप किया। किट्टप्पा के विरुद्ध कोर्ट मे केस भी किया, लेकिन सबूत के अभाव में वह रद्द कर दिया गया।

बँटवारे के कुछ ही दिनों मे नंजुड श्रोत्रिय की आमदनी बढने लगी। उसने देवरसनहल्लि के पास नयी जमीन खरीद ली। सोना-चाँदी गिरवी रख, पैसा ब्याज पर उधार देने लगा। कई बार ब्याज गहनो के मूलधन से अधिक हो जाता तो गिरवी रखी हुई चीजों को छुड़ाना कठिन हो जाता। परिणामस्वरूप वे गहने उसी के हो जाते। लगभग दस वर्ष मे घर मे पैसा-ही-पैसा हो गया। पहले छोटा घर था, बाद में एक मंजले का नया घर बँधवा लिया। सोना-चाँदी काफी हो गया था। अच्चम्मा सिर से लेकर पैर तक सोने के गहनों से लदी रहती थी। लेकिन दम्पति को एक

चिन्ता ने घेर रखा था। 'इस जमीन-जायदाद का उत्तराधिकारी कोई नहीं है। भविष्य में यह सब किसे मिलेगा?' दान-धर्म का विचार तो उन्हें स्वप्न मे भी न था। नि.सतान मर जाने पर, कानून के अनुसार यह सारी जायदाद छोटे भाई एवं उसके बच्चों को मिल जायेगी —यह विचार उन्हें आग-सा जलाने लगा। किट्टप्पा का मारना, नगा करके बाँध देना आदि इस द्वेषाग्नि पर हवा का काम कर रहे थे। लेकिन वह अड़तीस का था, अच्चम्मा चौबीस की। अब उन्होने धर्मस्थल के 'मजुनाथ' की मनौती मानी। सतान होने पर, बच्चे की पाँच वर्ष की आयु मे उसके वज़न की चाँदी देने का संकल्प किया और भगवान् के नाम पर पीतवस्त्र में चाँदी की पावली बाँध रखी। नजुड श्रोत्रिय ने एक ब्राह्मण से ललिता-सहस्र-नाम पठन करवाया। उसे रोज तीन पैसे और ताम्बूल देने लगे। किसी ने कहा कि नागदेव का प्रतिष्ठापन करने से सतान होती है। पद्रह रुपये खर्च कर, नदी के किनारे प्रतिपादन किया और दो ब्राह्मणो को भोजन कराया। लेकिन सतान नही हुई।

इसी सदर्भ मे श्यामदास से नजुंड श्रोत्रिय का परिचय हुआ। वे ऊँचे, आजानुबाहु व्यक्ति थे। विशाल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखे और लबी नाक। श्यामदास का परिवार हरिकथा प्रवचन करता हुआ गाँव से दूसरे गाँव भटकता रहता था। वे कोल्लेगाल के रहने वाले थे। सुरीले कठ से निकलता लय-सगीत, शुद्ध उच्चारण के साथ नि.सृत होते सस्कृत श्लोक, उनकी हरिकथा मे रग भरते थे, नजुड श्रोत्रिय को सस्कृत का ज्ञान था। उसने उन्हे घर बुलाकर पूछा कि सतान-प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए। उनकी सलाह के अनुसार तिरुपति हो आने पर भी कोई लाभ नही हुआ। श्रोत्रिय ने एक बार मैसूर जाकर जाँच करायी। उसने हिम्मत करके डाक्टर की राय पूछी तो पता लगा कि सतानोत्पत्ति के आवश्यक गुणों का उसमे अभाव है। अत यह सोचकर चुप बैठ गया कि किसी भगवान् से कुछ न होगा। दत्तक लेने का विचार आया। पास-पड़ोस के कुछ लोगों से पूछताछ की। कोई भी इसके लिए तैयार नही हुआ। इतने मे उसके कानों में एक खबर पड़ी कि एडतोरे मे किट्टप्पा कह रहा है कि नि.संतान भाई के मरने के बाद सारी जायदाद कभी-न-कभी उसके बच्चों को ही मिलेगी। यह सुनकर नंजुंड श्रोत्रिय का सारा शरीर जलने लगा। वह

गाँव छोड दिया। एडतोरे के पास एक गाँव के मदिर मे अर्चक के रूप मे उसका जीवन चलता रहा। लेकिन बड़े भाई के प्रति जो क्रोध था, कम नही हुआ। नंजुड श्रोत्रिय रात मे तीन बार खेती-बाड़ी और उसमे सिंचाई देखने जाता था। यह उसकी आदत थी। एक दिन रात में घर के पिछ-वाडे गुंडल नदी के तट के पास वह एक पेड़ के नीचे बैठा था। किसी ने पीठ में जोर का मुक्का मारा। श्रोत्रिय के मुख से 'हाय' निकलने के पहले ही दूसरे व्यक्ति ने उसके मुँह मे कपड़ा ठूँस दिया। जिसने पहले मारा था, उसने नजुड की धोती फाड़कर, उसके हाथ-पैरो को बाँध दिया। नजुड के विवस्त्र शरीर पर आक्रमणकारियों ने पेड़ की डालियाँ तोड़कर खूब मारा। बाद मे उसे वही छोड़ दिया। दूसरा कोई अँधेरे में यह कहकर भाग गया कि "तुमने मेरे साथ जो धोखा किया, उसका फल चखो।" नजुड जान गया कि किट्टप्पा है। लेकिन वह कुछ बोल न सका, क्योंकि मुंह बँधा था।

अच्चम्मा घर में सो रही थी। सुबह उठी तो सोचा कि पति खेत की ओर गये है, वह अपने काम मे लग गयी। सुबह पानी देखने के लिए गयी हुई एक महिला ने हाथ-पैर बँधे, विवस्त्र नंजुड श्रोत्रिय को देखा और अच्चम्मा को आकर बताया। पास-पड़ोस के लोगों ने जाकर बधित 'दुर्योधन' को मुक्त किया और जब पता लगा कि उसे बाँधने वाला कोई गधर्व नही, यह उसके भाई किट्टप्पा की करतूत है, तो वे सब मन-ही-मन हँसे। पन्द्रह दिन तक नजुंड श्रोत्रिय ने शरीर पर पत्तो का लेप किया। किट्टप्पा के विरुद्ध कोर्ट मे केस भी किया, लेकिन सबूत के अभाव मे वह रद्द कर दिया गया।

बँटवारे के कुछ ही दिनो मे नजुड श्रोत्रिय की आमदनी बढने लगी। उसने देवरसनहल्लि के पास नयी जमीन खरीद ली। सोना-चाँदी गिरवी रख, पैसा ब्याज पर उधार देने लगा। कई बार ब्याज गहनो के मूलधन से अधिक हो जाता तो गिरवी रखी हुई चीजों को छुड़ाना कठिन हो जाता। परिणामस्वरूप वे गहने उसी के हो जाते। लगभग दस वर्ष मे घर मे पैसा-ही-पैसा हो गया। पहले छोटा घर था, बाद में एक मजले का नया घर बँधवा लिया। सोना-चाँदी काफी हो गया था। अच्चम्मा सिर से लेकर पैर तक सोने के गहनो से लदी रहती थी। लेकिन दम्पति को एक

चिन्ता ने घेर रखा था। 'इस जमीन-जायदाद का उत्तराधिकारी कोई नहीं है। भविष्य मे यह सब किसे मिलेगा?' दान-धर्म का विचार तो उन्हें स्वप्न में भी न था। नि:सतान मर जाने पर, कानून के अनुसार यह सारी जायदाद छोटे भाई एव उसके बच्चों को मिल जायेगी —यह विचार उन्हें आग-सा जलाने लगा। किट्टप्पा का मारना, नगा करके बाँध देना आदि इस द्वेपाग्नि पर हवा का काम कर रहे थे। लेकिन वह अडतीस का था, अच्चम्मा चौबीस की। अब उन्होंने धर्मस्थल के 'मजुनाथ' की मनौती मानी। सतान होने पर, बच्चे की पाँच वर्ष की आयु मे उसके वजन की चाँदी देने का सकल्प किया और भगवान् के नाम पर पीतवस्त्र में चाँदी की पावली बाँध रखी। नजुड श्रोत्रिय ने एक ब्राह्मण से ललिता-सहस्र-नाम पठन करवाया। उसे रोज तीन पैसे और ताबूल देने लगे। किसी ने कहा कि नागदेव का प्रतिष्ठापन करने से सतान होती है। पद्रह रुपये खर्च कर, नदी के किनारे प्रतिपादन किया और दो ब्राह्मणो को भोजन कराया। लेकिन संतान नही हुई।

इसी सदर्भ मे श्यामदास से नजुड श्रोत्रिय का परिचय हुआ। वे ऊँचे, आजानुबाहु व्यक्ति थे। विशाल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखे और लबी नाक। श्यामदास का परिवार हरिकथा प्रवचन करता हुआ गाँव से दूसरे गाँव भटकता रहता था। वे कोल्लेगाल के रहने वाले थे। सुरीले कठ से निकलता लय-संगीत, शुद्ध उच्चारण के साथ नि.सृत होते सस्कृत श्लोक, उनकी हरिकथा मे रग भरते थे, नजुड श्रोत्रिय को सस्कृत का ज्ञान था। उसने उन्हे घर बुलाकर पूछा कि सतान-प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए। उनकी सलाह के अनुसार तिरुपति हो आने पर भी कोई लाभ नही हुआ। श्रोत्रिय ने एक बार मैसूर जाकर जाँच करायी। उसने हिम्मत करके डाक्टर की राय पूछी तो पता लगा कि सतानोत्पत्ति के आवश्यक गुणों का उसमे अभाव है। अत. यह सोचकर चुप बैठ गया कि किसी भगवान् से कुछ न होगा। दत्तक लेने का विचार आया। पास-पड़ोस के कुछ लोगों से पूछताछ की। कोई भी इसके लिए तैयार नही हुआ। इतने मे उसके कानों मे एक खबर पड़ी कि एडतोरे मे किट्टप्पा कह रहा है कि नि.सतान भाई के मरने के बाद सारी जायदाद कभी-न-कभी उसके बच्चों को ही मिलेगी। यह सुनकर नजुंड श्रोत्रिय का सारा शरीर जलने लगा। वह गरज

उठा—'भले ही मेरे पितरों को नरक मिले, उस चांडाल की संतान को अपना एक पैसा भी नही मिलने दूंगा।' नि.सतान होने की निराशा, सतान पाने की असमर्थता और छोटे भाई के प्रति द्वेष-भाव, सब के सब एक साथ उसे जला रहे थे। लेकिन कानून के अनुसार यह सारी जायदाद किट्टप्पा के बच्चों को ही मिलेगी, इसी सदर्भ मे नंजुंड को श्यामदास की याद आई। पहले असह्य प्रतीत हुआ, लेकिन छोटे भाई की बात कानों पर पड़ते ही वह अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँच गया था।

पहले अच्चम्मा भी इसके लिए तैयार नही हुई थी। चालीस वर्ष की उम्र मे भी उसमे मानव-सहज दुराशा, स्वार्थ, छल-कपट आदि कई तुच्छ गुण थे, लेकिन वह पतिव्रता थी। पतिभक्ति का अभाव न था। फिर भी विवाह के दो वर्ष पश्चात् से माँ बनने की तीव्र अभिलाषा मे जल रही थी। पति की योजना ने उसके मन मे तिरस्कार पैदा कर दिया। लेकिन भविष्य मे किट्टप्पा के बच्चे अपनी जायदाद का उपभोग करेंगे, यह विचार उसके लिए भी असह्य बन गया था। माँ की आशका पुनः बलवती हो उठी। उसके समवयस्क या कुछ छोटे श्यामदास साल मे दो बार नजनगूडु आते थे। उनका हरिकथा प्रवचन आस-पास के गाँवो में हुआ करता था, लेकिन वे नजनगूडु के श्रोत्रियजी के घर ही मुकाम करते थे। इस बार आये तो उन्हे घर में छोड़, नजुड श्रोत्रिय खेत पर चला गया। लगभग एक महीने के बाद अच्चम्मा उलटी करने लगी। नजुड चिंतित रहने लगा कि श्यामदास यह बात किसी से कह दे तो क्या होगा ? एक दिन श्यामदास को घर बुलाया और उसे चार चपत जड़ दिये। साथ मे उसे चेतावनी दी—"तुम्हे सज्जन समझकर घर में स्थान दिया व भोजन कराया था, न कि नमकहरामी करने के लिए। तुमने फिर कभी इस गाँव के आस-पास मुँह दिखाया तो जिंदा नही छोड़ूँगा। मेरे घर लौटने से पहले तुम इस गाँव से चले जाओ।" इतना कहकर वह अपने खेत की ओर चल दिया। दिग्मूढ़-सा श्यामदास भीतर गया तो पाँच सौ रुपये की थैली उन्हे सौंपते हुए अच्चम्मा ने कहा—"उनके स्वभाव से आप परिचित नही है। अब कभी इस दायरे मे न आइए। अवश्य आपकी हत्या करा देंगे।"

श्यामदासजी को अधिक दुःख नही हुआ। वे पुनः उस दायरे में दिखाई नही पड़े।

नौ महीने भरने के पश्चात् अन्नम्मा ने एक बालक को जन्म दिया—सुलक्षण, सुघड़, विशाल ललाट, चौड़ा चेहरा। नजुंड श्रोत्रिय ने बालक को अपने पिता का ही नाम, श्रीनिवास श्रोत्रिय, देकर धूमधाम से नामकरण किया। गाँव वाले जान गये थे, लेकिन उसके सामने कोई कुछ नही बोलता था। कारण, उस क्षेत्र के अधिकांश लोगों को एक-न-एक दिन अपने जेवरात गिरवी रखने के लिए नजुंड के घर जाना पड जाता था।

श्रीनिवास बड़ी सूक्ष्म बुद्धि का था। आठ वर्ष का होते-होते ब्रह्मोपदेश महोत्सव सम्पन्न कराकर नजुंड श्रोत्रिय ने उसे अपना प्रवर सिखाया—"काश्यपगोत्रोत्पन्नः काश्यपावत्सार नैद्रव प्रवरत्रयान्वित आश्वलायन सूत्र समन्वितः ऋक् शाखाध्यायी श्री श्रीनिवास श्रोत्रियोऽहं''।"

लगभग आध घण्टे में लक्ष्मी ने सारी बातें कह सुनाईं। श्रोत्रियजी उदास हो गये। उन्होंने पूछा—"क्या यह सब सच है, लक्ष्मी ?"

"मैंने अपनी आँखों से थोड़े ही देखा है! मैं तो उम्र मे तुमसे पाँच वर्ष छोटी हूँ। जब मै छोटी थी, मेरे पिता किसी से यह बात कह रहे थे। मैंने केवल सुना है।"

श्रोत्रियजी चुप रहे। उनका मन अपने पिता नजुंड श्रोत्रिय और अपनी माँ का स्मरण कर रहा था। नंजुड श्रोत्रिय कुबड़े थे। काला रग, चपटी नाक, सिर तो धड़ पर रखा कद्दू जैसा लगता था। माँ भी सुदर नही थी। पति जितनी ही ऊँची, लेकिन उसमें वैसा मोटापा नही था। छोटा-सा मुख! श्रोत्रियजी का ध्यान अपने सुघड़ शरीर की ओर गया। चौहत्तर वर्ष की आयु मे भी ऊँचा भरा-पूरा शरीर। उभरे विशाल चेहरे पर बडी-बड़ी आखे! लबी नाक, चौड़ा ललाट। उन्हे अनायास अपने शरीर के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। इस शरीर से उन्होंने कभी विशेष प्यार नहीं किया था, लेकिन अपने स्वस्थ शरीर से वे सतुष्ट थे। उनका विचार था कि स्वास्थ्य तो मानव-जीवन का एक अग है। लेकिन वह स्वस्थ शरीर अब उन्हे सुखदायक नही लग रहा था।

"उठो, सो जाये, कल दोपहर तक सब कार्यो से मुक्त होने तक उपवास है। काम भी बहुत है" कहती हुई लक्ष्मी उठी। श्रोत्रियजी नीचे उतरे। चीनी के सिरहाने पासवाले खाट पर लेट गये। उनके चित्त मे

तूफान उठ रहा था। अपने माता-पिता के प्रलोभित जीवन के बारे में वे भी जानते थे। वे आभूषणों को गिरवी रख, सूद का धंधा करते थे— इससे भी श्रोत्रियजी परिचित थे। पिता के गुजर जाने के बाद श्रीनिवास श्रोत्रिय ने न केवल सूदखोरी बंद कर दी अपितु पिता से प्राप्त धन का तीन-चौथाई भाग सत्पात्रों को दान-रूप में दे दिया। अपने माता-पिता के जीवन-विधान के संबंध में कोई निर्णय देने को उनका मन कभी सहमत नही हुआ। उनका पूर्ण विश्वास था कि दूसरों के सही-गलत विचारों पर निर्णय देने का हमें क्या अधिकार है? उसमें भी माता-पिता के पाप-पुण्य की समालोचना करने वे कभी नही गये। उनका विचार था कि ऐसी समालोचना करना अपना अहंभाव का प्रतीक होगा। लेकिन आज मानो किसी ने उनके जीवन के गहरे विचार की जड़ को फरसे से काटकर समूल नष्ट कर दिया हो। अपने वंश के प्रति उनमें अपार गर्व था। उनका विश्वास था कि अपने वंश की पवित्रता की रक्षा करना, उसे आगे बढ़ाना, हर एक का मुख्य कर्त्तव्य है। विवाह आदि सस्कार, गृहस्थ-जीवन आदि जीवन की अवस्थाएँ तो वंश के पवित्र उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए निर्मित स्थितियाँ हैं—यह मानकर उसी जीवन-पथ पर चल रहे थे। गोत्र-प्रवर्तक कश्यप ऋषि की परंपरा में जन्म लेकर, अनादि श्रोत्रिय का नाम धारण किये अपने वंश के प्रति जो विश्वास था, उसकी नींव उनकी आँखों के सामने ही ढह रही थी।

यदि उन्हें मालूम होता कि वे श्रोत्रिय वंश के न होकर दूसरे वंश के माता-पिता की संतान हैं, और इस वंश में दत्तक पुत्र के रूप में हैं तो उन्हें इतना अपार दु:ख न होता! अगर नजुंड श्रोत्रिय अत्यंत गरीब दम्पति को तीन सेर 'नासनी' देकर बच्चे को लेकर अपनी संतान की तरह पालते तो भी उनका विश्वास न घटता। वे जानते हैं कि 'दत्तक' शब्द की उत्पत्ति ही संतानहीनों को संतान-प्राप्ति के लिए हुई है, लेकिन केवल वंश-प्रज्ञा से या अपनी मृत्यु के पश्चात् पिंडदान करने हेतु पुत्र की आकांक्षा से, नजुंड श्रोत्रिय ने ऐसा नही किया था। प्रलोभन, धोखे से जो संपत्ति हड़पी गयी थी, वह कहीं अपनी मृत्यु के पश्चात् छोटे भाई के हाथ न लग जाय, इस द्वेष से इस अपवित्र पथ पर कदम रखा था। उनके अपने द्वेषभाव को जीवित रखने के लिए, मुझ बालक का जन्म हुआ। मेरा वंश कौन-सा है?

मेरे जन्म का पावित्र्य कहाँ है ? श्रोत्रियजी अपने माता-पिता के प्रति तिरस्कार दिखाने के बदले अपने जन्म को ही धिक्कार रहे थे। उस रात उन्हें नीद नहीं आई।

चीनी के बगल मे लेटी लक्ष्मी को भी नीद नहीं आई थी। वह समझ गयी थी कि इससे श्रीनप्पा के मन पर आघात लगा है। इतने वर्ष से उनके मन मे एक प्रश्न था—'ऐसे माता-पिता के कुल मे जन्म ले, ऐसे घर में पलने पर भी श्रीनप्पा को युधिष्ठिर जैसी बुद्धि कहाँ से मिली ?' उसे इस प्रश्न का उत्तर ही नही मिल रहा था। ज्ञात विषय के बारे में भी कभी किसी से कहना उनका स्वभाव न था। यह उनके जीवन का अनुभव था कि अपने ही आचार-विचार से मनुष्य ऊँचा-नीचा होता है। श्रीनप्पा को ईश्वर-तुल्य समझकर वह चल रही थी। अगर आज वे अपनी ही कसम दिलाकर मुँह न खुलवाते, तो उन्हें भी यह बात नहीं बताती।

बिस्तर पर करवटें बदलते हुए श्रीनप्पा से उसने कहा—"इससे मन भारी मत करो। हम सब यह सोचकर चलते है कि हम अपने माता-पिता की संतान है। वास्तविकता को कौन जानता है ? मैं तो पहले से मानती आई हूँ कि यह सब झूठ है। मनुष्य के कर्म के अनुसार भगवान् पाप-पुण्य का फल देता है। जिस दिन से मैंने देखा है, उस दिन से तुम युधिष्ठिर की तरह हो। तुम्हें स्वर्ग मिलना निश्चित है।"

श्रोत्रियजी कुछ नही बोले। लक्ष्मी की बातें कानों पर पडती रही। लेकिन मन द्वन्द्व में ऐसा उलझा रहा कि कुछ समझ में नही आ रहा था। उन्हे प्रतीत होने लगा कि जिस आधार पर वे जी रहे थे, वही उनका हाथ छोड़ रहा है और वे अनन्त प्रपात में फँसते जा रहे है। "धरती के अथाह गर्भ से जन्म ले, बादलों तक फैले वृक्ष की डाली हूँ। अब किसी ने उसे काट डाला है। आर्तनाद करती वह अन्तरिक्ष से गिर रही है। वह विशाल वृक्ष तो उपेक्षा एवं क्रूर नीरवता में ऐसा खड़ा है मानो उस डाली से उसका कोई संबंध ही न हो। मैं एक दिग्मूढ अनाथ हूँ। अपवित्र उद्देश्य-पूर्ति के लिए अपवित्र ढग से जन्मा बालक हूँ। हे भगवान्, किस जन्म के पाप के कारण तुमने मुझे इस स्थिति मे जन्म दिया ?"

उन्हे अपने माता-पिता की याद आई। उन्होंने लाड़-प्यार से पाला-पोसा था। नंजुंड श्रोत्रिय कजूस अवश्य थे, लेकिन पुत्र के प्रति स्नेह

दिखाने में कंजूसी कभी नही दिखाई। मरने से पहले पैसा, सोना-चाँदी गाड़कर रखा स्थान भी बता दिया था। माँ तो जीवन-भर उनके प्रति प्यार उँडेलती रही थी। पुत्र के खान-पान, आदि की व्यवस्था करने में ही वह परम सतोष पाती थी। माता-पिता के स्वर्गवास के कई वर्ष बाद तक भी श्रोत्रियजी उन्हे स्मरण करते रहे थे। हर साल श्राद्ध करते समय उनका पुत्र वात्सल्य स्मरण हो आता था। अब तो पुत्र रूपी अकुर का मूल ही निर्नाम हो गया ! कैसा विपर्यास है, कैसी विडम्बना है—सोचते-सोचते श्रोत्रियजी ने करवट बदली।

उन्हे महाभारत का स्मरण हुआ। उस जमाने मे नि.सतान व्यक्ति, केवल वश वृद्धि के उद्देश्य से, शास्त्रानुसार पत्नी का परपुरुष से ससर्ग कराने मे भी सकोच नही करते थे। लेकिन उस पुरुष को यति-सी मन:स्थिति प्राप्त महात्मा होना पडता था। शारीरिक तुच्छ काम वासनाओं पर विजय प्राप्त करके वह व्यक्ति, केवल उस स्त्री को वीर्य दान करने की स्थिति में चाहिए। यह भी एक यज्ञ-सा है। उसे 'नियोग' कहते थे। इस कलियुग मे यह प्रथा नही है। वर्तमान युगधर्म ही भिन्न है। प्रथाएँ भिन्न है। इसके अतिरिक्त नियोग मे अपनी सम्पत्ति के मोह मे, पुत्र-प्राप्ति की तुच्छ कामना नही होनी चाहिए। लेकिन मेरे माता-पिता ने क्या किया? श्रोत्रियजी ने एक बार अधकार मे गहरी नि.श्वास छोडी।

उनका नि.श्वास सुनकर लक्ष्मी पुनः सात्वना देने लगी—"शीनप्पा, कई कठिनाइयो मे तुम अटल रहे। अब इस घटना से विचलित होकर नि.श्वास छोड़ोगे? तुमने पहले कभी ऐसे नि.श्वास छोड़ा हो, मुझे याद नही ! चुपचाप सो जाओ। दूसरो के किये कार्य की हमे चिन्ता नही करनी चाहिए। चीनी के भविष्य की चिन्ता करनी चाहिए। अब सो जाओ, कल बहुत काम है।"

उन्हे याद आया कि कल अपने पिता नजुड श्रोत्रियजी का श्राद्ध करना है—मुझ पुत्र को। उन्होंने सोचा, यह एक विडबना है। जिसके रक्त से जन्म नही लिया, धर्मानुसार जिस वश का न हुआ, जिसने केवल द्वेष-पूर्ति-वश उनके जन्म के लिए अपनी पत्नी को साधन बनाया, उसे पिता मानकर अब तक हर साल श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पिंडदान करते रहे। अब सत्य प्रकट हो चुका है। विश्वास का प्रमाण नष्ट होने के पश्चात्, मात्र दिखावे के

लिए नाटक करने से क्या लाभ ? यह भी धर्म की विडबना है। प्रीति-श्राद्ध की बातें श्रोत्रियजी जानते थे। कोई नि सतान मरे, तो उसके आत्मीयजन उसका श्राद्ध कर सकते है। लेकिन यह वैसी बात नही है। उन्होंने लक्ष्मी को आवाज दी। उसे नीद नही आई थी। उसने पूछा—"अभी तक नींद नही आई ?" श्रोत्रियजी बोले—"सचाई जान लेने के पश्चात् कल श्राद्ध करने में कोई अर्थ नही। सुवह उठकर पूर्वपक्ति के ब्राह्मणों के घर जाकर कह आता हूँ कि श्राद्ध नही किया जा रहा है, अतः न आयें।"

"लेकिन इतने वर्षो से······।" लक्ष्मी की बात बीच में ही काट, उन्होंने कहा—"सचाई न जानने के कारण एक परम्परा, विश्वासपूर्वक कई वर्षो तक चल सकती है। इतने से ही वह वन्दनीय नही बन जाती। अब मैं भिन्न मनुष्य हूँ—केवल श्रीनिवास, श्रोत्रिय नहीं।"

लक्ष्मी बैठी थी। श्रोत्रियजी सोचते रहे। आध घण्टे बाद लक्ष्मी बोली—"तुम्ही कहते हो न कि किसी भी कार्य को जल्दबाजी मे नहीं करना चाहिए। तुमने ही कहा था कि धर्म की रेखा बडी सूक्ष्म है, खूब सोचे बिना वह समझ मे नही आती। जल्दबाजी मत करो। कल का कार्य नियमित रूप से पूर्ण होने दो। तुमसे बढ़कर कौन जानता है ? बाद मे शांत चित्त से सोचेंगे।"

श्रोत्रियजी चुप रहे।

दोनो रात-भर सो न सके। नीद न आने पर श्रोत्रियजी अपने नित्य नियम के विपरीत सुवह छह बजे जागने पर भी खिन्न मन से लेटे हुए थे। लक्ष्मी और चीनी उठकर अपने-अपने काम में लग गये। आज चीनी कालेज नही गया। सुवह आठ बजने से पहले ही कुप्पय्या आ गया था। घर के पिछवाडे के कूएँ से पानी खीचकर स्नान किया। पिछली रात लक्ष्मी ने जो तरकारी साफ कर रखी थी, उसे पानी से धोकर शुद्ध किया और रसोईघर मे प्रविष्ट हुआ। चीनी घुटने तक भीगे कपड़े पहने ही कुप्पय्या के काम में हाथ बँटाने लगा। सारी रसोई शुद्ध घी मे तैयार की गयी। श्रोत्रियजी ने अभी तक स्नान नही किया था। घर के पिछवाड़े बाड़े मे वे गाय की गर्दन सहला रहे थे। गायों के भी प्राण होते हैं न ? उन्हें अपने वंश की जानकारी है ? उन्हे अपने माता-पिता का श्राद्ध-कर्म करने की समझ ही नही है। पति-पत्नी धर्म को निर्धारित करने वाली सामा-

जिक रचना ही नही है, तो मृत माता-पिता से संबधित कर्त्तव्य का निर्णय कैसे किया जा सकता है ? विचित्र विचार श्रोत्रियजी के मन में उठ रहे थे—अनिर्दिष्ट गति से मँडराते बादलों की तरह अटके हुए थे। बारह बजे सुब्बय्य शास्त्री जी आये। पूर्वपक्ति के ब्राह्मण भी शुद्ध कपड़े पहन, माथे पर विभूति लगा, ताम्र पचपात्र, गगाजली हाथ मे लिये आ गये थे। अभी तक बिना स्नान किये श्रोत्रियजी को बैठे देख, पहली पक्ति मे भोजन के लिए आए अनतराम मास्टर ने कहा—"यह क्या ? क्या बात है, तबीयत खराब है ? आँखें लाल हैं ?" प्रश्नों का कोई उत्तर न दे, श्रोत्रियजी मशीन की तरह स्नानगृह की ओर चल पड़े।

अपराह्न मे कार्य प्रारम्भ हुआ। मंत्र और उनके अर्थ समझने में प्रवीण श्रोत्रियजी को आज पता नही लगा कि शास्त्री जी क्या कह रहे हैं। कुश तर्जनी मे रखने के बदले बीचवाली अँगुली में लगा लिया। सारे व्यवहार भूल-से गये थे। बार-बार शास्त्रीजी उनका ध्यान आकर्षित करते और निर्देश देते, फिर यह सोचकर कि आज श्रोत्रियजी का स्वास्थ्य कुछ नरम है, शास्त्रीजी धीमी गति से मत्रोच्चार करने लगे। ब्राह्मणो के चरण धुले जल को श्रोत्रियजी ने स्वीकार किया। अत में ब्राह्मणों का भोजन प्रारम्भ हुआ। चीनी परोस रहा था। आरामकुर्सी पर बैठे शास्त्री जी ने पुन. पूछा—"क्या बात है, तबीयत खराब है ?" श्रोत्रियजी ने उत्तर दिया—कोई खास नही, यों ही कुछ !" यह सोचकर कि शायद वे बात करना नही चाहते, शास्त्रीजी चुप रह गये। ब्राह्मणों का भोज चल रहा था। चीनी परोसता जा रहा था। श्रोत्रियजी का मन विचलित था, अपरिचित दिशाओं मे भटक रहा था। अन्त मे शास्त्रीजी के 'ब्राह्मण भोजनानतरं तिलोदक पिंड प्रदानानि करिष्ये' श्लोक की ध्वनि श्रोत्रियजी के कानों मे पड़ी। ब्राह्मण-भोज समाप्त हुआ और उन्होने हाथ-मुँह धो लिये।

अन्त मे दक्षिणाग्र ही, कुश ग्रहण कर उसे धोया और वहाँ बाँधकर रखे पिंडो में से एक को उठा लेने को शास्त्रीजी ने कहा। श्रोत्रियजी द्वारा वैसा ही करने के बाद शास्त्री जी ने मत्र पढा—एतत्तेअस्मत्पितुः। नजुंड-देवशर्मणः काश्यपगोत्रस्य वसुरूपस्य काश्यपगोत्राय वसुरूपाय अयं पिंडः यस्धानमम ने मम। तेभ्यश्च गयाया श्रीरुद्रपादेषु दत्त······। उसे कुश

के ऊपर रख दीजिए और दूसरा पिंड उठा लीजिए। 'पितामह्…' शास्त्री-जी के मुख से ऊँचे स्वर में मंत्र नि.सृत हो रहा था।

ये मंत्र कानों में पड़ते समय श्रोत्रियजी को मानो चक्कर-सा आने लगा। आँखों में अँधेरा छाने लगा। सँभालने की भरसक कोशिश की, लेकिन व्यर्थ। मुख से शब्द न निकला। बेहोश हो वही जमीन पर लुढ़क गये। उनके हाथ मे जो पितृ-पिंड था, नीचे गिरकर टूट गया। भोजन करके बैठे हुए अनतराम मास्टर भयभीत हो दौड़े और श्रोत्रियजी के पास बैठकर उनके सिर को अपनी गोद में रखा। एक दूसरा ब्राह्मण उनके सिर पर ठण्डा पानी छिड़कने लगा। शास्त्रीजी ने चीनी को रसोईघर से बुला-कर कहा—"चीनी, दादा बेहोश हो गये है, एक पंखा लाओ।" चीनी घबरा गया। दौड़कर पंखा ले आया। कपाल पर काफी पानी छिड़कने और पखा झलने पर दस मिनट बाद श्रोत्रियजी को होश आया। उठने का प्रयत्न किया, लेकिन उठ नही पाये। उनके सिर से एक शुद्ध वस्त्र बाँधा। शास्त्रीजी ने कुप्पय्या से कहा—"तुम ही आओ। 'पवित्र' धारण कर शेष कार्य पूरा किया जा सकता है।" कुप्पय्या कमर में एक धोती कसकर बैठ गया। श्रोत्रियजी आँखें मूँदे लेट गये। चीनी उन्हे पंखा झलने बैठ गया। टूटे हुए पिंड के बदले एक दूसरा पिंड बँधवाकर शास्त्रीजी ने पुनः 'अस्मत्पितुः…' से प्रारंभ करके 'पितृ-पितामह प्रपितामहेभ्यः। गधान् समर्पयामि। तिलाक्षत यवाक्षतान् समर्पयामि। श्री तुलसी पत्राणि समर्प-यामि। दर्भान् समर्पयामि……" मंत्र के साथ समाप्त किया।

श्राद्ध-कर्म समाप्त होने के पश्चात् ब्राह्मणो को वस्त्र, पचपात्र, गगा-जली और चाँदी के रुपयो की दक्षिणा दी गयी। इतने मे श्रोत्रियजी को पूर्ण होश आ गया। आँखे खोलकर बात करने की स्थिति मे आ गये। शास्त्रीजी सोच रहे थे कि पितृपिंड का इस तरह टूटना श्रोत्रियजी के घर मे आने वाले अनिष्ट की पूर्व-सूचना है।

एक दिन श्रोत्रियजी बोले—"चीनी, तुम कालेज से दो दिन की छुट्टी ले लो, एडतोरे जाना है।"

"क्यों दादाजी?"

"मार्ग मे बताऊँगा।"

लक्ष्मी को घर पर छोड़, वे दोनों रेल से मैसूर पहुँचे। मैसूर से एड-तोरे जाने वाली एक शटल में बैठे। श्रोत्रियजी ने पौत्र से कहा—"सुना है कि किट्टप्पा श्रोत्रिय मेरे चाचा थे। मैंने उन्हें देखा नहीं है। उन्हें जमीन-जायदाद में कानूनन जो हिस्सा मिलना चाहिए था, उसमें मेरे पिताजी ने धोखा किया था। मेरी इच्छा है कि अगर चाचाजी के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र कोई मिल जाय, तो उन्हें अपनी जायदाद में से आधा हिस्सा दे दूँ। वैसा करना धर्म है, कर्त्तव्य है। इसमें तुम्हारी स्वीकृति है न ?"

"मुझसे क्यों पूछ रहे है ? आप जो उचित समझें, वही कीजिए।"

"फिर भी, अगर उन्हें जायदाद में से आधा हिस्सा देना हो तो कागज-पत्रों पर तुम्हारे हस्ताक्षर चाहिए। मेरा क्या ? कभी भी 'बुलावा' आ सकता है। उसके हकदार तुम हो। तुम्हें सहर्ष यह मान लेना चाहिए।"

"आपने ही कहा न ?" पौत्र ने विश्वासपूर्वक हृदय से कहा—"उन्हें देने में धर्म है, न्याय है। उसे मैं सहर्ष मान लेता हूँ। आपकी हर बात सदा धर्मपूर्ण न्यायपूर्ण रही है।"

श्रोत्रियजी को खुशी हुई। दोपहर के दो बजे वे एडतोरे स्टेशन पहुँचे। एक ताँगा कर, नवनिर्मित नगर में अपने एक परिचित के घर पहुँचे। पच्चीस वर्ष पहले चालीस की उम्र के किट्टप्पा श्रोत्रिय के बारे में पूछ-ताछ करने लगे, तो पता लगा कि उस गाँव में श्रोत्रिय घराने का कोई भी नहीं है। नंजनगूडु से आया कोई परिवार यहाँ नहीं है। मन्दिर के अनेक लोगों में से किसी के दादा का नाम किट्टप्पा नहीं था। अंत में उस गाँव में पचासी-नब्बे वर्ष के एक वृद्ध मिल गये। वे भी कर्मठ सनातनी ब्राह्मण थे। नजनगूडु से आये अतिथियों का आदर कर उन्होंने कहा—"मैं जब लगभग बीस वर्ष का था, तब इस गाँव में किट्टप्पा नाम का एक व्यक्ति था। नजनगूडु के ही थे। उनके तीन बेटे थे। उस समय वे लगभग चालीस-पैंतालीस के रहे होंगे। क्रोधी स्वभाव था। पास के ही एक मन्दिर में पुजारी थे। एक बार उनमें और मन्दिर के अधिकारी में झगड़ा हो गया। अधिकारी को खूब पीटा। वास्तव में गलती अधिकारी की थी, लेकिन धनवान पक्ष था वह। किट्टप्पा को मजबूरन गाँव छोड़कर जाना पड़ा। बच्चों के साथ न जाने कहाँ चले गये—कोई नहीं जानता।"

अपना प्रयत्न विफल जान, निराश श्रोत्रियजी चीनी के साथ नजन-

और अपनी माता के चाल-चलन की तुलना कात्यायनी के व्यवहार से की। कात्यायनी मे कोई क्षुद्रता नही थी। धोखा, द्वेष-भावना को तृप्त करने के लिए अनुचित मार्ग अपनाने का कोई कल्मष नही था। आधुनिक विचार की हवा भी उसमें नही थी। उसमें एक ही दोष था—अपने यौवन की ऊष्मा को सहने की असमर्थता। इसे जानकर वह दूसरे की पत्नी बनी। एक दृष्टि से उसके व्यवहार की प्रशसा करनी चाहिए। अपने माता-पिता के व्यवहार की याद आते ही श्रोत्रियजी के सारे शरीर में मानो आग लग जाती थी। दो-तीन घटे के लिए उनका मन क्रोध एव तिरस्कार से भर जाता था। फिर वे ही मन को समझा, पछताने लगते थे। 'इतने दिनों से प्राप्त चित्त-शाति को अब क्यों खोऊँ? तिरस्कार आदि राजस-तामस भावों को मन मे पनपने का अवसर क्यों दूं? अगर दैव सकल्प यही है कि मैं इस तरह जन्म लूं तो इसमे किसका दोष? माता-पिता के प्रति क्रुद्ध होने, उनके पाप-पुण्यों को तोलने का अधिकार मुझे कहाँ है? हे भगवान! पूर्ववत मुझे वही मन दो जिससे मैं अन्यों के पाप-पुण्यों को तोलने का प्रयत्न न करूँ!' श्रोत्रियजी आँख मूंदे मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे।

२५

निरतर पांच महीने तक लेखन कार्य मे लीन रहकर डॉ० राव ने अपने ग्रथ का पांचवां खण्ड पूर्ण करके सतोष की सांस ली। जिल्द की अतिम पक्ति समाप्त की—रात के दस बजे। रत्ने उनके पीछे एक कुर्सी पर बैठी उनकी हस्तप्रति पढ़ रही थी। लेखनी नीचे रखकर डॉ० राव ने रत्ने को पुकारा। वह पास गयी। उसका हाथ पकडकर भावुकतावश कहा—"जीवन की महत्वाकाक्षा पूर्ण हुई।" रत्ने का हृदय भर आया। उसने पति के हाथों को दबाया और नजदीक सरककर उनका सिर अपने वक्ष-स्थल से लगाकर कहा—"अब आपका कार्य पूर्ण हुआ। भगवान् ने

आपको आशिष दिया है। अब से आपको डॉक्टर की सलाह के अनुसार ही चलना चाहिए। किसी और बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

उस दिन से डॉ० राव को जीवन मे एक अवर्णनीय आनद मिलने लगा था। बीस वर्ष के निरंतर श्रम, श्रद्धा और तप के फलस्वरूप एवं रत्ले की आत्मीयता के प्रतीक के रूप मे उनका ग्रथ पूर्ण हुआ है। डॉ० राव सोचने लगे—'हर व्यक्ति को चाहिए कि अपने ही एक विशिष्ट पथ द्वारा जीवन को सार्थक बनाए। अपने पथ पर मैं सार्थकता की सीढ़ी तक पहुँच गया हूँ। इस ग्रंथ रचना के सिलसिले मे संगृहीत सामग्री से इसी विषय से सबधित चार-छ: छोटी पुस्तके लिखी जा सकती हैं, आठ-दस लेख लिखे जा सकते है। लेकिन इस कार्य को करने की शक्ति मुझमें नहीं है। यह रत्ले को ही करने दो। भगवान् ने आयु दी तो उसके लेखों को मैं यत्र-तत्र सुधार सकूँगा।' अब वे रोज टहलने जाते। कभी-कभी सुबह रत्ले को भी साथ ले जाते। 'आने के पश्चात् यह काम कर लेना' कहकर रत्ले को साथ चलने को विवश करते। रत्ले के सामने अनेक कार्य थे, जैसे पुस्तकालय मे डॉ० राव के लेखों की संदर्भ-सूची बनाना, ग्रंथों के पृष्ठ देखना, लेखन-शैली को कहीं-कहीं सुधारना, विषय-प्रतिपादन के क्रम में कहीं हेरफेर हुआ हो तो उसे क्रमबद्ध करना, और फिर पूरा खण्ड दुबारा टाइप करके प्रकाशकों को भेजना। डॉ० राव की हार्दिक इच्छा थी कि अंतिम खण्ड अपनी पत्नी रत्ले को समर्पित कर दिया जाए। लेकिन रत्ले सहमत नहीं हुई। उसका कथन था कि कोई भी पिता अपनी संतान को उसी की जन्मदात्री को अर्पित नहीं करता।

रत्ले अपने कार्य में खो जाती थी। डॉ० राव रोज एक घण्टे के लिए कालेज जाते। घर लौटकर सो जाते थे। कई बार, समय काटने के लिए पड़ोसी प्रोफेसर के घर चले जाते। 'अंत में डॉ० राव भी मनुष्य बन गये' कहकर प्रोफेसर मजाक करते। डॉ० राव कभी-कभी कालेज के अपने विद्यार्थियों को घर बुलाकर उन्हें पाश्चात्य [illegible] और [illegible] मजाक करते। उनका मन अब वैसा ही हल्का हो गया है [illegible] वाष्प-भार को वर्षा के रूप में त्यागकर मेघ हल्का हो जाता है [illegible] है। एक दिन उन्हें कात्यायनी की याद आई। उन्हें [illegible]

के बारे में वह नहीं जानती होगी। जानती तो अपने समस्त क्रोध को पीकर भी यहाँ दौड़ी आती। अपनी बीमारी को उससे छिपा रखना भी उसके प्रति अन्याय ही है।' यद्यपि उन्हें नागलक्ष्मी की उस दिन की कटु बातें याद थी, फिर भी अपनी बीमारी से मुक्त हो, ग्रथ-रचना पूर्ण होने के पश्चात् उसके प्रति एक नया भाव जाग्रत हुआ। उनका मन कहता— 'न जाने मै कितने दिनों का मेहमान हूँ! अब शेष जीवन में उसे भी साथ रखना चाहिए।' उसे बुलाने के बारे में रत्ने से कहा तो वह बोली— "पहले की तरह ही रूखी बात की तो—? डॉक्टर ने तो चेतावनी दी है कि किसी तरह के भावोद्रेक का अवसर न आने देना चाहिए।"

"मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस बार ऐसा नही होगा।"

"मैं भी चलूँ?"

"नहीं, मै अकेला जाता हूँ। राज घर पर ही होगा।" उस दिन सुबह टहलने जाने के बदले पैरों को लक्ष्मीपुर की ओर बढ़ाया। राज घर पर ही था। वही पहले बाहर आकर भाई को भीतर साथ ले गया। कात्यायनी ने उन्हे एक गिलास गरम दूध दिया। वह अब सूखकर पीली पड़ गयी थी! शरीर में रक्त का नाम भी नही था। डॉ० राव कारण जानते थे। अतः कुछ बोले नही। लेकिन उन्होने राज से कहा—"ग्रथ-रचना पूर्ण हो गयी है। नागु को ले जाने के लिए आया हूँ। वह अभी चले तो साथ ले जाऊँगा।" राज भीतर गया। इस बीच कात्यायनी ने पृथ्वी को बाहर भेज दिया। उसने आकर पिता के चरण स्पर्श किये। उसके सिर को स्पर्श कर आशीर्वाद देने के बाद डॉ० राव ने पूछा—"अब किस कक्षा मे हो?"

"इस वर्ष बी० एस-सी० की तैयारी कर रहा हूँ।"

"उस घर की ओर भी आया कर। शाम को आना। घूमने चलेंगे।"

"अच्छा!"

भीतर जाकर राज ने नागलक्ष्मी को सारी बात बतायी तो उसने स्पष्ट कह दिया—"*मै किसी के घर नही जाऊँगी।*" राज ने धीरे से डॉ० राव की बीमारी के बारे मे उसे बताया। डॉक्टर के मना करने के बावजूद ग्रथ-रचना की बात बताकर कठोर बनकर बोला—"शायद तुम्हारे कारण ही उन्हें हृदय का पहला दौरा पड़ा था। अब भी उनकी स्थिति ृ ही नाजुक है। अब फिर तुम हठ करने लगोगी तो पता नहीं, उनके

मन को कितना आघात पहुँचेगा, कब क्या हो जाय ! क्या तुम उस सबके लिए तैयार हो ?"

दो मिनट मे नागलक्ष्मी पिघल गई—"अशुभ क्यों सोच रहे हो ? एक घण्टे मे रसोई तैयार हो जाती है। उन्हे रुकने के लिए कहो। उनके साथ तुम सबको परोसूंगी। फिर मै भी खा लूंगी। यहाँ कात्यायनी की यह हालत है, तुम उसे कैसे सँभालोगे ?"

"हमारा तो किसी तरह चल जायेगा। रसोई के काम मे मै भी हाथ बँटाया करूँगा। पृथ्वी भी तो है, आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से रागप्पा को बुला लेगे। घर का ऊपरी काम कर देगा तो कात्यायनी दाल-भात बना लेगी।"

बाहर आकर राज ने भाई को सारी बातें बताकर कहा—"आप भी भोजन कर लीजिए।" दोनों भाई बातो मे लग गये। साढ़े नौ बजे डॉ० राव ने वही स्नान किया। फिर भोजन के लिए बैठने ही वाले थे कि रत्ने आ पहुँची। राज ने स्वागत किया। वह बोली—"इनकी स्थिति काफी नाजुक है, इतनी देर नही लौटे, तो मै घबरा गयी थी।"

"आइए, भोजन के पश्चात् तीनो साथ जाइएगा।"

रत्ने भीतर गयी। हाथ-पैर धोये। खाने को बैठने से पहले, भीतर जाकर नागलक्ष्मी को प्रणाम किया। अचानक नागलक्ष्मी सकपका गयी। समझ न सकी कि क्या करना चाहिए। वह चुपचाप खड़ी थी। लेकिन उसका मन आनद से भर गया। सबको बैठाकर उसने भोजन परोसा। भोजन होने तक राज ताँगा ले आया। खाते समय डॉ० राव ने कात्यायनी से कहा—"अब अलग दो-दो घरों मे रहने की आवश्यकता नही। सब वही आ जाओ। अब तुम सब लोगों के साथ जितना अधिक रहता हूँ, उतना ही अधिक आनद महसूस करता हूँ।"

गाड़ी मे यात्रा करते समय तीनो का मन आनंद मे डूबा हुआ था। रत्ने किसी उन्नत भावना का अनुभव कर रही थी। डॉ० राव को प्रतीत हो रहा था कि जीवन पर काली छाया का एक क्रूर द्वंद्व सुलझ गया, किसी समन्वय को सगति प्राप्त हुई। नागलक्ष्मी का मन श्रीराम का स्मरण कर रहा था। वह मन-ही-मन कह रही थी—तुम पर विश्वास करने वालों का तुम कभी हाथ नही छोड़ते। 'श्रीराम जयराम जय-जय राम। श्रीरामः

शरणं मम।'

नागलक्ष्मी जिस घड़ी उस घर मे प्रविष्ट हुई, घर को नया जीवन मिला। रसोईघर मे रागप्पा द्वारा बनाये भोजन को जाँचा। मिर्च पउडर का डिब्बा खोलकर बास देखा। उसी दोपहर को रागप्पा को दुकान भेजकर मसाले का सामान मँगवाया। खुद कूटा और महकता हुआ मसाला बनाया। शाम को उसे बाजार भेजकर नीबू, अदरक, फल-फूल, पान, तरकारी आदि मँगवाई। चूर्ण का डिब्बा एवं सुपारी भी। शाम को जब वहाँ पृथ्वी आया तो उससे भगवान् श्रीराम का चित्र, राम-नाम लिखने की वही, स्याही की बोतल और कलम मँगवाई। उस दिन रात को उसी ने रसोई बनायी। डॉ० राव और रत्ने को परोसा। सकोच-वश रागप्पा नागलक्ष्मी के भोजन के पश्चात् खाने बैठा। अपनी टूटी-फूटी कन्नड मे रत्ने नागलक्ष्मी से बात कर लेती थी। रत्ने ने नागलक्ष्मी को 'सिस्टर' कहकर सबोधित किया। डॉ० राव ने समझाया कि उस शब्द का अर्थ है 'दीदी'।

दूसरे दिन सुबह चार बजे उठकर नागलक्ष्मी ने चूल्हा जलाया। रत्ने और डॉ० राव सुबह पाँच बजे उठे, तो उन्हे गरम दूध दिया। डॉ० राव हाथ मे छडी लिये टहलने निकल पड़े। रत्ने भीतर आकर बोली—"दीदी, कुकिंग मे मैं हैल्प करूँ?" नागलक्ष्मी ने कहा—"नही, तुम लिखो-पढ़ो। जिस कार्य को मैं अच्छी तरह कर सकती हूँ, मुझे करने दो। तुम जिसे अच्छी तरह कर सकती हो तुम करो।" रत्ने धीरे से मुस्करायी। उसे नये भाग्य के एक अनुपम सुख की अनुभूति हुई। उल्लासपूर्ण मन से अध्ययन-कक्ष मे बैठकर हस्तप्रति पढ़ने लगी। डॉ० राव टहल कर साढे आठ बजे लौटे, तो नागलक्ष्मी उन्हे स्नान कराने ले गयी। अपने हाथों से पानी डाला और शरीर मलकर स्नान कराया। उनके यह पूछने पर कि 'क्या मैं बच्चा हूँ?' वह बोली—'बच्चा नही तो और क्या हैं, अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना भी नही आता।' इतना कहकर कृत्रिम क्रोध दिखाते समय उसका मन हर्ष से भर गया था। दस बजे भोजन परोसने से पूर्व रत्ने एव डॉ० राव को बुलाकर बोली—"आइए, पहले रामचद्रजी को नमस्कार कीजिए। बाद में भोजन।" उन दोनों ने श्रद्धा-

पूर्वक भगवान् के सामने सिर नवाया। डॉ० राव की ओर इशारा करके रत्ने, नागलक्ष्मी से बोली—"ये हमारे घर के रामचन्द्र है, इज ही नाट?" यह सुनकर डॉ० राव ने कहा—"लेकिन इस राम की दो पत्नियाँ हैं।" रत्ने, नागलक्ष्मी दोनों खूब हँसी। उस दिन भोजन का स्वाद ही अलग था। ऐसा स्वादिष्ट भोजन कुछ वर्ष पहले नागलक्ष्मी ने ही बँगले मे बनाया था। डॉ० राव को उसका स्मरण हो रहा था। बनी हुई सभी चीजें इतनी स्वादिष्ट बनी थीं कि किसे खायें, किसे छोडें—यही समझ मे नही आ रहा था। भोजन के स्वाद ने रत्ने को चकित कर दिया था। रोज की अपेक्षा आज उसने अधिक खाया। डॉ० राव ने भी कुछ अधिक ही खाया।

भोजन के पश्चात् रत्ने हस्तप्रतियाँ लेकर पुस्तकालय गयी। नागलक्ष्मी खाने बैठी तो डॉ० राव रसोईघर मे आकर उसे परोसने लगे। 'नागु, आज तक जो हुआ, सो हुआ। आज से रोज मुझ से परोसवा लेना' कहकर इतना परोसते रहे कि नागलक्ष्मी बस-बस करती रही। "कात्यायनी कैसी है ? वह मान जाय तो हम सब साथ रहें। इतना बड़ा बँगला है। इसका भाड़ा देते है, वहाँ वे अलग भरते हैं। कात्यायनी की तदुरुस्ती भी ठीक नही है। तुम्हारे बिना राज का भी दिल नही लगता। पृथ्वी भी हम लोगो के साथ रहने लगेगा।"

नागलक्ष्मी के भोजन के पश्चात् रागप्पा खाने बैठा। उसने कहा—"माँ, कम-से-कम अब तो आप बाहर जाइए। आप काम करती है तो मुझे बैठने में शर्म आती है। आपकी तरह रसोई बनाने के लिए सरस्वती का अनुग्रह चाहिए।" थाली मे तांबूल रखकर नागलक्ष्मी बाहर के कमरे मे आई। डॉ० राव अपने पलग पर बैठे थे। कमरे का द्वार बन्द कर भीतर आकर पलंग के पास कुर्सी पर बैठकर नागलक्ष्मी ने पूछा—"आपको पान दूँ ?"

"नही, डॉक्टर ने मना किया है।"

नागलक्ष्मी ने भी पान नही खाया। चवालीस वर्ष की उम्र में सिर के अधिकाश वाल सफेद हो गये हैं। सँवार कर बाँधे गये सफेद बाल चमक रहे थे। गाँठ पर शेवंतिका पुष्प सुशोभित था। विशाल ललाट बीच में चौड़ा सिंदूर दिखाई दे रहा था। उसके नीचे छोटी-सा

का विंदु । सात्विक कांतिमय उसके चेहरे पर पहले का-सा मुग्ध सौंदर्य अब भी है। पहले जैसे उसके दोनों हाथों में चूड़ियाँ हैं। गाल, हाथ-पैरों में लेपन की हुई हल्दी भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। उसे दो मिनिट अपलक देखते रहने के बाद डॉ० राव ने कहा—"नागु, इतने दिन तुमसे अलग रहा। तुम्हारे साथ रहता तो हृष्ट-पुष्ट रहता।" नागलक्ष्मी ने सिर झुका लिया। उसकी आँखों मे आँसू भर आये। यह देख डॉ० राव ने उसका हाथ पकड़ खींच लिया और पलंग पर अपने पास बैठाकर बोले—"रोओ मत ! मै तुम्हें अब कभी नही छोड़ूँगा।"

"आप थक गये है, लेट जाइए" कहकर उन्हें अपनी गोद में सुला लिया। पैर पसारकर पत्नी की गोद में सिर रखकर विश्राम कर रहे डॉ० राव का मन अपूर्व हर्ष के प्रवाह में बह चला। उनके मुख को अपने हाथों मे लेकर पति से पूछा—"आप जब बीमार पड़े, मुझे क्यों नही बुलाया ? उस दिन जब मुझे बुलाने आये थे, तब मुझे गुस्सा आया हुआ था। लेकिन आपके बीमार पड़ने पर सेवा न करने जैसी पापिन हूँ क्या ?"

"ऐसा मत कहो, नागु ! तुम सचमुच भाग्यशालिनी हो। इतने दिनों तक तुम्हारे साथ ऐसे व्यवहार के कारण मैं ही पापी हूँ।" "छिः ! छोड़िए भी, आप ऐसा न कहें" कहकर उनके मुख पर हाथ रख दिया। हाथ हटाकर उन्होने कहा—"मैं पाप-पुण्य की विवेचना नही करता। तुम भी जानती हो। किसी नीच प्रवृत्ति की चपेट मे आकर मैने रत्ने से विवाह नही किया। वह न होती तो शायद मेरे ग्रन्थ और दस वर्ष मे भी पूर्ण न हो पाते। हम तीनों, पहले से ही इस तरह रह सकते थे। लेकिन नवीन मनोभाव की रत्ने ने यह प्रस्ताव स्वीकार नही किया। हमेशा उसके साथ रहे बिना मेरा ग्रन्थ पूर्ण न हो पाता। फिर भी अंततः हम एक हो गये। इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ?"

डॉ० राव का आनन्द निरन्तर बढ़ता जा रहा था। जीवन का द्वन्द्व समाप्त हो गया। और मन की शांति प्राप्त करके वे एक सुसंगति के आनन्द-सागर मे डूब गए। ऊँची आवाज मे वे बोले—"मैने जिस महादेश की भव्य संस्कृति का इतिहास लिखा है उसके उन्नत दर्शन, कला, धर्म—संसार को प्रदान करने वाली वह संस्कृति कितनी महान् है ! इसके महाप्रवाह को अपनी गंगा का जल प्रदान करने वाले महानुभावों के

अंत.सत्व को समझाने का कितना प्रयत्न किया है मैंने ! वह निरा प्रयत्न नहीं । उस लेखन कार्य ने मुझे तृप्ति दी है। महा साधना मे छोटी-छोटी त्रुटियाँ भी हुई होगी ! नागु, हम दोनों का अलग रहना, तुम्हारा इतने वर्ष दु ख सहना, आदि इस साधना के लिए शायद अनिवार्य था ! भगवान् की शायद यही मर्जी थी। अब जिस तरह कार्यक्रम के अत मे सब एक होकर मगल गीत गाते हैं, वह क्षण भी आ गया कि मैं तेरी गोद मे सिर रखकर सो जाऊँ ! नागु, जानती हो मुझे कितना आनन्द मिल रहा है ? मेरी छाती पर मुख रख लो। मुझे अपनी बाँहो मे भर लो। क्या तुम्हें खुशी नही हो रही है ?" कहकर उन्होंने पत्नी की कमर अपने दोनों हाथों से पकड ली। नागलक्ष्मी की आँखों मे आनंदाश्रु भर आये । उसने उन्हें सीने से लगा लिया। "नागु, यह हर्ष, हर्ष को···" आगे बोलना कठिन लगा। "मैं सह नहीं सकता···" बड़े कष्ट से कह पाये। साँस रुक-सी गयी। शरीर पसीने से तर हो गया । छाती के बायें पक्ष मे असह्य वेदना हुई। वे आगे बोल नही सके। धीरे से अपना हाथ छाती की ओर ले गये। नागलक्ष्मी भयभीत हो उठी। अपने सीने से लगाये हुए उनके मुख को हटाकर पुनः गोद मे लिटाया। डॉ० राव के मुख पर क्षण-भर मे यम-यातना दिखायी दी। कुछ न सूझा तो नागलक्ष्मी ने रागप्पा को आवाज दी। रागप्पा के दौडकर आने तक डॉ० राव के चेहरे पर वेदना घटती-सी दिखाई पड़ने लगी। आँखें मुँदी हुई थी। हाथ-पैरो का हिलना-डुलना बन्द हो चुका था। रागप्पा ने डॉ० राव का हाथ पकड़ा, नाक के पास हाथ ले जाकर देखा। वह समझ गया। "प्रोफेसर को बुलाता हूँ" कहकर बाहर दौड़ा। नागलक्ष्मी को शका हुई। वह जोर-जोर से रोने लगी। एक क्षण पहले आनदाश्रुओं से भरी हुई आँखों से दुःख का प्रवाह उमड़ने लगा।

प्रोफेसर घर मे नही थे। उनकी पत्नी आई। उनके आने तक नाग-लक्ष्मी समझ चुकी थी। प्रोफेसर की पत्नी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसका रुदन और भी बढ़ गया। पाँच मिनिट मे रत्ने रागप्पा के साथ दौडती आई। कमरे का दृश्य देखकर वह तुरन्त कहना चाहती थी, 'आपके साथ रहकर भावोद्रेक के कारण उन्हें 'हार्ट अटैक' हुआ है' लेकिन बात जबान तक आकर रुक गयी। अपने अब तक के साथी डॉ० राव के शरीर पर वह लुढ़क गयी ।

डॉ० राव की मृत्यु की सूचना मिलते ही कालेज के प्राध्यापक, विद्यार्थी आदि उनके बँगले पर आये। प्रिंसिपल ने छुट्टी की घोषणा कर दी। दूसरे दिन सपन्न शोक-सभा मे उनके हर ग्रथ की एक प्रति सबके देखने के लिए मेज पर रखी गयी। मेज के पास कुर्सी पर डॉ० राव की तसवीर थी। उस पर बड़ी-सी पुष्पमाला पड़ी हुई थी। उस सभा मे बोलते हुए उपकुलपति ने रुद्ध कठ से कहा—"किसी भी विश्वविद्यालय की क्षमता, महत्त्व, प्रतिष्ठा ऐसे महान् विद्वानों एवं ऐसे महान् ग्रन्थों से ही बढ़ती है, न कि अधिकारी-वर्ग से।" अन्य तीन वयोवृद्ध प्रोफेसरों ने जब कहा, "डॉ० राव हम-जैसे प्रोफेसरों के गुरु माने जाते है। समस्त जीवन को ज्ञानार्जन के लिए निछावर कर देने वाले ऐसे व्यक्ति के चरणों का स्मरण करना चाहिए" तो उनमे से दो के नेत्रो से आँसू टपक पड़े थे।

राज उसी शाम बँगले मे ताला लगाकर रत्ने और नागलक्ष्मी को घर ले आया। परपरागत नियम के अनुसार क्रिया-कर्म पृथ्वी को करना चाहिए था। लेकिन उसका यज्ञोपवीत संस्कार नही हुआ था, अतः राज ने सब किया। सातवे दिन से कार्य प्रारम्भ हुआ।

नागलक्ष्मी के जीवन मे भरी निराशा दूर हुई, वह एक दिन सुबह ग्यारह बजे गाड़ी में अपने पति के साथ बैठकर पतिगृह आई और दूसरे दिन ही उसी समय उसकी गोद मे पति ने प्राण त्याग दिये! 'शायद मेरे पूर्व-जन्म के कर्म ही ऐसे है। मेरे पूर्वार्जित पाप से ही उन्हे ऐसा हुआ।' कहकर वह रोती-सिसकती रही। इतने दिन पति जब जीवित थे, वह उनसे अलग रही। अब वे नही रहे। पति से अलग रहने की अपेक्षा वैधव्य अधिक क्रूर प्रतीत हुआ। राज, कात्यायनी और रत्ने के कहने के पर भी उसकी रुलाई नही थमी। पिता के साथ कोई सम्बन्ध न होते हुए भी पृथ्वी रो रहा था। जेठ के प्रति कात्यायनी को आदर था। उनकी विद्वत्ता के प्रति उसकी श्रद्धा थी। वह भी दो दिन आँसू बहाती रही। रत्ने को वही धीरज दिला रही थी। राज के लिए भैया की यह मौत अनपेक्षित थी। बेटे के स्थान पर वह उत्तरक्रियादि कर रहा था।

पति की मृत्यु के दस दिन तक नागलक्ष्मी सुमगला थी। घर आने वाली स्त्रियाँ उसे फूल पहनाती, माथे पर सिंदूर लगाती, हाथ मे चूड़ियाँ पहनाकर गाल पर हल्दी का लेपन करती थी। जैसे-जैसे दसवाँ दिन पास

आता, अपने भाग्य का सिंदूर खोने की चिंता से वह दिन-रात रोती रहती। पहले बाल सँवारते समय दिन में एक वार दर्पण देखती थी, किन्तु अव हल्दी-कुकुम लगे मुख को वार-वार दर्पण में देखा करती। साथ ही, आ पड़े दुःख को सहने में असमर्थ हो, जीवन पर लोटने लगती। नौवें दिन उसके और राज के बीच गरमागरम वहस हो गयी।

"राज, जब प्राण ही उड़ गये तो इस गन्दे शरीर से क्या लाभ? कल इन वालों, इन साड़ियों—सवको जाने दो। दूसरी साड़ी मँगवा दो।"

"पुराने जमाने की स्त्री की भाँति वातें मत करो। शास्त्र के अनुसार अवश्य चलने दो। वालो को वैसे ही रहने दो। भविष्य मे तुम केवल सफेद साड़ियाँ पहना करो।"

"क्या मैं आफिस मे काम करती हूँ जिसके लिए मैं सफेद साड़ियाँ पहनूँ? मुझे वे सव नही चाहिए" कहकर नागलक्ष्मी ने हठ किया। इतने में कात्यायनी वहाँ आ गयी। उसे देखते ही नागलक्ष्मी ने रोकर कहा—"तू ही कह दे री इसे! मैं सिर मुँडा लेना चाहती हूँ।"

कात्यायनी का हृदय चीख उठा। इतने दिन साथ रहकर वह सिर मुँड़ाए, लाल साड़ी पहने नागलक्ष्मी के रूप की कल्पना भी न कर सकी। उसे अनायास अपने बीते हुए दिनों की याद आ गई। बीस वर्ष पहले जब उसका पहला पति मरा था तो दस दिन तक वह भी सुमगला की वेशभूषा मे थी। दसवें दिन सिर के फूल, गले का मगलसूत्र, हाथ की काँच की चूड़ियाँ निकाल दी थी। माथे का सिंदूर पोंछ दिया था। रगीन साडी उतारकर सफेद साडी पहनते समय वह वेहोश-सी हो गयी थी। उसका सिर मुँड़वाने लाल साड़ी पहनाने की सलाह उसकी सास भागीरतम्मा ने दी थी, लेकिन आधुनिक काल मे इतनी कम उम्र में अपनी वहू का जी न दुखाने के विचार से श्रोत्रियजी ने यह सलाह अस्वीकार कर दी थी। उसे पुनः फूल, चूड़ियाँ पहनने, माथे पर सिंदूर लगाने का सौभाग्य मिला था। पुनः प्राप्त सौभाग्य से वह हर्षित भी हुई थी। लेकिन अव उसकी विचार-धारा वदल चुकी थी। दो मिनट अपने आप न जाने क्या सोचकर वह राज से वोली—"दीदी ठीक कह रही हैं। आप वैसा ही कीजिए।"

"लेकिन लाल साड़ी पहने हुए नागु को मैं देख न सकूँगा, मैं मन समझा न सकूँगा!" राज ने रुँधे कण्ठ से कहा।

"दु:ख सह लेना चाहिए। इस विषय में आपकी अपेक्षा दीदी का अनुभव अधिक परिपक्व है। नयी स्थिति को सांकेतिक रूप में भी स्वीकार करने के लिए वे तैयार हैं। जो वास्तविकता है, उसे आप अस्वीकार नहीं कर सकते। उनके सकेत का आप विरोध क्यों करते हैं? इस विषय में पुरुष के विचार-तर्कों की अपेक्षा स्त्री की अंतःप्रेरणा ही अधिक विवेकशील है।"

राज चुप हो गया। दूसरे दिन नागलक्ष्मी घर से निकली। अपने सुहाग-चिह्नों को त्यागते समय न रोने का निश्चय कर, अधर भीच लिये। क्रिया-कर्म हुए। नियमानुसार घर के पिछवाड़े के द्वार के नीचे बैठ गयी। सिर पर एक घड़ा ठडा पानी डलवाकर घर में प्रवेश करते समय चक्कर खाकर गिर पड़ी। कात्यायनी की पन्द्रह मिनिट की शुश्रूषा के पश्चात् उसे होश आया। सब क्रिया-कर्म होने के दूसरे दिन 'श्रीराम' के चित्र के सम्मुख बैठकर वह बोली : "श्रीराम! तुझ पर मेरा विश्वास था! तूने ही ऐसा किया! फिर भी तेरी पूजा करती हूँ! अगले जन्म में उन्हीं को मेरा पति बनाना। भाग्य में सुमगला मृत्यु लिखने न भूलना।"

उसी दिन से वह पहले की अपेक्षा अधिक श्रीरामनाम लिखने लगी॥

इस अज्ञात वातावरण में घर की सारी जिम्मेदारी कात्यायनी पर पड़ी। इतना परिश्रम करने की क्षमता उसके शरीर मे नही थी। एक-दो दिन बाद उसे बुखार आने लगा। उसकी शुश्रूषा के लिए नागलक्ष्मी के अतिरिक्त और कोई नहीं था।

सारे कार्य समाप्त होने के पूर्व ही वहाँ से रवाना होने पर राज और कात्यायनी को दुःख होता, इसलिए रत्ने तेरह दिन तक वही रही। डॉ० राव की पत्नी बनने के पश्चात् रत्ने भी रोज सिंदूर लगाती थी। वह सदा सादी सफेद साड़ी पहना करती थी। दसवें दिन घर मे ही स्वेच्छा से अपने माथे का सिंदूर पोंछ दिया।

वैकुंठ समाराधना के दूसरे ही दिन वह राज से बोली—"अब मैं वहाँ जाऊँगी।

राज को आश्चर्य हुआ। "उस बँगले में अकेली क्यों जा रही हैं?' इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय नियमानुसार उसे खाली करायेगा। वहाँ

जो ग्रंथ आदि हैं, उन्हें ले आयेगे। कमरे मे बैठकर शेष कार्य पूर्ण कीजिए। आप भी तो मेरी भाभी हैं !"

"आपका औदार्य महान् है, लेकिन शेष कार्य मैं वहीं रहकर पूर्ण करूँगी। वही रहकर मुझे मन.शाति मिल सकती है" कहकर वह निकल ही पडी, किसी की बात नही मानी।

"आप सकोच न करें। खर्च को हर मास मै पैसे दूँगा।" राज ने कहा।

"मेरे पास पैसे है। उन्हे प्रथम बार हृदय का दौरा पड़ा था, उस दिन से उन्होंने बैंक अकाउण्ट मेरे नाम कर दिया था। लगभग सात-आठ हजार रुपये है। अभी-अभी प्रकाशकों से कुछ रुपये आ गये हैं। इस बारे में चिन्ता न करें। रागप्पा साथ रहेगा। आप आना न भूलें !" कहकर वह चली गयी। नागलक्ष्मी और कात्यायनी से विदा लेकर रागप्पा के साथ ताँगे मे बैठी तो उसकी आँखो में आँसू छलक पड़े।

उसी दिन पड़ोस के प्रोफेसर के साथ विश्वविद्यालय के उपकुलपति रत्ले को देखने आये। जिस कमरे में वे मरे थे, उसी में बैठकर स्वर्गीय विद्वान् के गुणों को स्मरण करने के पश्चात् बोले—"आप राजाराव के साथ रह सकती हैं न ?"

"उन्होंने यही कहा था। लेकिन न जाने क्यों मेरा मन यहीं रहने को कहता है।"

"वैसा ही कीजिए। कहते हैं डॉ० राव की मृत्यु का समाचार यूरोप-अमरीका के समाचार-पत्रों में छपा है। बी० बी० सी० से समाचार प्रसारित हुआ है, मैंने भी सुना है। स्वर्गीय विद्वान की विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए उनके परिवार तक अपनी हार्दिक संवेदना पहुँचाने का निवेदन करते हुए विदेश के अनेक प्रोफेसरों ने हमारे आफिस के पते पर पत्र भेजे है। डॉ० राव जैसे विद्वानो के कार्य से हमारे विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा बढ़ती ही थी। पांचवें खण्ड का कार्य कहाँ तक हुआ है ?"

"तीन-चार महीने मे प्रकाशन के लिए भेज दूंगी।"

"अच्छा ! आपके अतिरिक्त और कौन उसे पूर्ण कर सकता है ? आप जितने दिन रहना चाहती हैं, इस बंगले में रह सकती हैं। भाड़ा न लेने का आदेश दे देता हूँ। उनके ग्रंथ का संशोधन करके प्रकाशन करने के निमित्त आपको दो-तीन हजार रुपये की सहायता-निधि दिलाने की

व्यवस्था भी करवा देता हूँ। आप किसी बात की चिंता न करें।"

"अत्यंत आभारी हूँ। फिलहाल मुझे यह बँगला ही चाहिए। रुपयों की आवश्यकता नही है।"

दूसरे दिन रत्ने को प्रकाशकों का पत्र मिला। उसने पत्रोत्तर मे लिखा कि "पाँचवाँ खण्ड पूर्ण करने के पश्चात् ही डॉ० राव की मृत्यु हुई है और उसे तीन-चार महीने मे प्रकाशनार्थ भेज दूंगी।" उसी दिन से उसका कार्य प्रारंभ हो गया। लगभग एक महीना वह पुस्तकालय में रही। अनेक संदर्भों में कई ग्रंथो से नोट उतारे। हस्तप्रति टाइप करने बैठी। थोडा भी आराम नही! कार्य करके थक जाती। लेकिन आराम करने बैठती तो अतीत का स्मरण हो आता और मन दुःखी एवं संतप्त हो उठता। रागप्पा अपने कार्य तक ही सीमित रहता। कभी कुछ नही बोलता। वह सोचता, 'भविष्य मे मेरे जीवन का क्या होगा?' लेकिन इस बारे में रत्ने से कभी नहीं कहा। अपना काम करता रहा। डॉ० राव के निधन से उसे भी बड़ा आघात पहुँचा था।

चार महीने पश्चात् एक दिन शाम को रत्ने का काम पूरा हो गया। अब से पंद्रह दिन पूर्व ही उसने टाइप समाप्त किया था। उसी दिन से टाइप की गयी प्रतियों को जाँचने लगी थी। लगभग बीस पृष्ठ पुनः टाइप करने पड़े। सब पन्नों को क्रम से जोडा। प्रकाशको ने रत्ने से निवेदन किया था कि खण्ड की भूमिका के रूप मे छापने के लिए स्वर्गीय डॉ० राव की जीवनी एवं विद्वत्ता के बारे मे वह स्वयं लिखकर भेजे। उसके द्वारा लिखा गया वह जीवन-चित्र, जिसमें उसके पति की विद्वत्ता का वर्णन था, कलाकार के रंगीन चित्र से अधिक स्पष्ट था, हृदयग्राही था। सबको मिलाकर एक बड़े लिफाफे मे भरा और उसे बंद करके मुहर लगाकर पता लिखा। दूसरे दिन डाकघर भेजने की तैयारी करने तक रात के दस बज गये थे। खण्ड के कार्य से मुक्त होकर वह आरामकुर्सी पर पीठ टेककर बैठ गयी। तब अनायास उसे रोना आ गया। गत चार महीने से कार्य करते हुए वह कभी नही रोयी थी। मानो इस विचार से वह जीवन बिता रही थी कि पति पास बैठे कार्य करा रहे हैं। टाइप करते समय उसे प्रतीत होता था मानो वे ही उसके कानों मे विषय फूंक रहे हैं। भूमिका लिखते समय उसे अनुभव हुआ कि वे सामने बैठकर लिखा रहे हैं और

वह शीघ्रलिपि में लिखती जा रही है। सब उव समाप्त हो गया। उसके लिए सारा समार ही शून्य हो गया। उमड़ते दु.ख को वह दवा न सकी। एक घण्टे से भी अधिक तक वह सिसकती रही। अत में खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गयी। वाहर अँधेरा छाया हुआ था।

धीरे से कमरे से वाहर निकली। घर के वाहर द्वार के पास गयी। रागप्पा आँगन मे सोया था। उसे उठाया नही। वाहरी द्वार मे ताला लगाकर वह रास्ते पर चल पड़ी। लोगों की सख्या बहुत कम थी, किन्तु उस क्षेत्र मे दूर-दूर तक विद्युत-स्तभ दिखाई दे रहे थे। उनके मद प्रकाश मे वह चलती चली गयी। अनजाने ही वह कुक्कर हल्लि के पास पहुँच गयी। वायी ओर स्थित एक लतागृह की शिला पर वैठ गयी। उसे तुरत याद आया—कई साल पहले अपने शोध-प्रवध को समाप्त कर स्वदेश लौटने के पहले दिन की सुवह वह डॉ० राव के साथ यहाँ आई थी। इस दु ख से कि उन्हे छोड़कर स्वदेश जाना पड रहा है, डॉ० राव की गोद मे अपना सिर छिपाकर बहुत रोयी थी। उन्होंने उसे बाँहो मे भर लिया था। क्षण-भर के लिए वह स्मरण मधुर लगा। उसी मे डूबकर अपने आपको भूल गयी। पाँच मिनट वाद अपनी वर्तमान स्थिति का चित्र आ गया तो रुलाई फूट पड़ी। वह वहाँ वैठ न सकी। कालेज की ओर चल दी। तालाव के वाद खेल का मैदान था। मैदान के बीच कुछ पेड। रात के भोजन के पश्चात् सामान्यत: वे दोनो टहलते-टहलते इन पेडो के नीचे वैठकर अपने ग्रथ से सवधित विचार-विनिमय किया करते थे। बात समाप्त होने के वाद कुछ देर दोनों मौन हो जाते थे। जाते समय पर्याप्त प्रकाश न होता तो वह पति का हाथ पकडकर सहारा देती थी। उसकी याद आते ही पेडो को न देख कालेज की ओर मुड़ गयी। कालेज अपने स्थान पर अटल खडा था। लगभग तीस वर्ष तक डॉ० राव ने प्राध्यापक के रूप में कार्य किया था। उनकी विद्वत्ता की छाप इस कालेज की हवा के झोकों मे भी है। वह और आगे वढी। वायी ओर पुस्तकालय भवन उस अँधेरे में भी अपने प्रकाशमान अस्तित्व का आभास दे रहा था। रत्ने उस भवन के सामने खड़ी हो गयी। उस भवन के भीतर उन दोनों ने लगभग अठारह वर्ष से भी अधिक समय तक ग्रथ लिखे। दोनों के कार्यक्रम, कुर्सी पर वैठकर लिखवाते समय की डॉ० राव की छवि आदि सब उसकी आँखों

सामने वास्तविक होकर खड़ी थीं। इस स्मरण को भी वह सह न सकी। वहाँ से आगे बढ़ते समय वह थक चुकी थी। सीधे घर आई। द्वार खोलकर अपने कमरे में गयी। लेटी तो नींद नहीं आई। डॉ० राव उसी कमरे में मरे थे। 'नागलक्ष्मी न आती और मैं अकेली रहती तो उन्हें भावोद्विग्नता से दूर रखती तो शायद वे दस वर्ष और जीते!' इस कल्पना-सागर में उसका मन तैरने लगा।

सारी रात उसे नींद नहीं आयी।

सुबह उठी। स्नान करने के बाद कॉफी पी। आठ बजे तक कमरे में बैठी रही। पश्चात् पहली रात को तैयार किया पार्सल लेकर डाकखाने की ओर बढ़ी। अपने कम्पाउण्ड में खड़े पड़ोस के प्रोफेसर ने उसे देखकर पूछा—"यह क्या, पोस्ट आफिस जा रही हैं? मुझे दीजिए, मैं अपने चपरासी के हाथ भिजवा दूंगा।"

"नहीं। मैं स्वयं कर आऊँगी।"—कहकर वह आगे बढ़ गयी।

डाकखाने में पार्सल देकर रसीद ली। लौटते समय उसका मन रो रहा था। अब कौनसा कार्य रह गया है? मुख्य कार्य तो पूर्ण हो गया। अब संगृहीत विषयों से संबंधित स्वतन्त्र लघु ग्रंथ एवं लेख लिखे जाने चाहिए। यह धीरे-धीरे किया जा सकता है। अब उसके मन में ऐसा शून्य छा गया कि भयभीत कर देता। संसार में उसका कोई आधार नहीं है, वह बंधुरहित है, एकाकिनी है, 'अपना' कहलाने वाला कौन है उसका? पैर खींचती हुई घर आते समय रामस्वामी सर्कल के पास उसे पृथ्वी दिखाई पड़ा। उससे बात करने की इच्छा से उसे आवाज दी। उसे पास बुलाकर पूछा—"कहाँ जा रहा है? अभी तो सवा नौ ही बजे हैं!"

"कालेज जा रहा हूँ, स्पेशल क्लास है।"

"आज की स्पेशल क्लास मत जाओ। मेरे साथ आओ" कहकर पास जाकर उसका हाथ पकड़ लिया। संकोचवश पृथ्वी ने सिर झुका लिया। "चलो, चलें" कहकर उसे पकड़े ही रत्ने आगे बढ़ी। घर पहुँचते समय रागप्पा रसोई तैयार कर रहा था। "तूने अभी तक भोजन नहीं किया होगा! मेरे साथ खा लो" कहकर रसोई तैयार होने तक बात करती हुई बैठी रही—"चाची कैसी है?"

"कुछ दिनों से रोज बुखार आ रहा है। बहुत ही निर्बल हो गयी हैं। वे 'सिक लीव' पर हैं।"

"और चाचा ?"

"वे एक-दो घण्टे के लिए कालेज जाते हैं। बाकी समय चाची के साथ ही रहते है।"

"इसी कारण कई दिनों से इस ओर नही आये। वहाँ आने के लिए मुझे भी समय नही मिला।" रागप्पा ने आकर भोजन के लिए बुलाया। वह भीतर गयी और दोनों के लिए थाली परोसकर लायी। पृथ्वी को अपने पास ही बैठाकर भोजन कराया। भोजन के पश्चात् कमरे मे ले जाकर उसे उसके स्वर्गीय पिता के पलग पर बिठाया और स्वय उस पर बैठकर पूछा—"इस दीवार के पास मेज के ऊपर तेरे पिता के जो ग्रंथ हैं, उन्हे तूने पढ़ा है ?"

"नही ?"

"क्यों ?"

"मैं विज्ञान का विद्यार्थी हूँ। इस वर्ष बी० एस-सी० की तैयारी कर रहा हूँ।"

रत्ने विषाद से मन-ही-मन हँस पड़ी। विद्वान-जगत को भेंट करने के उद्देश्य से अपने जीवन को अर्पित करने वाले पिता के निर्मित ग्रन्थो के प्रति पुत्र की अभिरुचि नही ! उसके अध्ययन का विषय ही भिन्न है। हम अपने इस काम को जिस भावी पीढ़ी के लिए मानते है, हमारी वह पीढ़ी कौनसी है ?—उसने अपने-आपसे प्रश्न किया। उसके मन ने उत्तर दिया कि ये ग्रन्थ हैं भारतीय इतिहास का अध्ययन करनेवालों के लिए; केवल गोद में पलने मात्र से अपने उन बच्चो के नही हो जाते। इस विचार से उसने सिर उठाकर पृथ्वी का मुख देखा। वह नागलक्ष्मी के मुख से मिलता है। आंखो एवं नाक का सौंदर्य पिता सदृश था। पिता की अपेक्षा पुत्र पुष्ट है। शायद उसमें पिता-सी ज्ञान-पिपासा नही होगी ! उसके बैठने का ढग और बात करने की रीति पिता से मिलती थी। रत्ने उसके पास खिसककर बोली—"आओ, मेरी गोद मे सिर रखकर लेने जाओ।" सकोचवश वह सिर झुकाये बैठा रहा। "सकोच मत करो। आओ, मैं भी तुम्हारी माँ हूँ" कहकर बाँहें पकड़कर उसके सिर को अपनी गोद में रख

लिया। उसके मुख को अपने दोनों हाथों से पकडकर रत्ने ने पूछा—"बेटे, तेरे पिता से दूर रहकर तेरी माँ ने बहुत दु:ख झेला। इसके लिए क्या तू मुझे कोसता है?"

"नही!"

"मेरे कारण ही तेरे पिता ने ऐसा किया।"

"लेकिन सुनता हूँ कि आपके कारण ही उन्होने इतना लिखा है। चाचा-चाची ने मुझे सारी बातें बतायी है।"

रत्ने का हृदय भर आया। पृथ्वी को छाती से लगा लिया। दस मिनट अवर्णनीय आनद मे वह वास्तविक जगत् को भूल गयी।

पृथ्वी वहाँ से निकला तो उसका हाथ पकड़कर बोली—"चाचा से कहना कि मै घर आऊँगी। तू भी बार-बार मुझसे मिलने के लिए आया कर।" पृथ्वी का सकोच थोडा कम हुआ। "अच्छा, मै आया करूँगा" कहकर वह चल पड़ा। आँखो से ओझल होने तक वह एकटक उसे देखती रही। फिर भीतर गयी। आँखों मे कल की नीद बाकी थी। फिर पलग पर बिस्तर बिछाया और पड गयी। दस मिनिट मे गहरी नीद आ गयी।

शाम को पाँच बजे उठी तो मन मे फिर डरावनी बातें आने लगी। उसे अतीत याद आ रहा था। मै भी माँ बनती तो आज मेरे हृदय का वह सहारा होता। माँ बनने की आतुरता उसमे भी अंकुरित हुई थी। नंदी पहाडी पर गयी थी तो वह अकुर विशाल वृक्ष बन गया था। उस समय वह माँ बनती तो आज बच्चा आठ-नौ वर्ष का होता। उसके शून्य मन को एक भावुक आसरा मिल रहा था। जीवन इतना भयानक प्रतीत न होता। लेकिन उसने अपने मातृत्व की महत्वाकांक्षा को दबा दिया था। अब उसे लग रहा था कि उसने बडी गलती की। रात के भोजन के पश्चात् लेटी तो नीद नही आई। इतने वर्षो से सदा कार्य मे व्यस्त रहे मन को अब दिन काटना अस्वाभाविक-सा लगा। 'मै माँ होती तो इतनी जल्दी ग्रंथ पूर्ण न होता। चतुर्थ खण्ड आधा होने तक ही वे इहलीला समाप्त कर देते। जिस उद्देश्य से हम एक हुए, उस ध्येय की सतान जन्म लेकर, पलकर, सुयश पा रही है। वे उसके पिता है और मैं माँ हूँ—जीवन का अर्थ समस्त तृप्ति की परिपूर्णता ही नही है, कहकर उसने अपने-आपको समझाया।

रत्ने रात को पुन: टहलने निकली। लेकिन हर स्थान उसे अतीत की याद दिला रहा था। जैसे-जैसे वह अपनी पूर्व परिस्थिति से वर्तमान की तुलना करती, वैसे-वैसे वर्तमान खाई-सा दीख पड़ता। आध घण्टे मे वह घर लौट आई। यहाँ कहाँ जिए? 'जिसके साथ जीने के लिए आई थी, वही नही रहा अब। जिस उद्देश्य से यहाँ आई थी, वह पूर्ण हो गया। इन दोनो के अतिरिक्त यहाँ मुझे किसी परिचय, किसी सामाजिक सबध और विश्वास की आवश्यकता ही नही। उनके लिए मेरे पास समय भी नही था। अब मैं अकेली हूँ। यहाँ मेरे साथ कौन है? कौन है?' अनायास उसे अपना नगर याद आया। माता, पिता तो गये, लेकिन भाई तो होगा। भाई अब पचास का होगा। उसके बच्चे बड़े हो गये होंगे। वे मुझे पहचान नही पायेंगे। भाई के साथ पत्र-व्यवहार भी नही था। उसका मन भाई को याद कर रहा था। अपूर्व स्नेह-विश्वास के साथ भाई की याद आ रही थी। उन्हे स्थिति लिखने के विचार से मेज के सम्मुख बैठ एक पत्र लिखने लगी। पत्र अनजाने ही पाँच पृष्ठ का हो गया। पत्र की दीर्घता के साथ-साथ उसकी भावुकता भी बढती जा रही थी। अत में उसने लिखा—"जीवन के एक महान् ध्येय को मैने पूर्ण कर लिया है। अब इस भयानक शून्य मे सोच रही हूँ कि क्या आप लोगो का सामीप्य मिल सकेगा? आपका पत्र पाकर ही आऊँगी। वही किसी विश्वविद्यालय मे अध्यापन करने लगूँगी।"

दो-तीन दिन से वह राज के घर जाने की सोच रही थी। लेकिन घर से बाहर जाने की इच्छा ही नही हुई। बिना बिस्तर बिछाये चुपचाप पड़ी रहती थी। चौथे दिन सुबह ग्यारह बजे राज स्वयं वहाँ आया। उसका चेहरा उतर गया था, हड्डियाँ दिखायी दे रही थीं।

"पृथ्वी कह रहा था कि आप घर आने वाली है। नही आई? सोचा, कही तबीयत न बिगड गयी हो" राज ने कहा।

"बैठिए! मेरी तो चेतना ही लुप्त होती जा रही है। छह दिन पहले प्रकाशकों को टाइप प्रतियाँ भेज दी थीं। तीन दिन से आने की सोच रही हूँ, लेकिन पैर मानो उठते ही नही। मन के बोझ से पलग पर पड़ी रहती हूँ। कात्यायनी कैसी है?"

"बस, है" कहते समय राज के चेहरे पर निराशा दिखायी पड़ रही

थी। "बोलती है। मैं एक मिनिट भी पास न रहूँ तो आँसू बहाने लगती है। रात को नीद में भी मेरी बाँहों को कसकर पकड़े रहती है। बुखार आने पर 'मुझे छोड़कर मत जाइए' कहकर बड़बड़ाती है।"

दोनों इसी विषय में धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। तत्पश्चात् रत्ने ने भाई को लिखे पत्र का उल्लेख कर कहा—"आप मेरी मनोदशा की कल्पना कर सकते हैं। अगर मेरा भाई जिन्दा है और मुझे आने के लिए लिखता है तो मैं यहां से चली जाऊँगी। सारी बातों पर मैंने सोच लिया है। बैंक मे सात-आठ हजार रुपये होंगे। उन्हें नागलक्ष्मी के नाम कर दूँगी। पत्र में लिख चुकी हूँ कि रायल्टी के रूप मे जो भी मिलना है, वह पृथ्वी को मिले। उस पत्र को प्रकाशकों के पास भेज दूँगी। इस घर में जो कुर्सी, मेज, बरतन आदि है, उन्हें आप ले जाइए। रागण्णा को एक हजार रुपये दे दूँगी—जहाँ जाना चाहता हो, चला जायेगा या उसे आप रख लीजियेगा। ग्रंथ, हस्तप्रतियाँ, टाइपराइटर आदि व्यवस्थित रूप से पैक कराकर मेरे पास भेज दीजिए। वे जीवित होते तो जो शोध-कार्य वे करते, उसे मै वही रहकर आगे बढाऊँगी और इस प्रकार शेष जीवन बिताऊँगी।"

"आप अपने भाई को देख आइए। लेकिन क्या हमारे साथ यही रहकर आप इन सब कार्यों को नही कर सकती?" राज यह प्रश्न पूछ ही रहा था कि घर के सामने एक टैक्सी के रुकने की आवाज आयी। रत्ने उठकर बाहर गयी। काला-सा, अधेड़ उम्र का, स्थूल शरीर का एक व्यक्ति भीतर आ रहा था। उसके हाथ में चमड़े का एक बैग था। रत्ने उसे पहचान न सकी। आगंतुक ने पास आकर जब सिंहली में पूछा—"मुझे पहचाना नही?" तो तुरन्त पास जाकर रत्ने ने उसका हाथ पकड लिया। आगंतुक उसका भाई था। "तेरा पत्र मिला था। मन न माना। विमान में तुरन्त जगह भी मिल गयी। निकल पड़ा। बंगलूर से मद्रास तक के लिए कल के दो टिकट रिजर्व करा चुका हूँ। मद्रास में हमारा जो प्रतिनिधि है, वहाँ से सर्टिफिकेट ले लेगे किंतु सिंहल की है। पासपोर्ट मे कठिनाई नही पड़ेगी। आज रात हमें यहाँ से रवाना हो जाना चाहिए।"

रत्ने ने राज से अपने भाई का परिचय कराने के पश्चात्—"ये हैं

मेरे देवर" कहकर राज का परिचय दिया। विमान से जाने के कारण रत्ने अपने साथ अधिक सामान नहीं ले जा सकती। रागप्पा अतिथि के लिए पुनः रसोई बनाने लगा। भाई को घर पर ही छोड़कर घर के सामने अभी तक खडी उसी टैक्सी मे राज के साथ वह बैंक गयी। राज ने रत्ने की सलाह नहीं मानी। लेकिन केवल एक हजार रुपये अपने लिए लेकर शेष रुपयो को रत्ने ने नागलक्ष्मी के नाम कर दिये और उसी टैक्सी मे बैठकर दोनों राज के घर गये।

कात्यायनी की स्थिति रत्ने की कल्पना की अपेक्षा अधिक गभीर थी। शरीर की काति का कही पता ही न था, शरीर सूखे चमड़े के समान दिखाई दे रहा था। फिर भी वह बोल रही थी। एक घण्टे से भी अधिक समय तक रत्ने उससे बोलती रहीं। फिर भीतर गयी। वहाँ नागलक्ष्मी के सामने खडी होकर बोली—"अब जीवन में हम दोनों दुखी हैं। मेरी कोई गलती हुई हो, तो मुझे क्षमा कर दीजिए।" नागलक्ष्मी समझ न सकी कि क्या कहा जाय। वह अपने आँसू पोछने लगी।

एक हजार रुपये रत्ने ने रागप्पा के हाथ मे रख दिये तो उसका हृदय कृतज्ञता से भर गया। पड़ोस के प्रोफेसर एवं उनके घरवालों से मिलकर रवाना होते समय तक राज टैक्सी से आ पहुँचा। पृथ्वी भी साथ था।

टैक्सी छूटने से पहले राज ने रत्ने से कहा—"बीच मे कभी कम-से-कम एक बार यहाँ आना न भूलें।" पृथ्वी को अपनी गोद मे लेकर उसका ललाट चूमकर रत्ने ने कहा—"विज्ञान के विद्यार्थी होते हुए भी कम-से-कम एक बार अपने पिता के ग्रथों को अवश्य पढ़ना।"

टैक्सी छूटी तो रत्ने भी आँसू पोछ रही थी। राज भी आखे पोछ रहा था। पृथ्वी मूक-सा देखता रहा। प्लेटफार्म से बाहर आने के पश्चात् राज का मन रत्ने के आने के बाद के बीस वर्षों की घटनाओं का अवलोकन कर रहा था।

२६

किट्टप्पा श्रोत्रिय के वंशजों का कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ। श्रोत्रिय-जी ने उन्हे ढूंढने की कोशिश छोड़ दी। उन्हें एक विचार सूझा। किन्तु उसके विषय मे निर्णय लेने मे आठ दिन लग गये। पहले लक्ष्मी से इस बारे मे बात की। "यह तुम्हारा महान् पागलपन है, श्रीनप्पा। दुनिया मे तुम्हारी तरह कोई नही नाचता।"—उसने क्रोध करते हुए कहा। श्रोत्रियजी ने कहा—धर्म का सूत्र अत्यत सूक्ष्म है, लक्ष्मी। लोकाचार के अनुसरण से नही जाना जा सकता!" लेकिन लक्ष्मी का क्रोध शात नही हुआ।

एक रविवार को दोपहर मे ऊपर अध्ययन-कक्ष मे वे चीनी को वेद-पाठ करा रहे थे। उन्होने कहा —"बेटे, तुमने कई बार पूछा कि मुझे कौन-सी चिंता सता रही है। आज मैंने उसका निवारण कर लिया है। वह धर्म की सूक्ष्मता से सबधित है। तुम्हारे मन.पूर्वक स्वीकार किये बिना मैं कुछ नही करूँगा।"

"आपकी कौन-सी बात को मैने अस्वीकार किया है, दादाजी? विषय तो बताइए।"

श्रोत्रियजी पहले तो बताने मे कुछ झिझके, लेकिन आखिर अपने जन्मसबधी सारी बातें कह दी। चीनी स्तब्ध था। श्रोत्रियजी बोले—"देखो, पहले मैंने सोचा था कि एडतोरे मे या और कही किट्टप्पा श्रोत्रिय के वशज मिल जाय, तो आधी जायदाद उसे दे देनी चाहिए। लगता है कि इस सपत्ति में से पीतल की एक थाली पर भी मेरा अधिकार नहीं। जिसके रक्त से मैं जन्मा नही, उनकी सपत्ति का उपभोग करने का मुझे क्या अधिकार है? मैं स्वय पराये नीड़ पर अनधिकार जताने की चेष्टा कर रहा हूँ। तुम मेरे पौत्र हो, अत. तुम भी उस नीड़ के उतने ही अन-धिकारी हो। हम श्रोत्रिय वंशीय नही है। ब्रह्मोपदेश के लिए गोत्र चाहिए। काश्यप गोत्र से हमारा ब्रह्मोपदेश हुआ था। उसे बड़े श्रद्धा-भाव से स्वीकार कर हमने निभाया है। शास्त्रीय दृष्टि से हम काश्यप गोत्र की श्री-वृद्धि कर सकते हैं। किट्टप्पा श्रोत्रिय के वशज न मिलने के कारण इस जमीन-जायदाद को किसी सत्पात्र को दान करना ही एकमात्र उपाय

वचा है।"

चीनी दो मिनिट सोचता रहा। सारी सपत्ति दान कर देने पर अपनी स्थिति क्या होगी ? उसने इसका अदाज लगाया। लेकिन दादा यह चाहते है ! धर्म की सूक्ष्मता के प्रति विश्वास जागा और उसने कहा, "आप ठीक कह रहे है। मै वह जायदाद त्यागने के लिए तैयार हूँ, जो हमारी नही है। कही नौकरी लग जाय तो हम तीनों का गुजारा हो सकता है।"

चीनी के उत्तर से दादा को खुशी हुई। "यह बात वेदाभ्यासी व्यक्ति के लिए उपयुक्त ही है। वह सपत्ति उसी समय त्यज देनी चाहिए, जब पता लगे कि हम इसके उपभोग के अधिकारी नही है। अन्यथा हमारी परंपरा मे कोई-न-कोई उसे अधर्म से खो बैठेगा। ऐसी सपत्ति खो देना अनिष्टकारी नही है, लेकिन खोते समय ऐसी सम्पत्ति के अधिकारी अधर्म-पथ की ओर वढते हैं। पाप-सचय से बढकर कोई हानि नही है। अब भी मै यह मानता हूँ कि हमारे पाप-पुण्य हमारी भावी पीढी मे से किसी एक पीढ़ी के सिर दृष्टिगोचर होते हैं। खैर, यह बात भुला दो, दूसरी बात सुनो।"

उन्होने अपने जीवन का अंतिम संकल्प बताया—"तुम्हारे पिता का विवाह हो जाने के बाद मैंने निवृत्त जीवन बिताना प्रारभ कर दिया था। लेकिन उसकी मौत से पुनः प्रवृत्त होना पडा। सन्यास लेने की इच्छा गत सात-आठ वर्षों से मन-ही-मन पनप रही है। अब मेरे जन्म सबधी जान-कारी के पश्चात् यह इच्छा बलवती हो उठी है। वश की उज्ज्वल परपरा के लिए मनुष्य को सघर्ष करना चाहिए—मेरा यह विचार मेरे लिए निरर्थक है। फिर भी इसके प्रति मुझे गर्व है। मैं पचहत्तर का हो गया हूँ। तुम अठारह के हो। मेरे निवृत्त होने मे तुम्हे असहमत नही होना चाहिए!"

चीनी की आँखों में आँसू भर आये। "दादाजी, आपकी पहली राय मैंने तुरन्त स्वीकार कर ली। लेकिन अब आप तो मुझे ही छोड़कर जाने की बात कह रहे है! इस सम्पत्ति के प्रति आपको घृणा होना स्वाभाविक है लेकिन मुझ से दूर क्यों?"

"तुम से कोई शिकायत नहीं, बेटे। इतने दिनों तक मैंने गृहस्थ आ

बिताया है। अंतिम दिनों में उससे पूर्णतः निवृत्त होकर सदा परमब्रह्म के चिंतन मे मग्न हो जाना चाहता हूँ। अपने घटते जीवन की स्थिति समझ-कर, अपने ध्येय, दृष्टि एव जीवन-विधान को उसके अनुकूल न बनाना ही पाप है। सन्यास योग्य आयु हुए काफी दिन बीत गये। सांसारिक जीवन का कर्त्तव्य भी पूरा हो रहा है। केवल तुम्हारी ही स्वीकृति बाकी है। अगर अपने जीवन के बारे मे न जानता, तो भी मैं संन्यास लेने वाला ही था।"

चीनी निरुत्तर था। उसकी बुद्धि तो दादा की बातें ग्रहण कर रही थी, लेकिन अन्तःकरण नही। चिंतातुर मन से वह बैठा था। श्रोत्रियजी ने अपनी बात आगे बढ़ायी—"तुम्हारे प्रति मेरा कर्त्तव्य अभी पूर्ण नही हुआ है। पहले अच्छे कुल मे जन्मी कन्या से तुम्हारा विवाह कर, तुम्हें गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट करा दूँ। इस साल तुम्हारी इटरमीडिएट की परीक्षा है। अब दो वर्षों की पढ़ाई और जीवन-यापन के लिए लगभग पाँच हजार रुपये बैंक मे रख लो। यह रकम श्रोत्रिय-वश की है, लेकिन आज तक मैंने इसकी रखवाली की है, उसके लिए श्रम किया है। दो वर्ष और पढने के पश्चात्, तुम्हारा पत्नी के साथ धर्मपूर्ण गृहस्थ जीवन बिताना ही मुझे तुमसे मिलने वाला ऋण है। हेग्गिजगे के पास लक्ष्मी के नाम पर दो एकड़ जमीन है। वह उसी की है। वह जब तक जिंदा है, उसकी देखभाल करना तुम्हारा काम है। मरने से पहले, वह अपनी इच्छानुसार धर्म के लिए उस खेत का उपयोग करना चाहती हो, तो करे।"

पौत्र सुनता रहा। "इतने दिनों से तुमने मुझसे वेदपाठ सीखा है। तुम शात चित्त से विचार करो। जल्दबाजी की आवश्यकता नही" कहकर श्रोत्रियजी ने अपनी बात समाप्त की।

एक दिन चीनी ने उन ग्रन्थों को देखा जिन्हें श्रोत्रियजी आजकल पढ़ा करते थे। वे अब सन्यासोपनिषद्, वैखानससूत्र, धर्मसिन्धु, जीवन्मुक्ति-विवेक आदि ग्रन्थों का मनन करते थे। कई पृष्ठों में सकेत के लिए मोर-पंख रख दिया करते थे। कुछ श्लोकों पर स्याही से निशान लगाये थे। चीनी ने देखा। बृहदारण्यक उपनिषद् को लेकर लिखे गये शाकर-भाष्य के एक पृष्ठ पर मोरपंख रखा था। निशान लगा श्लोक था—"अथ परि-

ब्राड् विवर्ण वासा मुंडोऽपरिग्रहः। शुचिर द्रोही भैक्षणो ब्रह्म भूयाय भवतीति ।।"

चीनी इन समस्त श्लोकों का अर्थ अच्छी तरह समझता था। एक जगह लिखा था—"सन्यासी बनने की क्षमता पाने के लिए प्रजापति यज्ञ करके, अपनी समस्त सपत्ति ब्राह्मणों, गरीबो एव असहायों को दान करनी चाहिए।" और एक स्थान पर था—"पत्नी-बच्चों को त्याग देने के पश्चात् उसे गाँव के बाहर ही रहना चाहिए। गृहहीन होकर पेड़ों के नीचे या निर्जन घरों मे अथवा सूर्यास्त के समय जहाँ हो, वही रहना चाहिए। वर्षा ऋतु मे किसी एक ही स्थान पर रह सकता है।" पचहत्तर वर्ष के दादा का गृहहीन हो, पेड़ो के नीचे असहाय-सा जीवन बिताने का चित्र चीनी के सम्मुख आता तो नि:श्वास छूट पड़ती।

"सन्यासी को अनिश्चित किन्ही सात घरो से ही भिक्षा लेनी चाहिए। अन्न-दान देते समय उसके हाथ धुलाने चाहिए और फिर अन्न-दान करना चाहिए। तत्पश्चात् पुनः हाथ धुलाने चाहिए।" "उसे पेटभर कभी खाना नही चाहिए। उतना ही खाना चाहिए जिससे वह जी सके। जिस दिन अन्न मिले, खुश न हो और जिस दिन कुछ न मिले, निराश न हो।" "उसके पास केवल एक कमण्डल, शरीर पोछने के लिए एक गमछा, पादुका, आसन और एक कंबल ही होना चाहिए।"

अगला पृष्ठ पढ़ते-पढ़ते चीनी का मन कातर हो उठा। "संन्यासी को ऊँचे भूभाग मे सोना चाहिए। बीमार पड़े तो चिंतित न हो। न मृत्यु का स्वागत करे और न ही जीवन से प्यार। जिस तरह सेवक अपनी दास्या-वधि की समाप्ति की प्रतीक्षा करता है, उसी तरह संन्यासी अंतिम दिन का इन्तजार करे।"

महाभारत के अनुशासन पर्व के एक भाग पर श्रोत्रियजी ने निशान लगाया था। वहाँ कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस—चार प्रकार के सन्यास वर्णित थे। परमहंसों के लक्षण का विवरण देनेवाले श्लोकों पर श्रोत्रियजी ने निशान लगाया था—"परमहंस पेड़ के नीचे या निर्जन घर मे अथवा श्मशान मे रहते है। वे कपड़ा पहन सकते हैं और नग्न भी रह सकते है। धर्माधर्म, सत्यासत्य, शुद्धाशुद्ध द्वंद्वों से वे परे हैं। सोना, मिट्टी आदि को वे आत्मा मानते हैं। सभी वर्णों से भिक्षा स्वीकार करते हैं।

शास्त्रोक्त नियम उन पर लागू नहीं होते।"

दादाजी जीवन के जिस पथ को अपनाकर चलना चाहते हैं, उसके नियमों को पढकर चीनी को असह्य वेदना होती थी। उसने भी सन्यासाश्रम के बारे में काफी पढा है। आश्रम के ध्येयोद्देश्यों एवं जीवन-विधान के बारे में वह पूर्ण अनभिज्ञ नही था। लेकिन इस कल्पना मात्र से ही उसका हृदय तडप उठता कि जिसने उसे पाला-पोसा है, उस दादाजी को इस कठिन पथ पर चलना पड़ेगा। इसकी चिंता नही थी कि वे छोड़ जायेंगे तो अपना क्या होगा! दुःख था तो यह कि वे इस उम्र में ऐसा जीवन बिताना चाह रहे है!

एक दिन घर के पिछवाडे मोगरे की लता के पास बैठकर चीनी लक्ष्मी को सन्यासी-जीवन का वर्णन सविस्तार बताकर बोला—"तुम ही इन्हे रोको, मना करो। मैं कही नौकरी पर लग जाऊँ तो हम तीनों सुख से रह सकते है।"

वर्णन सुनकर लक्ष्मी व्याकुल हो उठी। वह सोचने लगी: 'मुझे अपने साथ ले जाये तो मैं उनकी सेवा करूँगी। लेकिन वे अकेले ही जा रहे हैं। वे देव तुल्य हैं। अपने जीवन में कभी पाप-कर्म नही किया। अब तक अर्जित पुण्य क्या काफी नही है? फिर इसकी क्या आवश्यकता है?' वह चिंतित होने लगी—'वे सब-कुछ जानते हैं। उन्हें उपदेश देने की क्षमता हममे नही है, किन्तु मन नही मानता।'

चीनी कालेज जाता और शाम को घर लौटता था। श्रोत्रियजी अब भी स्वय रसोई बनाते थे। चीनी को काम नही करने देते। रोज रात के भोजन के पश्चात् चीनी को धर्मशास्त्रों के बारे मे बताते थे। अनेक ऋषियों, ब्रह्मर्षियों एव पुराणों से पात्रों के जीवन से सम्बन्धित उदाहरण दिया करते थे। अनेक सस्कृत ग्रथों को उठाकर कहते—"इन्हे भविष्य मे अवश्य पढना।" उनके सम्मुख बैठा चीनी उनकी विश्वासजन्य निःसृत ध्वनि सुनकर उनका अभिमत स्वीकार करता था। लेकिन घर से कालेज के लिए निकलने के बाद, उन लोगों को छोडने वाले दादा के बारे में सोचकर उसके अन्तःकरण मे असह्य वेदना होती थी।

श्रोत्रियजी अपनी जमीन-जायदाद दान करके सन्यास ग्रहण करने वाले

हैं—यह समाचार सारे नजनगूडु में फैल गया। उनके हितैषियों ने आकर पूछा—"क्या बात है जो ऐसा निश्चय किया है?" श्रोत्रियजी सरल-सा उत्तर देते—"उम्र हो गई है। सन्यास स्वीकार करना मेरा धर्म है, बस! पौत्र कह रहा है कि यह जायदाद उसे नहीं चाहिए, इसलिए दान कर रहा हूँ।" अनेक उनके सामने आकर ऐसी बातें करते, मानो वे ही दान स्वीकार करने के सत्पात्र है। श्रोत्रियजी के घर में एक-न-एक व्यक्ति रहता ही था। दादा के अन्तिम निर्णय मे पौत्र को कोई शंका नही रह गयी थी। उसने सोचा कि उनके भावी जीवन के सार्थक्य में अपने मोह द्वारा बाधा डालने का प्रयत्न करना अधर्म है। श्रोत्रियजी लक्ष्मी को भी धर्म की सूक्ष्मता समझा रहे थे।

चैत्र मास के किसी शुभ दिन श्रोत्रियजी ने अनतराम मास्टर को बुलाने के लिए चीनी को ही भेजा। मास्टर चामराज नगर मे रहते थे। अब करीब दस वर्षों से नजनगूडु में ही रहने लगे है। तीन-चार वर्ष से नजनगूडु स्थित माध्यमिक पाठशाला में नौकरी कर रहे हैं। उच्चाधिकारियो से मिलकर पास के किसी गाँव मे तबादला करवा लेते थे। एक-दो वर्ष नजनगूडु में रहते। फिर अन्यत्र नौकरी कर पुनः नजनगूडु में तबादला करवा लेते। अब पचास की उम्र है। निवृत्त होने मे पाँच वर्ष बाकी हैं। नंजनगूडू मे एक घर बँधवा लिया है। हुल्लहल्लि में तीन एकड़ जमीन खरीद ली है। मास्टर से श्रोत्रियजी का परिचय होने का एक विशेष कारण था। मास्टर को सस्कृत का कुछ हद तक ज्ञान था। वे सात्विक एवं कर्मनिष्ठ थे। धर्मशास्त्र एव दर्शन के सबंध मे जब कभी कोई शका उठती तो उसके निवारण के लिए श्रोत्रियजी के पास आते थे। उनकी कर्मशीलता एवं सात्विक जीवन को देखकर श्रोत्रियजी अपने यहाँ के श्राद्ध आदि कार्यक्रमों मे पूर्वपक्ति के लिए उन्हे आमन्त्रित करते थे।

रात्रि को आठ बजे मास्टर घर आये। श्रोत्रियजी ने उनका स्वागत किया। पौत्र से बोले—"चीनी, हम अभी टहलकर आते हैं।" दोनो निकल पड़े। दोनो धीरे-धीरे चल रहे थे। मंदिर के सामने से होते हुए नदी के स्नान-घाट पर बैठ गये। श्रोत्रियजी का निर्णय, मास्टर को मालूम था। उन्होंने भी सन्यास न लेने का निवेदन किया था। धर्मशास्त्रानुसार वे श्रोत्रियजी से सहमत थे। लेकिन यह समझ में नहो आ रहा था कि

"उठिए देर हो रही है—घर चलें। मैं सहमत हूँ। दादा के सस्कार एव गुण पौत्र में भी है। ऐसे दामाद का मिलना मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। घर मे एक बार पूछ लूं।" कहकर वे चलने के लिए उठे। श्रोत्रियजी को शाति मिली।

दूसरे दिन सुबह मास्टर श्रोत्रियजी के घर आये। अपनी बेटी एव चीनी की जन्म-कुण्डलियाँ देखीं। दोनों अच्छी तरह मिल रही थीं। उन्होंने चीनी से पूछा—"बेटे, तुमने मेरी बेटी लता को देखा है?" उसे सदर्भ की जानकारी नही थी। उसने 'हूँ' कह दिया। "तुम्हारे दादाजी कहते है कि तुम उससे विवाह कर लो! हमें खुशी है, अगर तुम्हे यह मजूर हो!" श्रोत्रियजी वहीं थे। चीनी शरमा गया।

लता तेरह वर्ष की सुन्दर लड़की है। हाईस्कूल में पढ़ रही है। आज के युग की दृष्टि से अभी छोटी है। लेकिन दोनों में काफी साम्य है। श्रोत्रियजी ने कहा कि विवाह हो जाने पर भी चीनी के बी० एस-सी० होने तक गौना न किया जाय। इस बीच लड़की की स्कूली शिक्षा भी समाप्त हो जायेगी। वैशाख शुद्ध के एक शुभ मुहूर्त मे चीनी लता का विवाह श्रोत्रियजी की इच्छा के अनुसार श्रीकण्ठेश्वर मदिर मे सादे ढंग से सम्पन्न हुआ। चीनी गृहस्थ बन गया।

श्रोत्रियजी ने एक बार अपने खेती में काम करने वाले किसानों की स्थिति की पूरी-पूरी पूछताछ की। उनमें से पचहत्तर प्रतिशत लोग अत्यत गरीब थे। अधिक सख्या में वे लोग थे जिनकी जमीनें ऋण में चली गयी थी और उनके बाल-बच्चों को खाने के लिए अब अन्न नही मिलता था। श्रोत्रियजी ने सोचा, इनसे बढ़कर दान के लिए और कौन सत्पात्र होंगे? उन्होंने जब किसानो से कहा कि वे खेत जोतने वाले किसानों को दान देकर सन्यास ले रहे हैं, तो किसान उनके चरणों पर पड़कर बोले—"महाराज, भगवान् तुल्य, आपकी कोई जमीन हमें नही चाहिए। आप मालिक बनकर रहिए। यथाशक्ति परिश्रम करके, आपको उपज देकर हम भी जियेंगे।" उन सब को यथायोग्य सात्वना दे, वे गाँव लौटे। चीनी को पास बैठाकर जमीनें किसानों के नाम लिख दी। शेष छह एकड़ जमीन मैसूर के अनाथालय को सौंप देने का निर्णय किया। यह भी निर्णय किया कि उनका घर यात्रियों के लिए धर्मशाला बने। यह सब एक वकील

से लिखवाया। शुभ दिन कागज-पत्रों पर पौत्र एवं स्वय ने हस्ताक्षर किये। सब-रजिस्ट्रार के कार्यालय मे जाकर रजिस्ट्री कराकर घर लौटे, तो श्रोत्रियजी के मन का भार हलका हुआ। भार से मुक्ति पाकर उन्होंने संतोष की सांस ली।

अब अपने प्रस्थान का दिन निश्चित करना था। संन्यास ग्रहण करने के लिए गुरु चाहिए। यह निश्चित नही हो पाया था कि यह कार्यक्रम कहाँ हो। श्रोत्रियजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी शुभ दिन इस गाँव को छोड़कर हरिद्वार या बद्रीनाथ चले जाना चाहिए। योग्य गुरु की खोज कर विधिवत् इस गृहस्थाश्रम को त्याग देना चाहिए।

अनन्तराम मास्टर की पाँच संतानें थी––तीन बेटियाँ और दो बेटे। बड़ी बेटियों की शादी कर दी गयी थी। बडा बेटा चीनी के बराबर का था। वह भी रोज कालेज मे पढ़ने के लिए मैसूर जाता था। द्वितीय पुत्र अगले वर्ष हाईस्कूल की परीक्षा देगा। मास्टर ने श्रोत्रियजी से कहा—"आप चिंता न करें। दामाद पुत्र के समान होता है। श्रीनिवास और मेरे ज्येष्ठ पुत्र एक साथ कालेज जायेंगे। परीक्षा पास कर नौकरी पर लगने तक वह और लक्ष्मी हमारे ही घर रहेंगे। हम ख्याल रखेंगे कि दोनों को कष्ट न हो।"

श्रोत्रियजी ने भी सलाह मान ली। सोना-चाँदी बेच दिया। उसमें प्राप्त रकम मंदिर को दान कर दी। घर के बर्तन-भांडे भी मंदिर को ही दिये।

श्रोत्रियजी अपने पास के संस्कृत ग्रंथों को चीनी को सौंपकर बोले—"बेटे, ये तुम्हें अपने दादा से प्राप्त अमूल्य निधि है। आज तक, जितना मुझसे बन पड़ा, मैंने तुम्हें शिक्षा दी है। भविष्य मे स्वाध्याय एवं दूसरों से सीखकर, ज्ञान-वृद्धि करना। कल इस घर को छोड़ देंगे। आज रात ही इन समस्त ग्रंथों को अपने ससुर के घर पहुँचा दो।"

निश्चय हुआ कि ज्येष्ठ शुद्ध पचमी के दिन श्रोत्रियजी नंजनगूडु त्याग देंगे। मन कठोर बना लेने पर भी चीनी एवं लक्ष्मी के लिए यह असह्य था। लक्ष्मी ने भीनप्पा के सामने न रोने का निश्चय कर लिया था। चीनी भी प्रयत्न कर रहा था कि दादा के अंतिम प्रयाण के पूर्व आँसू बहाकर उनके मन को खिन्न न बनाऊँ। लेकिन लक्ष्मी-चीनी परस्पर एक-दूसरे

से मिलते तो आंसू बह पड़ते। श्रोत्रियजी शात चित्त से अपने प्रयाण के दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। नजनगूडु के अनेक लोगों ने उनसे निवेदन किया था कि गाँव छोड़ने से पहले उसके घर आकर तांबूल स्वीकार कर आशीष दें। गाँव के किसान उन्हें अपने घर बुलाकर फल-फूल स्वीकार करने का आग्रह करते। ले जाने के लिए बैलगाड़ियाँ लाते। श्रोत्रियजी सबके आमन्त्रण को मुस्कराकर स्वीकार करते।

जिस दिन वे गृह त्यागने वाले थे, वधू पक्ष के घर मे मिष्टान्न का भोजन हुआ। पहने हुए कपड़ों के अतिरिक्त दो धोतियाँ, एक छोटा-सा पात्र, सबको एक गमछे मे बाँधकर, बाँस की एक लकड़ी मे लगाकर हरिद्वार तक राह-खर्च के लिए सौ रुपये लेकर वधू पक्ष के घर से रवाना हुए तो अनन्तराम मास्टर की पत्नी, बच्चे एव चीनी की पत्नी—सबके सब जोर-जोर से रोने लगे। सबको आशीर्वाद देकर श्रोत्रियजी घर से निकल पड़े। उस दिन सुबह से ही जेष्ठ की बूँदें पडने लगी थी। शाम को पाँच बजे रेलवे स्टेशन पहुँचे तो इस वर्षा मे भी लोगों की बड़ी-सी भीड़ जमी थी। इस असख्य जनसमूह ने श्रोत्रियजी को घेर लिया। हर एक व्यक्ति जमीन पर झुककर श्रोत्रियजी को प्रणाम करने लगा। रेलवे प्लेटफार्म पर आकर श्रोत्रियजी के गाड़ी मे चढ़ने के पूर्व उनके चरणों को स्पर्श कर नमस्कार करते हुए मास्टर ने कहा—"आप मेरे गुरु थे। अंत मे जिम्मेदारी भी सौंपी है। सम्बन्ध जोड़कर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। आपने जो जिम्मेदारी सौंपी है, उसे हर तरह से निभाने का प्रयत्न करूँगा। आशीर्वाद दीजिए।"

चीनी, लक्ष्मी, ललिता तीनो ने जमीन पर सिर नवाकर प्रणाम किया। मन-ही-मन 'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा-अमृत गमय। ओम् शाति: शाति: शाति.' उच्चार कर श्रोत्रियजी गाड़ी मे बैठ गये। गाड़ी चल पड़ी तो जनसमूह ने 'हर-हर महादेव' का जयघोष किया। दादा जब गाड़ी से अदृश्य हुए तो चीनी की आँखो के सामने अँधेरा छा गया। वह पास खड़ी लक्ष्मी को पकड़कर वही जमीन पर बैठ गया। मास्टर ने घबड़ाकर उसे पकड़ लिया।

रेल दलवाई पुल पर पहुँचने तक ज़ोर से वर्षा होने लगी थी। श्रोत्रियजी

से लिखवाया। शुभ दिन कागज-पत्रों पर पौत्र एवं स्वयं ने हस्ताक्षर किये। सब-रजिस्ट्रार के कार्यालय में जाकर रजिस्ट्री कराकर घर लौटे, तो श्रोत्रियजी के मन का भार हलका हुआ। भार से मुक्ति पाकर उन्होंने संतोष की साँस ली।

अब अपने प्रस्थान का दिन निश्चित करना था। संन्यास ग्रहण करने के लिए गुरु चाहिए। यह निश्चित नहीं हो पाया था कि यह कार्यक्रम कहाँ हो। श्रोत्रियजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी शुभ दिन इस गाँव को छोड़कर हरिद्वार या बद्रीनाथ चले जाना चाहिए। योग्य गुरु की खोज कर विधिवत् इस गृहस्थाश्रम को त्याग देना चाहिए।

अनन्तराम मास्टर की पाँच संतानें थीं—तीन बेटियाँ और दो बेटे। बड़ी बेटियों की शादी कर दी गयी थी। बड़ा बेटा चीनी के बराबर का था। वह भी रोज कालेज में पढ़ने के लिए मैसूर जाता था। द्वितीय पुत्र अगले वर्ष हाईस्कूल की परीक्षा देगा। मास्टर ने श्रोत्रियजी से कहा—"आप चिंता न करें। दामाद पुत्र के समान होता है। श्रीनिवास और मेरे ज्येष्ठ पुत्र एक साथ कालेज जायेंगे। परीक्षा पास कर नौकरी पर लगने तक वह और लक्ष्मी हमारे ही घर रहेंगे। हम ख्याल रखेंगे कि दोनों को कष्ट न हो।"

श्रोत्रियजी ने भी सलाह मान ली। सोना-चाँदी बेच दिया। उससे प्राप्त रकम मंदिर को दान कर दी। घर के बर्तन-भाँडे भी मंदिर को ही दिये।

श्रोत्रियजी अपने पास के संस्कृत ग्रंथों को चीनी को सौंपकर बोले—"बेटे, ये तुम्हें अपने दादा से प्राप्त अमूल्य निधि है। आज तक, जितना मुझसे बन पड़ा, मैंने तुम्हें शिक्षा दी है। भविष्य में स्वाध्याय एवं दूसरों से सीखकर, ज्ञान-वृद्धि करना। कल इस घर को छोड़ देंगे। आज रात ही इन समस्त ग्रंथों को अपने ससुर के घर पहुँचा दो।"

निश्चय हुआ कि जेष्ठ शुद्ध पंचमी के दिन श्रोत्रियजी नंजनगूड़ु त्याग देंगे। मन कठोर बना लेने पर भी चीनी एवं लक्ष्मी के लिए यह असह्य था। लक्ष्मी ने श्रीनप्पा के सामने न रोने का निश्चय कर लिया था। चीनी भी प्रयत्न कर रहा था कि दादा के अंतिम प्रयाण के पूर्व आँसू बहाकर उनके मन को खिन्न न बनाऊँ। लेकिन लक्ष्मी-चीनी परस्पर एक-दूसरे

ते मिलते तो आँसू बह पड़ते। श्रोत्रियजी शांत चित्त से अपने प्रयाण के दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। नजनगूडु के अनेक लोगों ने उनसे निवेदन किया था कि गाँव छोड़ने से पहले उनके घर आकर तांबूल स्वीकार कर आशीष दें। गाँव के किसान उन्हें अपने घर बुलाकर फल-फूल स्वीकार करने का आग्रह करते। ले जाने के लिए बैलगाड़ियाँ लाते। श्रोत्रियजी सबके आमंत्रण को मुस्कराकर स्वीकार करते।

जिस दिन वे गृह त्यागने वाले थे, वधू पक्ष के घर में मिष्टान्न का भोजन हुआ। पहने हुए कपड़ों के अतिरिक्त दो धोतियाँ, एक छोटा-सा पात्र, सबको एक गमछे में बाँधकर, बाँस की एक लकड़ी में लगाकर हरिद्वार तक राह-खर्च के लिए सौ रुपये लेकर वधू पक्ष के घर से रवाना हुए तो अनन्तराम मास्टर की पत्नी, बच्चे एवं चीनी की पत्नी—सबके सब जोर-जोर से रोने लगे। सबको आशीर्वाद देकर श्रोत्रियजी घर से निकल पड़े। उस दिन सुबह से ही जेष्ठ की बूँदें पड़ने लगी थीं। शाम को पाँच बजे रेलवे स्टेशन पहुँचे तो इस वर्षा में भी लोगों की बड़ी-सी भीड़ जमी थी। इस असंख्य जनसमूह ने श्रोत्रियजी को घेर लिया। हर एक व्यक्ति जमीन पर झुककर श्रोत्रियजी को प्रणाम करने लगा। रेलवे प्लेटफार्म पर आकर श्रोत्रियजी के गाड़ी में चढ़ने के पूर्व उनके चरणों को स्पर्श कर नमस्कार करते हुए मास्टर ने कहा—"आप मेरे गुरु थे। अंत में जिम्मेदारी भी सौंपी है। सम्बन्ध जोड़कर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। आपने जो जिम्मेदारी सौंपी है, उसे हर तरह से निभाने का प्रयत्न करूँगा। आशीर्वाद दीजिए।"

चीनी, लक्ष्मी, ललिता तीनों ने जमीन पर सिर नवाकर प्रणाम किया। मन-ही-मन 'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा-अमृतं गमय। ओम् शांतिः शांतिः शांतिः' उच्चार कर श्रोत्रियजी गाड़ी में बैठ गये। गाड़ी चल पड़ी तो जनसमूह ने 'हर-हर महादेव' का जयघोष किया। दादा जब गाड़ी से अदृश्य हुए तो चीनी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह पास खड़ी लक्ष्मी को पकड़कर वहीं जमीन पर बैठ गया। मास्टर ने घबड़ाकर उसे पकड़ लिया।

रेल दलवाई पुल पर पहुँचने तक जोर से वर्षा होने लगी थी। श्रोत्रियजी

ने खिड़की से नदी की ओर देखा। दोनों किनारों पर खड़े पेड़ों के बीच नदी बह रही थी। बचपन से आज तक उन्होंने इस नदी में स्नान किया था। कई बार इसके तट पर बैठकर अपनी थकान दूर की थी। इसी नदी ने उनके पुत्र को अपने में आत्मसात् कर लिया था। लेकिन इसी नदी के पानी से उत्पन्न अन्न वे आज तक खाते रहे हैं। श्रोत्रियजी को अपने जीवन के बीते दिन याद आ रहे थे। माँ और नजुंड श्रोत्रिय का भी स्मरण हुआ। श्यामदास, जिन्हें कभी देखा नहीं था, की भी कल्पना की। पत्नी भागीरतम्मा, लक्ष्मी, पुत्र नंजुंड, चीनी, बहू कात्यायनी एक-एक कर सबके स्मृति-चित्र उनकी आँखो के सामने आते रहे। कात्यायनी का स्मरण आते ही उनका मन वही रुक गया। उसे देखे चौदह वर्ष हो गये है। वह अब कहाँ होगी? डॉ० राव ने कहा था कि बेंगलूर में रहती है। लौकिक जीवन त्यागने से पहले, उसे एक बार देखने की इच्छा हुई। मैसूर मे उतरकर डॉ० राव से भी मिल ले। उनसे कात्यायनी का पता लेकर बेंगलूर होते हुए ही जाना है। इसी विचार मे डूबे हुए थे कि गाड़ी चामराजपुर स्टेशन पहुँची। वे वहीं उतर पड़े। वर्षा की बूँदें धीरे-धीरे पड़ रही थीं। वे यह जानते थे कि डॉ० राव प्रोफेसरों के लिए निर्मित बँगले मे रहते हैं। किसी एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस इलाके मे पहुँचे। एक बँगले के सामने खड़े होकर पूछा—"डॉ० सदाशिवराव का बँगला कौन-सा है?"

भीतर कुर्सी पर बैठे एक सज्जन ने आकर कहा—"वे अब नहीं रहे। उन्हें गुजरे आठ महीने हो गये हैं।"

यह सुनकर श्रोत्रियजी का मन व्यथित हो उठा। "उनका परिवार कहाँ है? क्या आप जानते हैं कि उनका छोटा भाई कहाँ रहता है?"

"उनकी पहली पत्नी उनके भाई के पास रहती है। द्वितीय पत्नी स्वदेश लौट गयी है। उनका भाई इसी नगर में है। घर लक्ष्मीपुर में है।"

श्रोत्रियजी लक्ष्मीपुर की ओर चल पड़े। वर्षा से उनकी ओढ़ी हुई धोती भीग गयी थी। उससे पानी टपक रहा था। बाँस में लगाई गाँठ खोलकर धोती को सिर पर डाल लिया। उन्हें स्मरण हुआ—'अब कुछ दिन और! फिर तो इस तरह अधिक कपड़े नहीं रख सकेंगे।' रास्ते के किनारे-किनारे चलते रहे। किसी से पूछकर राजाराव के घर के सामने खड़े हो गये। साँझ के साढ़े सात बजे थे। द्वार पर दस्तक दी तो लाल साड़ी पहने हुए

लगभग पैंतालीस वर्ष की एक विधवा ने द्वार के पास आकर पूछा—"कौन चाहिए ?"

"कहिए कि नंजनगूडु से श्रीनिवास श्रोत्रिय आया है। कात्यायनी यही है न ?"

आवाज सुनकर राज भीतर से दौड़ा आया। नजरें झुकाकर श्रोत्रिय जी को प्रणाम कर पूछा—"अकेले आये हैं ? आपका पौत्र नहीं आया ? टैक्सी कहाँ है ?"

श्रोत्रियजी कुछ नहीं समझे ! "मैं कुछ नहीं जानता। यों ही आप लोगों को देखने के लिए आ गया हूँ।"

राज उन्हें भीतर एक कमरे में ले गया। पलंग पर मृत्युशय्या पर एक महिला लेटी थी। "यही है कात्यायनी" राज ने कहा। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। पूछा—"क्या हुआ है ?" राज बोला—"पहले आप स्नानगृह में चलिए। सारे कपड़े भीग गये हैं, बदल लीजिए। फिर बातें करेंगे।" स्नानगृह में जाकर श्रोत्रियजी ने भीगे कपड़ों को निचोड़ा। आधी भीगी एक धोती पहनी। निचोड़ी हुई गीली धोती को ओढ़कर बाहर आये। राज ने सूखी धोती लेने के लिए कहा तो "नहीं, यही ठीक है"—कहकर वे कात्यायनी के पास गये।

पलग पर सोयी कात्यायनी को अच्छी तरह कपड़े उढ़ा दिये गये थे। उसका सारा शरीर हड्डियों का ढाँचा-मात्र था। आँखें मुँदी थी। मुख सूखकर मुरझा गया था। साँस धीरे-धीरे चल रही थी। श्रोत्रियजी ने पूछा—"क्या बीमारी है ?"

"डाक्टरों के इलाज से ठीक होने वाली बीमारी नहीं है। पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए था। लेकिन वैसा नहीं हुआ। उसके मस्तिष्क में धर्म-कर्म, कर्त्तव्याकर्तव्य का द्वन्द्व चलने लगा। लाख कोशिश करने पर भी हम उसे रोक नहीं सके। उस बारे में सविस्तार से बाद में कहूँगा। डॉक्टर ने बताया है कि आज की रात वह बचेगी नहीं। आपको और अपने बेटे को देखकर मरने की इच्छा इसने शाम को व्यक्त की थी। मैंने टैक्सी भेज दी। मैं नहीं जानता कि उसका बेटा आयेगा या नहीं। आ गये, यह हमारा सौभाग्य है।"

"मुझे लगता है, वह अवश्य आयेगा...।"

"मैंने सुना है कि उसका स्वभाव कुछ कठोर है। जब वह सरकारी कालेज में पढ़ रहा था, तब उसे मालूम हुआ कि यह उसकी माँ है। एक बार उसे घर भी लायी थी। इससे मेलजोल बढ़ने के भय से और शायद तिरस्कारवश उसने वह कालेज ही छोड़ दिया और दूसरे कालेज में प्रवेश ले लिया था। शायद यह आप जानते होंगे?"

श्रोत्रियजी को आश्चर्य हुआ। चीनी के कालेज छोड़ने का कारण यह हो सकता है इसकी कल्पना भी उन्हें नहीं थी। वे बोले—"नहीं, मैं नहीं जानता था। उसने कहा कि सरकारी कालेज में पढ़ाई ठीक नहीं होती।"

"लेकिन इसके कालेज छोड़ने का कारण दूसरा ही है। इस बीच तीन बार इसका गर्भपात हो गया। इसका यह विचार प्रबल होता रहा कि अपने पाप के कारण ही ऐसा हुआ। अंत में बेटे से भी तिरस्कृत होने के पश्चात् पूर्णतः निराश हो गयी। शायद तभी से इनकी सुप्त प्रज्ञा ने मरने का सकल्प किया है। मुझे नहीं लगता कि वह आयेगा। आप आ गये, इतना ही पर्याप्त है" कहते समय राज की आँखों से आँसू छलक पड़े। "मुझसे आपके प्रति बड़ा अन्याय हुआ है। आपसे एवं आपके व्यक्तित्व से परिचित होता तो मैं इससे विवाह ही न करता। आप मुझे क्षमा करें" कहकर उसने झुककर उनके पैर पकड़ लिये।

"यह सब विधि का विधान है। तुम लोगों की क्या गलती है?" उन्होंने राज को उठाया। कात्यायनी के कानों के पास झुककर राज ने जोर से दो बार कहा—"देखो, तुम्हारे ससुर श्रोत्रियजी आये हैं।" उसके चेहरे से प्रतीत हुआ कि वह समझ गयी है। आँखें खोलने की उसने कोशिश की, लेकिन पूर्णतः नहीं खुली। राज ने श्रोत्रियजी से कुर्सी पर बैठकर अपने पैर उसकी ओर करने को कहकर कात्यायनी को एक करवट सुलाकर उसके हाथों से चरण-स्पर्श कराया। शायद कात्यायनी समझ गयी होगी। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू ढुलक पड़े।

टैक्सी के रुकने की आवाज आई। कमरे के बाहर खड़ी नागलक्ष्मी दौड़ती हुई द्वार के पास गयी। टैक्सी से उतर, पृथ्वी चीनी के साथ भीतर आया। पृथ्वी का अनुसरण करता हुआ चीनी सीधा कमरे में प्रविष्ट हुआ। कुर्सी पर दादा को बैठे देख उसे आश्चर्य हुआ।

"आओ बेटे, कम-से-कम अब तुम्हे अपनी माँ की सेवा करनी चाहिए" श्रोत्रियजी ने कहा। चीनी पलग के पास खड़ा हो गया। "पलंग के किनारे बैठ जाओ और अपनी माँ का हाथ पकड़ लो।" उसने वैसा ही किया। कात्यायनी की श्वास अब ऊपर को चल रही थी। राज ने कहा, यह शायद करवट बदलने की थकावट के कारण होगा। श्रोत्रियजी ने अपनी अँगुलियो से खोजकर देखा, बाँयें हाथ की नाडी की जाँच की और बोले, "यह थकावट के कारण नही है, इसका अंतिम क्षण आ गया है। किसी डॉक्टर को क्यों नहीं बुलाते ?"

"डाक्टर को बुलाने से कोई लाभ नही। उसकी जीने की इच्छा ही नही है। तीन दिन पहले इसी ने डाक्टर से कह दिया था कि अब न आयें" राज ने कहा।

"हो तो गगाजली मे गंगा-जल ले आइए। नही तो शुद्ध जल भी चल सकता है" श्रोत्रियजी बोले। नागलक्ष्मी जल्दी-जल्दी चाँदी की लुटिया में थोडा शुद्ध जल और चाँदी की गगाजली ले आई। श्रोत्रियजी ने कहा—"चीनी, इसे अपनी माँ को पिलाओ।" चीनी की आँखें डबडबा आयी। उसके हाथ काँप रहे थे। श्रोत्रियजी ने कात्यायनी का मुँह खोला। पानी कात्यायनी के मुँह मे चला गया।

तत्पश्चात् दस मिनिट जोर-जोर से ऊर्ध्व श्वास-सी चलती रही। अनतर वह अवरोह गति मे बदल गयी। क्रमशः शात होती गयी। शात हो गयी उसकी श्वास। उसके जीवन मे उत्पन्न, उसे पीड़ा के भँवर मे उलझा, तडपाता द्वन्द्व अब उसकी मृत्यु के साथ समाप्त हो गया।

राज आँसू बहाता बैठ गया। पृथ्वी और नागलक्ष्मी एक कोने में बैठ रोने लगे। उन सबको श्रोत्रियजी ने सान्त्वना दी। इस समय आगे का कार्य नही किया जा सकता था। सबने मानो तय कर लिया था कि सुबह तक किसी को इस संबंध मे न बताया जाय। श्रोत्रियजी ने शव के हाथ-पैरों को सीधा किया। उसके पास एक दीया और एक छुरा रखा। फिर राज का हाथ पकड़कर कमरे के बाहर बरामदे मे लाये। नागलक्ष्मी कमरे में ही चिंतामग्न बैठी थी। पृथ्वी रो रहा था। चीनी एक जगह बैठकर गहरे

विचार में डूबा था। चेहरे पर दु.ख था, लेकिन रो नही रहा था।

राज को सात्वना देते हुए, उसके मन को दूसरी ओर मोड़ने के लिए श्रोत्रियजी बातें करने लगे। डॉ० राव की मृत्यु के बारे मे पूछने लगे। उनके ग्रंथ और द्वितीय पत्नी के बारे मे भी पूछा। राज ने भाई के बारे में सब-कुछ बताया। राज ने पूछा—"आप पहले कभी नही आये, कहाँ जा रहे है ?" श्रोत्रियजी ने कहा—"सन्यास ग्रहण करने के लिए हरिद्वार या बद्रीनाथ जा रहा हूँ।" राज को विश्वास न हुआ। सन्यास-धर्म के सबध मे कुछ समय तक श्रोत्रियजी बताते रहे। रात के दो बज गये थे। रुलाई का आवेग खत्म हो गया था। सब उनकी बातें सुन रहे थे। बात बढ़ाने का और कोई उपाय न पाकर उन्होंने प्रश्न किया—"आप कहाँ के रहने वाले है ?"

"हमारा गाँव बेल्लूरू है। लेकिन बड़े हुए कुणिगल मे। वहाँ हमारे मामा का घर था।"

श्रोत्रियजी के मन मे अनायास एक प्रश्न उठा—"हाँ, आपकी तरफ श्रोत्रिय वश का कोई व्यक्ति है ?"

"क्यों ?"

"हमारे रिश्तेदार है। मेरे पिता के छोटे भाई का नाम है किट्टप्पा। नंजनगूडु से चले गये थे। अस्सी-नब्बे वर्ष पहले की बात है। उसके बाद उनका कोई पता न चला।"

"किट्टप्पा श्रोत्रिय !" कुछ याद-सा करके राज बोला—"मैंने सुना था मेरे दादाजी का नाम किट्टप्पा था। कहते है वे नजनगूडु के थे। लेकिन पता नही कि वे श्रोत्रिय वश के थे या नहीं !" इतने मे कमरे के भीतर बैठी नागलक्ष्मी ने कहा—"हाँ, उन्हें किट्टप्पा श्रोत्रिय के नाम से पुकारते थे—यह बात मेरे पिताजी कह रहे थे।"

श्रोत्रियजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने तुरन्त पूछा—"आपका गोत्र कौन-सा है ?"

"काश्यप गोत्र !"

अब उनके मन मे कोई सन्देह ही न रहा। आश्चर्यचकित हो, वे बैठ गये। तब नागलक्ष्मी बोली—"किट्टप्पा श्रोत्रिय के चार बच्चे थे। द्वितीय को छोड़ सब मर गये। उनके साथ मेरी बुआ की शादी हुई थी। ये दोनों

उन्ही के बेटे हैं।"

श्रोत्रियजी मूकवत् बैठे रहे। उनका मन अपने एवं इस संसार के संबंध मे सोचने लगा, लेकिन इस दशा में वे कुछ भी समझ नही पा रहे थे। अनजाने ही उनके मुख से निकल पडा—"बडी जल्दबाजी की !"

"क्यों ? क्या बात है ?" राज का प्रश्न था।

"कुछ भी नहीं !"

"कहा न आपने कि बड़ी जल्दबाजी की ?"

"वैसे ही कहा था ! खैर, कहता हूँ। हमारी जो जायदाद थी वह श्रोत्रिय वंश की थी। सुनता हूँ कि मेरे पिताजी ने किट्टप्पाजी को धोखा देकर घर से निकाल दिया। यह बात मुझे सात-आठ महीने पहले मालूम हुई थी। तत्पश्चात् उस वंश के लोगों का पता लगाने का पूरा प्रयत्न किया, लेकिन कोई नही मिला। इस विचार से कि अधर्म की जायदाद से उद्धार नही होता, अब कोई पन्द्रह दिन पहले मैंने और मेरे पौत्र ने मिलकर उस समस्त जायदाद को दान कर दिया। अगर पहले मालूम हो जाता तो आपके नाम लिख देता।"

श्रोत्रियजी के व्यक्तित्व के बारे में राज ने अपने भाई से सुना था। स्वप्न में कात्यायनी को बोलते हुए भी सुना था। लेकिन कभी इस बात की कल्पना नही की थी कि इनकी धर्मनिष्ठा इस स्तर तक पहुँची हुई है। अपने सम्मुख बैठे हुए व्यक्ति को उसने एक बार आँख भर देखा। अनजाने में उसे एक तरह का भय हुआ। वह चुपचाप बैठ गया।

अब कौवे बोलने लगे थे। श्रोत्रियजी ने द्वार खोला और बाहर आकाश को देखकर अंदर आये—"चार बजे का समय है। वर्षा भी रुकी हुई है। अब आगे का कार्य कीजिए। मैं चलता हूँ।"

"हमें छोड़कर जा रहे हैं ? नये संबंध की बात बतायी आपने। आप तो मेरे पिता के समान हुए" राज ने कहा।

"हाँ, संबंध कुछ वैसा ही है। लेकिन जो संन्यास के लिए निकल पड़ा है, उसका कोई संबंध नहीं होता। इस परिस्थिति में आप लोगों को छोड़ जाने में मुझे दु:ख तो होता है लेकिन निश्चय किया है कि चार दिन में हरिद्वार पहुँच जाना चाहिए" इतना कहकर अपना पंछा गमछे में बाँध, बाँस में लटकाया और बाहर निकल पड़े। प्रणाम करने के लिए राज

उनके निकट पहुँचा। "इस हालत मे प्रणाम नही करना चाहिए"—कहकर नागलक्ष्मी की ओर मुड़कर "अच्छा, जाता हूँ"—कहकर चल दिये। चीनी निद्रावस्था मे था। वे फाटक पार कर गये। राज द्वार के पास खड़ा उन्ही को देख रहा था।

वे लगभग एक फर्लांग चले। वर्षा के कारण मार्ग के दीप बुझ चुके थे। अँधेरे में मार्ग के मद्धिम प्रकाश को पहचानकर रेलवे स्टेशन की ओर बढ रहे थे। पीछे से चीनी की आवाज आई—"दादीजी !" वे रुक गये। हाँफते हुए उसने कहा—"शायद हमारी पुनः भेंट नही होगी ! एक बात पूछने के लिए आया हूँ।"

"कहो बेटे, क्या बात है ?"

"जो मर गयी है, वे मेरी माँ है ! उनका जीवन किसी तरह चला और समाप्त हो गया। क्या मैं उनकी उत्तर-क्रिया करूँ ? बस, इतना बता दीजिए।"

श्रोत्रियजी ने दोमिनट आँखें मूँदी, सोचकर बोले—"बेटे, दूसरों के पाप-पुण्य का निष्कर्ष निकालने का अधिकार मुझे नही है। इसके अतिरिक्त माता-पिता के जीवन को नापना महापाप है। अपने कर्त्तव्यों को को निभाना ही हमारा कर्त्तव्य है। तुम अपनी माँ की समस्त उत्तर-क्रियाओं को श्रद्धा-भाव से सम्पन्न करो। अपने ससुर से भी कह देना कि मैंने ऐसा कहा है। कपिला के तट पर ही करो।"

चीनी वही खडा रहा।

"अब तुम जाओ। आज का शव-संस्कार भी तुम्हारे जिम्मे है।" वे आगे बढ चले।

सुबह होने से पहले गहरा अधकार फैला था। जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने के लिए मार्ग साफ-साफ नही दिखाई दे रहा था। लेकिन वह ऐसा मार्ग नही था जो पहले कभी देखा न हो। अधकार बीतने के पश्चात् मिलने वाला प्रकाश पहले भी था। अंधकार मे डरकर विचलित होना श्रोत्रिय जी का स्वभाव नही था। आगे बढ़े बिना प्रकाश कैसे मिलेगा ? मन में 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का उच्चारण करते हुए जल्दी-जल्दी स्टेशन की ओर बढ़ने लगे।

●●●